ग्रन्थानुक्रम

प्रकाशकीय वक्तव्य

इस 'पुरातन-जैन-वाक्य-सूची' को प्रेसकी हवा खाते-खाते छह वर्षसे ऊपर समय वीत गया। सन् १६४३ मे जब यह ग्रंथ श्रीवास्तव-प्रेसमें छपनेको दिया गया तब इसके ३-४ महीनेमे ही छपकर प्रकाशित होजानेकी आशा की गई थी और तदनुसार 'अनेकान्त' मासिक-में सूचना भी करदी गई थी, परन्तु प्रेसने अपने वचनों एवं आश्वासनोंके विरुद्ध कुछ ही समय बाद इतना मन्दगतिसे काम किया और कभी-कभी सप्ताहोतक छपाईका काम बन्द भी कर दिया कि उससे प्रस्तावनादि लिखनेका जो उत्साह था वह सब मन्द पड गया। और इसलिये कोई एक वर्ष बाद जब ग्रंथके छपनेकी सूचना 'अनेकान्त' मे निकाली गई तब यह लिखना पडा कि ग्रंथकी प्रस्तावना और कुछ परिशिष्टोंका छपना आदि कार्य अभी बाकी है। उस समय यह सोचा गया था कि अवशिष्ट कार्य प्रायः दो महीनेमें पूरा होकर ग्रंथ अब जल्दी ही प्रकाशमें आजाएगा और इसीसे ग्रंथका मूल्य निर्धारित करके उसके ग्राहक बननेकी भी प्रेरणा करदी गई थी, जिसके फलस्वरूप कितने ही ग्राहकोंके नाम दर्जरजिस्टर हुए और कुछसे मूल्य भी प्राप्त होगया।

इधर परिशिष्टोंका निर्माण होकर छपनेका कुछ कार्य प्रारम्भ हुआ और उधर सरकारकी तरफसे कागजके कंट्रोल आदिका आर्डर जारी होकर ग्रन्थोंके छपनेपर खासा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। उस समय अपना कितना ही कागज ग्रंथोंकी छपाईके लिए देहलीके एक प्रेसमें रक्खा हुआ था, जब सरकारकी ओरसे यह स्पष्ट होगया कि जिन ग्रंथोंके आर्डर प्रेसोंको पहलेसे दिये हुए हैं उनपर उक्त कंट्रोल आर्डर लागू नहीं होगा—वे कागजके उपयोग-सम्बन्धी कोटेका कोई खयाल न रखते हुए भी अवधिके भीतर छपाये जा सकेंगे, तब यही मुनासिब और पहला काम समझा गया कि उस कागजपर अपने उन ग्रंथोंको छपालिया जाय जिनके लिये वह कागज रिजर्व रक्खा हुआ है। तदनुसार इधरका काम छोड देहली जाकर उन ग्रन्थोंमें जो कार्य शेष था उसे यथासाध्य प्रस्तावनादि के साथ पूरा करते हुए उनका छपाना प्रारम्भ किया गया, जिसमें १॥ सालके करीब समय निकल गया। इसी बीचमे वीर-शासन जयन्ती-सम्बन्धी राजगृह तथा कलकत्तेके महोत्सव भी हो गये, जिनमें भी शक्तिका कितना ही व्यय करना पडा है।

इसके सिवाय 'अनेकान्त' पत्रको बराबर चालू रक्खा गया है और उसमें समयकी आवश्यकता तथा उपयोगिताको ध्यानमें रखते हुए कितने ही महत्वके आवश्यक लेखोंको समय-पर लिखने तथा लिखानेमे प्रवृत्त होना पडा है। दूसरे, स्वास्थ्यने भी ठीक साथ नहीं दिया, वह अनेक बार गडबडमें ही चलता रहा है और कभी-कभी तो किसी दुःस्वप्नादिके कारण ऐसा भी महसूस होने लगा था कि शायद जीवन अब जल्दी ही समाप्त होजाय और इससे तदनुरूप कुछ चिन्ताओंने भी आ घेरा था। तीसरे, स्याद्वादमहाविद्यालय काशीके प्रधान अध्यापक पं० श्री कैलाशचन्दजी शास्त्रीकी तथा और भी कुछ विद्वानोंकी ऐसी इच्छा जान पडी कि यदि प्रस्तावनामें इन प्राकृत ग्रंथों और इनके रचयिताओंका कुछ परिचय मुख्तार सा० की (मेरी)

लेखनीसे लिखा जाय तो वह साहित्य और इतिहासकी एक खास चीज होगी, परन्तु उसके लिखने योग्य चित्तकी स्थिरता और निराकुलतामें बराबर बाधा पडती रही, संस्थाके प्रबन्धादिक-की चिन्ताएँ भी सताती रहीं और मोहवश लिखनेके उस विचारको छोडा भी नहीं जा सका।

इस तरह अथवा इन्हीं सब कारणोंके वश प्रस्तावनाका मेरे द्वारा लिखा जाना बराबर टलता रहा, फलतः ग्रन्थका प्रकाशन भी टलता रहा और इससे ग्रन्थावलोकनके लिये उत्सुक विद्वानोंकी इच्छामें बराबर व्याघात पडता रहा* और उन लोगोंको तो बहुत ही बुरा मालूम हुआ जिन्होंने ग्रंथके शीघ्र प्रकाशित होनेकी सूचना पाकर मूल्य पेशगी भेज दिया था। उनमेंसे कुछके धैर्यका तो बांध ही टूट गया और उन्होंने सख्त ताकीदी पत्र लिखे, उलहने तथा आरोपोंके रूपमें अपना रोष व्यक्त किया और दो-एक ने अपना मूल्य भी वापिस भेज देनेके लिये बाध्य किया जो अन्तको उन्हें वापिस भेज दिया गया। ग्राहकोंके इस रोष पर मुझे जरा भी क्षोभ नहीं हुआ, क्योंकि मैं इसमें उनका कोई दोष नहीं देखता था—आखिर धैर्यकी भी कोई सीमा होती है, फिर भी मैं उनकी तत्काल इच्छापूर्ति करनेमें असमर्थ था—अपनी परिस्थितियोंके कारण मजबूर था। हाँ, एक दो बार मैंने यह जरूर चाहा है कि अपनी संस्थाके विद्वानोंमेंसे कोई विद्वान इस प्रस्तावनाको जैसे तैसे लिख दे, जिससे ग्रथ जल्दी प्रकाशित होकर झगड़ा मिटे परन्तु किसीने भी अपने को उसके लिये प्रस्तुत नहीं किया—मुझे ही उसको लिखनेकी बराबर प्रेरणा की जाती रही। डाक्टर ए० एन० उपाध्येने अपनी अंग्रेजी भूमिका (Introduction) तो मई सन् १९४५ में ही लिख कर भेज दी थी।

आखिर अक्तूबर सन् १९४६ के अन्तमें प्रस्तावनाका लिखना प्रारम्भ हुआ। उसके प्रथम तीन प्रकरण और अन्तका पाँचवाँ प्रकरण तो ७ नवम्बर सन् १९४६ को ही लिखकर समाप्त हो गये थे, परन्तु 'ग्रन्थ और ग्रन्थकार' नामक चौथा महाप्रकरण कुछ और बादमें—सभवतः सन् १९४७ के शुरूमें—लिखा जाना प्रारम्भ हुआ और उसे समय, स्वास्थ्य, शक्ति और परिस्थिति आदिकी जैसी कुछ अनुकूलता मिली उसके अनुसार वह बराबर लिखा जाता रहा है। जब प्रस्तावनाका अधिकाँश भाग लिखा जा चुका तब उसे शुरू जनवरी सन् १९४८ को प्रेसमें दिया गया और छापकर देनेके लिये अधिकसे अधिक तीन महीनेका वादा लिया गया, परन्तु प्रेसने अपनी उसी बेढंगी चालसे चलकर प्रस्तावनाके १३२ पेजोंके छापनेमें ही पूरा साल गाल दिया। और आगेको अपनी कुछ परिस्थितियोंके वश छापनेसे साफ जवाब दे दिया। तब प्रस्तावनाके शेष ३७ पेजोंको रायल प्रिंटिंग प्रेस सहारनपुरमें छपाया गया। इसके बाद दूसरी अनेक परिस्थितियोंके वश अवशिष्ट छपाईका काम फिर कुछ समयके लिये टल गया और वह अन्तको देहलीके रामा प्रिंटिंग प्रेस द्वारा पूरा किया गया है।

इस प्रकार यह इस ग्रन्थके अतिविलम्ब अथवा आशातीत विलम्बसे प्रकाशित होने की कहानी है, जिसका प्रधान जिम्मेदार इन पंक्तियों का लेखक ही है—वह प्रस्तावनाको जल्दी लिखकर नहीं दे सका और न अन्यत्र किसी ऐसे प्रेसका प्रबन्ध ही कर सका है जो शीघ्र छापकर दे सके, और यह एक ऐसा अपराध है जिसके लिये वह अपनेको क्षमा-याचनाका

* डाक्टर ए० एन० उपाध्येजी एम० ए० कोल्हापुर प० नाथूरामजी प्रेमी बम्बई और प० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य बनारसने तो ग्रन्थके छपे फार्मोंको मँगाकर समयपर अपनी तत्कालीन इच्छा तथा आवश्यकताकी पूर्ति करली थी।

अधिकारी भी नहीं समझता। मेरी इस शिथिलता, अयोग्यता, अव्यवस्था अथवा परिस्थितियों की विवशताके कारण अनेक पाठक सज्जनोंको जो प्रतीक्षाजन्य कष्ट उठाना पडा है उसका मुझे भारी खेद है। अस्तु, प्रस्तावनाके पीछे जो भारी परिश्रम हुआ है, जो अनुसन्धान-कार्य किया गया है और उसके कितने ही लेखों—खासकर 'सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन', गोम्मटसार और नेमिचन्द्र,' 'तिलोयपण्णत्ती और यतिवृषभ' जैसे निबन्धो-द्वारा जो नई नई विशिष्ट खोजें प्रस्तुत की गई हैं उन सबको देखकर संभव है कि आकुलित हृदय पाठकोंको सान्त्वना मिले और वे अपने उस प्रतीक्षाजन्य कष्ट को भूल जायँ। यदि ऐसा हुआ तो यही मेरे लिये सन्तोष-का कारण होगा।

यह ग्रन्थ क्योंकर बना और इसकी क्या उपयोगिता है, इस बातको प्रस्तावनामें भले प्रकार व्यक्त किया गया है। यहाँ पर मैं सिर्फ इतना ही बतलादेना चाहता हूँ कि इस ग्रथके निर्माण और प्रकाशनका प्रधान लक्ष्य रिसर्च स्कॉलरो—शोध-खोसके विद्वानोंको उनके कार्यमे सहायता पहुँचाना रहा है। ऐसे विद्वान कम हैं, इसलिये ग्रंथकी कुल ३०० प्रतियाँ ही छपाई गई हैं, कागज-की महँगाई और उसकी यथेष्ठ प्राप्तिका न होना भी प्रतियोंके कम छपानेमे एक कारण रहा है। ग्रन्थकी प्रस्तावनाको जो रूप प्राप्त हुआ है यदि पहलेसे वह रूप देना इष्ट होता तो ग्रन्थकी प्रतिया हजार भी छपाई जातीं तो वे अधिक न पडती, क्योंकि प्रस्तावना अब सभी साहित्य तथा इतिहासके प्रेमियोंकी रुचिका विषय बन गई है। परन्तु जो हुआ सो हो गया, उसकी चिन्ता अब व्यर्थ है। हाँ, प्रतियोंकी इस कमीके कारण ग्रन्थका जो भी मूल्य रक्खा गया है वह लागत-से बहुत कम है। पहले इस सजिल्द ग्रन्थका मूल्य १२) रु० रक्खा गया था और यह घोषणा की गई थी कि जो ग्राहक महाशय मूल्यके १२) रु० पेशगी भेज देंगे उन्हें उतनेमें ही ग्रन्थ घर बैठे पहुँचा दिया जायगा—पोष्टेज खर्च देना नहीं पडेगा। परन्तु इधर प्रस्तावना धारणासे अधिक बढ़ गई और उधर प्रस्तावनादिकी छपाईका चार्ज प्रायः दुगुना देना पड़ा। साथ ही कागजकी जो कमी पडी उसे अधिक दामोंमे कागज खरीदकर पूरा किया गया। इसलिये ग्रन्थका मूल्य अब तैयारी पर लागतसे कम १५) रु० रक्खा गया है, फिर भी जिन ग्राहकोंसे १२) रु० मूल्य पेशगी आचुका है उन्हे उसी मूल्यमे अपना पोष्टेज लगाकर ग्रंथ भेजा जायगा। शेषको पोष्टेजके अलावा १५) रु० में ही दिया जायगा और उनमे उन ग्राहकोंको प्रधानता दी जायगी जिनके नाम पहलेसे ग्राहकश्रेणीमें दर्ज हो चुके हैं।

अन्तमें मैं संस्थाकी ओरसे डा० ए० एन० उपाध्ये एम० ए० का उनके Introduction के लिये और डा० कालीदास नाग एम० ए० का उनके Foreword के लिये भारी आभार व्यक्त करता हुआ विराम लेता हूं।

जुगलकिशोर मुख्तार
अधिष्ठाता 'वीरसेवामन्दिर'

धन्यवाद

इस ग्रन्थके निर्माण-कार्य और प्रकाशनमें श्रीमान् साहू
शान्तिप्रसादजी जैन डालमियानगर (विहार) और
उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमाराणीजी जैनका
आर्थिक सहयोग रहा है। अतः
इस सत्सहयोगके लिये आप
दोनोंको हार्दिक धन्यवाद
समर्पित है।

जुगलकिशोर मुख्तार

वाक्य-सूचीके आधारभूत मूल ग्रन्थ

—:o:—

ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थकार-नाम	प्रस्तावना-पृष्ठ (परिचयार्थ)
अंगपण्णत्ती (अंगप्रज्ञप्ति)	शुभचन्द्र (विजयकीर्त्ति-शिष्य)	११२
आइ(य)रियभत्ती (आचार्यभक्ति)	कुन्कुन्दाचार्य	१६
आयणाणतिलय(आयज्ञानतिलक)	भट्टवोसरि	१०१
आराहणासार (आराधनासार)	देवसेन	६१
आसवतिभंगी (आस्रवत्रिभंगी)	श्रुतमुनि	१११
कत्तिकेयअणुपेक्खा (कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा)	स्वामी कार्तिकेय (कुमार)	२२
कम्मपयडी (कर्मप्रकृति)	नेमिचन्द्र	६४
कल्लाणालोयणा (कल्याणालोचना)	ब्रह्मअजित	११२
कसायपाहुड (कषायप्राभत)	गुणधराचार्य	१६
गोम्मटसार-कम्मकंड (गोम्मट-कर्मकांड)	नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती	६८
गोम्मटसार-जीवकंड (गोम्मट-जीवकांड)	" "	६८
चारित्तपाहुड (चारित्रप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१४
चारित्तभत्ती (चारित्रभक्ति)	" "	१६
छक्खंडागम (षट्खंडागम)	पुष्पदन्त, भूतबलि	२०
छेदपिंड	इन्द्रनन्दियोगीन्द्र	१०५
छेदसत्थ (छेदशास्त्र)	×	१०६
जंबूदीवपण्णत्ती (जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति)	पद्मनन्दी	६४
जोगसार (योगसार)	योगीन्दुदेव	५८
जोगिभत्ती (योगिभक्ति)	कुन्दकुन्दाचार्य	१६
ढाढसीगाहा (ढाढसीगाथा)	×	१०४
णयचक्क(नयचक्र)	देवसेन	६१
णंदी(नन्दि)संघ-पट्टावली	×	११५
णाणसार (ज्ञानसार)	पद्मसिंहमुनि	६८
णियप्पाट्ठय (निजात्माष्टक)	योगीन्द्रदेव	५८
णियमसार (नियमसार)	कुन्दकुन्दाचार्य	१३
णिव्वाणभत्ती (निर्वाणभक्ति)	"	१६
तच्चसार (तत्त्वसार)	देवसेन	६१
तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)	यतिवृषभाचार्य	२७
तिलोयसार (त्रिलोकसार)	नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती	६२
थोस्सामि थुदि (तीर्थङ्कर-स्तुति)	×	१७

ग्रन्थ नाम	ग्रन्थकार-नाम	प्रस्तावना-पृष्ठ (परिचयार्थ)
दव्वसहावपयास णयचक्क (द्रव्यस्वभावप्रकाश नयचक्र)	माइल्लधवल	६२
दव्वसंगह (द्रव्यसंग्रह)	नेमिचन्द्र	६२
दंसणपाहुड (दर्शनप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१३
दंसणसार (दर्शनसार)	देवसेन	५६
धम्मरसायण (धर्मरसायन)	पद्मनन्दिमुनि	६७
परमप्पपयास (परमात्मप्रकाश)	योगीन्दुदेव	५७
परमागमसार	श्रुतमुनि	११२
पवयणसार (प्रवचनसार)	कुन्दकुन्दाचार्य	१२
पंचगुरुभत्ती (पञ्चगुरुभक्ति)	"	१७
पंचत्थिपाहुड (पंचास्तिकाय)	"	१२
पंचसंगह (पञ्चसंग्रह)	(अज्ञात पुरातनाचार्य)	६४
पाहुडदोहा (प्राभृतदोहा)	मुनिरामसिंह	११६
बारसअनुपेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)	कुन्दकुन्दाचार्य	१३
बोधपाहुड (बोधप्राभृत)	"	१४
भगवदी आराहणा (भगवती आराधना)	शिवार्य	२०
भावतिभंगी (भावत्रिभंगी)	श्रुतमुनि	११०
भावपाहुड (भावप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१४
भावसंगह (भावसंग्रह)	देवसेन	६१
मूलाचार	वट्टकेराचार्य	१८
मोक्खपाहुड (मोक्षप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१४
रयणसार (रत्नसार)	"	१५
रिट्ठसमुच्चय (रिष्टसमुच्चय)	दुर्गदेव	६८
लद्धिसार (लब्धिसार)	नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	६१
लिंगपाहुड (लिंगप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१५
वसुणंदि-सावयायार (वसुनन्दिश्रावकाचार)	वसुनन्दिसैद्धान्तिक	६६
समयपाहुड (समयसार)	कुन्दकुन्दाचार्य	१३
सम्मइसुत्त (सन्मतिसूत्र)	सिद्धसेनाचार्य	११६
सावयधम्मदोहा (श्रावकधर्मदोहा)	×	११६
सिद्धभत्ती (सिद्धभक्ति)	कुन्दकुन्दाचार्य	१६
सिद्धंतसार (सिद्धान्तसार)	जिनेन्द्राचार्य	११३
सीलपाहुड (शीलप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१५
सुत्तपाहुड (सूत्रप्राभृत)	"	१४
सुदखंध (श्रुतस्कन्ध)	ब्रह्म-हेमचन्द्र	१०३
सुदभत्ती (श्रुतभक्ति)	कुन्दकुन्दाचार्य	१६
सुप्पहदोहा (सुप्रभदोहा)	सुप्रभाचार्य	११७

तृतीय परिशिष्टके आधारभूत टीकादि ग्रन्थ

ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थकार-नाम	ग्रन्थ-भाषा
अनगारधर्मामृत-टीका	पं० आशाधर	संस्कृत
आचारसार	वीरनन्दी	"
आराधनासार-टीका	रत्नकीर्त्ति	"
आलापपद्धति	देवसेन	"
इष्टोपदेश-टीका	पं. आशाधर	"
क्षपणासार-भाषाटीका	प. टोडरमल्ल	हिन्दी
गोम्मटसार-कर्मकाण्ड-टीका (जीवतत्त्वप्रदीपिका)	नेमिचन्द्र (द्वितीय)	संस्कृत
गोम्मटसार-जीवकाण्ड-टीका (जीवतत्त्वप्रदीपिका)	नेमिचन्द्र (द्वितीय)	"
गोमटसार-जीवकाण्ड-टीका (मन्दप्रबोधिका)	अभयचन्द्र	"
चारित्रप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	"
चारित्रसार	चामुण्डराय	"
जम्बूस्वामिचरित	पं० राजमल्ल	संस्कृत
जयधवला (कषायप्राभृत-टीका)	वीरसेन, जिनसेन	संस्कृत-प्राकृत
तत्त्वार्थ-वार्त्तिक-भाष्य	अकलङ्कदेव	"
तत्त्वार्थ-वृत्ति (श्रुतसागरी)	श्रुतसागर	"
तत्त्वार्थ-वृत्ति-टिप्पण	प्रभाचन्द्र	"
तत्त्वार्थ-श्लोकवार्त्तिक-भाष्य	विद्यानन्द	"
दर्शनप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	"
द्रव्यसंग्रह-टीका	ब्रह्मदेव	"
द्रव्यस्वभावनयचक्र-टीका	(अज्ञात)	"
धवला (षट्खण्डागम-टीका)	वीरसेनस्वामी	संस्कृत-प्राकृत
नियमसार-टीका (तात्पर्यवृत्ति)	पद्मप्रभ (मलधारी)	संस्कृत
न्यायकुमुदचन्द्र (लघीयस्त्रय-टीका)	प्रभाचन्द्र	"
परमात्मप्रकाश-टीका	ब्रह्मदेव	"
पचाध्यायी	पं० राजमल्ल	"
पचास्तिकाय-तत्त्वप्रदीपिका-वृत्ति	अमृतचन्द्र	"
पचास्तिकाय-तात्पर्यवृत्ति	जयसेन	"
प्रमेयकमलमार्त्तण्ड (परीक्षामुख-टीका)	प्रभाचन्द्र	"

ग्रन्थ नाम	ग्रन्थकार नाम	ग्रन्थ-भाषा
प्रवचनसार-तत्त्वप्रदीपिका-वृत्ति	अमृतचन्द्र	संस्कृत
प्रवचनसार-तात्पर्यवृत्ति	जयसेन	,,
प्रायश्चित्त-चूलिका	श्रीनन्दिगुरु	,,
बोधप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	,,
भावप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	,,
मूलाराधना-दर्पण	पं० आशाधर	,,
मैथिलीकल्याण (नाटक)	हस्तिमल्ल	,,
मोक्षप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	,,
लब्धिसार-टीका	नेमिचन्द्र (द्वितीय)	,,
लाटीसंहिता	पं० राजमल्ल	,,
लोकविभाग	सिंहसूर	संस्कृत
विक्रान्त-कौरव (नाटक)	हस्तिमल्ल	,,
विजयोदया (भ० आराधना-टीका)	अपराजितसूरि	,,
समाधितन्त्र-टीका	प्रभाचन्द्र	,,
सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थवृत्ति)	पूज्यपाद	,,
सागारधर्मामृत-टीका	पं० आशाधर	,,
सिद्धान्तसार-टीका	ज्ञानभूषण	,,
सिद्धिविनिश्चय-टीका	अनन्तवीर्य	,,
सूत्रप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	संस्कृत

ग्रन्थ-संकेत-सूची

——:o:——

सकेत	संकेतित ग्रन्थनाम	उपयुक्त ग्रन्थप्रति
अणि	अणिओगद्दार (अनियोगद्वार)	षट्खण्डागम-सम्बन्धी
अन टी	अनगारधर्मामृत-टीका	माणिकचन्द्र दि जैन ग्रन्थमाला,
अगप	अंगपण्णत्ती(अंगप्रज्ञप्ति)	माणिकचन्द दि जैन ग्रन्थमाला
आचार सा.	आचारसार	सिद्धान्तसारादि सग्रह, मा ग्रन्थमाला
आ प	आराप्रति-पत्र	आरा जैनसिद्धान्तभवनकी लिखितप्रति
आ भ	आयरियभत्ती(आचार्यभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
आय ति	आयणाणतिलय(आयज्ञानतिलक)	हस्तलिखित, वीरसेवामन्दिर सरसावा
आरा टी	आराधनासार-टीका	मणिकचन्द दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
आरा सा	आराधणासार	माणिकचन्द दि जैनग्रन्थमाला, बम्बई
आलाप	आलापपद्धति	सन्मतिसुमनमाला ओराण (गुजरात)
आस ति	आसवतिभंगी (आस्रवत्रिभंगी)	भावसंग्रहादि, माणिकचन्द ग्रन्थमाला
इष्टो टी	इष्टोपदेश-टीका	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
कत्ति अणु	कत्तिकेयअणुपेक्खा (स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)	जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय, बम्बई
कम्मप	कम्मपयडी (कर्मप्रकृति)	हस्तलिखित, वीरसेवामन्दिर, सरसावा
कल्लाण	कल्लाणालोयणा (कल्याणालोचना)	सिद्धान्तसारादिसंग्रह. मा० ग्रन्थमाला
कसाय / कषायपा	कसायपाहुड (कषायप्राभृत)	हस्तलिखित जैनसिद्धान्तभवन आरा
गो क	गोम्मटसार-कर्मकाड	रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बई
गो क जी.	गोम्मटसार-कर्मकाड-जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका	जैनसिध्दान्तप्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
गो जी	गोम्मटसारजीवकाड	रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला बम्बई
गो जी जी	गोम्मटसारजीवकाड-जीवतत्त्वप्रदीपिका	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी, कलकत्ता
गो जी म	गोम्मटसारजीवकाड-मन्दप्रबोधिका	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी सस्था कलकत्ता

संकेत	संकेतित ग्रन्थनाम	उपयुक्त ग्रन्थप्रति
चरित्त.खं. चारित्तपा. चारि.पा.	चारित्तपाहुड (चारित्रप्राभृत)	षट्प्राभृतादिसंग्रह. मा० ग्रन्थमाला
चारित्तपा.टी	चारित्तपाहुड-टीका	,, ,,
चारि.भ.	चारित्तभत्ती (चारित्रभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
चारित्रसा	चारित्रसार	माणिकचन्द्र दि०जैनग्रन्थमाला, बम्बई
चूलि.	चूलिका	जयधवला-चूलिका, हस्तलि०आरा-प्रति
छेदपिं.	छेदपिंड	प्रायश्चित्तसंग्रह,माणिकचन्द्रजैन ग्रन्थमाला
छेदस.	छेदसत्थ(छेदशास्त्र)	,, ,, ,, ,,
जयध.	जयधवला	हस्तलिखित, जैनसिद्धान्तभवन, आरा
जंबू च.	जम्बूस्वामिचरित्र	माणिकचन्द्र दि०जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
जंबू. जंबू प.	जंबूदीवपण्णत्ती(जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति)	हस्तलि०, पं० परमानन्द. वीरसेवामन्दिर
जोगसा.	जोगसार (योगसार)	रायचन्द्रजैन शास्त्रमाला, बम्बई
जोगिभ.	जोगिभत्ती (योगिभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
ढाढसी.	ढाढसीगाहा (गाथा)	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा. ग्रन्थमाला
णयच.	णयचक्क (नयचक्र)	माणिकचन्द्र दि जैनग्रन्थमाला, बम्बई
णंदी.पट्टा.	णंदी (नन्दि) संघपट्टावली	जैनसिद्धान्तभास्कर, वर्ष१ किरण ३-४
णाणसा.	णाणसार (ज्ञानसार)	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह. मा० ग्रन्थमाला
णियप्पा.	णियप्पाट्ठय (निजात्माष्टक)	सिद्धान्तसारादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
णियम. णियमसा.	णियमसार (नियमसार)	जैनग्रन्थरत्नाकरकर्यालय, हीराबाग, बम्बई
णियम.ता.वृ.	णियमसार-तात्पर्य-वृत्ति	,, ,, ,,
णिव्वा.भ.	णिव्वाणभत्ती(निर्वाणभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
तच्चसा.	तच्चसार (तत्त्वसार)	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
तत्त्वार्थवृ टि.	तत्त्वार्थवृत्ति-टिप्पण	हस्तलिखित, वीरसेवामंदिर, सरसावा
तत्त्वार्थवा.	तत्त्वार्थवार्तिक	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता
तत्त्वार्थश्लो.	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक	गाँधी नाथारंगजैनग्रन्थमाला, बम्बई
तत्त्वा वृ श्रु.	तत्त्वार्थवृत्ति-श्रुतसागरी	हस्तलिखित वीरसेवामंदिर, सरसावा
तित्थयर.	तित्थयरत्थुदी (तीर्थंकरस्तुति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
तिलो.प.	तिलोयपण्णत्ती(त्रिलोकप्रज्ञप्ति)	हस्तलिखित, मोती कटरा, आगरा
तिलो.सा.	तिलोयसार (त्रिलोकसार)	माणिकचन्द्र दि०जैनग्रन्थमाला, बम्बई

संकेत	संकेतित ग्रन्थनाम	उपयुक्तग्रन्थप्रति
थोस्सा	थोस्सामि (स्तुति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
दव्वस टी	दव्वसहावणयचक्क-टीका	माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई
दव्वस.णय	दव्वसहावणयचक्क	माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई
दव्वसं.	दव्वसंगह (द्रव्यसंग्रह)	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला. बम्बई
दव्वसं.टी.	दव्वसंगह-टीका	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
दंसणपा.	दंसणपाहुड (दर्शनप्राभृत)	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. ग्रन्थमाला
दंसणपा.टी	दंसणपाहुड-टीका	"
दंसणसा	दंसणसार (दर्शनसार)	जैनग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई
धम्मर	धम्मरसायण(धर्मरसायन)	सिद्धान्तसारादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
धवला	धवला-टीका	हस्तलिखित, जैनसिद्धान्तभवन, आरा
न्यायकु	न्यायकुमुदचन्द्र	माणिकचन्द्र दि०जैनग्रन्थमाला बम्बई
पच्छिमख	पच्छिमखंध(पश्चिमस्कन्ध)	जयधवलन्तर्गत, हस्तलिखित, आराप्रति
परम टी	परमप्पयास-टीका	रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बई
प प / परम प	परमप्पयास(परमात्मप्रकाश)	रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बई
पवयण तत्त्व	पवयणसार—तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
पवयण ता.वृ	पवयणसार—तात्पर्यवृत्ति	" "
पवयणसा	पवयणसार (प्रवचनसार)	" " "
प्रमेयक	प्रमेयकमलमार्त्तण्ड	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
पंचगु. भ	पंचगुरुभत्ती (भक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
पंचत्थि	पंचत्थिपाहुड (पंचास्तिकाय)	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
पंचत्थि.त वृ.	पंचत्थिपाहुड-तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति	" " "
पंचत्थि ता वृ	पंचत्थिपाहुड-तात्पर्यवृत्ति	" " "
पंचस	पंचसंगह (पंचसंग्रह)	हस्तलि , पं. परमानन्द शास्त्री.वीरसेवामंदिर
पंचाध्या	पंचाध्यायी	पं. मक्खनलाल-कृत-भाषा टीका-सहित
पा दो / पाहु दो.	पाहुडदोहा	अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रंथमाला कारंजा
प्रा चू	प्रायश्चित्तचूलिका	प्रायश्चित्तसंग्रह, मा० दि. जैनग्रन्थमाला
बा अणु.	बारसअणुपेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा० दि. जैनग्रन्थमाला
बोधपा	बोधपाहुड (बोधप्राभृत)	" " "
बोधपा टी	बोधपाहुड-टीका	" " "
भ आरा.	भगवदी आराह(ध)णा	श्रीदेवेन्द्रकीर्ति-दि जैनग्रन्थमाला, कारंजा
भावति	भावतिभंगी (भावत्रिभंगी)	भावसंग्रहादि मा. दि जैनग्रन्थमाला

भावपा	भावपाहुड (भावप्राभृत)	पट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. दि जैन ग्रन्थमाला
भावपा टी	भावपाहुड-टीका	पट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. दि जैनग्रन्थमाला
भावस	भावसगह (भावसंग्रह)	भावसंग्रहादि, मा दि जैन ग्रन्थमाला
मु पृ	मुद्रित पृष्ठ	× × ×
मूला	मूलाचार	मुनि अनन्तकीर्ति दि जैनग्रन्थमाला बम्बई
मूला द	मूलाराधना-दर्पण	श्रीदेवेन्द्रकीर्ति दि० जैनग्रन्थमाला, कारंजा
मैथिली.	मैथिली-कल्याण-नाटक	माणिकचन्द्र दि जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
मोक्खपा	मोक्खपाहुड (मोक्षप्राभृत)	पट्प्राभृतादिसंग्रह, मा दि जैन ग्रन्थमाला
मोक्खपा.टी	मोक्खपाहुडटीका	पट्प्राभृतादिसंग्रह. मा. दि जैन ग्रन्थमाला
रयण रयणसा	रयणसार (रत्नसार	पट्प्राभृतादिसंग्रह, मा दि जैन ग्रन्थमाला
रिट्ठस.	रिट्ठसमुच्चय (रिष्टसमुच्चय)	हस्तलिखित, वीरसेवामंदिर सरसावा
लद्धि टी	लद्धि (लब्धि) सारटीका	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था, कलकत्ता
लद्धि सा.	लद्धिसार (लब्धिसार)	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
लाटी सं	लाटी संहिता	माणिकचन्द्र दि जैन ग्रन्थमाला बम्बई
लिंगपा	लिंगपाहुड (लिंगप्राभृत)	पट् प्राभृतादिसंग्रह, मा दि जैन ग्रन्थमाला
लो वि.	लोकविभाग	हस्तलिखित वीरसेवामन्दिर सरसावा
वसु सा	वसुनंदिसावयायार (श्रावकाचार)	जैन सिद्धान्त-प्रचारक मण्डली देवबन्द
वि कौ.	विक्रान्तकौरव	माणिकचन्द्र दि जैन ग्रन्थमाला बम्बई
विजयो	विजयोदया (भ. आराधना-टीका)	देवेन्द्रकीर्ति-दि जैन ग्रन्थमाला कारंजा
समय.	समयपाहुड (समयसार)	रायचन्द्र-जैनग्रन्थमाला बम्बई
सम्मइ.	सम्मइसुत्त (सन्मतिसूत्र)	गुजरात-पुरातत्त्व-मन्दिर-ग्रन्थावली,
समाधि टी.	समाधितंत्र-टीका	वीरसेवामंदिर-ग्रन्थमाला सरसावा
स सि.	सर्वार्थसिद्धि	सखारामनेमिचन्द जैनग्रन्थमाला. सोलापुर
सा टी.	सागारधर्मामृत-टीका	माणिकचन्द्र दि जैनग्रन्थमाला बम्बई
सावयदो	सावयधम्मदोहा	अम्बादास चवरे दि. जैनग्रथमाला कारंजा
सिद्धभ.	सिद्धभत्ती (सिद्धभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह सोलापुर
सिद्धंतटी.	सिद्धंत(सिद्धांत)सार-टीका	सिद्धान्तसारादिसंग्रह, मा ग्रन्थमाला
सिद्धंत सिद्धंत सा	सिद्धंतसार (सिद्धान्तसार)	सिद्धान्तसारादि संग्रह , ,,
सिद्धिवि टी	सिद्धिविनिश्चय-टीका	हस्तलिखित, वीरसेवामन्दिर सरसावा
सीलपा	सीलपाहुड (शीलप्राभृत)	पट् प्राभृतादिसंग्रह मा ग्रथमाला
सुत्तपा	सुत्तपाहुड (सूत्रप्राभृत)	पट् प्राभृतादि संग्रह , ,,
सुत्तपा टी	सुत्तपाहुड-टीका	षट् प्राभृतादि संग्रह, ,, ,,
सुदख.	सुदखंध (श्रुतस्कन्ध)	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा ग्रन्थमाला
सुदभ.	सुदभत्ती (श्रुतभक्ति)	दशभक्त्यादि संग्रह, सोलापुर
सुदभ टी.	सुदभत्ति(श्रुतभक्ति) टीका	,, , ,
सुप्प. दो.	सुप्पभाइरिय(सुप्रभाचार्य)दोहा	हस्तलिखित, वीरसेवामन्दिर सरसावा

———

पुरातन-जैनवाक्य-सूची

की

प्रस्तावना

प्राक्कथन (FOREWORD) और भूमिका

(INTRODUCTION) आदिसे युक्त ।

FOREWORD

[*By* **Dr. Kalidas Nag, M.A. (Cal.) D. Litt. (Paris), Calcutta University, Former General Secretary, Royal Asiatic Society of Bengal.**]

Shri Jugal Kishore Mukhtar is not merely a scholar, but an institution Sacrificing a profitable legal career, he decided to dedicate his life to the cause of study and research into the history, literature and philosophy of Jainism. Out of his humble savings and personal property, he created the *Vir Sewa Mandir Trust* of Rs 51,000/- which is now valued over Rs. 100,000/-. But, much more than any financial aid to the cause, was his life-long contribution to the unfolding of the cultural heritage of Jainism, which is as important to the Jains as to the Indians in general A devoted soul, that he is, he wrote on **Swami Samantabhadra, Grantha-Parikshas, Jina-Pujadhikara-Mimansa, Jainacharyon-ka-Shasanabheda, Vivaha-Samuddeshya, Vivaha-Kshetra-Prakasha, Upasana-Tattva, Siddhi-Sopan** etc, as well as some spiritual poems in Hindi He is an accomplished scholar in *Sanskrit*, *Prakrit* and other languages of Hinduism and Buddhism His knowledge of Jain *Prakrit* and *Apabhransh*, both in published texts and unpublished manuscripts, is almost unrivalled In fact he is a "living encyclopaedea" of Jain culture

Through his intensive research and careful analysis, he has made several dark corners of Jain history and culture clear to us today As early as 1934, I had the pleasure of reading a historical essay on **"Bhagwan Mahavir aur unka Samaya"** He was the first to point out the precise date of the first Sermon of **Lord Mahavir** at Rajagriha, and according to his calculation that event was solemnly celebrated in 1944 at Rajagriha and at Calcutta where the first All India Jain Congress was convened on the occasiou of the 2500th anniversary of the Sermon. His researches were brought to bear on the solution of many complicated problems relating to the works of eminent Jain Acharyas like **Kundakunda, Uma-Swami, Samantabhadra, Siddha-Sena, Yativrishabha, Patrakesari, Akalanka, Vidyananda, Prabhachandra, Rajamalla, Nemichandra,** and others

From the Vir Sewa Mandir many big monographs have been published, while his own articles, notes etc, would be over 1000 He visited the Arrah Jain Siddhant Bhawan and many other important Jain Bhandara-Libraries, giving us valuable information through the Jain periodicals, like *the Jain Gazette, the Jain Hitesh* and the *Anekant* with which he is intimately connected

The crowning glory of his scholarly career will be the publication of a comprehensive lexicon of Jain technical terms named **Jain-Lakshanavali** in which he has thoroughly analysed over 200 Digambar and another 200 Swetambar "*classics*" and arranged the terms alphabetically, so that it would be a most convenient reference book for all scholars

The present prakrit Dictionary **Puratana Jain-Vakya-Suchi** based on 64 standard works of the Digambar Jains in *Prakrit* and *Apabhransh*, is now presented to the public, the Hindi Introduction of which is full of his valuable researches in Jain History, Literature and Philosophy. So I recommend the **Puratana Jain-Vakya-Suchi** and other works mentioned above to the scholars and libraries of India and to the Indological Departments of the big foreign Universities, interested in Indian religion and philosophy.

The gratitude of the nation, specially of the Jains in India, is offered herewith to the illustrious scholar **Jugal Kishoreji,** whom we wish many more years of creative activities in the propagation of '*Ahimsa*', the only sovereign remedy of our world malady In a recent note published by him in his *Anekant*, he has strongly supported the plan of establishing the **Ahimsa Mandir** in the capital of Free India May that dream be realized soon in this crisis of human history and civilisation

Post Graduate Dept
CALCUTTA UNIVERSITY,
17 February 1950

KALIDAS NAG

INTRODUCTION

The contribution of Jaina authors, both monks and lay-men, to the heritage of Indian literature and to the wealth of intellectual life in ancient India, are varied and valuable. All along the Jainas have been a peace-loving community, and naturally they nurtured tastes and tendencies favourable for developing arts and literature, the concrete expressions of which are seen in their magnificent temples and monumental literary compositions

According to Jainism, greater prestige is attached to the ascetic institution, and the ascetics form an integral part of the Jaina social organisation which is made up of monks, nuns, lay-men and lay-women Monks and nuns have no worldly ties and responsibilities, they persue their aim of liberation or *mukti* through spiritual means, they not only practise religion but also preach the same to all those who want to follow the path of religion Lay-men and lay-women are expected to carry out their worldly duties successfully without violating the ideaology of religion, and it is a part of their religious duty to maintain the monks and nuns without any special invitation to them. Thus the formation of the social structure is well conceived and properly sustained.

The members of the ascetic institution, naturally and necessarily, devoted major portion of their time to the study of Jaina scriptures and composition of fresh treatises for the benefit of suffering humanity. Thus generations of Jaina monks have enriched, according to their training, temperament and taste, various branches of Indian literature. The munificence of the wealthy section of the community and the royal patronage have uniformly encouraged both monks and lay-men in their literary pursuits in different parts of India, at least for the last two thousand years or so. The importance of scriptural knowledge in attaining liberation and the emphasis laid on *sastra-dana* have enkindled an inborn zeal in the Jaina community for the preservation and composition of literary works, both religious and secular, the latter too, very often serving some religious purpose directly or indirectly The richness and variety of Jaina contributions to Indian literature can be partly seen from works like the Jaina Granthavali (Bombay 1909) and the Jinaratnakosa Vol. I, (Poona 1944) The latter is an alphabetical register of Jaina works (mainly Sanskrit and Prakrit) and authors, and, thanks to the indefatiguable labours of Prof H D, Velankar, it is sure to prove a land-mark in the progress of the study of Jaina literature.

The study of Jaina literature has a special importance in reconstructing the history of Indian literature Chronology is the back-bone of literary history, and in this respect, Indian literature, generally speaking, lacks in definite datas of authors and their works The Jaina author is almost always an exception to the rule If he is a monk, he specifies his ascetic congregation and mentions his predecessors and teachers, if he is a lay-man, he would give some personal detail and refer to his patron and teacher, and in most cases the date and place of composition are mentioned. I may note here one such case, by way of illustration, so kindly supplied to me by Acharya Jinavijayaji, Bombay. 'According to a verse from an old and broken palm-leaf Ms. of the Visesavasyaka-bhasya in the Jaisalmer Bhandara, Jinabhadra Ksmasramana composed [the word is broken] that work in the temple of Jina at Valabhi when the great

king Siladitya was ruling on Wednesday, Svati Naksatra, Caitra Paurnima, the current Saka year being 531 Such and other chronological details, which are lately coming to light, will require us to state with reservations the famous remark of Whitney that all dates given in Indian literary history are pins set up to be bowled down again. Further, the zeal of Sastradana has so much permeated the hearts of pious Jainas that they took special interest in getting the Mss. of books prepared and distributed among the worthy A typical case I may note here, and it gives a great lesson to us who never issue, even today, an edition of more than one thousand copies of any Jaina scripture A pious lady, Attimabbe by name, fearing that the Kannada Santipurana of Ponna (c. 933 A. D.) would be lost altogether had a thousand copies of it made and distributed This zeal of preservation and propagation of literature has assumed a concrete form in the establishment of Sruta-bhandaras those at Pattan Jaisalmer, Moodbidri, Karanja, Jaipur etc can be looked upon as a part of our national wealth As distinguished from the *prasastis* of authors, we get those of pious donors of Mss at the end of many of them; and they are full of historical details which are useful not only for reconstructing the history of Jaina society in particular but also of Indian society in general

The early literature, of Jainism is in Prakrit But the Jaina authors never attached a slavish sanctity to any particular language Preaching of religious principles in an instructive and entertaining form was their chief aim, and language, just a means to this noble end According to localities and the spirit of the age the Jaina authors adopted various languages and wrote their works in them The result has been unique, they enriched various branches of literature in Prakrits, Sanskrit, Apabhramsa Old-Rajasthani, Old-Hindi, Old-Gujarati, Tamil, Kannada etc In every language their achievements are worthy of special attention The credit of inaugurating an Augustan age in Apabhramsa, Tamil and Kannada unquestinably goes to Jaina authors, and it is impossible to reconstruct the evolution of Rajasthani, Gujarati and Hindi by ignoring the rich philological material found in Jaina works, the Mss of which bearing different dates, are available in plenty Their achievements are equally great in Sanskrit literature, and their value is being lately assessed by research scholars The Jaina works in different languages often show mutual relation, and their comparative study is likely to give chronological clues and socio-historical facts

When we take up the original and authoritative treatises dealing with Indian literature, as a whole, in different languages, we find that full justice is not done to Jaina works coomensurate with their merits and magnitude There, are some notable exceptions like A History of Indian Literature, Vol II, (Calcutta 1933) by M Winternitz, Karnataka Kavicharite, Vols I-III (Bangalore 1924 etc), etc The reasons of this neglect are many We should neither blame nor attribute motives to the historian of literative, because his chief aim is to collect systematically the results of upto-date researches carried on in the literature of which he is writing a connected account. The orthodoxy of Jainas did not open the Ms libraries to early European scholars who led the front of research in Indian literature, the Jaina works were perhaps the last to fall in their hands, the Prakrits and Dravidian languages attracted few scholars, naturally the work that was done by them was limited, and the Jaina literature

presented peculier difficulties owing to the variety of languages and scripts in which it was preserved. The contents of Jaina works had their technicalities which demanded patient study There have been very few scholars who could claim first-hand acquaintance with the entire range of Jaina literature. Thus sufficient researches, with proper perspective, have not been carried in Jaina literature, so that proper place might be assigned to Jaina works in the scheme of Indian literature After extensive researches are carried on, the future historians of Indian literature will have to take their results into account, if they want to make their treatises thorough and authoritative

The first requisite of literary research is to bring out critical editions of various works, based on a sufficient number of Mss. plenty of which are available in different scripts and from various localities. Many Jaina texts are printed quite neatly, they supply the needs of a pious reader who is concerned more with contents, and that too in a spirit of devotion and faith, than with any thing else, but for the purpose of scientific studies they are as good as printed Mss, perhaps less authentic than a good Ms Critical editions, if not already accompanied by, must be followed by critical studies of Individual works discussing their textual problems, language and contents and topics arising from them, authorship, date, their indebtedness to earlier works, their influence on subsequent literature, higher values represented by them, etc The aspects of study depend on the nature of individual works When such monographs are written with critical thoroughness and scientific precision the task of the historian becomes easy when he begins to take a survey of literature. Such monographic studies are a stepping stone to higher criticism in literature So far as Jaina literature is concerned, there is an immense scope and fruitful field for critical editions and studies, but it is a deplorable fact that there is a paucity of earnest, trained workers of scholarly outlook, mainly devoted to Jains literature

Excepting a few cases, the research that has been carried on, in Jaina literature is sporadic, and the results mostly accidental If accident is to be eliminated, or at least the degree of it to be lowered, the research scholar must have a full control over the known material with which he has to deal In order to exercise this control, various facilities and instruments of research must be at his beck and call An upto-date library of published works and journals is a need the value of which cannot be exaggerated. Among the important instruments may be included Descriptive Catalogues of Mss, Bibliographies of various types, Indices of verses, words and proper names etc, by themselves they may appear quite prosaic, but without their aid no research can progress

Every historian of literature must have a clear conception of the relative chronology of the literature which he is handling Wrong chronology leads to perverted results Relative chronology can be ascrteained from various facts references to earlier and by later authors and works, refutations of earlier views of established authorship, the nature of language and contents, quotations from earlier works, etc. It is customary with our authors that they often quote verses of earlier authors either to confirm their own views or to refute those of others At times the names of authors and works too are mentioned If such quotations are genuine and their sources can be traced

they are useful aids in settling the relatives ages of different authors It is by tracing these quotations we are often able to put broad but definite limits to the periods of many of our authors A scholar cannot be expected to commit the verses of all the known works to memory and thus be able to spot and trace the quotations at times his memory may come to his resque, but that is an accident. He must be helped by indices of verses If he once collects the quotations and arranges them alphabetically, such indices will give him great help in tracing their sources, they will not only save his time but also increase the speed of his work and guarantee a security to his results.

Pt Jugalkishore Mukhtar is wellknown to students of Indian literature For the last few decades he has devoted all his time and energies to researches in Jaina literature, and the results of his studies have an abiding value His monograph on Samantabhadra is a model essay containing valuable information, the Anekanta edited by him occupies a prominent place among the Hindi journals devoted to research, and the Virasevamandira founded by him inspires such universal and humanitarian principles that any nation would be proud of it His austere habits, intellectual acumen, earnest outlook on life, uncurbed zeal for weighing the evidence and arriving at the Truth and steady perseverence have made him a great research scholar, an ornament for the intellectual society. It is but natural that, in course of his studies, he would realize the importance and feel the need of various in truments of research like the present work for which students of Indian literature in general and of Jaina literature in particular will feel much obliged to him.

The present volume, Puratana-Jaina-vakya-suci, Part I, or Digambara Jaina Prakrta-padyanukramanika is as its name indicates, an alphabetical Index of verses from Digambara Jaina works in Prakrit. This part includes verses from some three scores of works, in Prakrit and Apabhramsa, composed or compiled by authoritative authors who flourished during the last two thousand years The works of Sivarya, Vattakera, Kundakunda and Jadivasaha etc. form the Pro-Canon of the Jainas, and they occupy an important position in Jaina literature. Most of them can be assigned to the early centuries of Christian era, and the matter contained therein might be even of still earlier age Verses from them are often quoted, and such an Index was an urgent desideratum. A compilation like this has a very little human interest and readable matter, but it has to be remembered that its utility is very great, end it has cost patient and careful labour of months together, it not years The editors and publishers have so much obliged the researchers in Jaina literature that words are perhaps inadequate to express their sense of gratitude

In conclusion, I heartily thank my revered friend Pt Jugalkishoreji for giving me thus opportunity to associate myself with this useful publication which, no doubt, would be used as an instrument of research of superlative importance by all those scholars who are working in the fields of Prakrit and Jaina literature.

Kolhapur,
25th May 1945

A. N UPADHYE.

प्रस्तावना

१. ग्रन्थकी योजना और उसकी उपयोगिता

साहित्यिक और ऐतिहासिक अनुसन्धान अथवा शोध-खोज-विषयक कार्योंके लिये जिन सूचियों या टेबिल्स (Tables) की पहले जरूरत पड़ती है उनमे ग्रन्थोंकी अकारादिक्रमसे वाक्य-सूचियाँ—पद्यानुक्रमणियाँ (श्लोकाऽनुक्रमणिकाएँ)—अपना प्रधान स्थान रखती हैं। इनके विना ऐसे रिसर्च-स्कॉलरका कांम प्रगति ही नहीं कर सकता। इसीसे अक्सर रिसर्च-स्कॉलरोको ये सूचियाँ अपनी अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं अपने हाथसे तय्यार करनी होती हैं और ऐसा करनेमे शक्ति तथा समयका बहुत कुछ व्यय करना पड़ता है; क्योंकि हस्तलिखित ग्रन्थोंमे तो ये सूचियाँ होती ही नहीं और मुद्रित ग्रथोंमे भी इनका प्रायः अभाव रहा है—कुछ कुछ ऐसे ग्रन्थोंके साथ ही वे हालमें लग पाई हैं जिनके सम्पादन तथा प्रकाशनके साथ ऐसे रिसर्चस्कॉलरोंका यथेष्ट सम्पर्क रहा है जो इन सूचियोकी उपयोगिताको भले प्रकार महसूस करते हैं। चुनाँचे जैनसाहित्य और इतिहासके क्षेत्रमें जब मैंने क़दम रक्खा तो मुझे पद-पदपर इन सूचियोंका अभाव खटकने लगा—किसी ग्रन्थमे उद्धृत, सम्मिलित अथवा 'उक्तं च' आदि रूपसे प्रयुक्त अनेक पद्योंके मूलस्रोतकी खोजमें कभी कभी मेरे घंटे ही नहीं, किन्तु दिन तथा सप्ताह तक समाप्त हो जाते थे और बड़ी परेशानी उठानी पड़ती थी, अतः अपने उपयोगके लिये मैंने जीवनमे पचासों संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोंकी ऐसी वाक्य-सूचियाँ स्वयं तय्यार कीं तथा कराई हैं। और जब मुझे निर्णयसागरादि-द्वारा प्रकाशित किसी किसी ग्रन्थके साथ ऐसी पद्यानुक्रमणी लगी हुई मिलती थी तो उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी। कितने ही ग्रन्थोंमे मैंने स्वय प्रेरणा करके पद्यसूचियाँ लगवाई हैं। अनगारधर्मामृत ग्रन्थ मेरे पास बाइंडिंग होकर आगया था, जब मैंने देखा कि उसमें मूलग्रथकी तथा टीकामे आए हुए 'उक्तं च' आदि वाक्योंका कोई भी अनुक्रमणी नहीं लगी है तब इस त्रुटिकी ओर सुहृद्वर पं० नाथूरामजीका ध्यान आकर्षित किया गया, उन्होने मेरी बातको मान लिया और ग्रथके बाइंडिंगको रुकवाकर पद्यानुक्रमणिकाओंको तय्यार कराया तथा छपवाकर उन्हें ग्रथके साथ लगाया। इन वाक्यसूचियोके तैयार करने-करानेमे जहाँ परिश्रम और द्रव्य खर्च होता है वहाँ इन्हें छपाकर साथमे लगानेसे ग्रथकी लागत भी बढ जाती है, इसीसे ये अक्सर उपेक्षाका विषय बन जाती हैं और यही वजह है कि आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, यशस्तिलकचम्पू और श्लोकवार्तिक जैसे बड़े बड़े ग्रथ विना पद्यसूचियोंके ही प्रकाशित हो गए हैं, जो ठीक नहीं हुआ। इन ग्रंथोंके सैंकड़ों-हजारों पद्य दूसरे ग्रंथोंमे पाए जाते हैं और ऐसे ग्रथोंमें भी पाये जाते हैं जिन्हें पूर्वाचार्यों के नामपर निर्मित किया गया है और जिनका कितना ही पता मुझे ग्रथपरीक्षाओं[१] के समय लगा है। यदि ये ग्रन्थ पद्यानुक्रमणियोको साथमें लिये हुए होते तो इनसे अनुसंधानकार्यमें बड़ी सहायता मिलती। अस्तु।

---

१ ये ग्रन्थपरीक्षाएँ चार भागोंमें प्रकाशित होचुकी हैं, जिनमें क्रमशः (१) उमास्वामि-श्रावकाचार, कुन्दकुन्द-श्रावकाचार, जिनसेन-त्रिवर्णाचार, (२) भद्रबाहु-संहिता, (३) सोमसेन-त्रिवर्णाचार, धर्मपरीक्षा (श्वेताम्बरी) अकलंक-प्रतिष्ठापाठ, पूज्यपाद-उपासकाचार, और (४) सूर्यप्रकाश नामक ग्रन्थोंकी परीक्षाएँ हैं। उमास्वामि-श्रावकाचार-परीक्षाका अलग संस्करण भी परीक्षा-लेखोंके इतिहास-सहित प्रकाशित हो गया है।

कुछ वर्ष हुए जब मैंने धवल और जयधवल नामक सिद्धान्त-ग्रंथोंपरसे उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये एक हजार पेजके करीब नोट्स लिये थे। इन नोटोंमें 'उक्त च' आदि रूपसे आए हुए सैंकड़ो पद्य ऐसे संगृहीत हैं जिनके स्थलादिका उक्त सिद्धान्त-ग्रंथोंमें कोई पता नहीं है और इसलिये 'धवलादिश्रुतपरिचय' नामसे इन ग्रंथोंका परिचय निकालने का विचार करते हुए मेरे हृदयमे यह बात उत्पन्न हुई कि इन 'उक्तं च' आदि रूपसे उद्धृत वाक्योके विषयमें, जो नोटके समयसे ही मेरी जिज्ञासाका विषय बने हुए हैं, यह खोज होनी चाहिये कि वे किस किस ग्रंथ अथवा आचार्यके वाक्य हैं। दोनों ग्रंथोंमें कुछ वाक्य 'तिलोय-पण्णत्ती' के स्पष्ट नामोल्लेखके साथ भी उद्धृत हैं और इससे यह ख़याल पैदा हुआ कि इस महान् ग्रंथके और भी वाक्य बिना नामके ही इन ग्रथोमे उद्धृत होने चाहियें, जिनका पता लगाया जावे। पता लगानेके लिये इससे अच्छा दूसरा कोई साधन नहीं था कि 'तिलोय-पण्णत्ती' के वाक्योकी पहले अकारादि क्रमसे अनुक्रमणिका तैयार कराई जाय; क्योंकि वह आठ हजार श्लोक-जितना एक बड़ा ग्रंथ है, उसको हस्तलिखित प्रतियोंपरसे किसी वाक्य-विशेषका पता लगाना आसान काम नहीं है। तदनुसार बनारसके स्याद्वादमहाविद्यालयसे तिलोयपण्णत्तीकी प्रति मँगाई गई और उसके गाथा-वाक्योको कार्डोंपर नोट करनेके लिये पं० ताराचन्दजी न्यायतीर्थको योजना की गई। परन्तु बनारसकी यह प्रति बेहद अशुद्ध थी और इसलिये इसपरसे एक कामचलाऊ पद्यानुक्रमणिकाको ठीक करनेमे मुझे बहुत ही परिश्रम उठाना पड़ा है। दूसरी प्रति देहली धर्मपुराके नये मन्दिरसे बा० पन्नालालजीकी मार्फत और तीसरी प्रति बा० कपूरचन्दजीकी मार्फत आगराके मोतीकटराके मन्दिरसे मँगाई गई। ये दोनो प्रतियाँ उत्तरोत्तर बहुत कुछ शुद्ध रहीं और इस तरह तिलोयपण्णत्तीकी एक अनुक्रमणिका जैसे तैसे ठीक होगई और उससे धवलादिके कितने ही पद्योंका नया पता भी चला है। इसके बाद और भी कुछ ग्रंथोंकी नई अनुक्रमणिकाएँ वीरसेवामन्दिरमे तैयार कराई गई हैं। और ये सब सूचियाँ अनुसन्धानकार्योंमे अपने बहुत काम आती रही हैं।

अपने पासकी इन सब पद्यानुक्रम-सूचियोका पता पाकर कितने ही दूसरे विद्वान भी इनसे यथावश्यकता लाभ उठाते रहे हैं—अपने कुछ पद्योको भेजकर यह मालूम करते रहे हैं कि क्या उनमेंसे किसी पद्यका इन अनुक्रमसूचियोंसे यह पता चलता है कि वह अमुक ग्रंथका पद्य है अथवा अमुक ग्रंथमें भी पाया जाता है। इन विद्वानोमे प्रोफेसर ए० एन० उपाध्येजी एम० ए० कोल्हापुर, प्रो० हीरालालजी एम० ए० अमरावती, पं० नाथूरामजी प्रेमी बम्बई, और पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। कुछ विद्वानोंने तो इन वाक्यसूचियोमेंसे कईकी स्वयं कापियां भी की हैं तथा कराई हैं।

पुरातनवाक्यसूचियोंकी उपयोगिता और विद्वानोके लिये उनकी जरूरतको अनुभव करते हुए यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन्हें प्राकृत और संस्कृतके दो विभागोंमे विभाजित करके यथाक्रम वीरसेवामन्दिरसे ही प्रकाशित कर देना चाहिये, जिससे सभी विद्वान इनसे यथेष्ट लाभ उठा सकें। तदनुसार पहले प्राकृत-विभागको निकालनेका विचार स्थिर हुआ। इस विभागमें यदि अलग अलग ग्रंथक्रमसे ही प्रस्तुत संग्रह कर दिया जाता तो यह कभीका प्रकाशित होजाता; क्योंकि उस समय जो सूचियाँ तैयार थीं उन्हें ही ग्रथक्रम डालकर प्रेसमें दे दिया जाता। परन्तु साथमें यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि जिन ग्रंथोंके वाक्योका संग्रह करना है उनका ग्रंथवार अनुक्रम न रखकर सबके वाक्योंका अकारादि-क्रमसे एक ही जनरल अनुक्रम तैयार किया जाय, जिससे विद्वानोंकी शक्ति और समयका यथेष्ट संरक्षण हो सके; क्योंकि अक्सर ऐसा देखनेमें आया है कि किसी भी एक वाक्यके अनुसंधानके लिये पचासों ग्रंथोंकी वाक्यसूचियोको निकालकर टटोलने अथवा उनके पन्ने पलटनेमे बहुत कुछ समय तथा शक्तिका व्यय हो जाता है और कभी कभी तो चित्त अकुला जाता है; जनरल अनुक्रममे

ऐसा नहीं होता—उसमें क्रमप्राप्त एक ही स्थानपर दृष्टि डालनेसे उस वाक्यके अस्तित्वका शीघ्र पता चल जाता है। चुनाँचे इस विषयमे डा० ए० एन० उपाध्येजीसे परामर्श किया गया तो उनकी भी यही राय हुई कि सब ग्रंथोंके वाक्योका एक ही जनरल अनुक्रम रक्खा जाय, इससे वर्तमान तथा भविष्यकालीन सभी विद्वानोकी शक्ति एवं समयकी बहुत बड़ी बचत होगी और अनुसंधान-कार्यको प्रगति मिलेगी। अन्तको यही निश्चय हो गया कि सब वाक्योका (अकारादि क्रमसे) एक ही जनरल अनुक्रम रक्खा जाय। इस निश्चयके अनुसार प्रस्तुत कार्यके लिये अपने पासकी पद्यानुक्रमसूचियोंका अब केवल इतना ही उपयोग रह गया कि उनपरसे कार्डों पर अक्षरक्रमानुसार वाक्य लिख लिये जायँ। साथ ही प्रत्येक वाक्यके साथ ग्रंथका नाम जोड़नेकी बात बढ़ गई। और इस तरह वाक्यसूचीका नये सिरेसे निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ तथा प्रकाशनकार्य एक लम्बे समयके लिये टल गया।

सूचीके इस नव-निर्माणकार्यमे वीरसेवामन्दिरके अनेक विद्वानोंने भाग लिया है—जो जो विद्वान नये आते रहे उनकी अक्सर योजना कार्डोंपर वाक्योंके लिखनेमे होती रही। कार्डोंपर अनुक्रम देने अथवा अनुक्रमको जाँचनेका काम प्रायः मुझे ही स्वयं करना होता था, फिर अनुक्रमवार साफ कापी की जाती थी। इस बीचमे कुछ नये प्राप्त पुरातनग्रथो के वाक्य भी सूचीमें यथास्थान शामिल होते रहे है। कार्डीकरण और कार्डोंपरसे अनुक्रमवार कापीका अधिकाश कार्य पं० ताराचन्दजी दर्शनशास्त्री, पं० शंकरलालजी न्यायतीर्थ तथा पं० परमानन्दजी शास्त्रीने किया है। और इस काममे कितना ही समय निकल गया है।

साफ कापीके पूरा होजानेपर जब ग्रंथको प्रेसमें देनेके लिये उसकी जाँचका समय आया तो यह मालूम हुआ कि ग्रंथमे कितने ही वाक्य सूची करनेसे छूट गये हैं और बहुतसे वाक्य अशुद्धरूपमें संगृहीत हुए हैं, जिनमेंसे कितने ही मुद्रित प्रतियोमें अशुद्ध छपे हैं और बहुतसे हस्तलिखित प्रतियोमें अशुद्ध पाये जाते हैं। अतः ग्रन्थोको आदिसे अन्त तक वाक्यसूचीके साथ मिलाकर छूटे हुए वाक्योंकी पूर्ति की गई और जो वाक्य अशुद्ध जान पड़े उन्हें ग्रंथके पूर्वापर सम्बन्ध, प्राचीन ग्रन्थोपरसे विषयके अनुसन्धान, विषयकी संगति तथा कोष-व्याकरणादिकी सहायताके आधारपर शुद्ध करनेका भरसक प्रयत्न किया गया, जिससे यह ग्रंथ अधिकसे अधिक प्रामाणिक रूपमें जनताके सामने आए और अपने लक्ष्य तथा उद्देश्यको ठीक तौरपर पूरा करनेमे समर्थ हो सके। इतनेपर भी जहाँ कहीं कुछ सन्देह रहा है वहाँ ब्रेकटमें प्रश्नाङ्क (?) दे दिया गया है। जाँचके इस कार्यने भी, जिसमें पद्योंके क्रम-परिवर्तनको भी अवसर मिला, काफी समय ले लिया और इसमे भारी परिश्रम उठाना पड़ा है। इस कार्यमें न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया और प० परमानन्दजी शास्त्रीका मेरे साथ खास सहयोग रहा है। साथ ही, मूलपरसे संशोधनमें पं० दीपचन्दजी पांड्या केकडी (अजमेर) ने भी कुछ भाग लिया है।

यहाँ प्रसंगानुसार मैं दस पाँच मुद्रित और हस्तलिखित ग्रंथोंकी अशुद्धियोके कुछ ऐसे नमूने दे देना चाहता था जिन्हें इस वाक्यसूचीमे शुद्ध करके रक्खा गया है, जिससे पाठकोको सूचीके जाँचकार्यकी महत्ता, संशोधनकी सूक्ष्मता (बारीकी) और ग्रंथको यथाशक्ति अधिकसे अधिक प्रामाणिकरूपमें प्रस्तुत करनेके लिये किये गए परिश्रमकी गुरुताका कुछ आभास मिल जाता; परन्तु इससे एक तो प्रस्तावनाका कलेवर अनावश्यकरूपमे बढ़ जाता; दूसरे, जिन प्रकाशकोंके ग्रंथोंकी त्रुटियोको दिखलाया जाता उन्हें वह कुछ बुरा लगता—उनकी कृतियोंकी आलोचना करना अपनी प्रस्तावनाका विषय नहीं है; तीसरे, जो अध्ययनशील अनुभवी विद्वान् हैं वे मुद्रित-अमुद्रित ग्रंथोंकी कितनी ही त्रुटियोंको पहलेसे जान रहे हैं और जिन्हें नहीं जान रहे हैं उन्हें वे इस ग्रंथपरसे तुलना करके सहजमे ही जान लेंगे, यही सब सोचकर यहाँपर उक्त इच्छाका संवरण किया जाता है।

यहाँ एक बातकी सूचना कर देनी यहाँ आवश्यक है और वह यह कि जिन वाक्योंके कुछ अक्षरोंको गोल ब्रेकट ( ) के भीतर रक्खा गया है वे या तो दूसरी ग्रंथप्रतिमे उपलब्ध होनेवाले पाठान्तरके सूचक हैं अथवा अशुद्ध पाठके स्थानमें अपनी ओरसे कल्पित करके रक्खे गये हैं—पाठान्तरके सूचक प्रायः उन्हें ही समझना चाहिये जिनके पूर्वमे पाठ प्रायः शुद्ध हैं। और जिन अक्षरोंको बड़ी ब्रेकट [ ] में दिया गया है वे वाक्योंके त्रुटित अंश है ,जिन्हें ग्रंथ-सगतिके अनुसार अपनी ओरसे पूरा करके रक्खा गया है।

जॉच और संशोधनका यह गहनकार्य बहुत कुछ सावधानीसे किया जानेपर भी कुछ वाक्य सूचीसे छूट गये और कुछ प्रेसकी असावधानी तथा दृष्टिदोपके कारण संशोधित होनेसे रह गये और इस तरह अशुद्ध छप गये । जो वाक्य अशुद्ध छप गये उनके लिये एक 'शुद्धिपत्र' ग्रंथके अन्तमें लगा दिया गया है और जो वाक्य छूट गये उनकी पूर्ति परिशिष्ट नं० १ द्वारा की गई है। इस परिशिष्टमें अधिकांश वाक्य पंचसंग्रह और जंबूदीवपण्णत्तीके हैं, जो बादको आमेर (जयपुर) की प्राचीन प्रतियोंपरसे उपलब्ध हुए है और जिनके स्थानकी सूचना वाक्यसूचीमें प्रकाशित जिस जिस वाक्यके बाद वे उपलब्ध हुए हैं उनके आगे ब्रेकटमे क, ख आदि अक्षर जोड़कर की गई है। और इससे दो बातें फलित होती हैं—(१) एक तो यह कि इन ग्रंथोके अध्यायादि क्रमसे जो वाक्य-नम्बर सूचीमे मुद्रित हुए है वे सर्वथा अपरिवर्तनीय नहीं हैं, उनमे छूटे हुए वाक्योको शामिल करके प्रत्येक अध्यायादिके पद्य-नम्बरोका जो एक क्रम तैयार होवे उसके अनुसार उसमें परिवर्तन हो सकता है। (२) दूसरी यह कि अन्य ग्रंथोंकी प्राचीन प्रतियोंमे भी कुछ ऐसे वाक्योका उपलब्ध होना संभव है जो वाक्यसूचीमे दर्ज न हो सके हो, और यह तभी हो सकता है जबकि उन उन ग्रथोंकी प्राचीन प्रतियोको खोजकर उन परसे जॉचका तुलनात्मक कार्य किया जाय। सच पूछा जाय तो जब तक प्रतियोंकी पूरी खोज होकर उनपरसे ग्रंथोके अच्छे प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं होते तब तक साधारण प्रकाशनो और हस्तलिखित प्रतियोपरसे इन वाक्यसूचियोंके तैयार करनेमे तथा उनमे वाक्योको नम्बरित (क्रमाङ्कोसे अङ्कित) करनेमें कुछ न कुछ असुविधा बनी ही रहेगी—उन्हें सर्वथा निरापद नहीं कहा जा सकता। और न प्रक्षिप्त अथवा उद्धृत कहे जाने वाले वाक्योंके सम्बन्धमें कोई समुचित निर्णय ही दिया जा सकता है। परन्तु जब तक वह शुभ अवसर प्राप्त न हो तब तक वर्तमानमे यथोपलब्ध साधनोंपरसे तैयार की गई ऐसी सूचियोकी उपयोगिताका मूल्य कुछ कम नहीं हो जाता, बल्कि वास्तवमे देखा जाय तो ये ही वे सूचियाँ होंगी जो अधिकाशमे अपने समय की जरूरतको पूरा करती हुई भविष्यमें अधिक विश्वसनीय सूचियोंके तैयार करनेमे सहायक और प्रेरक बनेंगी।

२. ग्रन्थका कुछ विशेष परिचय

इस वाक्य-सूचीमें जगह-जगहपर बहुतसे वाक्य पाठकोको एक ही रूप लिये हुए समान नजर आएँगे और उसपरसे उनके हृदयोमें ऐसी आशङ्काका उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि जब ये वाक्य एक ही ग्रंथके विभिन्न स्थलों अथवा विभिन्न ग्रंथोंमें समानरूपसे विद्यमान हैं तो इन्हें बार बार लिखनेकी क्या जरूरत थी? एक ही बार लिखकर उसके आगे उन ग्रंथोंके नामादिकका संकेत कर देना चाहिये था जिनमे वे समान रूपसे पाये जाते हैं; परन्तु बात ऐसी नहीं है, एक जगह स्थित वे सब वाक्य परस्परमें पूर्णतः समान नहीं हैं—उनमें वे ही वाक्य प्रायः समान हैं जिनके आगे शब्द तथा अर्थकी दृष्टिसे समानताद्योतक चिन्ह लगाया गया है, शेष सब वाक्योंमेसे कोई एक चरणमें कोई दो चरणोंमें और कोई तीन चरणोंमें भिन्न है तथा कुछ वाक्य ऐसे भी हैं जिनमे मात्र एक दो शब्दोंके परिवर्तनसे ही सारे वाक्यका अर्थ बदल गया है और इसलिये वे शब्दशः बहुत कुछ समान होनेपर भी समानताकी

कोटिसे निकल गये हैं। हाँ, दो चार वाक्य ऐसे भी हैं जो अक्षरशः समान हैं, परन्तु उनके कुछ अक्षरोंको एक साथ अलग अलग रखनेपर उनके अर्थमें अन्तर पड़ जाता है, जैसे समयसारकी 'जो सो दु णेहभावो' नामकी गाथा नं० २४० अक्षरदृष्टिसे उसीकी गाथा नं० २४५ के बिल्कुल समकक्ष है; परन्तु पिछली गाथामें 'दु' को 'णेहभावो' के साथ और 'तस्स' को 'रयबधो' के साथ मिलाकर रखनेपर पहली गाथासे भिन्न अर्थ हो जाता है। ऐसे अक्षरोंकी पूर्णतः समानताके कारण वाक्योंपर समानताके ही चिन्ह डले है। समानता-द्योतक *, ×, +, †, ‡ इस प्रकारके चिन्ह पृष्ठ ४६ से प्रारम्भ किये गये हैं। इसके पहले उनकी कल्पना उत्पन्न जरूर हुई थी, परन्तु परिश्रमके भयसे स्थिर नहीं हो पाई थी; बादको उपयोगियाकी दृष्टिने जोर पकड़ा और उक्त कल्पनाको चरितार्थ करना ही स्थिर हुआ। समानता-द्योतक इन चिन्होंके लगानेमें यद्यपि बहुत कुछ तुलनात्मक परिश्रम उठाना पड़ा है परन्तु इससे ग्रंथकी उपयोगिता भी बढ़ गई है, हर एक पाठक सहज हीमे यह मालूम कर सकता है कि जिन वाक्योंपर ये चिन्ह नहीं लगे हैं वे सब प्रारम्भमे समान दीखनेपर भी अपने पूर्णरूपमे समान नहीं हैं, और जो चिन्होंपरसे समान जाने जाते हैं वे भिन्न ग्रंथोंके वाक्य होनेपर उनमेसे एकके वाक्यको दूसरे ग्रन्थकारने अपनाया है अथवा वह बादको दूसरे ग्रंथमे किसी तरहपर प्रक्षिप्त हुआ है। और इसका विशेष निर्णय उन्हें ग्रथोंके स्थलोंपरसे उनकी विशेष स्थितिको देखने तथा जाँचनेसे हो सकेगा। एक दो जगह प्रेसकी असावधानी-से चिन्ह छूट गये है—जैसे 'संकाइदोसरहियं' नामके वाक्योंपर, जो समान है, और एक दो स्थानोंपर वे आगे पीछे भी लग गये हैं, जैसे पृष्ठ ५२ के प्रथम कालममे 'एक्कं च ठिदिविसेसं' नामके जो तीन वाक्य हैं उनमें ऊपरके कसायपाहुड वाले दोनों वाक्योंपर समानताका चिन्ह ‡ लग गया है जब कि वह नीचेके दो वाक्योंपर लगना चाहिये था, जिनमें दूसरा 'लद्धिसार' का वाक्य नं० ४०१ है और वह कसायपाहुडपरसे अपनाया गया है। ऐसी एक दो चिन्होंकी गलती ग्रंथपरसे सहज ही मालूम की जा सकती है। अस्तु, जिन शुरूके ४८ पृष्ठोंपर ऐसे चिन्ह नहीं लग सके हैं उनपर विज्ञ पाठक स्वयं तुलना करके अपने अपने उपयोगके लिये वैसे वैसे चिन्ह लगा सकते हैं।

इस पुरातन जैनवाक्यसूचीमें ६३ मूलग्रंथोंके पद्यवाक्योंकी अकारादिक्रमसे सूची है, जिनमे परमप्पयास (परमात्मप्रकाश), जोगसार, पाहुडदोहा, सावयधम्मदोहा और सुप्पह-दोहा ये पाँच ग्रंथ अपभ्रंश भाषाके और शेष सब प्राकृत भाषाके ग्रंथ है। अपभ्रंश भी प्राकृतका ही एक रूप है, इसीसे वाक्यसूचीका दूसरा नाम 'प्राकृतपद्यानुक्रमणी' दिया गया है। इन मूलग्रंथोंकी अनुक्रमसूची संस्कृत नाम तथा ग्रंथकारोंके नाम-सहित साथमे लगा दी गई है। हाँ, षट्खण्डागममे भी, जो कि प्रायः गद्यसूत्रोंमे है, कुछ गाथासूत्र पाये जाते हैं। जिन गाथासूत्रोंको अभी तक स्पष्ट किया जा सका है उनकी एक अनुक्रमसूची भी परिशिष्ट नं० २ के रूपमे दे दी गई है। और इस तरह मूलग्रथ ६४ हो जाते हैं। इनके अलावा ४८ टीकादि ग्रंथोंपरसे भी ऐसे प्राकृत वाक्योंकी सूची की गई है जो उनमे 'उक्तं च' आदि रूपसे विना नाम-धामके उद्धृत हैं और जो सूचीके आधारभूत उक्त मूलग्रंथोंके वाक्य नहीं हैं। इन वाक्योंमे कुछ ऐसे वाक्योंको भी शामिल किया गया है जो यद्यपि उक्त ६३ मूल-ग्रथोंमेसे किसी न किसी ग्रंथकी वाक्य-सूचीमें पृ० १ से ३०८ तक आ चुके है परन्तु वे उस ग्रथसे पहलेकी बनी हुई टीकाओंमे 'उक्त च' आदि रूपसे उद्धृत भी पाये जाते हैं और जिससे यह जाना जाता है कि ये वाक्य संभवतः और भी अधिक प्राचीन हैं और वाक्य-सूचीके जिस ग्रंथमे वे उपलब्ध होते हैं उसमें यदि प्रक्षिप्त नहीं हैं—जैसे कि गोम्मटसारमें उपलब्ध होनेवाले धवलादिकके उद्धृत वाक्य—तो वे किसी अज्ञात प्राचीन ग्रंथ अथवा ग्रंथोंपरसे लिये जाकर उस ग्रथका अंग बनाये गए हैं। और इसलिये वे ग्रंथ अन्वेषणीय

हैं। ये टीकादि-ग्रंथोपलब्ध वाक्य परिशिष्ट नं० ३ में दिये गये हैं। और इन टीकादि-ग्रंथों की भी एक अलग सूची साथमें दे दी गई है। इनके अतिरिक्त धवला और जयधवला टीकाओंके मंगलादि-पद्योंकी एक अनुक्रमसूची भी परिशिष्ट न० ४ के रूपमें दे दी गई है।

यह वाक्यसूची सब मिलाकर २५३५२ पद्य-वाक्योंकी अनुक्रमणी है—उनके प्रथम चरणादिके रूपमें आद्याक्षरोंकी सूचिका है—जिनमेंसे २४६०८ वाक्योंके आधारभूत ग्रंथों और उनके कर्ताओंका पता तो मालूम है, परन्तु शेष ७४४ वाक्य ऐसे हैं जिनके मूलग्रथों तथा उनके कर्ताओंका पता अज्ञात है और ये ही वे वाक्य हैं जो टीकादि-ग्रंथोंमे उद्धृत मिलते हैं और जिनके मूलस्रोतकी खोज होनी चाहिये। इस सूचीमे कुछ ऐसे वाक्य दर्ज होनेसे रह गये हैं जो मूलग्रंथोंमें 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत पाये जाते हैं—जैसे कार्तिकेयानुप्रेक्षामें गाथा नं० ४०३ के बाद पाया जाने वाला 'जो णवि जादि वियारं' नामका वाक्य—और इसका हमें खेद है।

इस ग्रंथमें जिन वाक्योंकी सूची दी गई है उनमेंसे प्रत्येक वाक्यके सामने भिन्न टाइपमें उसके ग्रथका नाम सक्षिप्त अथवा संकेतितरूपमे दे दिया गया है—जैसे गोम्मटसार-जीवकाण्डको गो० जी०, गोम्मटसार-कर्मकाण्डको गो० क०, गोम्मटसार-जीवकाण्डकी जीवतत्त्वप्रबोधिनी टीकाको गो० जी० जी०, मन्दप्रबोधिनी टीकाको गो० जी० म०, भगवती आराधना ग्रथको भ० आरा०, तिलोयपण्णत्तीको तिलो० प०, और तिलोयसारको तिलो० सा० संकेतके द्वारा सूचित किया गया है। किसी किसी ग्रंथके लिये दो संकेतोंका भी प्रयोग हुआ है जैसे कसायपाहुडके लिये कसाय० तथा कसायपा०, णियमसारके लिये णियम० तथा णियमसा०। साथ ही, ग्रंथनामके अनन्तर वाक्यके स्थलका निर्देश अंकों द्वारा किया गया है। जिन अङ्कोंके मध्यमें डैश (—) है उनमें डैशका पूर्ववर्ती अङ्क ग्रंथके अध्याय, अधिकार, परिच्छेद, पर्वादिकी क्रमसंख्याका सूचक है और उत्तरवर्ती अङ्क उस अध्यायादिमें उस वाक्यके क्रमिक नम्बरको सूचित करता है। और जिन अङ्कोंके मध्यमे डैश नहीं हैं वे उस ग्रंथमे उस वाक्यकी क्रमसंख्याके ही सूचक हैं। ऐसे अङ्कोंके अनन्तर जहाँ कसायपाहुड जैसे ग्रंथके वाक्योंका उल्लेख करते हुए ब्रेकटमें भी कुछ अंक दिये हैं वे उस ग्रंथके दूसरे क्रमके सूचक हैं, जो भाष्यगाथाओंको अलग करके मूल १८० गाथाओंका क्रम है। और जहाँ अङ्कोंके बाद ब्रेकटमें कवर्गका कोई अक्षर दिया है उसे उस अङ्क नं० के अनन्तर बादको पाया जानेवाला वर्गक्रमाङ्क स्थानीय पद्यवाक्य समझना चाहिये। कोई कोई वाक्य किसी एक ही ग्रंथप्रतिमें पाया गया है—दूसरीमें नहीं, उसका सूचक चिन्ह भी साथमें दे दिया गया है, जैसे तिलोयपण्णत्तीकी आगरा-प्रतिका सूचक चिन्ह A, बनारस-प्रतिका सूचक B, सहारनपुर-प्रतिका सूचक S और देहली-प्रतिका सूचक 'दे०' चिन्ह लगाया गया है। ग्रंथ नामादि विषयक इन सब संकेतोंकी एक विस्तृत संकेत-सूची भी साथमे लगादी गई है, जिससे किसी भी वाक्य-सम्बन्धी ग्रंथ अथवा विशिष्ट ग्रंथ-प्रतिको सहजमे ही मालूम किया जा सके। इस सूचीमें ग्रंथनामके सामने उस मुद्रित या हस्तलिखित ग्रंथप्रतिको भी सूचित कर दिया गया है जो आम तौरपर उस ग्रंथकी वाक्य-सूचीके कार्यमे उपयुक्त हुई है।

३. प्राकृतमें वर्णविकार

प्राकृत भाषामें वर्णविकार खूब चलता है—एक एक वर्ण (अक्षर) अनेक वर्णों (अक्षरों) के लिये काम आता अथवा उनके स्थानपर प्रयुक्त होता है और इसी तरह एक के लिये अनेक वर्ण भी काममें लाये जाते अथवा उसके स्थानपर प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण

के तौरपर 'अ' अक्षर क, ग, च, ज, त, द, प, और य जैसे अक्षरोंके लिये भी प्रयुक्त होता है, जैसे 'लोअं' मे क, ग, च, प, य के लिये, 'जुअल' मे ग के लिये, 'लोअण' मे च के लिये, 'मणुअ' में ज के लिये, 'भणिअं' मे त, द के लिये, 'आमोअ' मे द के लिये, 'दीअ' मे प, व के लिये, 'दाअ' मे य के लिये और 'सुअण' में व के लिय प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह 'क' अक्षरके लिये अ, ग, य आदि अक्षरोंका प्रयोग देखनेमे आता है; जैसे 'लोअ' मे अ का, लोग' मे गका और 'लोय' मे य का प्रयोग हुआ है, ये तीनों शब्द लोकार्थक हैं और लोगागास तथा लोयायास जैसे शब्दोंमे इनका यथेच्छ प्रयोग पाया जाता है। कितने ही शब्द ऐसे हैं जो अर्थ और वजनकी दृष्टिसे समान हैं और उनका भी यथेच्छ प्रयोग पाया जाता है, जैसे इइ=इदि, एए=एदे और इक्कं=एक्क=एग=एय। यह सब वर्णविकार कुछ तो प्राकृत भाषाके नियमोका ऋणी है और कुछ विकल्पसे सम्बन्ध रखता है, जिसमे इच्छानुसार चाहे जिस विकल्प अथवा शब्द-रूपका प्रयोग किया जा सकता है। इस वर्णविकारके कारण पद्यवाक्योके क्रममें कितना ही अन्तर पड़ जाना संभव है। लेखकोंकी कृपासे, जो कि प्रायः भाषा-विज्ञ नहीं होते, उस अन्तरको और भी गुंजाइश मिलती है। इसीसे एक ही ग्रंथकी अनेक प्रतियोंमें एक ही शब्दका अलग अलग रूपसे भी प्रयोग देखनेमे आता है; जैसे लोगागास और लोयायास का।

अनुक्रमणिकाके अवसरपर इस अंतरसे कभी कभी बड़ी अड़चन पैदा हुई है—किस किस पाठान्तरको दिया जावे और कैसे क्रम रक्खा जावे? आखिर, बहुमान्य पाठोको ही अपनाया गया है और कहीं कहीं उदाहरणके रूपमें पाठान्तरोको भी दिखला दिया गया है। 'थप्रतियोंकी ऐसी स्थितिको देखकर, मै चाहता था कि इस ग्रंथमें वर्ण-विकार-विषयक एक विस्तृत सूची (Table) उदाहरण-सहित ऐसी लगाई जावे जिससे यह मालूम हो सके कि अकारादि एक-एक वर्ण दूसरे किस किस वर्णके लिये प्रयोगमे आता है और उसकी सहायतासे अपने किसी वाक्यका पता लगाने वालेको उसके खोजनेमे सुविधा मिल सके और वह वर्ण-विकारके नियमोसे अवगत होकर इस वाक्य-सूचीमे थोड़ेसे अन्य प्रकारके पाठ तथा अन्य क्रमको लिये हुए होनेपर भी अपने उस वाक्यकी खोज लगा सके और साधारणसे रूपान्तर तथा पाठभेदके कारण यह न समझ बैठे कि वह वाक्य इस वाक्य-सूचीमे आए हुए किसी भी ग्रंथका नहीं है। परन्तु एक तो यह काम बहु-परिश्रम-साध्य था, इसीसे यथेष्ट अवकाश न मिलनेके कारण बराबर टलता रहा, दूसरे प्राकृत-भाषाके विशेषज्ञ सुहृद्वर डा० ए० एन० उपाध्येजी कोल्हापुरकी यह राय हुई कि इस सूचीसे उन विद्वानोंको तो कोई विशेष लाभ पहुँचेगा नहीं जो प्राकृतभाषाके पंडित हैं—वे तो इस प्रकारकी सूचीके विना भी अपना काम निकाल लेंगे और प्रस्तुत ग्रंथमें अपने इष्टवाक्यके अस्तित्व-अनस्तित्वको सहजमें ही मालूम कर सकेंगे—और जो प्राकृतभाषाके पंडित नहीं हैं वे ऐसी सूचीसे भी ठीक काम नहीं ले सकेंगे, और इसलिये उनके वास्ते इतना परिश्रम उठानेकी जरूरत नहीं। तदनुसार ही उस सूचीके विचारको यहाँ छोड़ा गया है और उसके संबंधमें ये थोड़ी-सी सूचनाएँ कर देना ही उचित समझा गया है। इस वर्ण-विकारके कारण कुछ वाक्य समान होनेपर भी वाक्यसूचीमें भिन्न स्थानोंपर मुद्रित हुए हैं— जैसे भावसंग्रहका 'ठिदिकरणगुणपउत्तो' वाक्य जो मुद्रित प्रतिमें इसी रूपसे पाया जाता है, वर्णक्रमके कारण पृष्ठ १३० पर मुद्रित हुआ है और वसुनन्दिश्रावकाचारका 'ठिदियरणगुणपउत्तो' वाक्य पृष्ठ १३१ पर अतरसे छपा है—और इसीसे ऐसे वाक्योंपर समानताके चिन्ह नहीं दिये जा सके हैं।

४. ग्रन्थ और ग्रन्थकार

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य और उनके ग्रन्थ —

अब मैं अपने पाठकोको उन मूलग्रथों और ग्रंथकारोंका संक्षेपमे कुछ परिचय करा देना चाहता हूँ जिनके पद्य-वाक्योंका इस ग्रंथमे अकारादिक्रमसे एकत्र संग्रह किया गया है। सब से अधिक ग्रंथ (२२ या २३) श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके हैं, जो ८४ पाहुड ग्रथोंके कर्ता प्रसिद्ध हैं और जिनके विदेह-क्षेत्रमे श्रीसीमंधर-स्वामीके समवसरणमें जाकर साक्षात तीर्थंकरमुख तथा गणधरदेवसे बोध प्राप्त करनेकी कथा भी सुप्रसिद्ध है[१] और जिनका समय विक्रमकी प्रायः प्रथम शताब्दी माना जाता है। अतः उन्हींके ग्रंथोंसे इस परिचयका प्रारंभ किया जाता है।

यहाँ पर मैं इन ग्रन्थकार-महोदयके सम्बन्धमे इतना और बतला देना चाहता हूँ कि इनका पहला—संभवतः दीक्षाकालीन नाम पद्मनन्दी था[२], परन्तु ये कोण्डकुन्दाचार्य अथवा कुन्दकुन्दाचार्यके नामसे ही अधिक प्रसिद्धिको प्राप्त हुए है, जिसका कारण 'कोण्डकुन्दपुर' के अधिवासी होना बतलाया जाता है। उसी नामसे इनकी वंशपरम्परा चली है अथवा 'कुन्दकुन्दान्वय' स्थापित हुआ है, जो अनेक शाखा-प्रशाखाओंमे विभक्त होकर दूर दूर तक फैला है।(मर्करा के ताम्रपत्रमे, जो शक संवत ३८८ मे उत्कीर्ण हुआ है, इसी कोण्डकुन्दान्वयकी परम्परामे होनेवाले छह पुरातन आचार्योंका गुरु-शिष्यके क्रमसे उल्लेख है[३])। ये मूलसंघके प्रधान आचार्य थे, पूतात्मा थे, सत्संयम एवं तपश्चरणके प्रभावसे इन्हे चारण-ऋद्धिकी प्राप्ति हुई थी और उसके बलपर ये पृथ्वीसे प्रायः चार अंगुल ऊपर अन्तरिक्षमे चला करते थे। इन्होने भरतक्षेत्रमें श्रुतकी—जैन आगमकी—प्रतिष्ठा की है—उसकी मान्यता एवं प्रभावको स्वयके आचरणादि-द्वारा (खुद आमिल बनकर) ऊँचा उठाया तथा सर्वत्र व्याप्त किया है अथवा यो कहिये कि आगमके अनुसार चलनेको खास महत्व दिया है, ऐसा श्रवणबेल्गोलके शिलालेखों आदिसे जाना जाता है[४]। ये बहुत ही प्रामाणिक एवं प्रतिष्ठित आचार्य हुए हैं। संभवतः इनकी उक्त श्रुत-प्रतिष्ठाके कारण ही शास्त्रसभाकी आदिमे जो मङ्गलाचरण 'मंगल भगवान वीरो' इत्यादि किया जाता है उसमें 'मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो' इस रूपसे इनके नामका खास उल्लेख है।

---

१ देवसेनाचार्यने भी, अपने दर्शनसार (वि० सं० ९९०) की निम्न गाथामें, कुन्दकुन्द (पद्मनन्दि) के सीमंधर-स्वामीसे दिव्यज्ञान प्राप्त करनेकी बात लिखी है:—

जइ पउमणंदि-णाहो सीमंधरसामि-दिव्वणाणेण ।
ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥ ४३ ॥

२ तस्यान्वये भूविदिते बभूव यः पद्मनन्दि-प्रथमाभिधानः ।
श्रीकौण्डकुन्दादिमुनीश्वराख्यस्सत्संयमादुद्गत-चारणर्द्धिः ॥
—श्रवणबेलगोल-शिलालेख नं० ४०

३ देखो, कुर्ग-इन्स्क्रिपशन्स (E. C. I.)

४ वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः कुन्दप्रभा-प्रणयि-कीर्ति-विभूषिताशः ।
यश्चारु-चारण-कराम्बुज-चञ्चरीकश्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम् ॥—श्र० शि० ५४

रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्तर्बाह्येऽपि संव्यजयितुं यतीशः ।
रजः पदं भूमितलं विहाय चचार मन्ये चतुरंगुलं सः ॥—श्र० शि० १०५

१ प्रवचनसार, २ समयसार, ३ पंचास्तिकाय—ये तीनो ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रंथोमे प्रधान स्थान रखते हैं, बड़े ही महत्वपूर्ण हैं और अखिल जैनसमाजमे समान-आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। पहलेका विषय ज्ञान, ज्ञेय और चारित्ररूप तत्व-त्रयके विभागसे तीन अधिकारोंमे विभक्त है, दूसरेका विषय शुद्ध आत्मतत्त्व है और तीसरेका विषय कालद्रव्यसे भिन्न जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश नामके पॉच द्रव्योंका सविशेष-रूपसे वर्णन है। प्रत्येक ग्रंथ अपने-अपने विषयमे बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक है। हरएक का यथेष्ट परिचय उस-उस ग्रथको स्वयं देखनेसे ही सम्बन्ध रखता है।

इनपर अमतचन्द्राचार्य और जयसेनाचार्यकी खास संस्कृत टीकाएँ हैं, तथा बालचन्द्रदेवकी कन्नड टीकाएँ भी है, और भी दूसरी कुछ टीकाएँ प्रभाचन्द्रादिकी सस्कृत तथा हिन्दी आदिकी उपलब्ध हैं। अमृतचंद्राचार्यकी टीकानुसार प्रवचनसारमे २७५, समयसारमे ४१५ और पंचास्तिकायमे १७३ गाथाएँ हैं, जब कि जयसेनाचार्यकी टीकाके पाठानुसार इन ग्रंथोंमे गाथाओंकी संख्या क्रमशः ३११, ४३९ १८१ है। इन बढ़ी हुई गाथाओकी सूचना सूचीमे टीकाकारके नामके संकेत (ज०) द्वारा की गई है। संक्षेपमे, जैनधर्मका मर्म अथवा उसके तत्त्वज्ञानको समझनेके लिये ये तीनों ग्रंथ बहुत ही उपयोगी हैं।

४. नियमसार—कुन्दकुन्दका यह ग्रथ भी महत्त्वपूर्ण है और अध्यात्म-विषयको लिये हुए है। इसमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको नियम—नियमसे किया जानेवाला कार्य—एवं मोक्षोपाय बतलाया है और मोक्षके उपायभूत सम्यग्दर्शनादिका स्वरूप कथन करते हुए उनके अनुष्ठानका तथा उनके विपरीत मिथ्यादर्शनादिके त्यागका विधान किया है और इसीको (जीवनका) सार निर्दिष्ट किया है। इस ग्रथपर एकमात्र संस्कृत टीका पद्मप्रभ-मलधारिदेवकी उपलब्ध है और उसके अनुसार ग्रंथकी गाथा-सख्या १८७ है। टीकामे मूलको द्वादश श्रुतस्कन्धरूप जो १२ अधिकारोंमें विभक्त किया है वह विभाग मूलकृत नहीं है—मूल परसे उसकी उपलब्धि नहीं होती, मूलके समझनेमें उससे कोई मदद भी नहीं मिलती और न मूलकारका वैसा कोई अभिप्राय ही जाना जाता है। उसकी सारी जिम्मेदारी टीकाकारपर है। इस टीकाने मूलको उल्टा कठिन कर दिया है। टीकामे बहुधा मूलका आश्रय छोड़कर अपना ही राग अलापा गया है—मूलका स्पष्टीकरण जैसा चाहिये था वैसा नहीं किया। टीकाके बहुतसे वाक्यों और पद्योंका सम्बन्ध परस्परमे नहीं मिलता। टीकाकारका आशय अपनी गद्य-पद्यात्मक काव्य-शक्तिको प्रकट करनेका अधिक रहा है—उसके काव्योका मूलके साथ मेल बहुत कम है। अध्यात्म-कथन होनेपर भी जगह जगहपर स्त्रीका अनावश्यक स्मरण किया गया है और अलकाररूपमे उसके लिये उत्कठा व्यक्त की गई है, मानो सुख स्त्रीमे ही है। इस ग्रथका टीका-सहित हिन्दी अनुवाद ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने किया है और वह प्रकाशित भी होचुका है।

५. बारस-अणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)—इसमे १ अध्रुव (अनित्य), २ अशरण, ३ एकत्व, ४ अन्यत्व, ५ ससार, ६ लोक, ७ अशुचित्व, ८ आस्रव, ९ सवर, १० निर्जरा, ११ धर्म, १२ बोधिदुर्लभ नामकी बारह भावनाओंका ९१ गाथाओमे वर्णन है। इस ग्रथकी 'सव्वे वि पोग्गला खलु' इत्यादि पांच गाथाएँ (नं० २५ से २९) श्रीपूज्यपादाचार्य-द्वारा, जो कि विक्रमकी छठी शताब्दीके विद्वान हैं, सर्वार्थसिद्धिके द्वितीय अध्यायान्तर्गत दशवें सूत्रकी टीकामें 'उक्तं च रूपसे उद्धृत की गई हैं।

३. दंसणपाहुड—इसमें सम्यग्दर्शनके माहात्म्यादिका वर्णन ३६ गाथाओमे है और उससे यह जाना जाता है कि सम्यग्दर्शनको ज्ञान और चारित्रपर प्रधानता प्राप्त है। वह धर्मका मूल है और इसलिये जो सम्यग्दर्शनसे—जीवादि तत्त्वोंके यथार्थ श्रद्धानसे—भ्रष्ट है उसको सिद्धि अथवा मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

७. **चारित्तपाहुड**—इस ग्रंथकी गाथासंख्या ४४ और उसका विषय सम्यक् चारित्र है। सम्यक्चारित्रको सम्यक्त्वचरण और संयमचरण ऐसे दो भेदोंमे विभक्त करके उनका अलग अलग स्वरूप दिया है और संयमचरणके सागार अनगार ऐसे दो भेद करके उनके द्वारा क्रमशः श्रावकधर्म तथा यतिधर्मका अतिसंक्षेपमे प्रायः सूचनात्मक निर्देश किया है।

८. **सुत्तपाहुड**—यह ग्रथ २७ गाथात्मक है। इसमे सूत्रार्थकी मार्गणाका उपदेश है—आगमका महत्व ख्यापित करते हुए उसके अनुसार चलनेकी शिक्षा दी गई है। और साथ ही सूत्र (आगम) की कुछ बातोंका स्पष्टताके साथ निर्देश किया गया है, जिनके संबंध में उस समय कुछ विप्रतिपत्ति या गलतफहमी फैली हुई थी अथवा प्रचारमे आरही थी।

९. **बोधपाहुड**—इस पाहुडका शरीर ६२ गाथाओंसे निर्मित है। इनमे १ आयतन, २ चैत्यगृह, ३ जिनप्रतिमा, ४ दर्शन, ५ जिनबिम्ब, ६ जिनमुद्रा, ७ आत्मज्ञान, ८ देव, ९ तीर्थ, १० अर्हन्त, ११ प्रव्रज्या इन ग्यारह बातोका क्रमशः आगमानुसार बोध दिया गया है। इस ग्रंथकी ६१ वीं गाथामे[1] कुन्दकुन्दने अपनेको भद्रबाहुका शिष्य प्रकट किया है जो संभवतः भद्रबाहु द्वितीय जान पड़ते है, क्योंकि भद्रबाहु श्रुतकेवलीके समयमे जिनकथित श्रुतमे ऐसा कोई विकार उपस्थित नहीं हुआ था जिसे उक्त गाथामे 'सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु ज जिणे कहियं' इन शब्दोद्वारा सूचित किया गया है—वह अविच्छिन्न चला आया था। परन्तु दूसरे भद्रबाहुके समयमे वह स्थिति नहीं रही थी—कितना ही श्रुतज्ञान लुप्त हो चुका था और जो अवशिष्ट था वह अनेक भाषा-सूत्रोमे परिवर्तित हो गया था। इससे ६१ वीं गाथाके भद्रबाहु भद्रबाहुद्वितीय ही जान पड़ते हैं। ६२ वीं गाथामे उसी नामसे प्रसिद्ध होने वाले प्रथम भद्रबाहुका जो कि बारह अग और चौदह पूर्वके ज्ञाता श्रुतकेवली थे, अन्त्य मगलके रूपमे जयघोष किया गया और उन्हें साफ तौरपर 'गमकगुरु' लिखा है। इस तरह अन्तकी दोनो गाथाओंमे दो अलग अलग भद्रबाहुओका उल्लेख होना अधिक युक्तियुक्त और बुद्धिगम्य जान पड़ता है।

१०. **भावपाहुड**—१६३ गाथाओंका यह ग्रंथ बडा ही महत्त्वपूर्ण है। इसमे भावकी—चित्तशुद्धिकी—महत्ताको अनेक प्रकारसे सर्वोपरि ख्यापित किया गया है। बिना भावके बाह्यपरिग्रहका त्याग करके नग्न दिगम्बर साधु तक होने और वनमें जा बैठनेको भी व्यर्थ ठहराया है। परिणामशुद्धिके बिना ससार-परिभ्रमण नहीं रुकता और न बिना भावके कोई पुरुषार्थ ही सधता है, भावके बिना सब कुछ निःसार है इत्यादि अनेक बहुमूल्य शिक्षाओ एव मर्मकी बातोंसे यह ग्रंथ परिपूर्ण है। इसकी कितनी ही गाथाओंका अनुसरण गुणभद्राचार्यने अपने आत्मानुशासन ग्रंथमे किया है।

११. **मोक्खपाहुड**—यह मोक्ष-प्राभृत भी बड़ा ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है और इसकी गाथा-सख्या १०६ है। इसमे आत्माके बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद करके उनके स्वरूपको समझाया है और मुक्ति अथवा परमात्मपद कैसे प्राप्त हो सकता है इसका अनेक प्रकारसे निर्देश किया है। इस ग्रंथके कितने ही वाक्योंका अनुसरण पूज्यपाद आचार्यने अपने 'समाधितत्र' ग्रंथमें किया है।

इन दंसणपाहुडसे मोक्खपाहुड तकके छह प्राभृत ग्रंथोंपर श्रुतसागर सूरिकी टीका भी उपलब्ध है, जो कि माणिकचन्द-ग्रंथमालाके षट्प्राभृतादिसग्रहमे मूलग्रंथोके साथ प्रकाशित हो चुकी है।

---

१ सद्दवियारो हूओ भासा-सुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥ ६१ ॥

१२. लिंगपाहुड—यह द्वाविंशति(२२)-गाथात्मक ग्रंथ है। इसमें श्रमणलिङ्गको लक्ष्यमें लेकर उन आचरणोंका उल्लेख किया गया है जो इस लिङ्गधारी जैनसाधुके लिये निषिद्ध हैं और साथ ही उन निषिद्ध आचरणोंका फल भी नरकवासादि बतलाया गया है तथा उन निषिद्धाचारमे प्रवृत्ति करनेवाले लिङ्गभावसे शून्य साधुओंको श्रमण नहीं माना है—तिर्यञ्चयोनि बतलाया है।

१३. सीलपाहुड—यह ४० गाथाओंका ग्रंथ है। इसमे शीलका—विषयोंसे विरागका—महत्व ख्यापित किया है और उसे मोक्ष-सोपान बतलाया है। साथ ही जीवदया, इन्द्रियदमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, सतोष, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और तपको शीलका परिवार घोषित किया है।

१४. रयणसार—इस ग्रथका विषय गृहस्थों तथा मुनियोंके रत्नत्रय-धर्म-सम्बन्धी कुछ विशेष कर्त्तव्योंका उपदेश अथवा उनकी उचित-अनुचित प्रवृत्तियोका कुछ निर्देश है। परन्तु यह ग्रथ अभी बहुत कुछ सदिग्ध स्थितिमे स्थित है—जिस रूपमे अपनेको प्राप्त हुआ है उसपरसे न तो इसकी ठीक पद्य-सख्या ही निर्धारित की जा सकती है और न इसके पूर्णतः मूलरूपका ही कोइ पता चलता है। माणिकचन्द-ग्रंथमालाके षट्प्राभृतादि-सग्रहमे इस ग्रथकी पद्यसंख्या १६७ दी है। साथ ही फुटनाट्समे सम्पादकने जिन दो प्रतियो (क-ख) का तुलनात्मक उल्लेख किया है उसपरसे दोनो प्रतियोंमे पद्योकी संख्या बहुत कुछ विभिन्न (हीनाधिक) पाई जाती है और उनका कितना ही क्रमभेद भी उपलब्ध है—सम्पादनमे जो पद्य जिस प्रतिमे पाये गये उन सबको ही विना जाँचके यथेच्छ क्रमके साथ ले लिया गया है। देहलीके पंचायती मन्दिरकी प्रतिपरसे जब मैंने इस मा० ग्र० संस्करणकी तुलना की तो मालूम हुआ कि उसमें इस ग्रंथकी १२ गाथाएँ नं० ८, ३४, ३७, ४६, ५५, ५६, ६३, ६६, ६७, ११३, १२५, १२६ नहीं हैं और इसलिये उसमें ग्रंथकी पद्यसंख्या १५५ है। साथ ही उसमें इस ग्रंथकी गाथा नं० १७, १८ को आगे-पीछे; ५२ व ५३, ६१ व ६६ को क्रमशः १६३ के बाद, ५४ को १६४ के बाद, ६० को १६५ के पश्चात् १०१ व १०२ को आगे-पीछे, ११० व १११ को १६२ के अनन्तर, १२१ को ११६ के पूर्व और १२२ को १५४ के बाद दिया है। पं० कलापा भरमापा निटवेने इस ग्रंथको सन् १६०७ में मराठी अनुवादके साथ मुद्रित कराया था उसमे भी यद्यपि पद्य-संख्या १५५ है, और क्रमभेद भी देहली-प्रति-जैसा है, परन्तु उक्त १२ गाथाओंमेसे ६३वीं गाथाका अभाव नहीं है—वह मौजूद है, किन्तु मा० ग्र० संस्करणकी ३५ वीं गाथा नहीं है, जो कि देहलीकी उक्त प्रतिमें उपलब्ध है। इस तरह ग्रथ-प्रतियोंमे पद्य-संख्या और उनके क्रमका बहुत बड़ा भेद पाया जाता है।

इसके सिवाय, कुछ अपभ्रंश भाषाके पद्य भी इन प्रतियोंमें उपलब्ध होते हैं, एक दोहा भी गाथाओंके मध्यमे आ घुसा है, विचारोंकी पुनरावृत्तिके साथ कुछ वेतरतीबी भी देखी जाती है, गण-गच्छादिके उल्लेख भी मिलते हैं और ये सब बातें कुन्दकुन्दके ग्रंथोंकी प्रकृतिके साथ संगत मालूम नहीं होतीं—मेल नहीं खातीं। और इसलिये विद्वद्वर प्रोफेसर ए० एन० उपाध्येने (प्रवचनसारकी अंग्रेजी प्रस्तावनामे) इस ग्रंथपर अपना जो यह विचार व्यक्त किया है वह ठीक ही है कि—'रयणसार ग्रंथ गाथाविभेद, विचारपुनरावृत्ति, अपभ्रंश पद्योकी उपलब्धि, गण-गच्छादि-उल्लेख और वेतरतीबी आदिको लिये हुए जिस स्थितिमे उपलब्ध है उसपरसे वह पूरा ग्रथ कुन्दकुन्दका नहीं कहा जा सकता—कुछ अतिरिक्त गाथाओंकी मिलावटने उसके मूलमे गड़बड़ उपस्थित कर दी है। और इसलिये जब तक कुछ दूसरे प्रमाण उपलब्ध न हो जाएँ तब तक यह बात विचाराधीन ही रहेगी कि कुन्द-कुन्द इस समग्र रयणसार ग्रंथके कर्ता हैं।' इस ग्रंथपर संस्कृतकी कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

१५. **सिद्धभक्ति**—यह १२ गाथाओंका एक स्तुतिपरक ग्रथ है, जिसमें सिद्धोंकी, उनके गुणों, भेदों, सुख, स्थान, आकृति और सिद्धिके मार्ग तथा क्रमका उल्लेख करते हुए, अति-भक्तिभावके साथ वन्दना की गई है। इसपर प्रभाचन्द्राचार्यकी एक सस्कृत टीका है, जिसके अन्तमे लिखा है कि—"संस्कृताः सर्वा भक्तय: पादपूज्यस्वामिकृताः प्राकृतास्तु कुन्दकुन्दाचार्यकृताः" अर्थात संस्कृतकी सब भक्तियाँ पूज्यपाद स्वामीकी बनाई हुई हैं और प्राकृतकी सब भक्तियाँ कुन्दकुन्दाचार्यकृत है। दोनो प्रकार की भक्तियोंपर प्रभाचन्द्राचार्यकी टीकाएँ हैं। इस भक्तिपाठके साथमें कहीं कहीं कुछ दूसरी पर उसी विषयकी, गाथाएँ भी मिलती हैं, जिनपर प्रभाचन्द्रकी टीका नहीं है और जो प्रायः प्रक्षिप्त जान पड़ती है; क्योंकि उनमेसे कितनी ही दूसरे ग्रंथोंकी अंग-भूत हैं। शोलापुरसे 'दशभक्ति' नामका जो सग्रह प्रकाशित हुआ है उसमे ऐसी ८ गाथाओ का शुरूमें एक सस्कृतपद्य-सहित अलग क्रम दिया है। इस क्रमकी 'गमणागमणविमुक्के' और 'तवसिद्धे णयसिद्धे' जैसी गाथाओको, जो दूसरे ग्रथोंमे नहीं पाई गई, इस वाक्य-सूचीमे उस दूसरे क्रमके साथ ही ले लिया गया है। परन्तु 'सिद्धा णट्ठट्ठमला' और 'जयमगलभूदाणं' इन क्रमशः ५, ७ नंबरकी दो गाथाओंका उल्लेख छूट गया है, जिन्हें यथास्थान बढ़ा लेना चाहिये।

१६. **श्रुतभक्ति**—यह भक्तिपाठ एकादश-गाथात्मक है। इसमें जैनश्रुतके आचाराङ्गादि द्वादश अंगोंका भेद-प्रभेद-सहित उल्लेख करके उन्हें नमस्कार किया गया है। साथ ही, १४ पूर्वोंमेंसे प्रत्येककी वस्तुसंख्या और प्रत्येक वस्तुके प्राभृतों (पाहुडो) की सख्या भी दी है।

१७. **चारित्रभक्ति**—इस भक्तिपाठकी पद्यसंख्या १० है और वे अनुष्टुभ् छन्दमे है। इसमे श्रीवर्द्धमान-प्रणीत सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंयम (सूक्ष्मसाम्पराय) और यथाख्यात नामके पांच-चारित्रों, अहिंसादि २८ मूलगुणों तथा दश-धर्मों, त्रिगुप्तियों, सकलशीलों, परीषहोंके जय और उत्तरगुणोका उल्लेख करके उनको सिद्धि और सिद्धि-फल मुक्तिसुखकी भावना की है।

१८. **योगि(अनगार)भक्ति**—यह भक्तिपाठ २३ गाथाओंको अङ्गरूपमें लिये हुए है। इसमे उत्तम अनगारों—योगियोंकी अनेक अवस्थाओं, ऋद्धियो, सिद्धियों तथा गुणोके उल्लेखपूर्वक उन्हें बड़ी भक्तिभावके साथ नमस्कार किया है, योगियोके विशेषणरूप गुणोंके कुछ समूह परिसख्यानात्मक पारिभाषिक शब्दोंमे दोकी संख्यामे लेकर चौदह तक दिये हैं; जैसे 'दोदोसविप्पमुक्क' तिदडविरद, तिसल्लपरिसुद्ध, तिण्णियगारवरहिअ, तियरणसुद्ध, चउदसगंथपरिसुद्ध, चउदसपुव्वपगब्भ और चउदसमलविवज्जिद'। इस भक्तिपाठके द्वारा जैनसाधुओंके आदर्श-जीवन एवं चर्याका अच्छा स्पृहणीय सुन्दर स्वरूप सामने आजाता है, कुछ ऐतिहासिक बातोंका भी पता चलता है, और इससे यह भक्तिपाठ बड़ा ही महत्वपूर्ण जान पड़ता है।

१९. **आचार्यभक्ति**—इसमें १० गाथाएँ हैं और उनमें उत्तम-आचार्योंके गुणोंका उल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है। आचार्य परमेष्ठी किन किन खास गुणोंसे विशिष्ट होने चाहियें, यह इस भक्तिपाठपरसे भले प्रकार जाना जाता है।

२०. **निर्वाणभक्ति**—इसकी गाथासंख्या २७ है। इसमें प्रधानतया निर्वाणको प्राप्त हुए तीर्थंकरों तथा दूसरे पूतात्म-पुरुषोंके नामोंका, उन स्थानोंके नाम-सहित स्मरण तथा वन्दन किया गया है जहाँसे उन्होंने निर्वाण-पदकी प्राप्ति की है। साथ ही, जिन स्थानोंके साथ ऐसे व्यक्ति-विशेषोंकी कोई दूसरी स्मृति खास तौरपर जुड़ी हुई है ऐसे अतिशय क्षेत्रों

का भी उल्लेख किया गया है और उनकी तथा निर्वाणभूमियोंकी भी वन्दना की गई है। इस भक्तिपाठपरसे कितनी ही ऐतिहासिक तथा पौराणिक बातो एवं अनुश्रुतियोंकी जानकारी होती है, और इस दृष्टिसे यह पाठ अपना खास महत्त्व रखता है।

२१. पंचगुरु(परमेष्ठि)भक्ति—इसकी पद्यसंख्या ७(६) है। इसके प्रारम्भिक पाँच पद्योमे क्रमशः अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ऐसे पॉच गुरुवों-परमेष्ठियोका स्तोत्र है, छठे पद्यमे स्तोत्रका फल दिया है और ये छहों पद्य स्रग्विणी छंदमे हैं। अन्तका ७ वॉ पद्य गाथा है, जिसमे अर्हदादि पंच परमेष्ठियोके नाम देकर और उन्हें पंचनमस्कार (णमोकारमंत्र) के अगभूत बतलाकर उनसे भवभवमे सुखकी प्रार्थना की गई है। यह गाथा प्रक्षिप्त जान पड़ती है। इस भक्तिपर प्रभाचन्द्रकी संस्कृत टीका नहीं है।

२२. थोस्सामि थुदि—(तीर्थंकरभक्ति)—यह 'थोस्सामि' पदसे प्रारंभ होनेवाली अष्टगाथात्मक स्तुति है, जिसे 'तित्थयरभत्ति' (तीर्थंकरभक्ति) भी कहते हैं। इसमे वृषभादि-वर्द्धमान-पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी, उनके नामोल्लेख-पूर्वक, वन्दना की गई है और तीर्थंकरोंके लिये जिन, जिनवर, जिनवरेन्द्र, नरप्रवर, केवली, अनन्तजिन, लोकमहित, धर्मतीर्थंकर, विधूत-रज-मल, लोकोद्योतकर, अर्हन्त, प्रहीन-जर-मरण, लोकोत्तम, सिद्ध, चन्द्र-निर्मलतर, आदित्याधिकप्रभ और सागरमिव गम्भीर जैसे विशेषणोका प्रयोग किया गया है। और अन्तमें उनसे आरोग्यज्ञान-लाभ (निरावरण अथवा मोहविहीन ज्ञानप्राप्ति), समाधि (धर्म्य-शुक्लध्यानरूप चारित्र), बोधि (सम्यग्दर्शन) और सिद्धि (स्वात्मोपलब्धि) की प्रार्थना की गई है। यह भक्तिपाठ प्रथम पद्यको छोड़ कर शेष सात पद्योके रूपमे थोड़ेसे परिवर्तनो अथवा पाठ-भेदोंके साथ, श्वेताम्बर समाजमे भी प्रचलित है और इसे 'लोगस्स सूत्र' कहते हैं। इस सूत्रमें 'लोगस्स' नामके प्रथम पद्यका छांदसिक रूप शेष पद्योंसे भिन्न है—शेष छहों पद्य जब गाथारूपमे पाये जाते हैं तब यह अनुष्टुभ्-जैसे छदमे उपलब्ध होता है, और यह भेद ऐसे छोटे ग्रंथमे बहुत ही खटकता है—खासकर उस हालतमे जबकि दिगम्बर सम्प्रदायमे यह अपने गाथारूपमे ही पाया जाता है। यहाँ पाठभेदोंकी दृष्टिसे दोनों सम्प्रदायोंके दो पद्योंको तुलनाके रूपमे रक्खा जाता है :—

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं-तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो॥ २॥
—दिगम्बरपाठ

लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे।
अरहंते कित्तइस्सं चउवीसं पि केवली॥ १॥
—श्वेताम्बरपाठ

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं दितु समाहिं च मे बोहिं॥ ७॥
—दिगम्बरपाठ

कित्तिय वंदिय महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्ग-बोहिलाहं समाहिवरमुत्तमं दितु॥ ६॥
—श्वेताम्बरपाठ*

* दोनों पद्योंका श्वेताम्बरपाठ प० सुखलालजी-द्वारा सम्पादित 'पंचप्रतिक्रमण' ग्रन्थसे लिया गया है।

और उन्हें यथास्थान संनिविष्ट किया है, जिससे इस ग्रंथकी कुल गाथा-संख्या २३३ होगई है) इस सख्यासे मूल सूत्रगाथाओंको अलग व्यक्त करनेके लिये प्रस्तुत वाक्य-सूचीमें उनके क्रमाङ्कों (नम्बरो) को ब्रकट ( ) मे अलग दे दिया है। ग्रन्थके ये गाथासूत्र प्राय बहुत संक्षिप्त हैं और अधिक अर्थके ससूचनको लिये हुए है। (इसीसे इनकी कुल संख्या २३३ होते हुए भी इनपर यतिवृषभाचार्यने छह हजार श्लोकपरिमाण चूर्णिसूत्र रचे, उच्चारणाचार्य ने बारह हजार श्लोकपरिमाण वृत्तिसूत्र लिखे और श्रीवीरसेन तथा जिनसेन आचार्योंने (२०+४० हजारके क्रमसे) ६० हजार श्लोकपरिमाण 'जयधवला' टीकाकी रचना की, जो शकसंवत् ७५९ मे बनकर समाप्त हुई और जिसका अब सानुवाद छपना प्रारम्भ हो गया है तथा एक खण्ड प्रकाशित भी हो चुका है।)

२५. **षट्खण्डागम**—यह १ जीवस्थान, २ क्षुल्लकबन्ध, ३ बन्धस्वामित्वविचय, ४ वेदना, ५ वर्गणा और ६ महाबन्ध नामके छह खण्डोमें विभक्त आगम-ग्रंथ है। (इसके कर्ता श्री पुष्पदन्त और भूतबलि नामके दो आचार्य हैं। पुष्पदन्तने विंशति-प्ररूपणात्मक सूत्रोंकी रचना की है, जो कि प्रथमखण्डके सत्प्ररूपणा नामक प्रथम अनुयोगद्वारके अन्तर्गत है, शेष सारा ग्रंथ भूतबलि आचार्यकी कृति है। इसका मूल आधार 'महाकम्मपयडि-पाहुड' नामका वह श्रुत है जो अग्रायणीपूर्व-स्थित पंचम वस्तुका चौथा प्राभृत है और जिसका ज्ञान अष्टांग महानिमित्तके पारगामी धरसेनाचार्यको आचार्य-परम्परासे पूर्णतः प्राप्त हुआ था) और उन्होंने श्रुतविच्छेदके भयसे उसे उक्त पुष्पदन्त तथा भूतबलि नामके दो खास मुनियों को पढ़ाया था, जो श्रुतके ग्रहण धारणमें समर्थ थे। (इस पूरे ग्रथकी संख्या, इन्द्रनन्दि श्रुतावतारके कथनानुसार ३६ हजार श्लोकपरिमाण है, जिसमेसे ६ हजार संख्या पाँच खण्डोंकी और शेष ३० हजार महाबन्ध नामक छठे खण्डकी है। ग्रथका विषय मुख्यतया जीव और कर्म-विषयक जैनसिद्धान्तका निरूपण है, जो बड़ा ही गहन है और अनेक भेद-प्रभेदों मे विभक्त है) यह ग्रथ प्रायः गद्यात्मक सूत्रोमे है, परन्तु कहीं कहीं गाथासूत्रोंका भी प्रयोग किया गया है। ऐसे जो गाथासूत्र अभी तक टीकापरसे स्पष्ट हो सके हैं उन्हींको, पद्यानुक्रमणी होनेसे, इस वाक्य-सूचीमे लिया गया है। जो पद्य-वाक्य और स्पष्ट होवें उन्हें विद्वानोंको परिशिष्ट नं० २ मे बढ़ा लेना चाहिये। (इस ग्रथके प्रायः चार खण्डोंपर ९ वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य वीरसेनने 'धवला' नामकी टीका लिखी है, जो ७२ हजार श्लोकपरिमाण है और बड़ी ही महत्वपूर्ण है। इस टीकामे दूसरे दो खण्डोंके विषयको भी कुछ समाविष्ट किया गया है, इसस इन्द्रनन्दिके कथनानुसार यह छहो खण्डोंकी और विबुध श्रीधरके कथनानुसार पाँचखण्डोंकी टीका भी कहलाती है। यह टीका कई वर्षसे हिन्दी अनुवादादिके साथ छप रही है और इसके कई खण्ड निकल चुके हैं।)

२६. **भगवती आराधना**—(यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपरूप चार आराधनाओंपर, जो मुक्ति को प्राप्त करानेवाली हैं, एक बड़ा ही अधिकारपूर्ण प्राचीन ग्रंथ है, जैनसमाजमे सर्वत्र प्रसिद्ध है और प्रायः मुनिधर्मसे सम्बन्ध रखता है। जैनधर्ममें समाधिपूर्वक मरणकी सर्वोपरि विशेषता है—मुनि हो या श्रावक सबका लक्ष्य उसकी ओर रहता है, नित्यकी प्रार्थनामे उसके लिये भावना की जाती है और उसकी सफलतापर जीवनकी सफलता तथा सुन्दर भविष्यकी आशा निर्भर रहती है। इस ग्रंथपर से समाधिपूर्वक मरणकी पर्याप्त शिक्षा-सामग्री तथा व्यवस्था मिलती है—सारा ग्रथ मरण के भेद-प्रभेदों और तत्सम्बन्धी शिक्षाओं तथा व्यवस्थाओंसे भरा हुआ है। इसमे मरणके मुख्य पाँच भेद किये हैं—१ पंडितपंडित, २ पंडित, ३ बालपंडित, ४ बाल और ५ बाल-बाल। इनमें पहले तीन प्रशस्त और शेष अप्रशस्त हैं। बाल-बालमरण मिथ्यादृष्टि जीवोंका,

बालमरण अविरत-सम्यग्दृष्टियोंका, बालपंडितमरण विरताऽविरत (देशव्रती) श्रावकोंका, पंडितमरण सकलसंयमी साधुओंका और पंडितपंडितमरण क्षीणकषाय केवलियोंका होता है। साथ ही, पंडितमरणके १ भक्तप्रत्याख्यान, २ इंगिनी और ३ प्रायोपगमन ऐसे तीन भेद करके भक्तप्रत्याख्यानके सविचार-भक्त-प्रत्याख्यान और अविचार-भक्त-प्रत्याख्यान ऐसे दो भेद किये हैं और फिर सविचारभक्तप्रत्याख्यानका 'अर्ह' आदि चालीस अधिकारोंमे विस्तारके साथ वर्णन दिया है। तदनन्तर अविचार-भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनी, प्रायोपगमन-मरण, बालपंडितमरण और पंडितपंडितमरणका संक्षेपतः निरूपण किया है। इस विषय के इतने अधिक विस्तृत और व्यवस्थित विवेचनको लिये हुए दूसरा कोई भी ग्रंथ जैन-समाजमे उपलब्ध नहीं है। अपने विषयका असाधारण मूलग्रंथ होनेसे जैनसमाजमे यह खूब ख्यातिको प्राप्त हुआ है। इसकी गाथासंख्या सब मिलाकर २१७० है, जिनमे ५ गाथाएं 'उक्तं च' आदि रूपसे दी हुई हैं।)

(भगवती आराधनाके कर्ता शिवार्य अथवा शिवकोटि नामके आचार्य हैं, जिन्होंने ग्रंथके अन्तमे आर्यजिननन्दिगणी, सर्वगुप्तगणी और आर्यमित्रनन्दीका अपने विद्या अथवा शिक्षा-गुरुके रूपमे इस प्रकारसे उल्लेख किया है कि उनके पादमूलमे बैठकर 'सम्यक्' सूत्र और उसके अर्थकी अथवा सूत्र और अर्थकी भले प्रकार, जानकारी प्राप्त की गई और पूर्वाचार्य अथवा आचार्योंके द्वारा निबद्ध हुई आराधनाओंका उपयोग करके यह आराधना स्वशक्तिके अनुसार रची गई है। साथ ही, अपनेको 'पाणि-दल-भोजी' (करपात्र-आहारी) लिखकर श्वेताम्बर सम्प्रदायसे भिन्न दिगम्बर सम्प्रदायका सूचित किया है। इसके सिवाय, उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि छद्मस्थता (ज्ञानकी अपूर्णता) के कारण मुझसे कहीं कुछ प्रवचन (आगम) के विरुद्ध निबद्ध होगया हो तो उसे सुगीतार्थ (आगमज्ञानमे निपुण) साधु प्रवचनवत्सलताकी दृष्टिसे शुद्ध कर लेवें। और यह भावना भी की है कि भक्तिसे वर्णन की हुई यह भगवती आराधना संघको तथा (मुझ) शिवार्यको उत्तम समाधि-वर प्रदान करे—इसके प्रसादसे मेरा तथा संघके सभी प्राणियोंका समाधिपूर्वक मरण होवे[1]।

इस ग्रंथपर संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी आदिकी कितनी ही टीका-टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, अनुवाद भी हुए हैं और वे सब ग्रंथकी ख्याति, उपयोगिता, प्रचार और महत्ताके द्योतक हैं। प्राकृतकी टीका-टिप्पणियाँ यद्यपि आज उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु संस्कृत टीकाओंमे उनके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं और वे ग्रंथकी प्राचीनताको सविशेषरूपसे सूचित करते हैं। (जयनन्दी और श्रीधरके दो टिप्पण और एक अज्ञातनाम विद्वानका पद्यानुवाद भी अभी तक उपलब्ध नहीं हुए, जिनका पं० आशाधरकी टीकामे उल्लेख है। और भी कुछ टीका-टिप्पणियाँ अनुपलब्ध हैं। उपलब्ध टीकाओंमे संभवतः विक्रमकी ८ वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य अपराजित सूरिकी 'विजयोदया' टीका, १३ वीं शताब्दीके विद्वान पं० आशाधरकी 'मूलाराधनादर्पण' नामकी टीका और ११ वीं शताब्दीके विद्वान अमितगतिकी पद्यानुवादरूपमें 'संस्कृत आराधना' ये तीनों कृतियाँ एक साथ नई हिन्दी टीका-सहित

---

१ अज्जजिणणंदिगणि-सव्वगुत्तगणि-अज्जमित्तणंदीणं ।
अवगमिय पादमूले सम्मं सुत्तं च अत्थं च ॥ २१६५
पुव्वायरियणिबद्धा उवजीवित्ता इमा ससत्तीए ।
आराहणा सिवज्जेण पाणिदलभोइणा रइदा ॥ २१६६ ॥
छदुमत्थदाए एत्थ दु जं बद्धं होज्ज पवयण-विरुद्धं ।
सोधंतु सुगीदत्था पवयण-वच्छलदाए दु ॥ २१६७ ॥
आराहणा भगवदी एवं भत्तीए वण्णिदा संती ।
संघस्स सिवज्जस्स य समाहिवरमुत्तमं देउ ॥ २१६८ ॥

मुद्रित हो चुकी हैं। पं० सदासुखजीकी हिन्दी टीका इनसे भी पहले मुद्रित हुई है। और 'आराधनापञ्जिका' तथा शिवजीलालकृत 'भावार्थदीपिका' टीका दोनों पूनाके भाण्डारकर-प्राच्य-विद्या-संशोधक-मंदिरमे पाई जाती हैं, ऐसा पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने लेखोंमें सूचित किया है।

२७. कार्तिकेयानुप्रेक्षा और स्वामिकुमार—यह अनुप्रेक्षा अध्रुवादि बारह भावनाओंपर, जिन्हें भव्यजनोंके लिये आनन्दकी जननी लिखा है (गा० १), एक बड़ा ही सुन्दर, सरल तथा मार्मिक ग्रंथ है और ४८६ गाथासंख्याको लिये हुए है। इसके उपदेश बड़े ही हृदय-ग्राही हैं, उक्तियाँ अन्तस्तलको स्पर्श करती हैं और इसीसे यह जैनसमाजमें सर्वत्र प्रचलित है तथा बड़े ही आदर एवं प्रेमकी दृष्टिसे देखा जाता है।

इसके कर्ता ग्रंथकी निम्न गाथा नं० ४८७ के अनुसार 'स्वामिकुमार' हैं, जिन्होंने जिनवचनकी भावनाके लिये और चंचल मनको रोकनेके लिये परमश्रद्धाके साथ इन भावनाओंकी रचना की है:—

जिण-वयण-भावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए।
रइया अणुपेक्खाओ चंचलमण-रुंभणट्ठं च ॥

'कुमार' शब्द पुत्र, बालक, राजकुमार, युवराज, अविवाहित, ब्रह्मचारी आदि अर्थोंके साथ 'कार्तिकेय' अर्थमें भी प्रयुक्त होता है, जिसका एक आशय कृतिकाका पुत्र है और दूसरा आशय हिन्दुओंका वह षडानन देवता है जो शिवजीके उस वीर्यसे उत्पन्न हुआ था जो पहले अग्निदेवताको प्राप्त हुआ, अग्निसे गंगामें पहुँचा और फिर गंगामें स्नान करती हुई छह कृतिकाओंके शरीरमें प्रविष्ट हुआ, जिससे उन्होंने एक एक पुत्र प्रसव किया और वे छहों पुत्र बादको विचित्र रूपमें मिलकर एक पुत्र कार्तिकेय हो गए, जिसके छह मुख और १२ भुजाएँ तथा १२ नेत्र बतलाये जाते हैं। और जो इसीसे शिवपुत्र, अग्निपुत्र, गंगापुत्र तथा कृतिका आदिका पुत्र कहा जाता है। कुमारके इस कार्तिकेय अर्थको लेकर ही यह ग्रंथ स्वामिकार्तिकेय-कृत कहा जाता है तथा कार्तिकेयानुप्रेक्षा जैसे नामोंसे इसकी सर्वत्र प्रसिद्धि है। परन्तु ग्रंथभरमें कहीं भी ग्रंथकारका नाम कार्तिकेय नहीं दिया और न ग्रंथको कार्तिकेयानुप्रेक्षा अथवा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा जैसे नामसे उल्लेखित ही किया है, प्रत्युत इसके, प्रतिज्ञा और समाप्ति-वाक्योंमें ग्रंथका नाम सामान्यतः 'अणुपेहा' या 'अणुपेक्खा' (अनुप्रेक्षा) और विशेषतः 'बारसअणुवेक्खा' दिया है[1]। कुन्दकुन्दके इस विषयके ग्रंथका नाम भी 'बारस अणुपेक्खा' है। तब कार्तिकेयानुप्रेक्षा यह नाम किसने और कब दिया, यह एक अनुसन्धानका विषय है। ग्रंथपर एकमात्र संस्कृत टीका जो उपलब्ध है वह भट्टारक शुभचन्द्रकी है और विक्रम-संवत् १६१३ में बनकर समाप्त हुई है। इस टीकामें अनेक स्थानों पर ग्रंथका नाम 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' दिया है और ग्रंथकारका नाम 'कार्तिकेय' मुनि प्रकट किया है तथा कुमारका अर्थ भी 'कार्तिकेय' बतलाया है[2]। इससे संभव है कि शुभचन्द्र भट्टारकके

१ वोच्छं अणुपेहाओ (गा० १), बारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण (गा० ४८८)।

२ यथा:—(१) कार्तिकेयानुप्रेक्षाष्टीकां वक्ष्ये शुभश्रिये। (आदिमंगल)

(२) कार्तिकेयानुप्रेक्षाया वृत्तिर्विरचिता वरा। (प्रशस्ति ८)

(३) स्वामिकार्तिकेयो मुनीन्द्रो अनुप्रेक्षा व्याख्यातुकामः मलगालन-मंगलावाप्ति-लक्षण-[मंगल]माचष्टे। (गा० १)

(४) केन रचितः स्वामिकुमारेण भव्यवर-पुण्डरीक—श्रीस्वामिकार्तिकेयमुनिना आजन्मशील-धारिणा अनुप्रेक्षाः रचिताः। (गा० ४८७)

(५) अहं श्रीकार्तिकेयसाधुः संस्तुवे (४८६)। (देहली नयामन्दिर प्रति, वि०संवत् १८०६)

द्वारा ही यह नामकरण किया गया हो—टीकासे पूर्वके उपलब्ध साहित्यमें ग्रंथकाररूपमे इस नामकी उपलब्धि भी नहीं होती।)

'कोहेण जो ण तप्पदि' इत्यादि गाथा नं० ३९४ की टीकामें निर्मल क्षमाको उदाहृत करते हुए घोर उपसर्गोंको सहन करनेवाले सन्तजनोंके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जिनमे एक उदाहरण कार्तिकेय मुनिका भी निम्नप्रकार है:—

"स्वामिकार्तिकेयमुनि-क्रौंचराज-कृतोपसर्गं सोढ्वा साम्यपरिणामेन समाधिमरणेन देवलोकं प्राप्यः (प्राप्तः)।"

इसमें लिखा है कि 'स्वामिकार्तिकेय मुनि क्रौंचराजकृत उपसर्गको समभावसे सह कर समाधिपूर्वक मरणके द्वारा देवलोकको प्राप्त हुए।'

तत्त्वार्थराजवार्तिकादि ग्रंथोंमे 'अनुत्तरोपपाददशांग' का वर्णन करते हुए, वर्द्धमान तीर्थंकरके तीर्थमे दारुण उपसर्गोंको सहकर विजयादिक अनुत्तर विमानों (देवलोक) मे उत्पन्न होनेवाले दस अनगार साधुओंके नाम दिये हैं उनमे कार्तिक अथवा कार्तिकेयका भी एक नाम है, परन्तु किसके द्वारा वे उपसर्गको प्राप्त हुए ऐसा कुछ उल्लेख साथमें नहीं है।

(हाँ, भगवती आराधना-जैसे प्राचीन ग्रंथकी निम्न गाथा नं० १५४९ मे क्रौंचके द्वारा उपसर्गको प्राप्त हुए एक व्यक्तिका उल्लेख जरूर है—साथमें उपसर्गस्थान 'रोहेडक' और 'शक्ति' हथियारका भी उल्लेख है—परन्तु 'कार्तिकेय नामका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। उस व्यक्तिको मात्र 'अग्निदयितः' लिखा है, जिसका अर्थ होता है अग्निप्रिय, अग्निका प्रेमी अथवा अग्निका प्यारा-प्रेमपात्र):—

रोहेडयम्मि सत्तीए हओ कौंचेण अग्गिदयिदो वि।
तं वेदणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं॥

'मूलाराधनादर्पण' टीकामे पं० आशाधरजीने 'अग्गिदयिदो' (अग्निदयितः) पदका अर्थ, 'अग्निराजनाम्नो राज्ञः पुत्रः कार्तिकेयसंज्ञः—अग्निनामके राजाका पुत्र कार्तिकेयसंज्ञक—दिया है। कार्तिकेय मुनिकी एक कथा भी हरिषेण, श्रीचन्द्र और नेमिदत्तके कथाकोषोंमें पाई जाती है और उसमें कार्तिकेयको कृतिका मातासे उत्पन्न अग्निराजाका पुत्र बतलाया है। साथ ही, यह भी लिखा है कि कार्तिकेयने राजकालमें—कुमारावस्थामे—ही मुनिदीक्षा ली थी, जिसका अमुक कारण था, और कार्तिकेयकी बहन रोहेटक नगरके उस क्रौंच राजाको व्याही थी जिसकी शक्तिसे आहत होकर अथवा जिसके किये हुए दारुण उपसर्गको जीतकर कार्तिकेय देवलोक सिधारे हैं। इस कथाके पात्र कार्तिकेय और भगवती आराधना की उक्त गाथाके पात्र 'अग्निदयित' को एक बतलाकर यह कहा जाता है और आमतौरपर माना जाता है कि यह कार्तिकेयानुप्रेक्षा उन्हीं स्वामी कार्तिकेयकी बनाई हुई है जो क्रौंचराजा के उपसर्गको समभावसे सहकर देवलोक पधारे थे, और इसलिये इस ग्रंथका रचनाकाल भगवती आराधना तथा श्रीकुन्दकुन्दके ग्रंथोंसे भी पहलेका है—भले ही इस ग्रंथ तथा भ० आराधनाकी उक्त गाथामे कार्तिकेयका स्पष्ट नामोल्लेख न हो और न कथामें इनकी इस ग्रंथरचनाका ही कोई उल्लेख हो।

परन्तु (डाक्टर ए० एन० उपाध्ये एम० ए० कोल्हापुर इस मतसे सहमत नहीं हैं। यद्यपि वे अभी तक इस ग्रंथके कर्ता और उसके निर्माणकालके सम्बन्धमें अपना कोई निश्चित एकमत स्थिर नहीं कर सके फिर भी उनका इतना कहना स्पष्ट है कि यह ग्रंथ उतना

(विक्रमसे दोसौ या तीनसौ वर्ष पहलेका[1]) प्राचीन नहीं है जितना कि दन्तकथाओंके आधार पर माना जाता है) जिन्होंने ग्रंथकार कुमारके व्यक्तित्वको अन्धकारमें डाल दिया है। और इसके मुख्य दो कारण दिये हैं, जिनका सार इस प्रकार है —

(१) (कुमारके इस अनुप्रेक्षा-ग्रथमे बारह भावनाओंकी गणनाका जो क्रम स्वीकृत है वह वह नहीं है जो कि वट्टकेर, शिवार्य और कुन्दकुन्दके ग्रथो (मूलाचार, भ० आराधना तथा बारसअणुपेक्खा) मे पाया जाता है, बल्कि उससे कुछ भिन्न वह क्रम है जो बादको उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमे उपलब्ध होता है।)

(२) (कुमारकी यह अनुप्रेक्षा अपभ्रंश भाषामें नहीं लिखी गई, फिर भी इसकी २७९ वी गाथामे 'णिसुणहि' और 'भावहि' (preferably हिं) ये अपभ्रंशके दो पद आ घुसे हैं जो कि वर्तमान काल तृतीय पुरुषके बहुवचनके रूप हैं। यह गाथा जोइन्दु (योगीन्दु) के योगसारके ६५ वे दोहे के साथ मिलती जुलती है, एक ही आशयको लिये हुए है और उक्त दोहेपरसे परिवर्तित करके रक्खी गई हैं। परिवर्तनादिका यह कार्य किसी बादके प्रतिलेखकद्वारा सभव मालूम नहीं होता, बल्कि कुमारने ही जान या अनजानमे जोइन्दुके दोहेका अनुसरण किया है ऐसा जान पड़ता है।) उक्त दोहा और गाथा इस प्रकार हैं:—

विरला जाणहि तत्तु बहु विरला णिसुणहिं तत्तु।
विरला झायहिं तत्तु जिय विरला धारहि तत्तु॥ ६५॥
—योगसार

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।
विरला भावहि तच्चं विरलाणं धारणा होदि॥ २७९॥
—कार्तिकेयानुप्रेक्षा

(और इसलिये ऐसी स्थितिमें डा० साहबका यह मत है कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा उक्त कुन्दकुन्दादिके बादकी ही नहीं बल्कि परमात्मप्रकाश तथा योगसारके कर्ता योगीन्दु आचार्य के भी बादकी बनी हुई है, जिसका समय उन्होने पूज्यपादके समाधितत्रसे बादका और चण्डव्याकरणसे पूर्वका अर्थात् ईसाकी ५ वीं और ७ वीं शताब्दीके मध्यका निर्धारित किया है, क्योकि परमात्मप्रकाशमे समाधितंत्रका बहुत कुछ अनुसरण किया गया है और चण्ड-व्याकरणमे परमात्मप्रकाशके प्रथम अधिकारका ८५ वॉ दोहा (कालु लहेविणु जोइया' इत्यादि) उदाहरणके रूपमे उद्धृत है[2]।)

इसमे सन्देह नहीं कि मूलाचार, भगवती आराधना और बारसअणुवेक्खामे बारह भावनाओंका क्रम एक है, इतना ही नहीं बल्कि इन भावनाओके नाम तथा क्रमकी प्रतिपादक गाथा भी एक ही है और यह एक खास विशेषता है जो गाथा तथा उसमें वर्णित भावनाओंके क्रमकी अधिक प्राचीनताको सूचित करती है। वह गाथा इस प्रकार है :—

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्ण-संसार-लोगमसुचित्तं।
आसव-संवर-णिज्जर-धम्मं बोहिं च चिंति(ते)ज्जो॥

उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमे इन भावनाओंका क्रम एक स्थानपर ही नहीं बल्कि तीन स्थानोंपर विभिन्न है। उसमें अशरणके अनन्तर एकत्व-अन्यत्व भावनाओंको न देकर

---

१ पं० पन्नालालजी बाकलीवालकी प्रस्तावना पृ० १। Catalogue of SK. and PK. Manuscripts in the C. P. and Berar p. XIV; तथा Winternitz. A History of Indian Literature, Vol. II p 577.

२ परमात्मप्रकाशकी अंग्रेजी प्रस्तावना पृ० ६४-६५; प्रस्तावनाका हिन्दीसार पृ० ११३-११५।

संसारभावनाको दिया है और संसारभावनाके अनन्तर एकत्व-अन्यत्व भावनाओंको रक्खा है, लोकभावनाको संसारभावनाके बाद न रखकर निर्जराभावनाके बाद रक्खा है और धर्मभावनाको बोधि-दुर्लभसे पहले स्थान न देकर उसके अन्तमें स्थापित किया है, जैसाकि निम्न सूत्रसे प्रकट है—

"अनित्याऽशरण-संसारैकत्वाऽन्यत्वाऽशुच्याऽऽस्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधि-दुर्लभ-धर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ ९-७ ॥

और इससे ऐसा जाना जाता है कि भावनाओंका यह क्रम, जिसका पूर्व साहित्यपरसे समर्थन नहीं होता, बादको उमास्वातिके द्वारा प्रतिष्ठित हुआ है। कार्तिकेयानुप्रेक्षामे इसी क्रमको अपनाया गया है। अतः यह ग्रंथ उमास्वातिसे पूर्वका नहीं बनता और जब उमास्वातिके पूर्वका नहीं बनता तब यह उन स्वामिकार्तिकेयकी कृति भी नहीं हो सकता जो हरिषेणादिकथाकोपोंकी उक्त कथाके मुख्य पात्र हैं, भगवती आराधनाकी गाथा नं० १५४९ मे 'अग्निदयित' (अग्निपुत्र) के नामसे उल्लेखित हैं अथवा अनुत्तरोपपाददशाङ्गमे वर्णित दश अनगारोमे जिनका नाम है। इससे अधिक ग्रंथकार और ग्रथके समय-सम्बन्धमें इस क्रम-विभिन्नतापरसे और कुछ फलित नहीं होता।

अब रही दूसरे कारणकी बात, जहाँ तक मैंने उसपर विचार किया है और ग्रंथकी पूर्वापर स्थितिको देखा है उसपरसे मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं होता कि ग्रंथमें उक्त गाथा नं० २७९ की स्थिति बहुत ही संदिग्ध है और वह मूलतः ग्रंथका अंग मालूम नहीं होती—बादको किसी तरहपर प्रक्षिप्त हुई जान पड़ती है। क्योंकि उक्त गाथा 'लोकभावना' अधिकारके अन्तर्गत है, जिसमे लोकसंस्थान, लोकवर्ती जीवादि छह द्रव्य, जीवके ज्ञान-गुण और श्रुतज्ञानके विकल्परूप नैगमादि सात नय, इन सबका संक्षेपमे बड़ा ही सुन्दर व्यवस्थित वर्णन गाथा नं० ११५ से २६८ तक पाया जाता है। २७८ वीं गाथामे नयोंके कथनका उपसंहार इस प्रकार किया गया है :—

एवं विविह-णएहिं जो वत्थू ववहरेदि लोयम्मि ।
दंसण-णाण-चरित्तं सो साहदि सग्ग-मोक्खं च ॥ २७८ ॥

इसके अनन्तर 'विरला णिसुणहिं तच्चं' इत्यादि गाथा न० २७९ है, जो औपदेशिक ढंगको लिये हुए है और ग्रंथकी तथा इस अधिकारकी कथन-शैलीके साथ कुछ संगत मालूम नहीं होती—खासकर क्रमप्राप्त गाथा नं० २८० की उपस्थितिमे, जो उसकी स्थितिको और भी संदिग्ध कर देती है, और जो निम्न प्रकार है :—

तच्चं कहिज्जमाणं णिच्चलभावेण गिह्नदे जो हि ।
तं चि य भावेइ सया सो वि य तच्च वियाणेई ॥ २८० ॥

इसमे बतलाया है कि, 'जो उपर्युक्त तत्त्वको—जीवादि-विषयक तत्त्वज्ञानको अथवा उसके मर्मको—स्थिरभावसे— दृढताके साथ— ग्रहण करता है और सदा उसकी भावना रखता है वह तत्त्वको सविशेष रूपसे जाननेमे समर्थ होता है।'

इसके अनन्तर दो गाथाएँ और देकर 'एव लोयसहाव जो झायदि' इत्यादिरूपसे गाथा नं० २८३ दी हुई है, जो लोकभावनाके उपसंहारको लिये हुए उसकी समाप्तिसूचक है और अपने स्थानपर ठीक रूपसे स्थित है। वे दो गाथाएँ इस प्रकार हैं:—

को ण वसो इत्थिजणे कस्स ण मयणेण खंडियं माणं ।
को इंदिएहिं ण जिओ को ण कसाएहि संतत्तो ॥ २८१ ॥

सो ण वसो इत्थिजणे सो ण जिओ इंदिएहि मोहेण ।
जो ण य गिह्णदि गंथं अब्भंतर बाहिरं सव्वं ॥ २८२ ॥

इनमेंसे पहली गाथामे चार प्रश्न किये गए हैं—"१ कौन स्त्रीजनोंके वशमें नहीं होता ? २ मदन-कामदेवसे किसका मान खडित नहीं होता ?, कौन इंद्रियोंके द्वारा जीता नहीं जाता ?, ४ कौन कपायोसे संतप्त नहीं होता ?' दूसरी गाथामें केवल दो प्रश्नोका ही उत्तर दिया गया है जो कि एक खटकनेवाली बात है, और वह उत्तर यह है कि 'स्त्री जनों के वशमें वह नहीं होता, और वह इन्द्रियोंसे जीता नहीं जाता जो मोहसे बाह्य और आभ्यन्तर समस्त परिग्रहको ग्रहण नहीं करता है।'

इन दोनो गाथाओकी लोकभावनाके प्रकरणके साथ कोई संगति नहीं बैठती और न ग्रंथमें अन्यत्र ही कथनकी ऐसी शैलीको अपनाया गया है । इससे ये दोनों ही गाथाएँ स्पष्ट रूपसे प्रक्षिप्त जान पड़ती है और अपनी इस प्रक्षिप्तताके कारण उक्त 'विरला णिसुणहि तच्च' नामकी गाथा न० २७६की प्रक्षिप्तताकी संभावनाको और दृढ करती हैं। मेरी रायमे इन दोनों गाथाओकी तरह २७६ नम्बरकी गाथा भी प्रक्षिप्त है, जिसे किसीने अपनी ग्रथप्रति मे अपने उपयोगके लिये संभवतः गाथा नं० २८० के आसपास हाशियेपर, उसके टिप्पणके रूपमें, नोट कर रक्खा होगा, और जो प्रतिलेखककी असावधानीसे मूलमे प्रविष्ट होगई है। प्रवेशका यह कार्य भ० शुभचन्द्रकी टीकासे पहले ही हुआ है, इसीसे इन तीनो गाथाओंपर भी शुभचन्द्रकी टीका उपलब्ध है और उसमे (तदनुसार पं० जयचन्द्रजीकी भाषाटीकामे भी) बड़ी खींचातानीके साथ इनका सबंध जोड़नेकी चेष्टा की गई है; परन्तु सम्बन्ध जुड़ता नहीं है। ऐसी स्थितिमें उक्त गाथाकी उपस्थितिपरसे यह कल्पित कर लेना कि उसे स्वामिकुमारने ही योगसारके दोहेको परिवर्तित करके बनाया है समुचित प्रतीत नहीं होता—खासकर उस हालतमे जब कि ग्रंथभरमे अपभ्रंश भाषाका और कोई प्रयोग भी न पाया जाता हो। बहुत संभव है कि किसी दूसरे विद्वान्ने दोहेको गाथाका रूप देकर उसे अपनी ग्रंथप्रतिमें नोट किया हो। और यह भी सभव है कि यह गाथा साधारणसे पाठभेदके साथ अधिक प्राचीन हो और योगीन्दुने ही इसपरसे थोड़ेसे परिवर्तनके साथ अपना उक्त दोहा बनाया हो, क्योंकि योगीन्दुके परमात्मप्रकाश आदि ग्रंथोमे और भी कितने ही दोहे ऐसे पाये जाते हैं जो भावपाहुड तथा समाधितंत्रादिके पद्योपरसे परिवर्तन करके बनाये गये हैं और जिसे डाक्टर साहबने स्वय स्वीकार किया है, जब कि स्वामिकुमारके इस ग्रथकी ऐसी कोई बात अभी तक सामने नहीं आई—कुछ गाथाएँ ऐसी जरूर देखनेमें आती हैं जो कुन्दकुन्द तथा शिवार्य जैसे आचार्योंके ग्रथोंमे भी समानरूपसे पाई जाती हैं और वे और भी प्राचीन स्रोतसे सम्बन्ध रखनेवाली हो सकती हैं, जिसका एक नमूना भावनाओके नामवाली गाथाका ऊपर दिया जा चुका है। अतः इस विवादापन्न गाथाके सम्बन्धमे उक्त कल्पना करके यह नतीजा निकालना कि, यह ग्रंथ जोइन्दुके योगसारसे—ईसाकी प्रायः छठी शताब्दीसे—बादका बना हुआ है, ठीक मालूम नहीं देता । (मेरी समझमे यह ग्रथ उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रसे अधिक बादका नहीं है—उसके निकटवर्ती किसी समयका होना चाहिये। और इसके कर्ता वे अग्निपुत्र कार्तिकेय मुनि नहीं हैं जो आमतौरपर इसके कर्ता समझे जाते है और क्रौंच राजाके द्वारा उपसर्गको प्राप्त हुए थे, बल्कि स्वामिकुमारनामके आचार्य ही हैं जिस नामका उल्लेख उन्होंने स्वयं अन्तमंगलकी निम्न गाथामे श्लेषरूपसे भी किया है:—

तिहुयण-पहाण-सामिं कुमार-काले वि तविय तवयरणं ।
वसुपुज्जसुयं मल्लिं चरम-तियं संथुवे णिच्चं ॥ ४८९ ॥

इसमें वसुपूज्यसुत–वासुपूज्य, मल्लि और अन्तके तीन नेमि, पार्श्व तथा वर्द्धमान ऐसे पाँच कुमार–श्रमण तीर्थंकरोंकी वन्दना की गई है, जिन्होने कुमारावस्थामें ही जिनदीक्षा लेकर तपश्चरण किया है और जो तीन लोकके प्रधान स्वामी हैं। और इससे ऐसा ध्वनित होता है कि ग्रंथकार भी कुमारश्रमण थे, बालब्रह्मचारी थे और उन्होंने बाल्यावस्थामे ही जिनदीक्षा लेकर तपश्चरण किया है—जैसाकि उनके विषयमे प्रसिद्ध है, और इसीसे उन्होने अपनेको विशेषरूपमे इष्ट पाँच कुमार तीर्थंकरोंकी यहाँ स्तुति की है।

स्वामि-शब्दका व्यवहार दक्षिण देशमे अधिक है और वह व्यक्तिविशेषोंके साथ उनकी प्रतिष्ठाका द्योतक होता है। कुमार, कुमारसेन, कुमारनन्दी और कुमारस्वामी जैसे नामोंके आचार्य भी दक्षिणमें हुए हैं। दक्षिण देशमे बहुत प्राचीन कालसे क्षेत्रपालकी पूजा का प्रचार रहा है और इस ग्रथकी गाथा नं० २५ मे 'क्षेत्रपाल' का स्पष्ट नामोल्लेख करके उसके विषयमे फैली हुई रक्षा-सम्बन्धी मिथ्या धारणाका निषेध भी किया है। इन सब बातों परसे ग्रथकार महोदय प्रायः दक्षिण देशके आचार्य मालूम होते हैं, जैसा कि डाक्टर उपाध्येने भी अनुमान किया है।

२८. तिलोयपण्णत्ती और यतिवृषभ—(तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) तीन लोकके स्वरूप, आकार, प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल और युग-परिवर्तनादि-विषयका निरूपक एक महत्वका प्रसिद्ध प्राचीन ग्रथ है—प्रसंगोपात्त जैनसिद्धान्त, पुराण और भारतीय इतिहास-विषयको भी कितनी ही बातों एव सामग्रीको यह साथमे लिये हुए है। इसमे १ सामान्यजगत्स्वरूप, २ नारकलोक, ३ भवनवासिलोक, ४ मनुष्यलोक, ५ तिर्यक्लोक, ६ व्यन्तरलोक, ७ ज्योतिर्लोक, ८ सुरलोक और ९ सिद्धलोक नामके ९ महाधिकार हैं)। अवान्तर अधिकारोंकी सख्या १८० के लगभग है, क्योंकि द्वितीयादि महाधिकारोके अवान्तर अधिकार क्रमशः १५, २४, १६, १६, १७ १७, २१, ५ ऐसे १३१ हैं और चौथे महाधिकारके जम्बूद्वीप, धातकीखण्डद्वीप और पुष्करद्वीप नामके अवान्तर अधिकारोंमेसे प्रत्येकके फिर सोलह सोलह (१६×३=४८) अन्तर अधिकार है। इस तरह यह ग्रथ अपने विषयके बहुत विस्तारको लिये हुए है। इसका प्रारभ निम्न मंगलगाथासे होता है, जिसमें सिद्धि-कामनाके साथ सिद्धोंका स्मरण किया गया है :—

अट्ठविह-कम्म-वियला णिट्ठिय-कज्जा पणट्ठ-संसारा ।
दिट्ठ-सयलट्ठ-सारा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ १ ॥

ग्रथका अन्तिम भाग इस प्रकार है :—

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुण[हर]वसहं ।
दट्ठूण परिसवसहं (?) जदिवसहं धम्मसुत्तपाढगवसहं ॥९–७८॥
चुण्णिसरूवं अत्थं करणसरूवपमाण होदि किं (?) जं तं ।
अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए ॥९–७९॥

एवं आइरियपरंपरागए तिलोयपण्णत्तीए सिद्धलोयसरूवणिरूवणपण्णत्ती णाम णवमो महाहियारो सम्मत्तो ॥

मग्गप्पभावणट्ठं पवयण-भत्तिप्पचोदिदेण मया ।
भणिदं गंथप्पवरं सोहंतु बहुसुदाइरिया ॥९–८० ॥

तिलोयपण्णत्ती सम्मत्ता ॥

इसमें तीन गाथाएँ हैं, जिनमें पहली गाथा ग्रंथके अन्तमंगलको लिये हुए है और उसमे ग्रंथकार यतिवृषभाचार्यने 'जदिवसह' पदके द्वारा, श्लेषरूपसे अपना नाम भी सूचित किया है[1]। इसका दूसरा और तीसरा चरण कुछ अशुद्ध जान पड़ते हैं। दूसरे चरणमे 'गुण' के अनन्तर 'हर' और होना चाहिये—देहलीकी प्रतिमे भी त्रुटित अंशके संकेत-पूर्वक उसे हाशियेपर दिया है, जिसस वह उन गुणधराचार्यका भी वाचक हो जाता है जिनके 'कसायपाहुड' सिद्धान्त ग्रथपर यतिवृषभने चूर्णिसूत्रोकी रचना की है और उस 'हर' शब्दके संयोगसे 'आर्यागीति' छंदके लक्षणानुरूप दूसरे चरणमे भी २० मात्राएँ हो जाती हैं जैसी कि वे चतुर्थ चरणमें पाई जाती हैं। तीसरे चरणका पाठ पं० नाथूरामजी प्रेमीने पहले यही दट्ठूण परिसवसहं' प्रकट किया था[2], जो देहलीकी प्रतिमें भी पाया जाता है और उसका सस्कृत रूप 'दृष्ट्वा परिपद्वृषभं' दिया था, जिसका अर्थ होता है—परिपदोंमें श्रेष्ठ परिपद् (सभा) को देखकर। परन्तु 'परिस' का अर्थ कोपमें परिपद् नहीं मिलता किन्तु 'स्पर्श' उपलब्ध होता है, परिषदका वाचक 'परिसा' शब्द स्त्रीलिङ्ग है[3]। शायद यह देखकर अथवा दूसरे किसी कारणके वश, जिसकी कोई सूचना नहीं की गई, हालमे उन्होने 'दट्ठूण य रिसिवसहं' पाठ दिया है[4], जिसका अर्थ होता है—'ऋषियोंमे श्रेष्ठ ऋषिको देखकर'। परन्तु 'जदिवसहं' की मौजूदगीमे 'रिसिवसहं' पद कोई खास विशेषता रखता हुआ मालूम नहीं होता—ऋषि, मुनि, यति जैसे शब्द प्राय: समान अर्थके वाचक हैं—और इसलिये वह व्यर्थ पडता है। अस्तु, इस पिछले पाठको लेकर पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने उसके स्थानपर 'दट्ठूण अरिसवसहं' पाठ सुझाया है[5] और उसका अर्थ 'आर्षग्रंथोमे श्रेष्ठको देखकर' सूचित किया है। परन्तु 'अरिस' का अर्थ कोपमे 'आर्ष' उपलब्ध नहीं होता किन्तु 'अर्श' (बवासीर) नामका रोगविशेप पाया जाता है, आर्षके लिये 'आरिस' शब्दका प्रयोग होता है[6]। यदि 'अरिस' का अर्थ आर्ष भी मान लिया जाय अथवा 'प' के स्थानपर कल्पना किये गए 'अ' के लोपपूर्वक इस चरणको 'दट्ठूणारिसवसहं' ऐसा रूप देकर (जिस की उपलब्धि कहींसे नहीं होती) संधिके विश्लेपण-द्वारा इसमेसे आर्षका वाचक 'आरिस' शब्द निकाल लिया जावे, फिर भी इस चरणमे 'दट्ठूण' पद सबसे अधिक खटकने वाली चीज मालूम होता है, जिसपर अभी तक किसीकी भी दृष्टि गई मालूम नहीं होती। क्योंकि इस पदकी मौजूदगीमें गाथाके अर्थकी ठीक संगति नहीं बैठती—उसमें प्रयुक्त हुआ 'पणमह' (प्रणाम करो) क्रिया पद कुछ बाधा उत्पन्न करता है और उससे अर्थ सुव्यवस्थित अथवा सुश्रृंखलित नहीं हो पाता। ग्रंथकारने यदि 'दट्ठूण' (दृष्ट्वा) पदको अपने विपयमे प्रयुक्त किया है तो दूसरा क्रियापद भी अपने ही विपयका होना चाहिये था अर्थात् वृपभ या ऋषिवृषभ आदिको देखकर मैंने यह कार्य किया या मैं प्रणामादि अमुक कार्य करता हूँ ऐसा कुछ बतलाना चाहिये था, जिसकी गाथापरसे उपलब्धि नहीं होती। और यदि यह पद दूसरोसे सम्बन्ध रखता है—उन्हींकी प्रेरणाके लिये प्रयुक्त हुआ है—तो 'दट्ठूण' और 'पणमह' दोनो क्रियापदोंके लिये गाथामे अलग अलग कर्मपदोंकी संगति बिठलानी चाहिये, जो नहीं बैठती। गाथाके वसहान्त पदोंमेसे एकका वाच्य तो देखनेकी ही वस्तु हो

१ श्लेषरूपसे नाम-सूचनकी पद्धति अनेक ग्रंथोंमें पाई जाती हैं। देखो, गोम्मटसार, नीतिवाक्यामृत और प्रभाचन्द्रादिके ग्रंथ।

२ देखो, जैनहितैषी भाग १३ अंक १२ पृ० ५२८।

३ देखो, 'पाइअसद्दमहण्णव' कोश।

४ देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० ६।

५ देखो जैनसिद्धान्तभास्कर भाग ११ किरण १, पृ० ८०।

६ देखो, पाइअसद्दमहण्णव' कोश।

और दूसरेका वाच्य प्रणामकी वस्तु, यह बात संदर्भपरसे कुछ संगत मालूम नहीं होती। और इसलिये 'दट्ठूण' पदका अस्तित्व यहाँ बहुत ही आपत्तिके योग्य जान पड़ता है। मेरी रायमे यह तीसरा चरण 'दट्ठूण परिसवसहं' के स्थानपर 'दुट्ठुपरीसहविसहं' होना चाहिये। इससे गाथाके अर्थकी सब सगति ठीक बैठ जाती है। यह गाथा जयधवलाके १० वें अधिकारमे बतौर मगलाचरणके अपनाई गई है, वहाँ इसका तीसरा चरण 'दुसह-परीसहविसहं' दिया है। परिषहके साथ दुसह (दुःसह) और दुठ्ठु(दुष्ट)दोनो शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं—दोनोका आशय परीषहको बहुत बुरी तथा असह्य बतलानेका है। लेखकों की कृपासे 'दुसह'की अपेक्षा 'दुट्ठु' के 'दट्ठूण' होजानेकी अधिक संभावना है, इसीस यहाँ 'दुट्ठु' पाठ सुझाया गया है वैसे 'दुसह' पाठ भी ठीक है। यहाँ इतना और भी जान लेना चाहिये कि जयधवलामे इस गाथाके दूसरे चरणमें 'गुणवसह' के स्थानपर 'गुणहर-वसह' पाठ ही दिया है और इस तरह इस गाथाके दोनों चरणोंमें जो गलती और शुद्धि सुझाई गई है उसकी पुष्टि भले प्रकार हो जाती है।

दूसरी गाथामें इस तिलोयपण्णत्तीका परिमाण आठ हजार श्लोक-जितना बतलाया है। साथ ही, एक महत्वकी बात और सूचित की है और वह यह कि यह आठ हजारका परिमाण चूर्णिस्वरूप अर्थका और करणस्वरूपका जितना परिमाण है उसके बराबर है। इससे दो बाते फलित होती हैं—एक तो यह कि गुणधराचार्यके कसायपाहुड ग्रंथपर यति-वृषभने जो चूर्णिसूत्र रचे हैं वे इस ग्रंथसे पहले रचे जा चुके हैं, दूसरी यह कि 'करणस्वरूप' नामका भी कोई ग्रथ यतिवृषभके द्वारा रचा गया है, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। वह भी इस ग्रंथसे पहले बन चुका था। बहुत संभव है कि वह ग्रथ उन करण-सूत्रोका ही समूह हो जो गणितसूत्र कहलाते हैं और जिनका कितना ही उल्लेख त्रिलोक-प्रज्ञप्ति, गोम्मटसार, त्रिलोक-सार और धवला-जैसे ग्रंथोमे पाया जाता है। चूर्णिसूत्रोंकी—जिन्हें वृत्तिसूत्र भी कहते हैं—सख्या चूंकि छह हजार श्लोक-परिमाण है अतः 'करणस्वरूप' ग्रंथकी संख्या दोहजार श्लोक-परिमाण समझनी चाहिये, तभी दोनोंकी संख्या मिलकर आठ हजारका परिमाण इस ग्रंथका बैठता है। तीसरी गाथामे यह निवेदन किया गया है कि यह ग्रथ प्रवचनभक्तिसे प्रेरित होकर मार्गकी प्रभावनाके लिये रचा गया है, इसमे कहीं कोई भूल हुई हो तो बहुश्रुत आचार्य उसका सशोधन करें।

(क) ग्रंथकार यतिवृषभ और उनका समय—

ग्रथमें रचना-काल नहीं दिया और न ग्रंथकारने अपना कोई परिचय ही दिया है —उक्त दूसरी गाथापरसे इतना ही ध्वनित होता है कि 'वे धर्मसूत्रके पाठकोंमे श्रेष्ठ थे'। और इसलिये ग्रंथकार तथा ग्रंथके समय-सम्बन्धादिमे निश्चितरूपसे कुछ कहना सहज नहीं है। चूर्णिसूत्रोंको देखनेसे मालूम होता है कि यतिवृषभ एक अच्छे प्रौढ सूत्रकार थे और प्रस्तुत ग्रथ जैनशास्त्रोंके विषयमें उनके अच्छे विस्तृत अध्ययनको व्यक्त करता है। उनके सामने 'लोकविनिश्चय' 'संगाइणी' (संग्रहणी ?) और 'लोकविभाग (प्राकृत)' जैसे कितने ही ऐसे प्राचीन ग्रथ भी मौजूद थे जो आज अपनेको उपलब्ध नहीं हैं और जिनका उन्होंने अपने इस ग्रथमे उल्लेख किया है। उनका यह ग्रथ प्रायः प्राचीन ग्रथोंके आधारपर ही लिखा गया है इसीसे उन्होंने ग्रथकी पीठिकाके अन्तमें ग्रंथ-रचनेकी प्रतिज्ञा करते हुए उसके विषयको 'आयरिय-अणुक्कमायाद' (गा० ८६) बतलाया है और महाधिकारोंक सधिवाक्योंमे प्रयुक्त हुए 'आयरियपरंपरागए' पदके द्वारा भी उसी बातको पुष्ट किया है। और इस तरह यह घोषित किया है कि इस ग्रथका मूल विषय उनका स्वरुचि-विरचित नहीं है, किन्तु आचार्यपरम्पराके आधारको लिये हुए है। रही उपलब्ध करणसूत्रोंकी बात, वे यदि आपके उस 'करणस्वरूप' ग्रथके ही अंग हैं, जिसकी अधिक सभावना है, तब

तो कहना ही क्या है ? वे सब आपके उस विषयके पाण्डित्य और आपकी बुद्धिकी खूबी तथा उसकी सूक्ष्मताके अच्छे परिचायक हैं।

जयधवलाकी आदिमें मंगलाचरण करते हुए श्रीवीरसेनाचार्यने यतिवृषभका जो स्मरण किया है वह इस प्रकार है :—

जो अज्जमंखु-सीसो अंतेवासी वि णागहत्थिस्स।
सो वित्तिसुत्त-कत्ता जइवसहो मे वरं देउ ॥ ८ ॥

इसमें यतिवृषभको, कसायपाहुडपर लिखे गए उन वृत्ति (चूर्णि) सूत्रोंका कर्ता बतलाते हुए जिन्हें साथमें लेकर ही जयधवला टीका लिखी गई है, आर्यमंक्षुका शिष्य और नागहस्तिका अन्तेवासी बतलाया है, और इससे यतिवृषभके दो गुरुओंके नाम सामने आते हैं, जिनके विषयमें जयधवलापरसे इतना और जाना जाता है कि श्रीगुणधराचार्यने कसायपाहुड अपर नाम पेज्जदोसपाहुडका उपसंहार (संक्षेप) करके जो सूत्रगाथाएँ रची थीं वे इन दोनोको आचार्यपरम्परासे प्राप्त हुई थीं और ये उनके अर्थके भले प्रकार जानकार थे, इनसे समीचीन अर्थको सुनकर ही यतिवृषभने, प्रवचन-वात्सल्यसे प्रेरित होकर उन सूत्र-गाथाओंपर चूर्णिसूत्रोंकी रचना की है[1]। ये दोनो जैनपरम्पराके प्राचीन आचार्योंमें हैं और इन्हें दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंने माना है—श्वेताम्बर सम्प्रदायमें आर्यमक्षुको आर्यमंगु नामसे उल्लेखित किया है, मंगु और मंक्षु एकार्थक हैं। धवला-जयधवलामें इन दोनों आचार्योंको 'क्षमाश्रमण' और 'महावाचक' भी लिखा है[2] जो उनकी महत्ताके द्योतक हैं। इन दोनो आचार्योंके सिद्धान्त-विषयक उपदेशोंमें कहीं कहीं कुछ सूक्ष्म मतभेद भी रहा है जो वीरसेनको उनके ग्रंथों अथवा गुरुपरम्परासे ज्ञात था, और इसलिये उन्होंने धवला और जयधवला टीकाओंमें उसका उल्लेख किया है। ऐसे जिस उपदेशको उन्होंने सर्वाचार्यसम्मत, अव्युच्छिन्न-सम्प्रदाय-क्रमसे चिरकालागत और शिष्यपरंपरामें प्रचलित तथा प्रज्ञापित समझा है उसे 'पवाइज्जंत' 'पवाइज्जमाण' उपदेश बतलाया है और जो ऐसा नहीं उसे 'अपवाइज्जंत' अथवा 'अपवाइज्जमाण' नाम दिया है[3]। उल्लिखित मतभेदोंमें आर्यनागहस्तिके अधिकाश उपदेश 'पवाइज्जंत' और आर्यमक्षुके 'अपवाइज्जंत' बतलाये गए हैं। इस तरह यतिवृषभ दोनोका शिष्यत्व प्राप्त करनेके कारण उन सूक्ष्म मत-

---

१ 'पुणो तेण गुणहर-भडारएण णाणपवाद-पंचमपुव्व दसम वत्थु-तदियकसायपाहुड-महण्णव-पारएण गंथवोच्छेदभएण वच्छलपरवसिकयहियएण एवं पेज्जदोसपाहुडं 'सोलसपदसहस्सपरिमाणं होंतं असीदि-सदमेत्तगाहाहि उपसंहारिदं। पुणो ताओ चेय सुत्तगाथाओ आइरियपरंपराए आगच्छमाणाओ अज्ज-मखु-णागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाणं गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणं-मत्थं सम्मं सोऊण जइवसह-भडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं।"—जयधवला।

२ "कम्मट्ठिदि त्ति अणियोगद्दारे हि भण्णमाणे वे उवएसा होंति। जहण्णमुक्कस्सट्ठिदीणं पमाणपरूवणा कम्मट्ठिदिपरूवणं त्ति णागहत्थि-खमासमणा भणंति। अज्जमखु-खमासमणा पुण कम्मट्ठिदिपरूवेणे त्ति भणंति। एवं दोहि उवएसेहि कम्मट्ठिदिपरूवणा कायव्वा।" "एत्थ दुवे उवएसा ....महा-वाचयाणमज्जमखुखवणाणमुवएसेण लोगपूरिदे आउगसमाणं णामा-गोद-वेदणीयाणं ठिदिसंत-कम्मं ठवेदि। महावाचयाणं णागहत्थि-खवणाणमुवएसेण लोगे पूरिदे णामा-गोद-वेदणीयाण ट्ठिदि-संतकम्मं अंतोमुहुत्तपमाणं होदि।—षट्खं० १ प्र० पृ० ५७

३ "सव्वाइरिय-सम्मदो चिरकालमवोच्छिण्णसंपदायकमेणागच्छमाणो जो सिस्स-परंपराए पवाइज्जदे सो पवाइज्जंतोवएसो त्ति भण्णदे। अथवा अज्जमंखुभयवंताणमुवएसो एत्थाऽपवाइज्जमाणो णाम। णागहत्थिखमणाणमुवएसो पवाइज्जंतो त्ति घेतव्वो।—जयध० प्र० पृ० ४३।

भेदोंकी बातोंसे भी अवगत थे, यह सहज ही मे जाना जाता है। वीरसेनने यतिवृषभको एक बहुत प्रामाणिक आचार्यके रूपमें उल्लेखित किया है और एक प्रसगपर राग-द्वेष-मोह के अभावको उनकी वचन-प्रमाणतामे कारण बतलाया है[1]। इन सब बातोंसे आचार्य यतिवृषभका महत्व स्वतः ख्यापित हो जाता है।

अब देखना यह है कि यतिवृषभ कब हुए हैं और कब उनकी यह तिलोयपण्णत्ती बनी है, जिसके वाक्योंको धवलादिकमें उद्धृत करते हुए अनेक स्थानोंपर श्रीवीरसेनने उसे 'तिलोयपण्णत्तिसुत्त' सूचित किया है। यतिवृषभके गुरुओंमेसे यदि किसीका भी समय सुनिश्चित होता तो इस विषयका कितना ही काम निकल जाता, परन्तु उनका भी समय सुनिश्चित नहीं है। श्वेताम्बर पट्टावलियोंमेसे 'कल्पसूत्रस्थविरावली' और 'पट्टावलीसारोद्धार' जैसी कितनी ही प्राचीन तथा प्रधान पट्टावलियोमे तो आर्यमंगु और आर्यनागहस्तिका नाम ही नहीं है, किसी किसी पट्टावलोमे एकका नाम है तो दूसरेका नहीं और जिनमे दोनोंका नाम है उनमेसे कोई दोनोके मध्यमे एक आचार्यका और कोई एकसे अधिक आचार्योंका नामोल्लेख करती है। कोई कोई पट्टावली समयका निर्देश ही नहीं करती और जो करती है उनमे इन दोनोंके समयोंमें परस्पर अन्तर भी पाया जाता है—जैसे आर्यमगु का समय तपागच्छ-पट्टावलीमे वीरनिर्वाणसे ४६७ वर्षपर और सिरिदुसमाकाल-समणसघथय' की अवचूरिमे ४५० पर बतलाया है[2]। और दोनोंका एक समय तो किसी भी श्वे० पट्टावलीसे उपलब्ध नहीं होता बल्कि दोनोंमे १५० या १३० वर्षके करीबका अन्तराल पाया जाता है, जब कि दिगम्बर परम्पराका स्पष्ट उल्लेख दोनोंको यतिवृषभके गुरुरूपमे प्रायः समकालीन बतलाता है। ऐसी स्थितिमे श्वे० पट्टावलियोंको उक्त दोनों आचार्यों के समयादि-विषयमे विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। और इसलिये यतिवृषभादिके समयका अब तिलोयपण्णत्तीके उल्लेखोपरसे अथवा उसके अन्तःपरीक्षणपरसे ही अनुसंधान करना होगा। तदनुसार ही नीचे उसका यत्न किया जाता है :—

(१) तिलोयपण्णत्तीके अनेक पद्योंमे 'संगाइणी' तथा 'लोकविनिश्चय' ग्रथके साथ 'लोकविभाग' नामके ग्रथका भी स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। यथा :—

जलसिहरे विक्खंभो जलणिहिणो जोयणा दससहस्सा।
एवं संगाइणिए लोयविभाए विणिद्दिट्ठं ॥ अ० ४ ॥
लोयविणिच्छय-गंथे लोयविभागम्मि सव्वसिद्धाणं।
ओगाहण-परिमाणं भणिदं किंचूणचरिमदेहसमो ॥ अ० ६ ॥

यह 'लोकविभाग' ग्रथ उस प्राकृत लोकविभाग ग्रंथसे भिन्न मालूम नहीं होता, जिसे प्राचीन समयमें सर्वनन्दी आचार्यने लिखा (रचा) था, जो कांचीके राजा सिंहवर्माके राज्यके २२ वें वर्ष—उस समय जबकि उत्तरापाढ नक्षत्रमें शनिश्चर वृषराशिमें बृहस्पति, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमे चन्द्रमा था, शुक्लपक्ष था—शक संवत् ३८० में लिखकर पाणराष्ट्रके पाटलिक ग्राममे पूरा किया गया था और जिसका उल्लेख सिंहसूर[3] के उस संस्कृत 'लोक-

---

१ "कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव जइवसहाइरियमुहकमलविणिग्गयचुण्णिसुत्तादो। चुण्णिसुत्तमण्णहा किं ण होदि ? ण, रागदोसमोहाभावेण पमाणत्तमुवगय–जइवसह-वयणस्स असच्चत्तविरोहादो।"
—जयध० प्र० पृ० ४६

२ देखो, पट्टावलीसमुच्चय'।

३ 'सिंहसूरर्षिणा' पदपरसे 'सिंहसूर' नामकी उपलब्धि होती है—सिंहसूरिकी नहीं, जिसके 'सूरि' पदको 'आचार्य' पदका वाचक समझकर प० नाथूरामजी प्रेमीने (जैन साहित्य और इतिहास पृ० ५ पर)

विभाग' के निम्न पद्योंमे पाया जाता है, जो कि सर्वनन्दीके लोकविभागको सामने रख कर ही भाषाके परिवर्तनद्वारा रचा गया है :—

वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे, राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाणराष्ट्रे, शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥३॥
संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीश-सिंहवर्मणः।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥ ४ ॥

तिलोयपण्णत्तीकी उक्त दोनो गाथाओंमे जिन विशेष वर्णनोका उल्लेख 'लोकविभाग' आदि ग्रंथोंके आधारपर किया गया है वे सब सस्कृत लोकविभागमे भी पाये जाते हैं[२]। और इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि सस्कृतका उपलब्ध लोकविभाग उक्त प्राकृत लोकविभागको सामने रखकर ही लिखा गया है।

इस सम्बन्धमे एक बात और भी प्रकट कर देने की है और वह यह कि सस्कृत लोकविभागके अन्तमे उक्त दोना पद्योके बाद एक पद्य निम्न प्रकार दिया है :—

पंचदशशतान्याहुः षट्त्रिंशदधिकानि वै।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेदं छंदसानुष्टुभेन च ॥ ५ ॥

इसमे ग्रथकी सख्या १५३६ श्लोक-परिमाण बतलाई है, जबकि उपलब्ध[३] सस्कृत-लोकविभागमे वह २०३० के करीब जान पड़ती है। मालूम होता है कि यह १५३६ की श्लोकसख्या उसी पुराने प्राकृत लोकविभागकी है—यहाँ उसके संख्यासूचक पद्यका भी अनुवाद करके रख दिया है। इस सस्कृत ग्रंथमे जो ५०० श्लोक जितना पाठ अधिक है वह प्रायः उन 'उक्तं च' पद्योंका परिमाण है जो इस ग्रंथमे दूसरे ग्रंथोंसे उद्धृत करके रक्खे गये हैं—१०० स अधिक गाथाएँ तो तिलोयपण्णत्तीकी ही हैं, २०० के करीब श्लोक भगवज्जिनसेनके आदिपुराणसे उठाकर रक्खे गये हैं और शेष ऊपरके पद्य तिलोयसार (त्रिलोकसार) और जबूदीवपण्णत्ती (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति) आदि ग्रंथोसे लिये गये हैं। इस तरह इस ग्रथमे भाषाके परिवर्तन और दूसरे ग्रंथोंसेकुछ पद्योके 'उक्तं च' रूपसे उद्धरणके सिवाय सिंहसूरकी प्रायः और कुछ भी कृति मालूम नहीं होती। बहुत सभव है कि 'उक्तं च' रूपसे जो यह पद्योंका संग्रह पाया जाता है वह स्वयं सिंहसूर मुनिके द्वारा न किया गया हो, बल्कि बादको किसी दूसरे ही विद्वानके द्वारा अपने तथा दूसरोके विशेष उपयोगके लिये किया गया हो; क्योंकि ऋषि सिंहसूर जब एक प्राकृत ग्रथका संस्कृतमे—मात्र भाषाके परिवर्तन रूपसे ही—अनुवाद करने बैठे—व्याख्यान नहीं, तब उनके लिये यह संभावना बहुत ही कम जान पड़ती है कि वे दूसरे प्राकृतादि ग्रंथोंपरसे तुलनादिके लिये कुछ वाक्योको स्वयं

नामके अधूरेपनकी कल्पना की है और "पूरा नाम शायद सिंहनन्दि हो" ऐसा सुझाया है। छंदकी कठिनाईका हेतु कुछ भी समीचीन मालूम नहीं होता, क्योंकि सिंहनन्दि और सिंहसेन-जैसे नामोंका वहाँ सहज ही समावेश किया जा सकता था।

१ "आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा,
भाषायाः परिवर्तनेन निपुणैः सम्मानितं साधुभिः।"

२ "दशैवैष सहस्राणि मूलेऽग्रेपि पृथुर्मतः।"—प्रकरण २
'अन्त्यकायप्रमाणात्तु किञ्चित्संकुचितात्मकाः॥"—प्रकरण ११

३ देखो, आरा जैनसिद्धान्तभवनकी प्रति और उसपरसे उतारी हुई वीरसेवामन्दिरकी प्रति।

उद्धृत करके उन्हें ग्रंथका अंग बनाएं। यदि किसी तरह उन्हींके द्वारा यह उद्धरण-कार्य सिद्ध किया जा सके तो कहना होगा कि वे विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके अन्तमें अथवा उसके बाद हुए हैं; क्योंकि इसमें आचार्य नेमिचन्द्रके त्रिलोकसारकी गाथाएं भी 'उक्तं च त्रैलोक्यसारे' जैसे वाक्यके साथ उद्धृत पाई जाती हैं। और इसलिये इस सारी परिस्थिति परसे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं होता कि तिलोयपण्णत्तीमें जिस लोकविभागका उल्लेख है वह वही सर्वनन्दीका प्राकृत-लोकविभाग है जिसका उल्लेख ही नहीं किन्तु अनुवादितरूप संस्कृत लोकविभागमें पाया जाता है। चूंकि उस लोकविभागका रचनाकाल शक संवत् ३८० (वि० सं० ५१५) है अतः तिलोयपण्णत्तीके रचयिता यतिवृषभ शक सं० ३८० के बाद हुए हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। अब देखना यह है कि कितने बाद हुए हैं।

(२) तिलोयपण्णत्तीमें अनेक काल-गणनाओंके आधारपर 'चतुर्मुख' नामक कल्कि[1] की मृत्यु वीरनिर्वाणसे एक हजार वर्ष बाद बतलाई है, उसका राज्यकाल ४२ वर्ष दिया है, उसके अत्याचारों तथा मारे जानेकी घटनाओंका उल्लेख किया है और मृत्युपर उसके पुत्र अजितंजयका दो वर्ष तक धर्मराज्य होना लिखा है। साथ ही, बादको धर्मकी क्रमशः हानि बतलाकर और किसी राजाका उल्लेख नहीं किया है। इस प्रकारकी कुछ गाथाएँ निम्न प्रकार हैं, जो कि पालकादिके राज्यकाल ६५८ का उल्लेख करनेके बाद दी गई है :—

"तत्तो कक्की जादो इंदसुदो तस्स चउमुहो णामो।
सत्तरि-वरिसा आऊ विगुणिय-इगवीस-रज्जत्तो ॥ ६६ ॥
आचारांगधरादो पणहत्तरि-जुत्त दुसय-वासेसुं।
वोलीणेसुं बद्धो पट्टो कक्की स णरवइणो ॥ १०० ॥"
"अह को वि असुरदेओ ओहीदो मुणिगणाण उवसग्गं।
णादूणं तक्ककक्की मारेदि हु धम्मदोहि त्ति ॥ १०३ ॥
कक्किसुदो अजिदंजय-णामो रक्खदि णमदि तच्चरणे।
त रक्खदि असुरदेओ धम्मे रज्जं करेज्जंति ॥ १०४ ॥
तत्तो दो वे वासा सम्मं धम्मो पयट्टदि जणाणं।
कमसो दिवसे दिवसे कालमहप्पेण हाएदे ॥ १०५ ॥"

इस घटनाचक्रपरसे यह साफ मालूम होता है कि तिलोयपण्णत्तीकी रचना कल्कि राजाकी मृत्युसे १०–१२ वर्षसे अधिक बादकी नहीं है। यदि अधिक बादकी होती तो ग्रंथपद्धतिको देखते हुए संभव नहीं था कि उसमें किसी दूसरे प्रधान राज्य अथवा राजाका

---

[1] कल्कि निःसन्देह ऐतिहासिक व्यक्ति हुआ है, इस बातको इतिहासज्ञोंने भी मान्य किया है। डा० के० बी० पाठक उसे 'मिहिरकुल' नामका राजा बतलाते हैं और जैन काल-गणनाके साथ उसकी संगति बिठलाते हैं, जो बहुत अत्याचारी था और जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्तसाङ्गने अपने यात्रा-वर्णनमें विस्तारके साथ किया है तथा राजतरंगिणीमें भी जिसकी दुष्टताका हाल दिया है। परन्तु डा० काशीप्रसाद (के० पी०) जायसवाल इस मिहिरकुलको पराजित करनेवाले मालवाधिपति विष्णुयशोधर्माको ही हिन्दू पुराणों आदिके अनुसार 'कल्कि' बतलाते हैं, जिसका विजयस्तम्भ मन्दसौरमें स्थित है और वह ई० सन् ५३३–३४ में स्थापित हुआ था। (देखो, जैनहितैषी भाग १३ अंक १२ में जायसवालजीका 'कल्कि-अवतारकी ऐतिहासिकता' और पाठकजीका 'गुप्त राजाओंका काल, मिहिरकुल और कल्कि' नामक लेख पृ० ५१६ से ५२५।)

उल्लेख न किया जाता। अस्तु; वीर-निर्वाण शकराजा अथवा शक संवत्से ६०५ वर्ष ५ महीने पहले हुआ है, जिसका उल्लेख तिलोयपण्णत्तीमें भी पाया जाता है।[1] एक हजार वर्षमेंसे इस सख्याको घटानेपर ३९४ वर्ष ७ महीने अवशिष्ट रहते हैं। यही (शक संवत् ३९५) कल्किकी मृत्युका समय है। और इसलिये तिलोयपण्णत्तीका रचनाकाल शक सं० ४०५ (वि० सं० ५४०) के करीबका जान पड़ता है जब कि लोकविभागको बने हुए २५ वर्षके करीब हो चुके थे, और यह अर्सा लोकविभागकी प्रसिद्धि तथा यतिवृषभ तक उसकी पहुँचके लिये पर्याप्त है।

(ख) यतिवृषभ और कुन्दकुन्दके समय-सम्बन्धमें प्रेमीजीके मतकी आलोचना—

ये यतिवृषभ कुन्दकुन्दाचार्यसे २०० वर्षसे भी अधिक समय बाद हुए हैं, इस बात को सिद्ध करनेके लिये मैने 'श्रीकुन्दकुन्द और यतिवृषभमे पूर्ववर्ती कौन?' नामका एक लेख आजसे कोई ६ वर्ष पहले लिखा था[2]। उसमे, इन्द्रनन्दि-श्रुतावतारके कुछ गलत तथा भ्रान्त उल्लेखोंपरसे बनी हुई और श्रीधर-श्रुतावतारके उससे भी अधिक गलत एव आपत्तिके योग्य उल्लेखोंपरसे पुष्ट हुई कुछ विद्वानोंकी गलत धारणाको स्पष्ट करते हुए, मैंने सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीकी उन युक्तियोंपर विचार किया था जिनके आधारपर वे कुन्दकुन्दको यतिवृषभके बादका विद्वान बतलाते हैं। उनमेसे एक युक्ति तो इन्द्रनन्दि-श्रुतावतारपर ही अपना आधार रखती है; दूसरी प्रवचनसारकी 'एस सुरासुर' नामकी आद्य मंगल-गाथासे सम्बन्धित है, जो तिलोयपण्णत्तीके अन्तिम अधिकारमे भी पाई जाती है और जिसे प्रेमीजीने तिलोयपण्णत्तीपरसे ही प्रवचनसारमे लीगई लिखा था; और तीसरी कुन्दकुन्दके नियमसारकी निम्न गाथा से सम्बन्ध रखती है, जिसमे प्रयुक्त हुए 'लोयविभागेसु' पदमें प्रेमीजी सर्वनन्दीके लोकविभाग' ग्रथका उल्लेख समझते हैं और चूंकि उसकी रचना शक सं० ३८० में हुई है अतः कुन्दकुन्दाचार्यको शक सं० ३८० (वि० सं० ५१५) के बादका विद्वान ठहराते हैं:—

चउदसभेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसि वित्थारं लोयविभागेसु णादव्वं ॥१७॥

'एस सुरासुर' नामकी गाथाको कुन्दकुन्दकी सिद्ध करनेके लिये मैंने जो युक्तियाँ दी थीं उनपरसे प्रेमीजीका विचार अपनी दूसरी युक्तिके सम्बन्धमें तो बदल गया है, ऐसा उनके 'जैनसाहित्य और इतिहास' नामक ग्रन्थके प्रथम लेख 'लोकविभाग और तिलोयपण्णत्ति' परसे जाना जाता है। उसमे उन्होंने उक्त गाथाकी स्थितिको प्रवचनसार-में सुदृढ स्वीकार किया है, उसके अभावमे प्रवचनसारकी दूसरी गाथा 'सेसे पुण तित्थयरे' को लटकती हुई माना है और तिलोयपण्णत्तीके अन्तिम अधिकारके अन्तमे पाई जाने वाली कुन्थुनाथसे वर्द्धमान तककी स्तुति-विषयक ८ गाथाओंके सम्बन्धमें, जिनमें उक्त गाथा भी शामिल है, लिखा है कि—'बहुत संभव है कि ये सब गाथाएं मूलग्रंथकी न हों, पीछेसे किसीने जोड़ दी हों और उनमें प्रवचनसारकी उक्त गाथा आ गई हो।"

---

१ णिव्वाणे वीरजिणे छव्वास-सदेसु पंच-वरसेसु।
पण-मासेसु गदेसु संजादो सग-णिओ अहवा ॥—तिलोयपण्णत्ती
पण-छस्सय-वस्सं पणमासजुदं गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहियसगमासं ॥—त्रिलोकसार
वीरनिर्वाण और शक सवत्की विशेष जानकारीके लिये, लेखककी 'भगवान महावीर और उनका समय' नामकी पुस्तक देखनी चाहिये।

२ देखो, अनेकान्त वर्ष २ नवम्बर सन् १९३८ की किरण नं० १

दूसरी युक्तिके संबन्धमे मैंने यह बतलाया था कि इन्द्रनन्दि-श्रुतावतारके जिस उल्लेख[1] परसे कुन्दकुन्द (पद्मनन्दी) को यतिवृषभके बादका विद्वान समझा जाता है। उसका अभिप्राय 'द्विविध सिद्धान्त' के उल्लेखद्वारा यदि कसायपाहुड (कषायप्राभृत) को उसकी टीकाओं-सहित कुन्दकुन्द तक पहुँचाना है तो वह जरूर गलत है और किसी गलत सूचना अथवा गलतफहमीका परिणाम है। क्योंकि कुन्दकुन्द यतिवृषभसे बहुत पहले हुए हैं, जिसके कुछ प्रमाण भी दिये थे। साथ ही, यह भी बतलाया था कि यद्यपि इन्द्रनन्दी ने यह लिखा है कि 'गुणधर और धरसेन आचार्यों की गुरु-परम्पराका पूर्वाऽपरक्रम, उनके वंशका कथन करनेवाले शास्त्रों तथा मुनिजनोंका उस समय अभाव होनेसे, उन्हें मालूम नहीं है[2]'; परन्तु दोनों सिद्धान्त ग्रन्थोंके अवतारका जो कथन दिया है वह भी उन ग्रन्थों तथा उनकी टीकाओंको स्वयं देखकर लिखा गया मालूम नहीं होता—सुना-सुनाया जान पड़ता है। यही वजह है जो उन्होंने आर्यमंक्षु और नागहस्तिको गुणधराचार्यका साक्षात् शिष्य घोषित कर दिया और लिख दिया है कि 'गुणधराचार्यने कसायपाहुडकी सूत्रगाथाओंको रचकर उन्हें स्वयं ही उनकी व्याख्या करके आर्यमंक्षु और नागहस्तिको पढाया था[3], जबकि उनकी टीका जयधवलामे स्पष्ट लिखा है कि 'गुणधराचार्यकी उक्त सूत्रगाथाएँ आचार्यपरम्परासे चली आती हुई आर्यमंक्षु और नागहस्तिको प्राप्त हुई थीं—गुणधराचार्यसे उन्हें उनका सीधा (Direct) आदान-प्रदान नहीं हुआ था। जैसा कि उसके निम्न अंशसे प्रकट है:—

"पुणो ताओ सुत्तगाहाओ आइरिय-परंपराए आगच्छमाणाओ अज्जमंखु-णागहत्थीणं पत्ताओ।"

और इसलिये इन्द्रनन्दिश्रुतावतारके उक्त कथनकी सत्यतापर कोई भरोसा अथवा विश्वास नहीं किया जा सकता। परन्तु मेरी इन सब बातोंपर प्रेमीजीने कोई खास ध्यान दिया मालूम नहीं होता और इसी लिये वे अपने उक्त ग्रंथगत लेखमें आर्यमंक्षु और नागहस्तिको गुणधराचार्यका साक्षात् शिष्य मानकर ही चले हैं और इस मानकर चलनेमें उन्हें यह भी खयाल नहीं हुआ कि जो इन्द्रनन्दि गुणधराचार्यके पूर्वाऽपर अन्वयगुरुओंके विषयमे एक जगह अपनी अनभिज्ञता व्यक्त करते हैं वे ही दूसरी जगह उनकी कुछ शिष्य-परम्पराका उल्लेख करके अपर (बादको होनेवाले) गुरुओंके विषयमे अपनी अभिज्ञता जतला रहे हैं, और इस तरह उनके इन दोनों कथनोंमें परस्पर भारी विरोध है। और चूंकि यतिवृषभ आर्यमंक्षु और नागहस्तिके शिष्य थे इसलिये प्रेमीजीने उन्हें गुणधराचार्यका समकालीन अथवा २०-२५ वर्ष बादका ही विद्वान सूचित किया है और साथ ही यह प्रतिपादन किया है कि 'कुन्दकुन्द (पद्मनन्दि) को दोनों सिद्धान्तोंका जो

---

१ "गाथा-चूर्ण्युच्चारणसूत्रैरुपसहृत कषायाख्य—
प्राभृतमेव गुणधर–यतिवृषभोच्चारणाचार्यैः ॥१५६॥
एवं द्विविधो द्रव्य-भाव-पुस्तकगतः समागच्छत्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धान्तः कोण्डकुन्दपुरे ॥१६०॥
श्रीपद्मनन्दि-मुनिना, सोऽपि द्वादश सहस्रपरिमाणः।
ग्रन्थ-परिकर्म-कर्ता षट्खण्डाऽऽद्यत्रिखण्डस्य" ॥१६१॥

२ 'गुणधर–धरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वाऽपरक्रमोऽस्माभि—
र्न ज्ञायते तदन्वय–कथकाऽऽगम–मुनिजनाभावात् ॥१५०॥

३ एवं गाथासूत्राणि पंचदशमहाधिकाराणि।
प्रविरच्य व्याचख्यौ स नागहस्त्यार्यमंक्षुभ्याम् ॥ १५४ ॥

ज्ञान प्राप्त हुआ उसमे यतिवृषभकी चूर्णिका अन्तर्भाव भले ही न हो, फिर भी जिस द्वितीय सिद्धान्त कषायप्राभृतको कुन्दकुन्दने प्राप्त किया है उसके कर्ता गुणधर जब यतिवृषभके समकालीन अथवा २०–२५ वर्ष पहले हुए थे तब कुन्दकुन्द भी यतिवृषभके समसामयिक बल्कि कुछ पीछेके ही होंगे, क्योंकि उन्हें दोनो सिद्धान्तोंका ज्ञान 'गुरुपरिपाटीसे प्राप्त हुआ था। अर्थात् एक दो गुरु उनसे पहलेके और मानने होंगे।' और अन्तमे इन्द्रनन्दि श्रुतावतारपर अपना आधार व्यक्त करते और उनके विषयमे अपनी श्रद्धाको कुछ ढीली करते हुए यहाँ तक लिख दिया है:—"गरज़ यह कि इन्द्रनन्दिके श्रुतावतारके अनुसार पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द) का समय यतिवृषभसे बहुत पहले नही जा सकता। अब यह बात दूसरी है कि इन्द्रनन्दिने जो इतिहास दिया है, वहा गलत हो और या ये पद्मनन्दि कुन्दकुन्दके बादके दूसरे ही आचार्य हो और जिस तरह कुन्दकुन्द कोण्डकुण्डपुरके थे उसी तरह पद्मनन्दि भी कोण्डकुण्डपुरके हो।"

(बादमे जब प्रेमीजीको जयधवलाका वह कथन पूरा मिल गया जिसका एक अंश 'पुणो ताओ' से आरंभ करके मैंने अपने उक्त लेखमे दिया था और जो अधिकांशमे ऊपर उद्धृत किया गया है तब ग्रंथ छप चुकनेपर उसके परिशिष्टमे आपने उस कथनको देते हुए स्पष्ट सूचित किया है कि "नागहस्ति और आर्यमंक्षु गुणधरके साक्षात् शिष्य नहीं थे।" परन्तु इस सत्यको स्वीकार करनेपर उनकी उस दूसरी युक्तिका क्या रहेगा, इस विषयमें कोई सूचना नहीं की, जब कि करनी चाहिये थी। स्पष्ट है कि उनकी इस दूसरी युक्तिमे तब कोई सार नहीं रहता और कुन्दकुन्द, द्विविध सिद्धान्तमें चूर्णिका अन्तर्भाव न होनसे, यतिवृषभसे बहुत पहलेके विद्वान भी हो सकते हैं।)

अब रही प्रेमीजीकी तीसरी युक्तिकी बात, उसके विषयमे मैंने अपने उक्त लेखमे यह बतलाया था कि 'नियमसारकी उस गाथामें प्रयुक्त हुए 'लोयविभागेसु' पदका अभिप्राय सर्वनन्दीके उक्त लोकविभागसे नहीं है और न हो सकता है; बल्कि बहुवचनान्त पद होनेसे वह 'लोकविभाग' नामके किसी एक ग्रथविशेषका भी वाचक नहीं है। वह तो लोकविभाग-विषयक कथन-वाले अनेक ग्रथों अथवा प्रकरणोंके संकेतको लिये हुए जान पड़ता है और उसमे खुद कुन्दकुन्दके 'लोयपाहुड'–'संठाणपाहुड' जैसे ग्रंथ तथा दूसरे 'लोकानुयोग' अथवा लोकाऽलोकके विभागको लिये हुए करणानुयोग–सम्बन्धी ग्रंथ भी शामिल किये जा सकते हैं। और इसलिये 'लोयविभागेसु' इस पदका जो अर्थ कई शताब्दियो पीछेके टीकाकार पद्मप्रभने 'लोकविभागाभिधानपरमागमे ऐसा एकवचनान्त किया है वह ठीक नहीं है[१]।' साथ ही यह भी बतलाया था कि उपलब्ध लोकविभागमे, जो कि (उक्तं च वाक्योंको छोड़कर) सर्वनन्दीके प्राकृत लोकविभागका ही अनुवादित संस्कृतरूप है, तिर्यंचोके उन चौदह भेदोके विस्तार-कथनका कोई पता भी नहीं, जिसका उल्लेख नियमसारकी उक्त गाथामें किया गया है। और इससे मेरा उक्त कथन अथवा स्पष्टीकरण और भी ज्यादा पुष्ट होता है। इसके सिवाय, दो प्रमाण ऐसे उपस्थित किये थे, जिनकी मौजूदगीमे कुन्दकुन्दका समय शक स० ३८० (वि० सं० ५१५) के बादका किसी तरह भी नहीं हो सकता। उनमे एक प्रमाण मर्करा के ताम्रपत्रका था, जो शक सं० ३८८ का उत्कीर्ण है और जिसमे देशीगणान्तर्गत कुन्दकुन्दकेअन्वय (वंश) में होनेवाले गुणचन्द्रादि छह आचार्यों का गुरु-शिष्यक्रमसे उल्लेख है। और दूसरा प्रमाण स्वयं कुन्दकुन्दके बोधपाहुडकी

१ मेरे इस विवेचनसे, जो 'जैनजगत' वर्ष ८ अंक ९ के एक पूर्ववर्ती लेखमें प्रथमत: प्रकट हुआ था, डा० ए० एन० उपाध्ये एम० ए० ने प्रवचनसारकी प्रस्तावना (पृ० २२, २३) में अपनी पूर्ण सहमति व्यक्त की है।

'सद्दवियारो हूओ' नामकी गाथाका था, जिसमें कुन्दकुन्दने अपनेको भद्रबाहुका शिष्य सूचित किया है।

प्रथम प्रमाणको उपस्थित करते हुए मैंने बतलाया था कि 'यदि मोटे रूपसे गुणचन्द्रादि छह आचार्योंका समय १५० वर्ष ही कल्पना किया जाय, जो उस समयकी आयुकायादिककी स्थितिको देखते हुए अधिक नहीं कहा जा सकता, तो कुन्दकुन्दके वंशमें होने वाले गुणचन्द्रका समय शक संवत २३८ (वि० सं० ३७३) के लगभग ठहरता है। और [illegible] गुणचन्द्राचार्य कुन्दकुन्दके साक्षात् शिष्य या प्रशिष्य नहीं थे बल्कि कुन्दकुन्दके अन्वय [illegible] हुए हैं और अन्वयके प्रतिष्ठित होनेके लिये कमसे कम ५० वर्षका समय मान लेना [illegible]त नहीं है। ऐसी हालतमे कुन्दकुन्दका पिछला समय उक्त ताम्रपत्रपरसे [illegible]०० [illegible]) वर्ष पूर्वका तो सहज ही मे हो जाता है। और इसलिये कहना होगा कि कुन्दकुन्दाचार्य यतिवृषभसे २०० वर्षमे भी अधिक पहले हुए हैं। और दूसरे प्रमाणमे गाथाको उपस्थित करते हुए लिखा था कि इस गाथामे बतलाया है कि 'जिनेन्द्रने—भगवान महावीरने—अर्थ रूपसे जो कथन किया है वह भाषासूत्रोंमे शब्दविकारको प्राप्त हुआ है—अनेक प्रकारके शब्दोंमें गूँथा गया है—, भद्रबाहुके मुक्त शिष्यने उन भाषासूत्रों परसे उसको उसी रूपमे जाना है और (जानकर) कथन किया है।' इससे बोधपाहुडके कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य भद्रबाहुके शिष्य मालूम होते हैं। और ये भद्रबाहु श्रुतकेवलीसे भिन्न द्वितीय भद्रबाहु जान पड़ते हैं, जिन्हें प्राचीन ग्रंथकारोने 'आचाराङ्ग' नामक प्रथम अंगके धारियोमे तृतीय विद्वान सूचित किया है और जिनका समय जैन कालगणनाओंके[2] अनुसार वीरनिर्वाण-संवत् ६१२ अर्थात् वि सं० १४२ (भद्रबाहु द्वि०के समाप्तिकाल) से पहले भले ही हो, परन्तु पीछेका मालूम नहीं होता। क्योंकि श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयमे जिन-कथित श्रुतमें ऐसा कोई विकार उपस्थित नहीं हुआ था, जिसे गाथाम 'सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं' इन शब्दोद्वारा सूचित किया गया है—वह अविच्छिन्न चला आया था। परन्तु दूसरे भद्रबाहुके समयमे वह स्थिति नहीं रही थी-कितना ही श्रुतज्ञान लुप्त हो चुका था और जो अवशिष्ट था वह अनेक भाषा-सूत्रोंमे परिवर्तित हो गया था। और इसलिये कुन्दकुन्दका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दि तो हो सकता है परन्तु तीसरी या तीसरी शताब्दिके बादका वह किसी तरह भी नहीं बनता।'

परन्तु मेरे इस सब विवेचनको प्रेमीजीकी बद्धमूल हुई धारणाने कबूल नहीं किया, और इसलिये वे अपने उक्त ग्रंथगत लेखमे मर्कराके ताम्रपत्रको कुन्दकुन्दके स्वनिर्धारित समय (शक सं० ३८० के बाद) के माननेमे "सबसे बड़ी बाधा" स्वीकार करते हुए और यह बतलाते हुए भी कि "तब कुन्दकुन्दको यतिवृषभके बाद मानना असंगत हो जाता है।" लिखते हैं—

"पर इसका समाधान एक तरहसे हो सकता है और वह यह कि कौण्डकुन्दान्वयका अर्थ हमें कुन्दकुन्दकी वंशपरम्परा न करके कोण्डकुन्दपुर नामक स्थानसे निकली हुई परम्परा करना चाहिये। जैसे श्रीपुर स्थानकी परम्परा श्रीपुरान्वय, अरुंगलकी अरुंगलान्वय, कित्तूरकी कित्तूरान्वय, मथुराकी माथुरान्वय आदि।"

---

१ सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥६१॥

२ जैन कालगणनाओंका विशेष जाननेके लिये देखो लेखकद्वारा लिखित 'स्वामी समन्तभद्र' (इतिहास) का 'समय निर्णय' प्रकरण पृ० १८३ से तथा 'भ० महावीर और उनका समय' नामक पुस्तक पृ० ३१ से।

परन्तु अपने इस संभावित समाधानकी कल्पनाके समर्थनमे आपने एक भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया, जिससे यह मालूम होता कि श्रीपुरान्वयकी तरह कुन्दकुन्दपुरान्वयका भी कहीं उल्लेख आया है अथवा यह मालूम होता कि जहाँ पद्मनन्दि अपरनाम कुन्दकुन्दका उल्लेख आया है वहाँ उसके पूर्व कुन्दकुन्दान्वयका भी उल्लेख आया है और उसी कुन्दकुन्दान्वयमे उन पद्मनन्दि–कुन्दकुन्दको बतलाया है, जिससे ताम्रपत्रके 'कुन्दकुन्दान्वय' का अर्थ 'कुन्दकुन्दपुरान्वय' कर लिया जाता। बिना समर्थनके कोरी कल्पनासे काम नहीं चल सकता। वास्तवमे कुन्दकुन्दपुरके नामसे किसी अन्वयके प्रतिष्ठित अथवा प्रचलित होनेका जैनसाहित्यमे कहीं कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। प्रत्युत इसके, कुन्दकुन्दाचार्यके अन्वयके प्रतिष्ठित और प्रचलित होनेके सैकड़ो उदाहरण शिलालेखों तथा ग्रंथप्रशस्तियोंमे उपलब्ध होते हैं और वह देशादिके भेदसे 'इंगलेश्वर'[1] आदि अनेक शाखाओं (बलियों) मे विभक्त रहा है। और जहाँ कहीं कुन्दकुन्दके पूर्वकी गुरुपरम्पराका कुछ उल्लेख देखनेमे आता है वहाँ उन्हें गौतम गणधरकी सन्ततिमे अथवा श्रुतकेवली भद्रबाहुके शिष्य चन्द्रगुप्तके अन्वय (वंश) मे बतलाया है[2]। जिनका कौण्डकुन्दपुरके साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं है। श्रीकुन्दकुन्द मूलसघ (नन्दिसघ भी जिसका नामान्तर है) के अग्रणी गणी थे और देशीगणका उनके अन्वयसे खास सम्बन्ध रहा है, ऐसा श्रवणबेलगोलके ५५(६६) नम्बरके शिलालेखके निम्नवाक्योंसे जाना जाता है:—

श्रीमतो वर्द्धमानस्य वर्द्धमानस्य शासने।
श्रीकोण्डकुन्दनामाऽभून्मूलसङ्घाग्रणी गणी ॥३॥
तस्याऽन्वयेऽजनि ख्याते……देशिके गणे।
गुणी देवेन्द्रसैद्धान्तदेवो देवेन्द्र-वन्दितः ॥४॥

(और इसलिये मर्कराके ताम्रपत्रमे देशीगणके साथ जो कुन्दकुन्दान्वयका उल्लेख है वह श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके अन्वयका ही उल्लेख है कुन्दकुन्दपुरान्वयका नहीं) और इससे प्रेमीजीकी उक्त कल्पनामे कुछ भी सार मालूम नहीं होता। इसके सिवाय, प्रेमीजीने बोधपाहुड-गाथा-सम्बन्धी मेरे दूसरे प्रमाणका कोई विरोध नहीं किया, जिससे वह स्वीकृत जान पड़ता है अथवा उसका विरोध अशक्य प्रतीत होता है। दोनो ही अवस्थाओंमे कोण्डकुन्दपुरान्वयकी उक्त कल्पनासे क्या नतीजा? क्या वह कुन्दकुन्दके समय-सम्बन्धी अपनी धारणाको, प्रबलतर बाधाके उपस्थित होने पर भी, जीवित रखने आदिके उद्देश्यसे की गई है? कुछ समझमें नहीं आता॥

नियमसारकी उक्त गाथामें प्रयुक्त हुए 'लोयविभागेसु' पदको लेकर मैंने जो उपर्युक्त दो आपत्तियाँ की थीं उनका भी कोई समुचित समाधान प्रेमीजीने नहीं किया है। उन्होने अपने उक्त मूल लेखमें तो प्रायः इतना ही कह कर छोड़ दिया है कि "बहुवचनका प्रयोग इसलिये भी इष्ट हो सकता है कि लोक-विभागके अनेक विभागों या अध्यायोंमे उक्त भेद देखने चाहियें।" परन्तु ग्रंथकार कुन्दकुन्दाचार्यका यदि ऐसा अभिप्राय होता तो वे 'लोयविभाग-विभागेसु' ऐसा पद रखते, तभी उक्त आशय घटित हो सकता था, परन्तु ऐसा नहीं है, और इसलिये प्रस्तुत पदके 'विभागेसु' पदका आशय यदि ग्रंथके विभागों या अध्यायोंका लिया जाता है तो ग्रंथका नाम 'लोक' रह जाता है—'लोकविभाग' नहीं—और

१ सिरिमूलसंघ–देसियगण–पुत्थयगच्छ–कोंडकुंदाण।
परमण्ण–इंगलेसर–बलिम्मि जादस्स मुणिपहाणस्स॥
—भावत्रिभंगी ११८, परमागमसार २२६।

२ देखो, श्रवणबेल्गोलके शिलालेख नं० ४०, ४२, ४३, ४७, ५०, १०८।

इससे प्रेमीजीकी सारी युक्ति ही लौट जाती है जो 'लोकविभाग' ग्रंथके उल्लेखको मानकर-की गई है । इसपर प्रेमीजीका उस समय ध्यान गया मालूम नहीं होता । हाँ, बादको किसी समय उन्हें अपने इस समाधानकी निःसारताका ध्यान आया जरूर जान पड़ता है और उसके फलस्वरूप उन्होंने परिशिष्टमें समाधानकी एक नई दृष्टिका आविष्कार किया है और वह इस प्रकार है:—

"लोयविभागेसु णादव्व" पाठ पर जो यह आपत्ति की गई है कि वह बहुवचनान्त पद है, इसलिये किसी लोकविभागनामक एक ग्रन्थके लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता, तो इसका एक समाधान यह हो सकता है कि पाठको 'लोयविभागे सुणादव्व' इस प्रकार पढ़ना चाहिये, 'सु' को 'णादव्वं' के साथ मिला देनेसे एकवचनान्त 'लोयविभागे' ही रह जायगा और अगली क्रिया 'सुणादव्व' (सुज्ञातव्य) हो जायगी। पद्मप्रभने भी शायद इसी लिये उसका अर्थ 'लोकविभागाभिधानपरमागमे' किया है।'

इसपर मैं इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि प्रथम तो मूलका पाठ जब 'लोयविभागेसु णादव्व' इस रूपमे स्पष्ट मिल रहा है और टीकामें उसकी संस्कृत छाया जो लोक विभागेसु ज्ञातव्यः'[1] दी है उससे वह पुष्ट हो रहा है तथा टीकाकार पद्मप्रभने क्रियापदके साथ 'सु' का 'सम्यक्' आदि कोई अर्थ व्यक्त भी नहीं किया—मात्र विशेषणरहित 'द्रष्टव्यः' पदके द्वारा उसका अर्थ व्यक्त किया है, तब मूलके पाठकी, अपने किसी प्रयोजनके लिये, अन्यथा कल्पना करना ठीक नहीं है। दूसरे, यह समाधान तभी कुछ कारगर हो सकता है जब पहले मर्कराके ताम्रपत्र और बोधपाहुडकी गाथा-सम्बन्धी उन दोनो प्रमाणोंका निरसन कर दिया जाय जिनका ऊपर उल्लेख हुआ है, क्योंकि उनका निरसन अथवा प्रतिवाद न हो सकनेकी हालतमे जब कुन्दकुन्दका समय उन प्रमाणों परसे विक्रमकी दूसरी शताब्दी अथवा उससे पहलेका निश्चित होता है तब 'लोयविभागे' पदकी कल्पना करके उसमें शक स० ३८० अर्थात् विक्रमकी छठी शताब्दीमे बने हुए लोकविभाग ग्रथके उल्लेखकी कल्पना करना कुछ भी अर्थ नहीं रखता । इसके सिवाय, मैंने जो यह आपत्ति की थी कि नियमसारकी उक्त गाथाके अनुसार प्रस्तुत लोकविभागमे तिर्यंचोंके १४ भेदोका विस्तारके साथ कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है, उसका भले प्रकार प्रतिवाद होना चाहिये अर्थात् लोकविभागमे उस कथनके अस्तित्वको स्पष्ट करके बतलाना चाहिये, जिससे 'लोयविभागे' पदका वाच्य प्रस्तुत लोकविभाग समझा जा सके । परन्तु प्रेमीजीने इस बातका कोई ठीक समाधान न करके उसे टालना चाहा है। इसीसे परिशिष्टमे आपने यह लिखा है कि "लोकविभागमे चतुर्गतजीव-भेदोका या तिर्यंचों और देवोके चौदह और चार भेदोंका विस्तार नहीं है, यह कहना भी विचारणीय है। उसके छठे अध्यायका नाम ही तिर्यक् लोकविभाग है और चतुर्विध देवोंका वर्णन भी है।" परन्तु "यह कहना" शब्दोंके द्वारा जिस वाक्यको मेरा वाक्य बतलाया गया है उसे मैंने कब और कहाँ कहा है? मेरी आपत्ति तो तिर्यचोके १४ भेदोंके विस्तार-कथन तक ही सीमित है और वह ग्रंथको देख कर ही की गई है, फिर उतने अंशोंमें ही मेरे कथनको न रखकर अतिरिक्त कथनके साथ उसे 'विचारणीय' प्रकट करना तथा ग्रंथमें 'तिर्यक्लोकविभाग' नामका भी एक अध्याय है ऐसी बात कहना, यह

---

१ मूलमें एदेसिं वित्थार' पदोंके अनन्तर 'लोयविभागेसु णादव्वं' पदोंका प्रयोग है । चूँकि प्राकृतमें 'वित्थार' शब्द नपुँसक लिंगमें भी प्रयुक्त होता है इसीसे वित्थारं' पदके साथ णादव्व' क्रियाका प्रयोग हुआ है। परन्तु संस्कृतमें विस्तार' शब्द पुल्लिंग माना गया है अतः टीकामें संस्कृत छाया 'एतेषां विस्तारः लोकविभागेसु ज्ञातव्य.' दी गई है, और इसलिये 'ज्ञातव्यः' क्रियापद ठीक है। प्रेमीजीने ऊपर जो 'सुज्ञातव्य' रूप दिया है उसपरसे उसे गलत न समझ लेना चाहिये ।

सब टलानेके सिवाय और कुछ भी अर्थ रखता हुआ मालूम नहीं होता । मैं पूछता हूं क्या ग्रंथमें 'तिर्यक् लोकविभाग' नामका छठा अध्याय होनेसे ही उसका यह अर्थ हो जाता है कि 'उसमे तिर्यंचोंके १४ भेदोंका विस्तारके साथ वर्णन है ? यदि नहीं तो ऐसे समाधानसे क्या नतीजा ? और वह टलानेकी बात नहीं तो और क्या है ?

जान पड़ता है प्रेमीजी अपने उक्त समाधानकी गहराईको समझते थे—जानते थे कि वह सब एक प्रकारकी खानापूरी ही है—और शायद यह भी अनुभव करते थे कि संस्कृत लोकविभागमे तिर्यंचोंके १४ भेदोंका विस्तार नहीं है, और इसलिये उन्होंने परिशिष्टमें ही; एक कदम आगे, समाधानका एक दूसरा रूप अख्तियार किया है—जो सब कल्पनात्मक, सन्देहात्मक एव अनिर्णयात्मक है—और वह इस प्रकार है:—

"ऐसा मालूम होता है कि सर्वनन्दिका प्राकृत लोकविभाग बड़ा होगा । सिंहसूरिने उसका संक्षेप किया है । 'व्याख्यास्यामि समासेन' पदसे वे इस बातको स्पष्ट करते हैं । इसके सिवाय, आगे शास्त्रस्य संग्रहस्त्विदं' से भी यही ध्वनित होता है—सग्रहका भो एक अर्थ सक्षेप होता है । जैसे गोम्मटसंगहसुत्त आदि । इसलिये यदि सस्कृत लोकविभागमे तिर्यचोंक १४ भेदोंका विस्तार नहीं, तो इससे यह भी तो कहा जा सकता है कि वह मूल प्राकृत ग्रन्थमे रहा होगा, संस्कृतमे संक्षेप करनेके कारण नहीं लिखा गया ।"

इस समाधानके द्वारा प्रेमीजीने, संस्कृत लोकविभागमें तिर्यंचोंके १४ भेदोंका विस्तार-कथन न होनेकी हालतमे, अपने बचावकी और नियमसारका उक्त गाथामे सर्वनन्दीके लोकविभाग-विषयक उल्लेखकी अपनी धारणाको बनाये रखने तथा दूसरों पर लादे रखनेकी एक सूरत निकाली है । परन्तु प्रेमीजी जब स्वयं अपने लेखमे लिखते हैं कि "उपलब्ध 'लोकविभाग' जो कि सस्कृतमे है बहुत प्राचीन नहीं है । प्राचीनतासे उसका इतना ही सम्बन्ध है कि वह एक बहुत पुराने शक संवत् ३८० के बने हुए ग्रन्थसे अनुवाद किया गया है" और इस तरह संस्कृतलोकविभागको सर्वनन्दीके प्राकृत लोकविभागका अनुवादित रूप स्वीकार करते हैं । और यह बात मैं अपने लेखमे पहले भी बतला चुका हूँ कि संस्कृत लोकविभागके अन्तमे ग्रन्थकी श्लोकसंख्याका सूचक जो पद्य है और जिसमें श्लोकसख्याका परिमाण १५३६ दिया है वह प्राकृत लोकविभागकी संख्याका ही सूचक है और उसीके पद्यका अनुवादित रूप है, अन्यथा उपलब्ध लोकविभागकी श्लोकसंख्या २०३० के करीब पाई जाती है और उसमे जो ५०० श्लोक जितना पाठ अधिक है वह प्रायः उन 'उक्तं च' पद्योंका परिमाण है जो दूसरे ग्रन्थोंपरसे किसी तरह उद्धृत होकर रक्खे गये हैं । तब किस आधार पर उक्त प्राकृत लोकविभागको 'बड़ा' बतलाया जाता है ? और किस आधार पर यह कल्पना की जाती है कि 'व्याख्यास्यामि समासेन' इस वाक्यके द्वारा सिंहसूरि स्वयं अपने ग्रथ-निर्माणकी प्रतिज्ञा कर रहे हैं और वह सर्वनन्दीकी ग्रंथनिर्माण-प्रतिज्ञाका अनुवादित रूप नहीं है ? इसी तरह 'शास्त्रस्य संग्रहस्त्विदं' यह वाक्य भी सर्वनन्दीके वाक्यका अनुवादित रूप नहीं है ? जब सिंहसूरि स्वतंत्र रूपसे किसी ग्रन्थका निर्माण अथवा संग्रह नहीं कर रहे हैं और न किसी ग्रंथकी व्याख्या ही कर रहे हैं बल्कि एक प्राचीन ग्रथका भाषाके परिवर्तन द्वारा (भाषायाः परिवर्तनेन) अनुवादमात्र कर रहे हैं तब उनके द्वारा 'व्याख्यास्यामि समासेन' जैसा प्रतिज्ञावाक्य नहीं बन सकता और न श्लोक-संख्याको साथमे देता हुआ 'शास्त्रस्य संग्रहस्त्विदं' वाक्य ही बन सकता है । इससे दोनों वाक्य मूलकार सर्वनन्दीके ही वाक्योंके अनुवादितरूप जान पड़ते हैं । सिंहसूरका इस ग्रंथकी रचनासे केवल इतना ही सम्बन्ध है कि वे भाषाके परिवर्तन द्वारा इसके रचयिता हैं—विषयके संकलनादिद्वारा नहीं—जैसा कि उन्होंने अन्तके चार पद्योंमेसे प्रथम पद्यमें सूचित किया है और ऐसा ही उनकी ग्रंथ-प्रकृतिपरसे जाना जाता है । मालूम होता है प्रेमीजीने इन सब बातों पर कोई

ध्यान नहीं दिया और वे वैसे ही अपनी किसी धुन अथवा धारणाके पीछे युक्तियोंको तोड़-मरोड़ कर अपने अनूकूल बनानेके प्रयत्नमें समाधान करने बैठ गये हैं।

ऊपरके इस सब विवेचनपरसे स्पष्ट है कि प्रेमीजीके इस कथनके पीछे कोई युक्ति-बल नहीं है कि कुन्दकुन्द यतिवृषभके बाद अथवा सम-सामयिक हुए हैं। उनका जो खास आधार आर्यमंक्षु और नागहस्तिका गुणधराचार्यके साक्षात् शिष्य होना था वह स्थिर नहीं रह सका—प्रायः उसीको मूलाधार मानकर और नियमसारकी उक्त गाथामें सर्वनन्दीके लोकविभागकी आशा लगाकर वे दूसरे प्रमाणोंको खींच-तानद्वारा अपने सहायक बनाना चाहते थे, और वह कार्य भी नहीं हो सका। प्रत्युत इसके, ऊपर जो प्रमाण दिये गए हैं उन परसे यह भले प्रकार फलित होता है कि कुन्दकुन्दका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दि तक तो हो सकता है—उसके बादका नहीं, और इसलिये छठी शताब्दीमे होनेवाले यतिवृषभ उनसे कई शताब्दी बाद हुए हैं।

(ग) नई विचार-धारा और उसकी जाँच—

अब 'तिलोयपण्णत्ती' के सम्बन्धमे एक नई विचार-धाराको सामने रखकर उसपर विचार एवं जाँचका कार्य किया जाता है। यह विचार-धारा पं० फूलचन्दजी शास्त्रीने अपने 'वर्तमान तिलोयपण्णत्ति और उसके रचनाकाल आदिका विचार' नामक लेखमें प्रस्तुत की है, जो जैनसिद्धान्तभास्कर भाग ११ की किरण १ मे प्रकाशित हुआ है। शास्त्रीजीके विचारानुसार वर्तमान तिलोयपण्णत्ती विक्रमकी ६ वीं शताब्दी अथवा शक सं० ७३८ वि० सं० ८७३) से पहलेकी बनी हुई नहीं है और उसके कर्ता भी यतिवृषभ नहीं हैं। अपने इस विचारके समर्थनमे आपने जो प्रमाण प्रस्तुत किये हैं उनका सार निम्न प्रकार है। इस सारको देनेमे इस बातका खास खयाल रक्खा गया है कि जहाँ तक भी हो सके शास्त्रीजीका युक्तिवाद अधिकसे अधिक उन्हींके शब्दोंमे रहे :—

(१) 'वर्तमानमे लोकको उत्तर और दक्षिणमें जो सर्वत्र सात राजु मानते हैं उसकी स्थापना धवलाके कर्ता वीरसेन स्वामीने की है—वीरसेन स्वामीसे पहले वैसी मान्यता नहीं थी। वीरसेन स्वामीके समय तक जैन आचार्य उपमालोकसे पाँच द्रव्योंके आधारभूत लोकको भिन्न मानते थे। जैसा कि राजवार्तिकके निम्न दो उल्लेखोंसे प्रकट है :—

"अधः लोकमूले दिग्विदिक्षु विष्कम्भः सप्तरज्जवः, तिर्यग्लोके रज्जुरेका, ब्रह्मलोके पंच, पुनर्लोकाग्रे रज्जुरेका। मध्यलोकादधो रज्जुमवगाह्य शर्करान्ते अष्टास्वपि दिग्विदिक्षु विष्कम्भः रज्जुरेका रज्ज्वाश्च षट् सप्तभागाः।" —(अ० १ सू० २० टीका)

"ततोऽसंख्यान् खण्डानपनीयासंख्येयमेकं भागं बुद्ध्या विरलीकृत्य एकैकस्मिन घनाङ्गुलं दत्वा परस्परेण गुणिता जगच्छ्रेणी सापरया जगच्छ्रेण्या अभ्यस्ता प्रतरलोकः। स एवापरया जगच्छ्रेण्या सवर्गितो घनलोकः।" —(अ० ३० सू० ३८ टीका)

इनमेसे प्रथम उल्लेख परसे लोक आठों दिशाओंमें समान परिमाणको लिये हुए होनेसे गोल हुआ और उसका परिमाण भी उपमालोकके प्रमाणानुसार ३४३ घनराजु नहीं बैठता, जब कि वीरसेनका लोक चौकोर है, वह पूर्व पश्चिम दिशामें ही उक्त क्रमसे घटता है दक्षिण-उत्तर दिशामे नहीं—इन दोनों दिशाओमे वह सर्वत्र सात राजु बना रहता है। और इसलिये उसका परिमाण उपमालोकके अनुसार ही ३४३ घनराजु बैठता है और वह प्रमाणमें पेश की हुई निम्न दो गाथाओंपरसे, उक्त आकारके साथ भले प्रकार फलित होता है :—

"मुहतलसमासअद्धं वुस्सेधगुणं गुणं च वेधेण ।
घणगणिदं जाणेज्जो वेत्तासणसंठिए खेत्ते ॥ १ ॥
मूलं मज्झेण गुणं मुहजहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं ।
घणगणिदं जाणेज्जो मुइंगसंठाणखेत्तम्मि ॥ २ ॥"

—धवला, क्षेत्रानुयोगद्वार पृ० २०

राजवार्तिकके दूसरे उल्लेखपरसे उपमालोकका परिमाण ३४३ घनराजु तो फलित होता है; क्योंकि जगश्रेणीका प्रमाण ७ राजु है और ७ का घन ३४३ होता है। यह उपमा-लोक है परन्तु इसपरसे पाँच द्रव्योंके आधारभूत लोकका आकार आठों दिशाओंमे उक्त क्रमसे घटता-बढ़ता हुआ 'गोल' फलित नहीं होता।

"वीरसेनस्वामीके सामने राजवार्तिक आदिमे बतलाये गये आकारके विरुद्ध लोकके आकारको सिद्ध करनेके लिये केवल उपर्युक्त दो गाथाएँ ही थीं। इन्हींके आधारसे वे लोकके आकारको भिन्न प्रकारसे सिद्ध कर सके तथा यह भी कहनेमें समर्थ हुए कि 'जिन'[1] ग्रथोमे लोकका प्रमाण अधोलोकके मूलमे सात राजु, मध्यलोकके पास एक राजु, ब्रह्मस्वर्गके पास पाँच राजु और लोकाग्रमे एक राजु बतलाया है वह वहाँ पूर्व और पश्चिम दिशाकी अपेक्षासे बतलाया है। उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे नहीं। इन दोनों दिशाओकी अपेक्षा तो लोकका प्रमाण सर्वत्र सात राजु है। यद्यपि इसका विधान[2] करणानुयोगके ग्रथोमे नहीं है तो भी वहाँ निषेध भी नहीं है अतः लोकको उत्तर और दक्षिणमे सर्वत्र सात राजु मानना चाहिये।

वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमे निम्न तीन गाथाएँ भिन्न स्थलोंपर पाई जाती हैं, जो वीरसेन स्वामीके उस मतका अनुसरण करती है जिसे उन्होंने 'मुहतलसमास' इत्यादि गाथाओ और युक्तिपरसे स्थिर किया है —

"जगसेढिघणपमाणो लोयायासो स पंचदव्वरिदी ।
एस अणंताणंतलोयायामस्स बहुमज्झे ॥ ९१ ॥
सयलो एस य लोओ णिप्पण्णो सेढिविंदमाणेण ।
तिवियप्पो णादव्वो हेट्ठिममज्झिमउड्ढभेएण ॥ १३६ ॥"
सेढिपमाणायामं भागेसु दक्खिणुत्तरेसु पुढं ।
पुव्वावरेसु वासं भूमिमुहे सत्त एक्क पंचेक्का ॥ १४९ ॥"

इन पाँच द्रव्योंसे व्याप्त लोकाकाशको जगश्रेणीके घनप्रमाण बतलाया है। साथ ही, "लोकका प्रमाण दक्षिण-उत्तर दिशामे सर्वत्र जगश्रेणी जितना अर्थात् सात राजु और पूर्व-पश्चिमदिशामें अधोलोकके पास सात राजु, मध्यलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पाँच राजु और लोकाग्रमे एक राजु है" ऐसा सूचित किया है। इसके सिवाय, तिलोयपण्णत्तीका पहला महाधिकार सामान्यलोक, अधोलोक व ऊर्ध्वलोकके विविध प्रकारसे निकाले गए घनफलों[3]से भरा पड़ा है जिससे वीरसेन स्वमीकी मान्यताकी ही पुष्टि होती है। तिलोय-

[1] 'ण च तइयाए गाहाए सह विरोहो, एत्थ वि दोसु दिसासु चउव्विहविक्खंभदंसणादो।'
—धवला, क्षेत्रानुयोगद्वार पृ० २१।

[2] 'ण च सत्तरज्जुबाहल्लं करणाणिओगसुत्तविरुद्धं तत्थ विधिप्पडिसेधाभावादो।'
—धवला, क्षेत्रानुयोगद्वार पृ० २२।

[3] देखो, तिलोयपण्णत्तिके पहले अधिकारकी गाथाएँ २१५ से २५१ तक।

पण्णत्तीका यह अंश यदि वीरसेनस्वामीके सामने मौजूद होता तो "वे इसका प्रमाणरूपसे उल्लेख नहीं करते यह कभी संभव नहीं था।" चूंकि वीरसेनने तिलोयपण्णत्तीकी उक्त-गाथाएँ अथवा दूसरा अंश धवलामें अपने विचारके अवसर पर प्रमाणरूपसे उपस्थित नहीं किया अतः उनके सामने जो तिलोयपण्णत्ती थी और जिसके अनेक प्रमाण उन्होंने धवलामे उद्धृत किये हैं वह वर्तमान तिलोयपण्णत्ती नहीं थी—इससे भिन्न दूसरी ही तिलोयपण्णत्ती होनी चाहिये, यह निश्चित होता है।

(२) "तिलोयपण्णत्तीमें पहले अधिकारकी ७ वीं गाथासे लेकर ८७ वीं गाथा तक ८१ गाथाओंमे मगल आदि छह अधिकारोंका वर्णन है। यह पूराका पूरा वर्णन संत-परूवणाकी धवलाटीकामे आये हुए वर्णनसे मिलता हुआ है।। ये छह अधिकार तिलोय-पण्णत्तीमे अन्यत्रसे सग्रह किये गये हैं इस बातका उल्लेख स्वयं तिलोयपण्णत्तीकारने पहले अधिकारकी ८५ वीं गाथा[1] मे किया है तथा धवलामें इन छह अधिकारोका वर्णन करते समय जितनी गाथाएं या श्लोक उद्धृत किये गये हैं वे सब अन्यत्रसे लिये गये हैं तिलोय-पण्णत्तीसे नहीं, इससे मालूम होता है कि तिलोयपण्णत्तिकारके सामने धवला अवश्य रही है।"

(दोनों ग्रंन्थोंके कुछ समान उद्धरणोंके अनन्तर) "इसी प्रकारके पचासों उद्धरण दिये जा सकते हैं जिनसे यह जाना जा सकता है कि एक ग्रन्थ लिखते समय दूसरा ग्रथ अवश्य सामने रहा है। यहाँ पाठक एक विशेषता और देखेंगे कि धवलामे जो गाथा या श्लोक अन्यत्रसे उद्धृत हैं तिलोयपण्णत्तिमे वे भी मूलमें शामिल कर लिये गए हैं। इससे तो यही ज्ञात होता है कि तिलोयपण्णत्ति लिखते समय लेखकके सामने धवला अवश्य रही है।"

(३) " 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' इत्यादि श्लोक इन (भट्टाकलंकदेव) की मौलिक कृति है जो लघीयस्त्रयके छठे अध्यायमे आया है। तिलोयपण्णत्तिकारने इसे भी नहीं छोड़ा। लघीयस्त्रयमे जहाँ यह श्लोक आया है वहाँसे इसके अलग करदेने पर प्रकरण ही अधूरा रह जाता है। पर तिलोयपण्णत्तिमे इसके परिवर्तित रूपकी स्थिति ऐसे स्थल पर है कि यदि वहाँसे उसे अलग भी कर दिया जाय तो भी प्रकरणकी एकरूपता बनी रहती है। वीरसेन स्वामीने धवलामे उक्त श्लोकको उद्धृत किया है। तिलोयपण्णत्तिको देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि तिलोयपण्णत्तिकारने इसे लघीयस्त्रयसे न लेकर धवलासे ही लिया है, क्योंकि धवलामे इसके साथ जो एक दूसरा श्लोक उद्धृत है उसे भी उसी क्रमसे तिलोय-पण्णत्तिकारने अपना लिया है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि तिलोयपण्णत्तिकी रचना धवलाके बाद हुई है।"

(४) "धवला द्रव्यप्रमाणानुयोगद्वारके पृष्ठ ३६ मे तिलोयपण्णत्तिका एक गाथांश उद्धृत किया है जो निम्न प्रकार है—

'दुगुणदुगुणो दुवग्गो णिरंतरो तिरियलोगो' त्ति।

वर्तमान तिलोयपण्णत्तिमे इसकी पर्याप्त खोज की, किन्तु उसमे यह नहीं मिला। हाँ, इस प्रकारकी एक गाथा स्पर्शानुयोगमें वीरसेन स्वामीने अवश्य उद्धृत की है; जो इस प्रकार है:—

'चंदाइच्चगहेहिं चेवं णक्खत्ततारुरूवेहिं।
दुगुण दुगुणेहि णीरंतरेहि दुवग्गो तिरियलोगो॥'

---

१ "मंगलपहुदिछक्कं वक्खाणिय विविहगंथजुत्तीहिं।"

किन्तु वहाँ यह नहीं बतलाया कि कहाँकी है। मालूम पड़ता है कि इसीका उक्त गाथांश परिवर्तित रूप है। यदि यह अनुमान ठीक है तो कहना होगा कि तिलोयपण्णत्तिमे पूरी गाथा इस प्रकार रही होगी। जो कुछ भी हो पर इतना सच है कि वर्तमान तिलोय-पण्णत्ति उससे भिन्न है।"

(५) "तिलोयपण्णत्तिमे यत्र तत्र गद्य भाग भी पाया जाता है। इसका बहुत कुछ अंश धवलामे आये हुए इस विषयके गद्य भागसे मिलता हुआ है। अतः यह शंका होना स्वाभाविक है कि इस गद्य भागका पूर्ववर्ती लेखक कौन रहा होगा। इस शंकाके दूर करनेके लिये हम एक ऐसा गद्यांश उपस्थित करते हैं जिससे इसका निर्णय करनेमे बड़ी सहायता मिलती है। वह इस प्रकार है :—

'एसा तप्पाओग्गासंखेज्जरूवाहियजंबूदीवछेदणयसहिददीवसायररूपमेत्तरज्जु-च्छेदपमाणपरिक्खाविही ण अण्णाइरिओवएसपरंपराणुसारिणी केवलं तु तिलोय-पण्णत्तिसुत्ताणुसारिजादिसियदेवभागहारपदुप्पाइदसुत्तावलंबिजुत्तिबलेण पयदगच्छसा-हणट्ठमम्हेहि परूविदा।'

यह गद्यांश धवला स्पर्शानुयोगद्वार पृ० १५७ का है। तिलोयपण्णत्तिमे यह उसी प्रकार पाया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि वहाँ 'अम्हेहि' के स्थानमे 'एसा परूवणा' पाठ है। पर विचार करनेसे यह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि 'एसा' पद गद्यके प्रारंभमें ही आया है अतः पुनः उसी पदके देनेकी आवश्यकता नहीं रहती। परिक्खा-विही' यह पद विशेष्य है, अतः 'परूवणा' पद भी निष्फल हो जाता है।

"(गद्यांशका भाव देनेके अनन्तर) इस गद्यभागसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त गद्यभागमें एक राजुके जितने अर्धच्छेद बतलाये हैं वे तिलोयपण्णत्तिमे नहीं बतलाये गये हैं किन्तु तिलोयपण्णत्तिमे जो ज्योतिषी देवोंके भागहारका कथन करनेवाला सूत्र है उसके बलसे सिद्ध किये गए हैं। अब यदि यह गद्यभाग तिलोयपण्णत्तिका होता तो उसीमें 'तिलोलपण्णत्तिसुत्ताणुसारि' पद देनेकी और उसीके किसी एक सूत्रके बलपर राजुकी चालू मान्यतासे संख्यात अधिक अर्धच्छेद सिद्ध करनेकी क्या आवश्यकता थी। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि यह गद्यभाग धवलासे तिलोयपण्णत्तिमें लिया गया है। नहीं तो वीरसेन स्वामी जोर देकर 'हमने यह परीक्षाविधि' कही है' यह न कहते। (कोई भी मनुष्य अपनी युक्तिको ही अपनी कहता है। उक्त गद्य भागमे आया हुआ 'अम्हेहि' पद साफ बतला रहा है कि यह युक्ति वीरसेनस्वामीकी है। इस प्रकार इस गद्यभागसे भी यही सिद्ध होता है कि वर्तमान तिलोयपण्णत्तिकी रचना धवलाके अनन्तर हुई है।")

इन पांचों प्रमाणोंको देकर शास्त्रीजीने बतलाया है कि धवलाकी समाप्ति चूंकि शक संवत् ७३८ में हुई थी इसलिये वर्तमान तिलोयपण्णत्ति उससे पहलेकी बनी हुई नहीं है और चूंकि त्रिलोकसार इसी तिलोयपण्णत्तीके आधार पर बना हुआ है और उसके रचयिता नेमिचन्द्र सि० चक्रवर्ती शक सवत् ६०० के लगभग हुए हैं इसलिये यह ग्रन्थ शक स० ६०० के बादका बना हुआ नहीं है, फलतः इस तिलोयपण्णत्तिकी रचना शक सं० ७३८ से लेकर ६०० के मध्यमें हुई है। अतः इसके कर्ता यतिवृषभ किसी भी हालतमे नहीं हो सकते।" इसके रचयिता संभवतः वीरसेनके शिष्य जिनसेन हैं—वे ही होने चाहियें, क्योंकि एक तो वीरसेन स्वामीके साहित्य-कार्यसे वे अच्छी तरह परिचित थे। तथा उनके शेष कार्यको इन्होंने पूरा भी किया है। संभव है उन शेष कार्योंमें उस समयकी आवश्यकता-नुसार तिलोयपण्णत्तिका संकलन भी एक कार्य हो। दूसरे वीरसेनस्वामीने प्राचीन साहि-त्यके संकलन, संशोधन और सम्पादनकी जो दिशा निश्चित की थी वर्तमान तिलोयपण्णत्तिका

संकलन भी उसीके अनुसार हुआ है। तथा सम्पादनकी इस दिशासे परिचित जिनसेन ही थे। इसके सिवाय 'जयधवलाके जिस भागके लेखक आचार्य जिनसेन हैं उसकी एक गाथा ('पणमह जिणवरवसहं' नामकी) कुछ परिवर्तनके साथ तिलोयपण्णत्तिके अन्तमे पाई जाती है, और इससे तथा उक्त गद्यमें 'अम्हेहि' पदके न होनेके कारण वीरसेन स्वामी वर्तमान तिलोयपण्णत्तिके कर्ता मालूम नहीं होते। उनके सामने जो तिलोयपण्णत्ति थी वह संभवतः यतिवृषभाचार्यकी रही होगी।' 'वर्तमान तिलोयपण्णत्तिके अन्तमे पाई जाने वाली उक्त गाथा ('पणमह जिणवरवसहं') मे जो मौलिक परिवर्तन दिखाई देता है वह कुछ अर्थ अवश्य रखता है और उसपरसे, सुझाये हुए 'अरिस वसहं' पाठके अनुसार, यह अनुमानित होता एवं सूचना मिलती है कि वर्तमान तिलोयपण्णत्तिके पहले एक दूसरी तिलोयपण्णत्ति आर्षग्रंथके रूपमें थी, जिसके कर्ता यतिवृषभ स्थविर थे और उसे देखकर इस तिलोयपण्णत्तिकी रचना की गई है।'

शास्त्रीजीके उक्त प्रमाणों तथा निष्कर्षोंके सम्बन्धमे अब मैं अपनी विचारणा एव जॉच प्रस्तुत करता हूँ और उसमे शास्त्रीजीके प्रमाणोंको क्रमसे लेता हूँ:—

(१) प्रथम प्रमाणको प्रस्तुत करते हुए शास्त्रीजीने जो कुछ कहा है उसपरसे इतना ही फलित होता है कि 'वर्तमान तिलोयपण्णत्ति वीरसेन स्वामीसे बादकी बनी हुई है और उस तिलोयपण्णत्तिसे भिन्न है जो वीरसेन स्वामीके सामने मौजूद थी, क्योंकि इसमे लोकके उत्तर-दक्षिणमे सर्वत्र सात राजूकी उस मान्यताको अपनाया गया है और उसीका अनुसरण करते हुए घनफलोंको निकाला गया है जिसके संस्थापक वीरसेन हैं। और वीरसेन इस मान्यताके सस्थापक इस लिये हैं कि उनसे पहले इस मान्यताका कोई अस्तित्व नहीं था, उनके समय तक सभी जैनाचार्य ३४३ घनराजु वाले उपमालोक (प्रमाणलोक) से पॉच द्रव्योंके आधारभूत लोकको भिन्न मानते थे। यदि वर्तमान तिलोयपण्णत्ति वीरसेनके सामने मौजूद होती अथवा जो तिलोयपण्णत्ति वीरसेनके सामने मौजूद थी उसमे उक्त मान्यताका कोई उल्लेख अथवा ससूचन होता तो यह असंभव था कि वीरसेन स्वामी उसका प्रमाणरूपसे उल्लेख न करते। उल्लेख न करनेसे ही दोनोंका अभाव जाना जाता है।' अब देखना यह है कि क्या वीरसेन सचमुच ही उक्त मान्यताके संस्थापक हैं और उन्होंने कहीं अपनेको उसका सस्थापक या आविष्कारक प्रकट किया है। जिस धवला टीकाका शास्त्रीजीने उल्लेख किया है उसके उस स्थलको देख जानेसे वैसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता। वहॉ वीरसेनने, क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वारके 'ओघेण मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे' इस द्वितीय सूत्रमे स्थित 'लोगे' पदकी व्याख्या करते हुए, बतलाया है कि यहॉ 'लोक' से सात राजु घनरूप (३४३ घनराजुप्रमाण) लोक ग्रहण करना चाहिये, क्योकि यहॉ क्षेत्र प्रमाणाधिकारमे पल्य, सागर, सूच्यगुल, प्रतरागुल, घनागुल, जगश्रेणी, लोकप्रतर और लोक ऐसे आठ प्रमाण क्रमसे माने गये हैं। इससे यहॉ प्रमाणलोकका ही ग्रहण है—जो कि सात राजुप्रमाण जगश्रेणीके घनरूप होता है। इसपर किसीने शका की कि 'यदि ऐसा लोक ग्रहण किया जाता है तो फिर पॉच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ग्रहण नहीं बनता, क्योकि उसमे सात राजुके घनरूप क्षेत्रका अभाव है। यदि उसका क्षेत्र भी सातराजुके घनरूप माना जाता है तो 'हेट्ठा मज्झे उवरिं' 'लोगो अकिट्टमो खलु' और 'लोयस्स विक्खभो चउप्पयारो' ये तीन सूत्र-गाथाएँ अप्रमाणताको प्राप्त होती हैं। इस शंकाका परिहार (समाधान) करते हुए वीरसेन स्वामीने पुनः बतलाया है कि यहॉ 'लोगे' पदमें पच द्रव्योंके आधाररूप आकाशका ही ग्रहण है, अन्यका नहीं। क्योंकि 'लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोगे' (लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त केवली कितने क्षेत्रमे रहता है? सर्वलोकमें रहता है) ऐसा सूत्रवचन पाया जाता है। यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है तो यह कहना चाहिये कि लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त

हुआ केवली लोकके संख्यातवें भागमे रहता है। और शंकाकार जिनका अनुयायी है उन दूसरे आचार्योंके द्वारा प्ररूपित मृदंगाकार लोकके प्रमाणकी दृष्टिमे लोकपूरण समुद्घात-गत केवलीका लोकके संख्यातवे भागमे रहना असिद्ध भी नहीं है; क्योंकि गणना करनेपर मृदंगाकार लोकका प्रमाण घनलोकके संख्यातवे भाग ही उपलब्ध होता है।

इसके अनन्तर गणित द्वारा घनलोकके संख्यातवे भागको सिद्ध घोषित करके, वीरसेन स्वामीने इतना और वतलाया है कि 'इस पंच द्रव्योंके आधाररूप आकाशसे अतिरिक्त दूसरा सात राजु घनप्रमाण लोकसंज्ञक कोई क्षेत्र नहीं है, जिसमें प्रमाणलोक (उपमालोक) छह द्रव्योके समुदायरूप लोकसे भिन्न होवे। और न लोकाकाश तथा अलोकाकाश दोनोमे स्थित सातराजु घनमात्र आकाश प्रदेशोंकी प्रमाणरूपसे स्वीकृत 'घन-लोक' संज्ञा है। (ऐसी संज्ञा स्वीकार करनेपर लोकसंज्ञाके यादृच्छिकपनेका प्रसंग आता है और तब संपूर्ण आकाश, जगश्रेणी, जगप्रतर और घनलोक जसी संज्ञाओंके यादृच्छिक-पनेका प्रसंग उपस्थित होगा। (और इससे सारी व्यवस्था ही विगड जायगी) इसके सिवाय, प्रमाणलोक और षट्द्रव्योके समुदायरूप लोकको भिन्न माननेपर प्रतरगत केवलीके क्षेत्रका निरूपण करते हुए यह जो कहा गया है कि 'वह केवली लोकके असंख्यातवे भागसे न्यून सर्वलोकमे रहता है और लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्वलोकका प्रमाण उर्ध्व-लोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोक प्रमाण है'[1] वह नहीं वनता। और इसलिये दोनों लोकोकी एकता सिद्ध होती है। अत. प्रमाणलोक (उपमालोक) आकाश-प्रदेशोकी गणनाकी अपेक्षा छह द्रव्योंके समुदायरूप लोकके समान है, ऐसा स्वीकार करना चाहिये।)

इसके वाद यह शंका होनेपर कि 'किस प्रकार पिण्ड (घन) रूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण होता है? वीरसेन स्वामीने उत्तरमे वतलाया है कि 'लोक संपूर्ण आकाशके मध्यभागमे स्थित है' चौदह राजु आयामवाला है दोनों दिशाओंके अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाके मूल, अर्धभाग, त्रिचतुर्भाग और चरम भागमें क्रमसे सात, एक, पाँच और एक राजु विस्तारवाला है, तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, वृद्धि और हानिके द्वारा उसके दोनों प्रान्तभाग स्थित है, चौदह राजु लम्बी एकराजुके वर्गप्रमाण मुखवाली लोक-नाली उसके गर्भमे है, ऐसा यह पिण्डरूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण अर्थात् ७×७×७=३४३ राजु होता है। यदि लोकको ऐसा नहीं माना जाता है तो प्रतर-समुद्घातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ जो 'मुहतलसमासअद्धं' और 'मूल मज्झेण गुणं' नामकी दो गाथाएँ कही गई हैं वे निरर्थक हो जायेगी, क्योंकि उनमे कहा गया घनफल लोकको अन्य प्रकारसे मानने पर संभव नहीं है। साथ ही, यह भी वतलाया है कि 'इस (उपर्युक्त आकार वाले) लोकका शंकाकारके द्वारा प्रस्तुत की गई प्रथम गाथा ('हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासन-झल्लरीमुइंगणिभो') के साथ विरोध नहीं है, क्योंकि एक दिशामे लोक वेत्रासन और मृदंगके आकार दिखाई देता है, और ऐसा नही कि उसमें झल्लरीका आकार न हो; क्योंकि मध्यलोकमे स्वयभूरमण समुद्रसे परिक्षिप्त तथा चारों ओरसे असख्यात योजन विस्तार वाला और एक लाख योजन मोटाईवाला यह मध्यवर्ती देश चन्द्रमण्डलकी तरह झल्लरी के समान दिखाई देता है। और दृष्टान्त सर्वथा दार्ष्टान्तके समान होता भी नहीं, अन्यथा दोनोके ही अभावका प्रसग आजायगा। ऐसा भी नहीं कि (द्वितीय सूत्रगाथामे वतलाया हुआ) तालवृक्षके समान आकार इसमे असंभव हो, क्योंकि एक दिशासे देखनेपर

---

१ 'पदरगदो केवली केवडि खेत्ते लोगे असखेज्जदिभागूणे। उड्ढलोगेण दुवे उड्ढलोगा उड्ढलोगस्स तिभागेण देसूणेण सादिरेगा।'

तालवृक्षके समान आकार दिखाई देता है। और तीसरी गाथा ('लोयस्स विक्खंभो चउप्पयारो') के साथ भी विरोध नहीं है, क्योंकि यहाँपर भी पूर्व और पश्चिम इन दोनों दिशाओं में गाथोक्त चारों ही प्रकारके विष्कम्भ दिखाई देते हैं। सात राजुकी मोटाई करणानुयोग सूत्रके विरुद्ध नहीं है, क्योकि उक्त सूत्रमे उसकी यदि विधि नहीं है तो प्रतिषेध भी नहीं है —विधि और प्रतिषेध दोनोंका अभाव है। और इसलिये लोकको उपर्युक्त प्रकारका ही ग्रहण करना चाहिये।'

यह सब धवलाका वह कथन है जो शास्त्रीजीके प्रथम प्रमाणका मूल आधार है और जिसमे राजवार्तिकका कोई उल्लेख भी नहीं है। इसमे कहीं भी न तो यह निर्दिष्ट है और न इसपरसे फलित ही होता है कि वीरसेन स्वामी लोकके उत्तर-दक्षिणमे सर्वत्र सात राजु मोटाई वाली मान्यताके सस्थापक हैं—उनसे पहले दूसरा कोई भी आचार्य इस मान्यताको माननेवाला नहीं था अथवा नहीं हुआ है। प्रत्युत इसके, यह साफ जाना जाता है कि वीरसेनने कुछ लोगोकी गलतीका समाधानमात्र किया है—स्वय कोई नई स्थापना नहीं की। इसी तरह यह भी फलित नहीं होता कि वीरसेनके सामने 'मुहतलसमासअद्धं' और 'मूलं मज्झेण गुणं' नामकी दो गाथाओंके सिवाय दूसरा कोई भी प्रमाण उक्त मान्यताको स्पष्ट करनेके लिये नहीं था। क्योंकि प्रकरणको देखते हुए 'अण्णाइरियपरूविद-मुदिंगायारलोगस्स' पदमे प्रयुक्त हुए 'अण्णाइरिय' (अन्याचार्य) शब्दसे उन दूसरे आचार्योंका ही ग्रहण किया जा सकता है जिनके मतका शकाकार अनुयायी था अथवा जिनके उपदेशको पाकर शकाकार उक्त शका करनेके लिये प्रस्तुत हुआ था, न कि उन आचार्यों का जिनके अनुयायी स्वयं वीरसेन थे और जिनके अनुसार कथन करनेकी अपनी प्रवृत्तिका वीरसेनने जगह जगह उल्लेख किया है। इस क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वारके मगलाचरणमे भी वे 'खेत्तसुत्तं जहोवएसं पयासेमो' इस वाक्यके द्वारा यथोपदेश (पूर्वाचार्यों के उपदेशानुसार) क्षेत्रसूत्रको प्रकाशित करनेकी प्रतिज्ञा कर रहे हैं। दूसरे, जिन दो गाथाओं को वीरसेनने उपस्थित किया है उनसे जब उक्त मान्यता फलित एवं स्पष्ट होती है तब वीरसेनको उक्त मान्यताका सस्थापक कैसे कहा जा सकता है?—वह तो उक्त गाथाओंसे भी पहलेकी स्पष्ट जानी जाती हैं। और इससे तिलोयपण्णत्तीको वीरसेनसे बादकी बनी हुई कहनेमे जो प्रधान कारण था वह स्थिर नहीं रहता। तीसरे, वीरसेनने 'मुहतल-समासअद्धं' आदि उक्त दोनो गाथाएँ शकाकारको लक्ष्य करके ही प्रस्तुत की हैं और वे संभवतः उसी ग्रन्थ अथवा शकाकारके द्वारा मान्य ग्रन्थकी जान पड़ती हैं जिसपरसे तीन सूत्रगाथाएं शंकाकारने उपस्थित की थीं, इसीसे वीरसेनने उन्हें लोकका दूसरा आकार मानने पर निरर्थक बतलाया है। और इस तरह शकाकारके द्वारा मान्य ग्रन्थके वाक्यों परसे ही उसे निरुत्तर कर दिया है। और अन्तमे जब उसने 'करणानुयोगसूत्र' के विरोध की कुछ बात उठाई है अर्थात् ऐसा संकेत किया है कि उस ग्रन्थमे सात राजुकी मोटाईकी कोई स्पष्ट विधि नहीं है तो वीरसेनने साफ उत्तर दे दिया है कि वहां उसकी विधि नहीं तो निषेध भी नहीं है—विधि और निषेध दोनोंके अभावसे विरोधके लिये कोई अवकाश नहीं रहता। इस विवक्षित 'करणानुयोगसूत्र'का अर्थ करणानुयोग-विषयके समस्त ग्रंथ तथा प्रकरण समझ लेना युक्तियुक्त नहीं है। वह 'लोकानुयोग'की तरह, जिसका उल्लेख सर्वार्थसिद्धि और लोकविभागमे भी पाया जाता है[1], एक जुदा ही ग्रंथ होना चाहिये। ऐसी स्थितिमे वीरसेनके सामने लोकके स्वरूप सम्बन्धमें अपने मान्य ग्रंथोंके अनेक प्रमाण मौजूद होते हुए भी उन्हें उपस्थित (पेश) करनेकी जरूरत नहीं थी और न किसीके लिये यह लाजिमी

---

१ "इतरो विशेषो लोकानुयोगत. वेदितव्य." (३-२) —सर्वार्थसिद्धि
"विन्दुमात्रमिदं शेषं ग्राह्यं लोकानुयोगत:" (७-६८) —लोकविभाग

है कि जितने प्रमाण उसके पास हो वह उन सबको ही उपस्थित करे—वह जिन्हें प्रसंगानुसार उपयुक्त और जरूरी समझता है उन्हींको उपस्थित करता है और एक ही आशयके यदि अनेक प्रमाण हों तो उनमेंसे चाहे जिसको अथवा अधिक प्राचीनको उपस्थित कर देना काफी होता है। उदाहरणके लिये 'मुहतलसमासअद्धं' नामकी गाथासे मिलती जुलती और इसी आशयकी एक गाथा तिलोयपण्णत्तीमें निम्न प्रकार पाई जाती है:—

मुहभूमिसमासद्धिय गुणिदं तुंगेन तह य वेधेण।
घणगणिदं णादव्वं वेत्तासण-सण्णिए खेत्ते ॥१६५॥

इस गाथाको उपस्थित करके यदि वीरसेनने 'मुहतलसमासअद्ध' नामकी उक्त गाथाको उपस्थित किया जो शंकाकारके मान्य सूत्रग्रंथकी थी तो उन्होंने वह प्रसंगानुसार उचित ही किया, और उसपरसे यह नहीं कहा जा सकता कि वीरसेनके सामने तिलोयपण्णत्तिकी यह गाथा नहीं थी, होती तो वे उसे जरूर पेश करते। क्योंकि शंकाकार मूल सूत्रोंके व्याख्यानादि-रूपमें स्वतंत्ररूपसे प्रस्तुत किये गए तिलोयपण्णत्ती जैसे ग्रंथोंको माननेवाला मालूम नहीं होता—माननेवाला होता तो वैसी शंका ही न करता—, वह तो कुछ प्राचीन मूलसूत्रोंका पक्षपाती जान पड़ता है और उन्हींपरसे सब कुछ फलित करना चाहता है। उसे वीरसेनने मूलसूत्रोंकी कुछ दृष्टि बतलाई है और उसके द्वारा पेश की हुई सूत्रगाथाओंकी अपने कथनके साथ संगति बिठलाई है। और इस लिये अपने द्वारा सविशेषरूपसे मान्य ग्रंथोंके प्रमाणोंको उपस्थित करनेका वहां प्रसंग ही नहीं था। उनके आधारपर तो वे अपना सारा विवेचन अथवा व्याख्यान लिख ही रहे हैं।

अब मैं तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न दो ऐसे प्राचीन प्रमाणोंको भी पेश कर देना चाहता हूँ जिनसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि वीरसेनकी धवला कृतिसे पूर्व अथवा (शक स० ७३८ से पहले) छह द्रव्योंका आधारभूत लोक, जो अधः ऊर्ध्व तथा मध्यभागमें क्रमशः वेत्रासन, मृदंग तथा झल्लरीके सदृश आकृतिको लिये हुए है अथवा डेढ मृदंग जैसे आकारवाला है उसे चौकोर (चतुरस्रक) माना है। उसके मूल, मध्य, ब्रह्मान्त और लोकान्तमें जो क्रमशः सात, एक, पाँच, तथा एक राजुका विस्तार बतलाया गया है वह पूर्व और पश्चिम दिशाकी अपेक्षासे है, दक्षिण तथा उत्तर दिशाकी अपेक्षासे सर्वत्र सात राजुका प्रमाण माना गया है और इसी लोकको सात राजुके घनप्रमाण निर्दिष्ट किया है:—

(अ) कालः पञ्चास्तिकायाश्च स प्रपञ्चा इहाऽखिलाः।
लोक्यंते येन तेनाऽयं लोक इत्यभिलप्यते ॥४-५॥

वेत्रासन-मृदंगोरु-झल्लरी-सदृशाऽऽकृतिः।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च यथायोगमिति त्रिधा ॥४-६॥

मुरजार्धमधोभागे तस्योर्ध्वे मुरजो यथा।
आकारस्तस्य लोकस्य किन्त्वेष चतुरस्रकः ॥४-७॥

ये हरिवंशपुराणके वाक्य हैं, जो शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में बनकर समाप्त हुआ है। इसमें उक्त आकृतिवाले छह द्रव्योंके आधारभूत लोकको चौकोर (चतुरस्रक) बतलाया है— गोल नहीं, जिसे लम्बा चौकोर समझना चाहिये।

(आ) सत्तेक्कुपंचइक्का मूले मज्झे तहेव बंभंते।
लोयंते रज्जूओ पुव्वावरदो य वित्थारो ॥११८॥

दक्खिण-उत्तरदो पुण सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ ।
उड्ढो चउदस रज्जू सत्त वि रज्जू घणो लोओ ॥११६॥

ये स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथाएं हैं, जो एक बहुत प्राचीन ग्रंथ है और वीरसेनसे कई शताब्दी पहलेका बना हुआ है। इनमे लोकके पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिणके राजुओंका उक्त प्रमाण बहुत ही स्पष्ट शब्दोमें दिया हुआ है और लोकको चौदह राजु ऊंचा तथा सात राजुके घनरूप (३४३ राजु) भी बतलाया है।

इन प्रमाणोके सिवाय, जबूद्वीपप्रज्ञप्तिमे दो गाथाएँ निम्न प्रकारसे पाई जाती हैं:—

पच्छिम-पुव्वदिसाए विक्खंभो होइ तस्स लोगस्स ।
सत्तेग-पंच-एया मूलादो होंति रज्जूणि ॥ ४-१६ ॥
दक्खिण-उत्तरदो पुण विक्खंभो होइ सत्त रज्जूणि ।
चदुसु वि दिसासु भागे चउदसरज्जूणि उत्तुंगो ॥ ४-१७ ॥

इनमे लोकको पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण चौड़ाई-मोटाई तथा ऊचाईका परिमाण स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथाओंके अनुरूप ही दिया है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति एक प्राचीन ग्रन्थ है और उन पद्मनन्दी आचार्यकी कृति है जो बलनन्दिके शिष्य तथा वीरनन्दीके प्रशिष्य थे और आगमोपदेशक महासत्व श्रीविजय भी जिनके गुरु थे। श्रीविजयगुरुसे सुपरिशुद्ध आगमको सुनकर तथा जिनवचन-विनिर्गत अमृतभूत अर्थपदको धारण करके उन्हींके माहात्म्य अथवा प्रसादसे उन्होने यह ग्रंथ उन श्रीनन्दी मुनिके निमित्त रचा है जो माघनन्दी मुनिके शिष्य अथवा प्रशिष्य (सकलचन्द्र[1] शिष्यके शिष्य) थे, ऐसा ग्रन्थकी प्रशस्तिपरसे जाना जाता है। बहुत सभव है कि ये श्रीविजय वे ही हों जिनका दूसरा नाम 'अपराजितसूरि' था। जिन्होने श्रीनन्दी गणीकी प्रेरणाको पाकर भगवतीआराधनापर 'विजयोदया' नामकी टीका लिखी है और जो बल्देवसूरिके शिष्य तथा चन्द्रनन्दीके प्रशिष्य थे। और यह भी संभव है कि उनके प्रगुरु चन्द्रनन्दी वे ही हों जिनकी एक शिष्य-परम्पराका उल्लेख श्रीपुरुषके दानपत्र अथवा 'नागमंगल' ताम्रपत्रमे पाया जाता है, जो श्रीपुरके जिनालयके लिये शक सं० ६६८ (वि० सं० ८३३) मे लिखा गया है और जिसमे चन्द्रनन्दीके एक शिष्य कुमारनन्दी, कुमारनन्दीके शिष्य कीर्तिनन्दी और कीर्तिनन्दीके शिष्य विमलचन्द्रका उल्लेख है। और इससे चन्द्रनन्दीका समय शक संवत् ६३८ से कुछ पहलेका ही जान पड़ता है। यदि यह कल्पना ठीक है तो श्रीविजयका समय शक संवत् ६५८ के लगभग प्रारंभ होता है और तब जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिका समय शक स० ६७० अर्थात् वि० सं० ८०५ के आस-पासका होना चाहिये। ऐसी स्थितिमें जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिकी रचना भी धवलासे पहलेकी—कोई ६८ वर्ष पूर्वकी—ठहरती है।

ऐसी हालतमे शास्त्रीजीका यह लिखना कि "वीरसेनस्वामीके सामने राजवार्तिक आदिमे बतलाए गये आकारके विरुद्ध लोकके आकारको सिद्ध करनेके लिये केवल उपर्युक्त दो गाथाएँ ही थीं। इन्हींके आधारपर वे लोकके आकारको भिन्न प्रकारसे सिद्ध कर सके तथा यह भी कहनेमे समर्थ हुए इत्यादि" न्यायसगत मालूम नहीं होता। और न इस आधारपर तिलोयपण्णत्तिको वीरसेनसे बादकी बनी हुई अथवा उनके मतका अनुसरण करने वाली बतलाना ही न्यायसंगत अथवा युक्ति-युक्त कहा जा सकता है। वीरसेनके सामने तो उस विषयके न मालूम कितने ग्रंथ थे जिनके आधारपर उन्होंने अपने

१ सकलचन्द-शिष्यके नामोल्लेखवाली गाथा आमेरकी वि० सं० १५१८ की प्राचीन प्रतिमें नहीं है बादकी कुछ प्रतियोंमें है, इसीसे श्रीनन्दीके विषयमे माघनन्दीके प्रशिष्य होनेकी कल्पना की गई है।

सिद्ध है कि धवलाकारके सामने तिलोयपण्णत्ति थी, जिसके विषयमें दूसरी तिलोयपण्णत्ति होनेकी तो कल्पना की जाती है परन्तु यह नहीं कहा जाता और न कहा जा सकता है कि उसमे मंगलादिक छह अधिकारोंका वह सब वर्णन ही था जो वर्तमान तिलोयपण्णत्तिमें पाया जाता है, तब धवलाकारके द्वारा तिलोयपण्णत्तीके अनुसरणकी बात ही अधिक संभव और युक्तियुक्त जान पड़ती है।

ऐसी स्थितिमें शास्त्रीजीका यह दूसरा प्रमाण वस्तुतः कोई प्रमाण ही नहीं है और न स्वतंत्र युक्तिके रूपमे उसका कोई मूल्य जान पड़ता है।

(३) तीसरा प्रमाण अथवा युक्तिवाद प्रस्तुत करते हुए शास्त्रीजीने जो कुछ कहा है उसे पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है कि 'तिलोयपण्णत्तिम धवलापरसे उन दो संस्कृत श्लोकोंको कुछ परिवर्तनके साथ अपना लिया गया है जिन्हें धवलामे कहींसे उद्धृत किया गया था और जिनमेसे एक श्लोक अकलंकदेवके लघीयस्त्रयका 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' नाम का है।' परन्तु दोनो ग्रंथोको जब खोलकर देखते है तो मालूम होता है कि तिलोयपण्णत्तिकारने धवलोद्धृत उन दोनों संस्कृत श्लोकोंको अपने ग्रन्थका अंग नहीं बनाया—वहाँ प्रकरणके साथ कोई संस्कृत श्लोक हैं ही नहीं, दो गाथाएँ है जो मौलिक रूपमे स्थित हैं और प्रकरणके साथ संगत है। इसी तरह लघीयस्त्रयवाला पद्य धवलामे उसी रूपसे उद्धृत नहीं जिस रूपमे कि वह लघीयस्त्रयमे पाया जाता है—उसका प्रथम चरण 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादे.' के स्थान पर 'ज्ञान प्रमाणमित्याहुः' के रूपमे उपलब्ध है। और दूसरे चरणमे 'इष्यते' की जगह 'उच्यते' क्रिया पद है। ऐसी हालतमे शास्त्रीजीका यह कहना कि "ज्ञान प्रमाणमात्मादेः' इत्यादि श्लोक भट्टाकलंकदेवकी मौलिक कृति है, तिलोयपण्णत्तिकारने इसे भी नहीं छोड़ा" कुछ संगत मालूम नहीं होता। अस्तु, यहाँ दोनो ग्रन्थोके दोनो प्रकृत पद्योंको उद्धृत किया जाता है, जिससे पाठक उनके विषयके विचारको भले प्रकार हृदयङ्गम कर सकें:—

जो ण पमाणणयेहिं णिक्खेवेणं णिक्खदे अत्थं।
तस्साऽजुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं च (व) पडिहादि ॥ ८२ ॥
णाणं होदि पमाणं णओ वि णादुस्स हिदयभावत्थो।
णिक्खेवो वि उवाओ जुत्तीए अत्थपडिगहणं ॥ ८३ ॥

—तिलोयपण्णत्ती

प्रमाण-नय-निक्षेपैर्योऽर्थो नाऽभिसमीक्ष्यते।
युक्तं चाऽयुक्तवद् भाति तस्याऽयुक्तं च युक्तवत् ॥ १० ॥
ज्ञानं प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास उच्यते।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः ॥ ११ ॥

—धवला १, १, पृ० १६, १७,

तिलोयपण्णत्तीकी पहली गाथामे यह बतलाया है कि 'जो प्रमाण, नय और निक्षेपके द्वारा अर्थका निरीक्षण नहीं करता है उसको अयुक्त (पदार्थ) युक्तकी तरह और युक्त (पदार्थ) अयुक्तकी तरह प्रतिभासित होता है।' और दूसरी गाथामे प्रमाण, नय और निक्षेपका उद्देशानुसार क्रमशः लक्षण दिया है और अन्तमे बतलाया है कि यह सब युक्तिसे अर्थका परिग्रहण है। अतः ये दोनो गाथाएं परस्पर संगत हैं। और इन्हें ग्रन्थसे अलग कर देने पर अगली 'इय णायं अवहारिय आइरियपरंपरागयं मणसा' (इस प्रकार

व्याख्यानादिकी उसी तरह सृष्टि की है जिस तरह कि अकलंक और विद्यानन्दादिने अपने राजवार्तिक, श्लोकवार्तिकादि ग्रन्थोमे अनेक विषयोंका वर्णन और विवेचन बहुतसे ग्रन्थोके नामल्लेखके बिना भी किया है।

(२) द्वितीय प्रमाणको उपस्थित करते हुए शास्त्रीजीने यह बतलाया है कि 'तिलोयपण्णत्तिके प्रथम अधिकारकी ७ वीं गाथासे लेकर ८७ वीं गाथा तक ८१ गाथाओंमे मंगलादि छह अधिकारोंका जो वर्णन है वह पूरा का पूरा वर्णन संतपरूवणाकी धवला टीकामें आए हुए वर्णनसे मिलता जुलता है।' और साथ ही इस सादृश्य परसे यह भी फलित करके बतलाया कि "एक ग्रथ लिखते समय दूसरा ग्रन्थ अवश्य सामने रहा है।" परन्तु धवलाकारके सामने तिलोयपण्णत्ति नहीं रही, धवलामे उन छह अधिकारोका वर्णन करते हुए जो गाथाएँ या श्लोक उद्धृत किये गये हैं वे सब अन्यत्रसे लिये गये हैं तिलोयपण्णत्तिसे नहीं, इतना हो नहीं बल्कि धवलामे जो गाथाएं या श्लोक अन्यत्रसे उद्धृत हैं उन्हें भी तिलोयपण्णत्तिके मूलमे शामिल कर लिया है' इस दावेको सिद्ध करनेके लिये कोई भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया। जान पडता है पहले भ्रांत प्रमाणपरसे बनी हुई गलत धारणाके आधारपर ही यह सब कुछ बिना हेतुके ही कह दिया गया है॥ अन्यथा शास्त्री जी कमसे कम एक प्रमाण तो ऐसा उपस्थित करते जिससे यह जाना जाता कि धवलाका अमुक उद्धरण अमुक ग्रन्थके नामोल्लेख पूर्वक अन्यत्रसे उद्धृत किया गया है और उसे तिलोयपण्णत्तिका अंग बना लिया गया है। ऐसे किसी प्रमाणके अभावमे प्रस्तुत प्रमाण परसे अभीष्ट की कोई सिद्धि नहीं हो सकती और इसलिये वह निरर्थक ठहरता है। क्योकि वाक्योकी शाब्दिक या आर्थिक समानतापरसे तो यह भी कहा जा सकता है कि धवलाकारके सामने तिलोयपण्णत्ति रही है; बल्कि ऐसा कहना, तिलोयपण्णत्तिके व्यवस्थित मौलिक कथन और धवलाकारके कथनकी व्याख्या शैलीको देखते हुए अधिक उपयुक्त जान पडता है।

रही यह बात कि तिलोयपण्णत्तिकी ८५ वीं गाथामे विविध ग्रन्थ-युक्तियोंके द्वारा मंगलादिक छह अधिकारोंके व्याख्यानका उल्लेख है[1] तो उससे यह कहाँ फलित होता है—कि उन विविध ग्रन्थोंमे धवला भी शामिल है अथवा धवलापरसे ही इन अधिकारोंका संग्रह किया गया है?—खासकर ऐसी हालतमे जबकि धवलाकार स्वयं 'मंगलणिमित्तहेऊ' नामकी एक भिन्न गाथाको कहींसे उद्धृत करके यह बतला रहे हैं कि 'इस गाथामे मंगलादिक छह बातोंका व्याख्यान करनेके पश्चात् आचार्यके लिये शास्त्रका (मूलग्रन्थका) व्याख्यान करनेकी जो बात कही गई है वह आचार्य परम्परासे चला आया न्याय है, उसे हृदयमे धारण करके और पूर्वाचार्योंके आचार (व्यवहार) का अनुसरण करना रत्नत्रयका हेतु है ऐसा समझकर, पुष्पदन्त आचार्य मंगलादिक छह अधिकारोका सकारण प्ररूपण करनेके लिये मंगलसूत्र कहते हैं[2]। क्योकि इससे स्पष्ट है कि मंगलादिक छह अधिकारोंके कथनको परिपाटी बहुत प्राचीन है—उनके विधानादिका श्रेय धवलाको प्राप्त नहीं है। और इसलिये तिलोयपण्णत्तिकारने यदि इस विषयमे पुरातन आचार्योंकी कृतियोंका अनुसरण किया है तो वह न्याय ही है परन्तु उतने मात्रमे उसे धवलाका अनुसरण नहीं कहा जासकता धवलाका अनुसरण कहनेके लिये पहले यह सिद्ध करना होगा कि धवला तिलोयपण्णत्तिसे पूर्वकी कृति है, और यह सिद्ध नहीं है। प्रत्युत इसके, यह स्वयं धवलाके उल्लेखोंसे ही

---

१ "मंगलपहुदिछक्कं वक्खाणिय विविहगंथजुत्तीहिं।"

२ 'इदि णायमाइरिय-परंपरागयं मणेणावहारिय पुव्वाइरियायाराणुसरणं ति-रयण-हेउ त्ति पुप्फदंताइरियो मंगलादीणं छण्णं सकारणाणं परूवणट्ठं सुत्तमाह।"

आचार्य परम्परासे चले आये हुए न्यायको हृदयमे धारण करके) नामकी गाथा[1] असगत तथा खटकनेवाली हो जाती है। इस लिये ये तीनों ही गाथाएं तिलोयपण्णत्तीकी अंगभूत हैं।

धवला (संतपरूवणा) में उक्त दोनों श्लोकोंको देते हुए उन्हें 'उक्तं च' नहीं लिखा और न किसी खास ग्रन्थके वाक्य ही प्रकट किया है। वे इस प्रश्नके उत्तरमे दिये गए हैं कि "एत्थ किमट्ठं णयपरूवणमिदि" ?—यहाँ नयका प्ररूपण किस लिये किया गया है ? और इस लिये वे धवलाकार-द्वारा निर्मित अथवा उद्घृत भी हो सकते हैं। उद्घृत होनेकी हालतमें यह प्रश्न पैदा होता है कि वे एक स्थानसे उद्घृत किये गये हैं या दो स्थानोसे ? यदि एक स्थान से उद्घृत किये गए हैं तो वे लघीयस्त्रयसे उद्घृत नहीं किये गये, यह सुनिश्चित है, क्योंकि लघीयस्त्रयमे पहला श्लोक नहीं है। और यदि दो स्थानोसे उद्घृत किये गए हैं तो यह बात कुछ बनती हुई मालूम नहीं होती; क्योंकि दूसरा श्लोक अपने पूर्वमे ऐसे श्लोककी अपेक्षा रखता है जिसमें उद्देशादि किसी भी रूपमे प्रमाण, नय और निक्षेप-का उल्लेख हो—लघीयस्त्रयमे भी 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' श्लोकके पूर्वमे एक ऐसा श्लोक पाया जाता है जिसमे प्रमाण, नय और निक्षेपका उल्लेख है और उनके आगमानुसार कथनकी प्रतिज्ञा की गई है ('प्रमाण-नय-निक्षेपानभिधास्ये यथागमं')—और उसके लिये पहला श्लोक सगत जान पड़ता है। अन्यथा, उसके विषयमे यह बतलाना होगा कि वह दूसरे कौनसे ग्रन्थका स्वतंत्र वाक्य है। दोनो गाथाओ और श्लोकोकी तुलना करनेसे तो ऐसा मालूम होता है कि दोनों श्लोक उक्त गाथाओ परसे अनुवादरूपमे निर्मित हुए हैं। दूसरी गाथामे प्रमाण, नय और निक्षेपका उसी क्रमसे लक्षण-निर्देश किया गया है जिस क्रमसे उनका उल्लेख प्रथम गाथामे हुआ है। परन्तु अनुवादके छन्द (श्लोक) मे शायद वह बात नहीं बन सकी, इसोसे उसमे प्रमाणके बाद निक्षेपका और फिर नयका लक्षण दिया गया है। इससे तिलोयपण्णत्तीकी उक्त गाथाओंकी मौलिकताका पता चलता है और ऐसा जान पड़ता है कि उन्हीं परसे उक्त श्लोक अनुवादरूपमे निर्मित हुए हैं—भले ही यह अनुवाद स्वयं धवलाकारके द्वारा निर्मित हुआ हो या उनसे पहले किसी दूसरेके द्वारा। यदि धवलाकारको प्रथम श्लोक कहींसे स्वतंत्र रूपमे उपलब्ध होता तो वे प्रश्नके उत्तरमे उसीको उद्घृत कर देना काफी समझते—दूसरे लघीयस्त्रय—जैसे ग्रथसे दूसरे श्लोकको उद्घृत करके साथमे जोड़नेकी जरूरत नहीं थी; क्योकि प्रश्नका उत्तर उस एक ही श्लोकसे हो जाता है। दूसरे श्लोकका साथमे होना इस बातको सूचित करता है कि एक साथ पाई जाने वाली दोनो गाथाओंके अनुवादरूपमे ये श्लोक प्रस्तुत किये गए हैं—चाहे वे किसीके भी द्वारा प्रस्तुत किये गये हो।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि धवलाकारने तिलोयपण्णत्तीकी उक्त दोनों गाथाओंको ही उद्घृत क्यो न कर दिया, उन्हें श्लोकोमे अनुवादित करके या उनके अनुवाद-को रखनेको क्या जरूरत थी ? इसके उत्तरमे मैं सिफ इतना ही कह देना चाहता हूँ कि यह सब धवलाकार वीरसेनको रुचिको बात है, वे अनेक प्राकृत वाक्योंको संस्कृतमे और संस्कृत वाक्योंको प्राकृतमें अनुवादित करके रखते हुए भी देखे जाते है। इसी तरह अन्य ग्रन्थोंके गद्यको पद्यमे और पद्यको गद्यमे परिवर्तित करके अपनी टीकाका अग बनाते हुए भी पाये जाते है। चुनाँचे तिलोयपण्णत्तीको भी अनेक गाथाओको उन्होंने संस्कृत गद्यमे अनुवादित करके रक्खा है, जैसे कि मंगलको निरुक्तिपरक गाथाएं, जिन्हें शास्त्रीजीने अपने द्वितीय प्रमाणमे, समानताकी तुलना करते हुए, उद्घृत किया है। और इसलिये यदि ये उनके द्वारा

१ इस गाथाका नम्बर ८४ है। शास्त्रीजीने जो इसका न० ८८ सूचित किया है वह किसी गलतीका परिणाम जान पड़ता है।

ही अनुवादित होकर रक्खे गये हैं तो इसमे आपत्तिकी कोई बात नही है। इसे उनकी अपनी शैली और पसन्द आदिकी बात समझना चाहिये।

अब देखना यह है कि शास्त्रीजीने 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' इत्यादि श्लोकको जो अकलंकदेवकी 'मौलिक कृति' बतलाया है उसके लिये उनके पास क्या आधार है? कोई भी आधार उन्होंने व्यक्त नहीं किया; तब क्या अकलंकके ग्रंथमे पाया जाना ही अकलंककी मौलिक कृति होनेका प्रमाण है? यदि ऐसा है तो राजवार्तिकमें पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धिके जिन वाक्योंको वार्तिकादिके रूपमे विना किसी सूचनाके अपनाया गया है अथवा न्यायविनिश्चयमे समन्तभद्रके 'सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः' जैसे वाक्योंको अपनाया गया है उन सबको भी अकलंकदेवकी 'मौलिक कृति' कहना होगा। यदि नहीं, तो फिर उक्त श्लोकको अकलंकदेवकी मौलिक कृति बतलाना निर्हेतुक ठहरेगा। प्रत्युत इसके, अकलंकदेव चूंकि यतिवृषभके बाद हुए हैं अतः यतिवृषभकी तिलोयपण्णत्तीका अनुसरण उनके लिये न्यायप्राप्त है और उसका समावेश उनके द्वारा पूर्वपद्यमे प्रयुक्त 'यथागम' पदसे हो जाता है, क्योंकि तिलोयपण्णत्ती भी एक आगम ग्रन्थ है जैसा कि गाथा नं० ८५, ८६, ८७ मे प्रयुक्त हुए उसके विशेषणोंसे जाना जाता है। धवलाकारने भी जगह जगह उसे 'सूत्र' लिखा है और प्रमाणरूपमें उपस्थित किया है। एक जगह वे किसी व्याख्यानको व्याख्यानाभास बतलाते हुए तिलोयपण्णत्तिसूत्रके कथनको भी प्रमाणमे पेश करते हैं और फिर लिखते हैं कि सूत्रके विरुद्ध व्याख्यान नहीं होता है—जो सूत्रविरुद्ध हो उसे व्याख्यानाभास समझना चाहिये—नहीं तो अतिप्रसग दोष आयेगा[1]।

इस तरह यह तीसरा प्रमाण असिद्ध ठहरता है। तिलोयपण्णत्तिकारने चूंकि धवलाके किसी भी पद्यको नहीं अपनाया अतः पद्योंको अपनानेके आधारपर तिलोयपण्णत्तीको धवलाके बादकी रचना बतलाना युक्तियुक्त नहीं है।

(४) चौथे प्रमाणरूपमे शास्त्रीजीका इतना ही कहना है कि 'दुगुणदुगुणो दुवग्गो णिरतरो तिरियलोगो' नामका जो वाक्य धवलाकारने द्रव्यप्रमाणानुयोगद्वार (पृष्ठ ३६) मे तिलोयपण्णत्तिके नामसे उद्धृत किया है वह वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमें पर्याप्त खोज करने पर भी नहीं मिला, इसलिये यह तिलोयपण्णत्ती उस तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न है जो धवलाकारके सामने थी। परन्तु यह मालूम नहीं हो सका कि शास्त्रीजीकी पर्याप्त खोजका क्या रूप रहा है। क्या उन्होंने भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंपर पाई जानेवाली तिलोयपण्णत्तीकी समस्त प्रतियाँ पूर्ण रूपसे देख डाली हैं? यदि नहीं देखी हैं, और जहाँ तक मैं जानता हूँ समस्त प्रतियाँ नहीं देखी हैं, तब वे अपनी खोजको 'पर्याप्त खोज' कैसे कहते हैं? वह तो बहुत कुछ अपर्याप्त है। क्या दो एक प्रतियोंमें उक्त वाक्यके न मिलनेसे ही यह नतीजा निकाला जा सकता है कि वह वाक्य किसी भी प्रतिमें नहीं है? नहीं निकाला जा सकता। इसका एक ताजा उदाहरण गोम्मटसार-कर्मकाण्ड (प्रथम अधिकार) के वे प्राकृत गद्यसूत्र हैं जो गोम्मटसारकी पचासों प्रतियोंमे नहीं पाये जाते; परन्तु मूडबिद्रीकी एक प्राचीन ताडपत्रीय कन्नड प्रतिमे उपलब्ध हो रहे हैं और जिनका उल्लेख मैंने अपने गोम्मटसार-विषयक निबन्धमें किया है। इसके सिवाय, तिलोयपण्णत्ति-जैसे बड़े ग्रन्थमे लेखकोंके प्रमादसे दो चार गाथाओंका छूट जाना कोई बड़ी बात नहीं है। पुरातन-जैनवाक्य-सूचीके अवसरपर मेरे सामने तिलोयपण्णत्तीकी चार प्रतियाँ रहीं हैं—

[1] "तं वक्खाणाभासमिदि कुदो णव्वदे ? जोइसिय-भागहारसुत्तादो चंदाइच्च बिंबपमाणपरूवय-तिलोयपण्णत्तिसुत्तादो च। ण च सुत्तविरुद्ध वक्खाणं होइ, अइपसंगादो।"

—धवला १, २, ४, पृ० ३६

एक बनारसके स्याद्वादमहाविद्यालयकी, दूसरी देहलीके नया मन्दिरकी, तीसरी आगराके मोतीकटरा मन्दिरकी और चौथी सहारनपुरके ला० प्रद्युम्नकुमारजीके मन्दिरकी। इन प्रतियोंमे, जिनमे बनारसकी प्रति बहुत ही अशुद्ध एवं त्रुटिपूर्ण जान पड़ी, कितनी ही गाथाएं ऐसी देखनेको मिलीं जो एक प्रतिमें है तो दूसरीमे नहीं हैं, इसीसे जो गाथा किसी एक प्रतिमे ही बढ़ी हुई मिली उसका सूचीमे उस प्रतिके साथ सूचन किया गया है। ऐसी भी गाथाएं देखनेमें आईं जिनमे किसीका पूर्वार्ध एक प्रतिमे है तो उत्तरार्ध नहीं, और उत्तरार्ध है तो पूर्वार्ध नहीं। और ऐसा तो बहुधा देखनेमे आया कि कितनी ही गाथाओंको विना नम्बर डाले रनिंगरूपमे लिख दिया है, जिसमे वे सामान्यावलोकनके अवसरपर ग्रंथका गद्यभाग जान पड़ती हैं। किसी किसी स्थलपर गाथाओंके छूटनेको साफ सूचना भी की गई है; जैसे कि चौथे महाधिकारकी 'णवणउदिसहस्साणि' इस गाथा नं० २२१३ के अनन्तर आगरा और सहारनपुरकी प्रतियोमें दस गाथाओंके छूटनेकी सूचना की गई है और वह कथनक्रमको देखते हुए ठीक जान पड़ती है—दूसरी प्रतियोंपरसे उनकी पूर्ति नहीं हो सकी। क्या आश्चर्य है जो ऐसी छूटी अथवा त्रुटित हुई गाथाओंमेका ही उक्त वाक्य हो। ग्रन्थ-प्रतियोंका ऐसी स्थितिमे दो-चार प्रतियोको देखकर ही अपनी खोजको पर्याप्त खोज बतलाना और उसके आधारपर उक्त नतीजा निकाल बैठना किसो तरह भी न्यायसगत नहीं कहा जा सकता। और इसलिये शास्त्रीजीका यह चतुर्थ प्रमाण भी उनके इष्टको सिद्ध करनेके लिये समर्थ नहीं है।

(५) अब रहा शास्त्रीजीका अन्तिम प्रमाण, जो प्रथम प्रमाणकी तरह उनकी गलत धारणाका मुख्य आधार बना हुआ है। इसमे जिस गद्यांशकी ओर संकेत किया गया है और जिसे कुछ अशुद्ध भी बतलाया गया है वह क्या स्वयं तिलोयपण्णत्तिकारके द्वारा धवलापरसे 'अम्हेहि' पदके स्थानपर 'एसा परूवणा' पाठका परिवर्तन करके उद्धृत किया गया है अथवा किसी तरहपर तिलोयपण्णत्तीमे प्रक्षिप्त हुआ है? इसपर शास्त्रीजीने गम्भीरताके साथ विचार करना शायद आवश्यक नहीं समझा और इसीसे कोई विचार प्रस्तुत नहीं किया, जब कि इस विषयपर खास तौरपर विचार करनेकी जरूरत थी और तभी कोई निर्णय देना था—वे वैसे ही उस गद्यांशको तिलोयपण्णत्तीका मूल अंग मान बैठे हैं, और इसीसे गद्यांशमे उल्लिखित तिलोयपण्णत्तीको वर्तमान तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न दूसरी तिलोयपण्णत्ती कहनेके लिये प्रस्तुत हो गए हैं। इतना ही नहीं, बल्कि तिलोयपण्णत्तीमें जो यत्र तत्र दूसरे गद्यांश पाये जाते हैं उनका अधिकाश भाग भी धवलापरसे उद्धृत है, ऐसा सुझानेका संकेत भी कर रहे हैं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। जान पड़ता है ऐसा कहते और सुझाते हुए शास्त्रीजीको यह ध्यान नहीं आया कि जिन आचार्य जिनसेनको वे वर्तमान तिलोयपण्णत्तीका कर्ता बतलाते हैं वे क्या उनकी दृष्टिमे इतने असावधान अथवा अयोग्य थे कि जो 'अम्हेहि' पदके स्थानपर 'एसा परूवणा' पाठका परिवर्तन करके रखते और ऐसा करनेमे उन साधारण मोटी भूलो एवं त्रुटियोंको भी न समझ पाते जिन्हें शास्त्री जी बतला रहे हैं? और ऐसा करके जिनसेनको अपने गुरु वीरसेनकी कृतिका लोप करने की भी क्या जरूरत थी? वे तो बराबर अपने गुरुका कीर्तन और उनकी कृतिके साथ उनका नामोल्लेख करते हुए देखे जाते हैं। चुनाँचे वीरसेन जब जयधवलाको अधूरा छोड गये और उसके उत्तरार्धको जिनसेनने पूरा किया तो वे प्रशस्तिमे स्पष्ट शब्दोंद्वारा यह सूचित करते हैं कि 'गुरुने पूर्वार्धमे जो भूरि वक्तव्य प्रकट किया था—आगे कथनके योग्य बहुत विषयका संसूचन किया था, उसे (तथा तत्सम्बन्धी नोट्स आदिको) देखकर यह अल्पवक्तव्यरूप उत्तरार्ध पूरा किया गया है :—

गुरुणाऽर्धेऽग्रिमे भूरिवक्तव्ये संप्रकाशिते।
तन्निरीक्ष्याऽल्पवक्तव्यः पश्चार्धस्तेन पूरितः ॥ ३६ ॥

परन्तु वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमें तो वीरसेनका कहीं नामोल्लेख भी नहीं है—ग्रंथ के मंगलाचरण तकमें भी उनका स्मरण नहीं किया गया। यदि वीरसेनके संकेत अथवा आदेशादिके अनुसार जिनसेनके द्वारा वर्तमान तिलोयपण्णत्तीका संकलनादि कार्य हुआ होता तो वे ग्रंथके आदि या अन्तमें किसी न किसी रूपसे उसकी सूचना जरूर करते तथा अपने गुरुका नाम भी उसमें जरूर प्रकट करते। और यदि कोई दूसरी तिलोयपण्णत्ती उनकी तिलोयपण्णत्तीका आधार होती तो वे अपनी पद्धति और परिणतिके अनुसार उसका और उसके रचयिताका स्मरण भी ग्रंथकी आदिमें उसी तरह करते जिस तरह कि महापुराणकी आदिमें 'कविपरमेश्वर' और उनके 'वागर्थसंग्रह' पुराणका किया है, जो कि उनके महापुराणका मूलाधार रहा है। परन्तु वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमें ऐसा कुछ भी नहीं है, और इसलिये उसे उक्त जिनसेनकी कृति बतलाना और उन्हींके द्वारा उक्त गद्यांशका उद्धृत किया जाना प्रतिपादित करना किसी तरह भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। दूसरे भी किसी विद्वान् आचार्यके साथ जिन्हें वर्तमान तिलोयपण्णत्तीका कर्ता बतलाया जाय, उक्त भूलभरे गद्यांशके उद्धरणकी बात संगत नहीं बैठती, क्योंकि तिलोयपण्णत्तीकी मौलिक रचना इतनी प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है कि उसमें मूलकार-द्वारा ऐसे सदोष उद्धरणकी कल्पना नहीं की जा सकती। और इसलिये उक्त गद्यांश बादको किसीके द्वारा धवला आदि परसे प्रक्षिप्त किया हुआ जान पड़ता है। और भी कुछ गद्यांश ऐसे हो सकते हैं जो धवलापरसे प्रक्षिप्त किये गये हों, परन्तु जिन गद्यांशोंकी तरफ शास्त्रीजीने फुटनोटमें संकेत किया है वे तिलोयपण्णत्तीमें धवलापरसे उद्धृत किये गये मालूम नहीं होते; बल्कि धवलामें तिलोयपण्णत्तीपरसे उद्धृत जान पड़ते हैं। क्योंकि तिलोय-पण्णत्तीमें गद्यांशोंके पहले जो एक प्रतिज्ञात्मक गाथा पाई जाती है वह इस प्रकार है:—

वादवरुद्धक्खेत्ते विंदफलं तह य अट्ठपुढवीए।
सुद्धायासखिदीणं लवमेत्तं वत्तइस्सामो ॥ २८२ ॥

इसमें वातवलयोंसे अवरुद्ध क्षेत्रों, आठ पृथिवियों और शुद्ध आकाशभूमियोंका घनफल बतलानेकी प्रतिज्ञा की गई है और उस घनफलका 'लवमेत्त (लवमात्र)'[1] विशेषणके द्वारा बहुत संक्षेपमें ही कहनेकी सूचना की गई है। तदनुसार तीनों घनफलोंका क्रमशः गद्यमें कथन किया गया है और यह कथन मुद्रित प्रतिमें पृष्ठ ४३ से ५० तक पाया जाता है। धवला (पृ० ५१ से ५५) में इस कथनका पहला भाग 'संपहि (सपदि)' से लेकर 'जग-पदरं होदि' तक प्रायः ज्योंका त्यों उपलब्ध है परन्तु शेष भाग, जो आठ पृथिवियों आदिके घनफलसे सम्बन्ध रखता है, उपलब्ध नहीं है। और इससे वह तिलोयपण्णत्तीपरसे उद्धृत जान पड़ता है—खासकर उस हालतमें जब कि धवलाकारके सामने तिलोयपण्णत्ती मौजूद थी और उन्होंने अनेक विवादग्रस्त स्थलोंपर उसके वाक्योंको बड़े गौरवके साथ प्रमाणमें उपस्थित किया है तथा उसके कितने ही दूसरे वाक्योंको भी विना नामोल्लेखके

---

१ तिलोयपण्णत्तिकारको जहाँ विस्तारसे कथन करनेकी इच्छा अथवा आवश्यकता हुई है वहां उन्होंने वैसी सूचना कर दी है, जैसाकि प्रथम अधिकारमें लोकके आकारादिका संक्षेपसे वर्णन करनेके अनन्तर 'वित्थररुइबोहत्थं वोच्छं णाणावियप्पे वि (७४)' इस वाक्यके द्वारा विस्ताररुचिवाले प्रतिपाद्योंको लक्ष्य करके उन्होंने विस्तारसे कथनकी प्रतिज्ञा की है।

उद्धृत किया है और अनुवादित करके भी रक्खा है। ऐसी स्थितिमें तिलोयपण्णत्तीमें पाये जाने वाले गद्यांशोंके विषयमे यह कल्पना करना कि वे धवलापरसे उद्धृत किये गये हैं, समुचित नहीं है और न शास्त्रीजीके द्वारा प्रस्तुत किये गये गद्यांशसे इस विषयमे कोई सहायता मिलती है; क्योंकि उस गद्यांशका तिलोयपण्णत्तिकारके द्वारा उद्धृत किया जाना सिद्ध नहीं है—वह बादको किसीके द्वारा प्रक्षिप्त हुआ जान पड़ता है।

अब मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि यह इतना ही गद्यांश प्रक्षिप्त नहीं है बल्कि इसके पूर्वका "एत्तो चंदाण सपरिवाराणमाणयणविहाणं वत्तइस्सामो" से लेकर "एदम्हादो चेव सुत्तादो" तकका अंश और उत्तरवर्ती "तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति" से लेकर "तं चेदं १६५५३६१।" तकका अंश, जो 'चंदस्स सदसहस्सं' नामकी गाथाके पूर्ववर्ती है, वह सब प्रक्षिप्त है। और इसका प्रबल प्रमाण मूलग्रन्थपरसे ही उपलब्ध होता है। मूलग्रन्थमें सातवें महाधिकारका प्रारम्भ करते हुए पहली गाथामें मंगलाचरण और ज्योतिर्लोकप्रज्ञप्तिके कथनकी प्रतिज्ञा करनेके अनन्तर उत्तरवर्ती तीन गाथाओंमें ज्योतिषियोंके निवासक्षेत्र आदि १७ महाधिकारोंके नाम दिये हैं जो इस ज्योतिर्लोकप्रज्ञप्ति नामक महाधिकारके अंग हैं। वे तीनो गाथाएँ इस प्रकार हैं:—

जोइसिय-णिवासखिदी भेदो संखा तहेव विण्णासो।
परिमाणं चरचारो अचरसरूवाणि आऊ य॥ २॥
आहारो उस्सासो उच्छेहो ओहिणाणसत्तीओ।
जीवाणं उप्पत्ती मरणाइं एक्कसमयम्मि॥ ३॥
आउगबंधणभावं दंसणगहणस्स कारणं विविहं।
गुणठाणादि पवण्णणमहियारा सत्तरसिमाए॥ ४॥

इन गाथाओंके बाद निवासक्षेत्र, भेद संख्या, विन्यास, परिमाण, चरचार अचरस्वरूप और आयु नामके आठ अधिकारोंका क्रमशः वर्णन दिया है—शेष अधिकारोंके विषयमें लिख दिया है कि उनका वर्णन भावनलोकके वर्णनके समान कहना चाहिये ('भावणलोए व्व वत्तव्व')—और जिस अधिकारका वर्णन जहाँ समाप्त हुआ है वहाँ उस की सूचना कर दी है। सूचनाके वे वाक्य इस प्रकार हैं:—

"णिवासखेत्तं सम्मत्तं। भेदो सम्मत्तो। संखा सम्मत्ता। विण्णासं सम्मत्तं। परिमाणं सम्मत्तं। एवं चरगिहाणं चारो सम्मत्तो। एवं अचरजोइसगणपरूवणा सम्मत्ता। आऊ सम्मत्ता।"

अचर ज्योतिषगणकी प्ररूपणाविषयक ७वें अधिकारकी समाप्तिके बाद ही 'एत्तो चंदाण' से लेकर 'त चेदं १६५५३६१' तकका वह सब गद्यांश है, जिसकी ऊपर सूचना की गई है। 'आयु' अधिकारके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। आयुका अधिकार उक्त गद्यांशके अनन्तर 'चंदस्स सदसहस्सं' इस गाथासे प्रारम्भ होता है और अगली गाथापर समाप्त होजाता है। ऐसी हालतमे उक्त गद्यांश मूल ग्रंथके साथ सम्बद्ध न होकर साफ तौरसे प्रक्षिप्त जान पड़ता है। उसका आदिका भाग 'एत्तो चंदाण' से लेकर 'तदो ण एत्थ संपदायविरोधो कायव्वो त्ति' तक तो धवला-प्रथम खंडके स्पर्शनानुयोगद्वारमे, थोड़ेसे शब्दभेदके साथ प्रायः ज्योंका त्यो पाया जाता है और इसलिये यह उसपरसे उद्धृत हो सकता है परन्तु अन्तका भाग—'एदेण विहाणेण परूविदगच्छं विरलिय रूवं पडि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णभत्थे" के अनन्तरका—धवलाके अगले गद्यांशके साथ कोई मेल

नहीं खाता, और इसलिये वह वहाँमे उद्धृत न होकर अन्यत्रसे लिया गया है। और यह भी हो सकता है कि यह सारा ही गद्यांश धवलासे न लिया जाकर किसी दूसरे ही ग्रंथपरसे, जो इस समय अपने सामने नहीं है और जिसमे आदि अन्तके दोनों भागोंका समावेश हो, लिया गया हो और तिलोयपण्णत्तीमे किसीके द्वारा अपने उपयोगादिकके लिये हाशियेपर नोट किया गया हो और जो बादको ग्रंथमें कापीके समय किसी तरह प्रक्षिप्त होगया हो। इस गद्यांशमे ज्योतिष देवोंके जिस भागहार सूत्रका उल्लेख है वह वर्तमान तिलोयपण्णत्ती के इस महाधिकारमे पाया जाता है। उसपरसे फलितार्थ होनेवाले व्याख्यानादिकी चर्चाको किसीने यहापर अपनाया है, ऐसा जान पडता है।

(इसके सिवाय, एक बात यहा और भी प्रकट कर देनेकी है और वह यह कि जिस वर्तमान तिलोयपण्णत्तीको शास्त्रीजी मूलानुसार आठहजार श्लोकपरिमाण बतलाते हैं वह उपलब्ध प्रतियोंपरसे उतने ही श्लोकपरिमाण मालूम नहीं होती, बल्कि उसका परिमाण एक हजार श्लोक-जितना बढ़ा हुआ है, और उससे यह साफ जाना जाता है कि मूलमे उतना अंश बादको प्रक्षिप्त हुआ है। और इसलिये उक्त गद्यांशको, जो अपनी स्थितिपरसे प्रक्षिप्त होनेका स्पष्ट सन्देह उत्पन्न कर रहा है और जो ऊपरके विवेचनपरसे मूलकारकी कृति मालूम नहीं होतो, प्रक्षिप्त कहना कुछ भी अनुचित नहीं है। ऐसे ही प्रक्षिप्त अंशोंसे, जिनमें कितने ही 'पाठान्तर' वाले अंश भी शामिल जान पडते हैं, ग्रथके परिमाणमें वृद्धि हो रही है। और यह निर्विवाद है कि कुछ प्रक्षिप्त अंशोंके कारण किसी ग्रंथको दूसरा ग्रंथ नहीं कहा जा सकता। अतः शास्त्रीजीने उक्त गद्यांशमें तिलोयपण्णत्तोका नामोल्लेख देख कर जो यह कल्पना करली है कि *'वर्तमान तिलोयपण्णत्ती उस तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न है* जो धवलाकारके सामने थी' वह ठीक नहा है।

(इस तरह शास्त्रीजीके पाँचो प्रमाणोंमे कोई भी प्रमाण यह सिद्ध करनेके लिये समर्थ नहीं है कि वर्तमान तिलोयपण्णत्ती आचार्य वीरसेनके बादकी बनी हुई है अथवा उस तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न है जिसका वीरसेन अपनी धवला टीकामे उल्लेख कर रहे हैं। और तब यह कल्पना करना तो अतिसाहसकी बात है कि 'वीरसेनके शिष्य जिनसेन इसके रचयिता हैं, जिनकी स्वतंत्र रचना-पद्धतिके साथ इसका कोई मेल भी नहीं खाता। प्रत्युत इसके, ऊपरके संपूर्ण विवेचन एवं ऊहापोहपरसे स्पष्ट है कि यह तिलोयपण्णत्ती यतिवृषभाचार्य की कृति है, धवलासे कई शताब्दी पूर्वकी रचना है और वही चीज है जिसका वीरसेन स्वामी अपनी धवलामे उद्धरण, अनुवाद तथा आशयग्रहणादिके रूपमें स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करते रहे हैं। शास्त्रीजीने ग्रथकी अन्तिम मगलगाथामें 'दट्ठूण' पदको ठीक मानकर उसके आगे जो 'अरिसवसह' पाठकी कल्पना की है और उसके द्वारा यह सुझानेका यत्न किया है कि इस तिलोयपण्णत्तीमे पहले यतिवृषभका तिलोयपण्णत्ती नामका कोई आर्ष ग्रंथ था जिसे देखकर यह तिलोयपण्णत्ती रची गई है और उसीकी सूचना इस गाथामे 'दट्ठूण अरिसवसहं' वाक्यके द्वारा की गई है, वह भी युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि इस पाठ और उसके प्रकृत अर्थकी सगति गाथाके साथ नहीं बैठती, जिसका स्पष्टीकरण इस निबन्ध के प्रारम्भमे किया जा चुका है। और इसलिये शास्त्रीजीका यह लिखना कि "इस तिलोयपण्णत्तिका संकलन शक संवत् ७३८ (वि० सं० ८७३) से पहलेका किसी भी हालतमे नहीं है" तथा "इसके कर्ता यतिवृषभ किसी भी हालतमे नहीं हो सकते" उनके अतिसाहसका द्योतक है। वह पूर्णतः बाधित है और उसे किसी तरह भी युक्तिसंगत नहीं कहा जासकता।

२६. **परमात्मप्रकाश**— यह अपभ्रंश भाषामे अध्यात्मविषयका अभी तक उपलब्ध अतिप्राचीन ग्रंथ है, दोहा छन्दमें लिखा गया है, आत्मा तथा मोक्ष-विषयक दो मुख्य प्रश्नोंको लेकर दो अधिकारोंमें विभक्त है और इसकी पद्यसंख्या ब्रह्मदेवकी संस्कृत टीकाके

अनुसार सब मिलाकर ३४५ है, जिसमे ३३७ दोहे हैं, एक चतुष्पादिका (चौपाई) है और शेष ७ गाथादि छंद हैं, जो अपभ्रंशमे नहीं हैं। इस ग्रंथमे आत्माके तीन भेदों—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका वर्णन बड़े ही अच्छे ढंगसे दिया है और उसके द्वारा आत्मा-परमात्माके भेदको भले प्रकार प्रदर्शित किया है। आत्मा कैसे परमात्मा बन सकता है अथवा कैसे कोई जीव मोह-ग्रंथिको भेदकर अपना पूर्णविकास सिद्ध कर सकता है और मोक्षसुखका साक्षात् अनुभव कर सकता है, यह सब भी इसमें बडी युक्तिके साथ वर्णित है। ग्रंथ भट्टप्रभाकर नामक शिष्यके प्रश्नोको लेकर सर्वसाधारणके लिये लिखा गया है और अपने विषयका बडा ही महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी ग्रंथ है। इसका विशेष परिचय जाननेके लिये डाक्टर ए०एन० उपाध्येद्वारा सम्पादित परमात्मप्रकाशकी अग्रेजी प्रस्तावनाको देखना चाहिये, जो बड़े परिश्रम और अनुसन्धानके साथ लिखी गई है और जिसका हिन्दीसार भी साथमें लगा हुआ है।

इसके कर्ता योगीन्दु (योगिचन्द्र) नामके आचार्य हैं, जिन्हें आमतौरपर 'योगीन्द्र' समझा तथा लिखा जाता है और जो मूलमें प्रयुक्त 'जोइन्दु' का गलत संस्कृतरूप है। इनके दूसरे ग्रथ 'योगसार' मे ग्रंथकारका स्पष्ट नाम 'जोगिचंद' दिया है, जिसपरसे 'योगीन्दु' नाम फलित होता है—योगीन्द्र नहीं; क्योकि इन्दु चन्द्रका वाचक है—इन्द्रका नहीं। और इस गलतीको डा० उपाध्येने अपनी उक्त प्रस्तावनामें स्पष्ट किया है। आचार्य योगीन्दुका समय भी उन्होंने ईसाकी ५ वीं और ७ वीं शताब्दीका मध्यवर्ती छठी शताब्दीका निश्चित किया है, जो प्रायः ठीक जान पड़ता है; क्योंकि ग्रंथमें कुन्दकुन्दके भावपाहुडके साथ साथ पूज्यपाद (ई० ५वीं श०) के समाधितंत्रका भी बहुत कुछ अनुसरण किया गया है और परमात्मप्रकाशका 'कालु लहेविणु जोइया' नामका दोहा चण्डके 'प्राकृतलक्षण' व्याकरण (ई० ७वीं श०) में उदाहरणरूपसे उद्धृत है। ग्रंथकारने अपना कोई परिचय नहीं दिया और न अन्यत्रसे उसका कोई खास परिचय उपलब्ध होता है, यह बड़े ही खेदका विषय है।

इस ग्रंथपर प्रधानतः तीन टीकाएँ उपलब्ध हैं—संस्कृतमें ब्रह्मदेवकी, कन्नडमें बालचन्द्र मलधारीकी और हिन्दीमें पं० दौलतरामकी, जो संस्कृत टीकाके आधारपर लिखी गई है। संस्कृत और हिन्दीकी दोनों टीकाएँ एक साथ रायचन्द्र जैनशास्त्रमालामें प्रकाशित हो चुकी हैं।

३०. योगसार—यह भी अपभ्रंश भाषामें अध्यात्मविषयका एक दोहात्मक ग्रंथ है और उन्हीं योगीन्दु अर्थात् योगिचन्द्र आचार्यकी रचना है जो परमात्मप्रकाशके रचयिता हैं—ग्रंथके अन्तिम दोहेमें 'जोगिचंदमुणिणा' पदके द्वारा ग्रंथकारके नामका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इसके पद्योंकी संख्या २०८ है, जिनमें एक चौपाई और दो सोरठा छंद भी हैं; परन्तु ग्रंथको दोहा छंदमें रचनेकी प्रतिज्ञा की गई है, और दोहोंमे ही रचे जानेकी अन्तिम दोहेमें सूचना की गई है, इससे तीनों भिन्न छन्द प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। यह ग्रंथ उन भव्य जीवोंको लक्ष्य करके लिखा गया है जो संसारसे भयभीत हैं और मोक्षके लिये लालायित हैं।

३१. निजात्माष्टक—यह आठ पद्यों (स्रग्धरा छंदों) में एक स्तोत्र ग्रंथ है, जिसमें निजात्माका सिद्धस्वरूपसे ध्यान किया गया है। प्रत्येक पद्यके अन्तमें लिखा है 'सोहं झायेमि णिच्चं परमपय-गओ णिव्वियप्पो णियप्पो' अर्थात् वह परमपदको प्राप्त निर्विकल्प निजात्मा मैं हूँ, ऐसा मैं नित्य ध्यान करता हूँ। इसे भी परमात्मप्रकाशके कर्ताकी कृति कहा जाता है; परन्तु मूलमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। अन्तमें लिखा है—"इति योगीन्द्रदेव-विरचितं निजात्माष्टकं समाप्तम्।" इतने मात्रसे यह ग्रंथ परमात्मप्रकाशके कर्ताका

सिद्ध नहीं होता। डाक्टर ए० एन उपाध्ये एम० ए० का भी इसके विषयमे ऐसा ही मत है। अतः इसका कर्तृत्व-विषय अभी अनुसन्धानके योग्य है।

३२. दर्शनसार—अनेक मतों तथा सघोकी उत्पत्ति आदिको लिये हुए यह अपने विषयका एक ही ग्रंथ है, जो प्राचीन गाथाओपरसे निबद्ध किया गया अथवा उन्हें साथमे लेकर संकलित किया गया है (गा. १,४६) और अनेक ऐतिहासिक घटनाओंकी समय-सूचना आदिको साथमें लिये हुए है। इसकी गाथासंख्या ५१ है और यह धारानगरीके पार्श्वनाथ चैत्यालयमे माघसुदी दसमी विक्रम स० ६६०को वनकर समाप्त हुआ है (गा०५०)। इसमे एकान्तादि प्रधान पाँच मिथ्या मतों और द्राविड, यापनीय, काष्ठा, माथुर तथा भिल्ल सघोकी उत्पत्तिका कुछ इतिहास उनके सिद्धान्तोंके उल्लेखपूर्वक दिया है, और इसलिये इतिहासके प्रेमियो तथा ऐतिहासिक विद्वानोंके लिये यह कामकी चीज है। इसके रचयिता अथवा संग्रहकर्ता देवसेन गणी हैं जिनके वनाये हुए तत्त्वसार, आराधनासार, नयचक्र और भावसंग्रह नामके और भी कई ग्रथ प्रसिद्ध हैं। भावसंग्रहमे देवसेनने अपने गुरुका नाम विमलसेन गणधर (गणी) दिया है[1], जवकि दूसरे ग्रंथोमें स्पष्टरूपसे गुरुका नाम उल्लेखित नहीं है, परन्तु कुछ ग्रंथोंके मंगलाचरणोंमे अस्पष्टरूपसे अथवा श्लेषरूपमे वह उल्लेखित मिलता है—जैसे दर्शनसारमें 'विमलणाणं' पदके द्वारा, नयचक्रमे 'विगयमलं' और 'विमल-णाण-संजुत्तं' पदोंके द्वारा, आराधनासारमें 'विमलयरगुणसमिद्धं' पदके द्वारा और तत्त्वसारमे 'णिम्मलमविसुद्धलद्धसब्भावे' पदके द्वारा उसकी सूचना मिलती है। 'विगयमलं' पद साफ तौरसे विमलका वाचक है और 'विमलणाणं' अथवा 'विमलणाण संजुत्तं' को जव प्रतिज्ञात ग्रथका विशेषण किया जाता है तव उसका अर्थ विमल (गुरु) प्रतिपादित ज्ञानसे युक्त भी हो जाता है। इसी तरह 'विमलयरगुणसमिद्धं' आदिको भी समझ लेना चाहिये। अनेक ग्रंथोंके मंगलाचरणादिमे देव, गुरु तथा शास्त्रके लिये श्लेषरूपमे समान विशेषणोके प्रयोगको अपनाया गया है और कहीं कहीं अपने नामकी भी श्लेषरूपमे सूचना साथमें कर दी गई है[2]। उसी प्रकारकी स्थिति उक्त प्रयोगोंकी है। इसके सिवाय, भावसंग्रहके मंगलाचरणमे 'सुरसेणणुयं' दर्शनसारके मंगलाचरणमे 'सुरसेण-णमंसियं' और आराधनासारकी मंगलगाथामे 'सुरसेणवंदियं' इन पदोंकी सनानता भी अपना कुछ अर्थ रखती है और वह एककर्तृत्वको सूचित करती है। और इसलिये पांचों ग्रंथ एक ही देवसेनकी कृति मालूम होते हैं, जो कि मूलसघके और संभवतः कुन्दकुन्दान्वय के आचार्य थे, क्योंकि दर्शनसारमें उन्होंने दूसरे जैन संघोंको थोड़ी थोड़ीसे मत-विभिन्नता के कारण 'जैनाभास' वतलाया है। और साथ ही ४३वीं गाथामे यह भी लिखा है कि 'यदि पद्मनन्दिनाथ (कुन्दकुन्दाचार्य) सीमन्धरस्वामीसे प्राप्त दिव्यज्ञानके द्वारा विशेष बोध न देते तो श्रमणजन सन्मार्गको कैसे जानते?[3]

पं० परमानन्द शास्त्रीने 'सुलोचनाचरित और देवसेन' नामक अपने लेख (अनेकान्त वर्ष ७ किरण ११-१२) मे भावसंग्रहके कर्ता देवसेनको दर्शनसारके कर्तासे भिन्न बत-

---

१ सिरिविमलसेणगणहर-सिस्सो णामेण देवसेणो त्ति।
अबुहजण-बोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्त ॥ ७०१ ॥

२ यथा:—श्रीज्ञानभूषणं देवं परमात्मानमव्ययम्।
प्रणम्य बालसंबुध्यै वक्ष्ये प्राकृतलक्षणम् ॥—प्राकृतलक्षणटीकाया, ज्ञानभूषण-शिष्य-शुभचंद्रः
अभिभूय निजविपक्ष निखिलमतोद्योतनो गुणाम्भोधिः।
सविता जयतु जिनेन्द्रः शुभप्रवन्धः प्रभाचन्द्रः ॥—न्यायकुमुदचन्द्र-प्रशस्ति

३ जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥ ४३ ॥

लाते हुए यह प्रतिपादन किया है कि अपभ्रंश भाषाका सुलोचनाचरित्र (वि० स० ११३२ या १३७२)[1] और प्राकृत भाषाका भावसंग्रह दोनों एक ही देवसेनकी कृति है, क्योंकि भावसंग्रहके कर्ताकी तरह सुलोचनाचरित्रके कर्ताको भी विमलसेन गणी (गणधर) का शिष्य लिखा है। साथ ही, इन दोनों ग्रंथोंके कर्ता देवसेनकी संगति उन देवसनके साथ बिठलाते हुए जिनका उल्लेख माथुरसंघके भट्टारक गुणकीर्तिके शिष्य यशःकीर्तिने वि० संवत् १४९७ के बने हुए अपने पाण्डवपुराणमें किया है, उन्हें माथुरसंघका विद्वान ठहराया है; इनके समयकी कल्पना विक्रमकी १२वीं या १३वीं शताब्दी की है और इस तरह यह सिद्ध एवं घोषित करना चाहा है वि० स० ९९० (१० वीं शताब्दी) में दर्शनसारको समाप्त करनेवाले देवसेनके साथ सुलोचनाचरितके कर्ता देवसेनकेका ही नहीं किन्तु भावसंग्रहके कर्ता देवसेनका भी कोई सम्बन्ध नहीं बन सकता। परन्तु यह सब ठीक नहीं है और उसके निम्न कारण है :—

(१) सुलोचनाचरित्रमें देवसेनने अपने गुरु विमलसेनका नामोल्लेख करते हुए गणी या गणधर नहीं लिखा, बल्कि उनके लिये एक खास विशेषण 'मलधारि' तथा 'मलधारिदेव' का प्रयोग किया है[2]। यह विशेषण भावसंग्रहके कर्ता देवसेनके गुरु विमलसेन गणधरके साथ लगा हुआ नहीं है, और इसलिये दोनोंको एक नहीं कहा जा सकता।

(२) भावसंग्रह और सुलोचनाचरित्रके कर्ताओंमेंसे किसी भी देवसेनने अपनेको काष्ठासंघी अथवा माथुरसंघी नहीं लिखा, जब कि पाण्डवपुराणके कर्ता यशःकीर्तिने अपनी गुरुपरम्परामें जिन देवसेनका उल्लेख किया है उन्हें साफ तौरपर काष्ठासंघी माथुरगच्छी[3] बतलाया है। साथ ही, देवसेनको विमलसेनका शिष्य भी नहीं लिखा, बल्कि विमलसेनको देवसेनका उत्तराधिकारी बतलाया है। और इसलिये पाण्डवपुराणके देवसेनके साथ उक्त दोनों ग्रंथोंमेंसे किसीके भी कर्ता देवसेनकी संगति नहीं बैठती। गुरुपरम्परामें कुछ अक्रम-कथन अथवा क्रमभंगकी कल्पना करके संगति बिठलानेकी बात भी नहीं बन सकती है, क्योंकि एक तो गुरुपरम्पराको देते हुए उसमें अनुक्रमपरिपाटीसे कथनकी साफ सूचना की गई है, दूसरे अन्यत्र भी इस गुरुपरम्पराका प्रारंभ देवसेनसे मिलता है और विमलसेनको देवसेनका पट्टशिष्य सूचित किया है, जिसका एक उदाहरण कवि रैधूके सिद्धान्तार्थसारकी वह लेखकप्रशस्ति[4] है जो जयपुरके बाबा दुलीचन्दजीके शास्त्रभंडारकी संवत १५९३ की लिखी

---

१ ग्रन्थकी समाप्तिका समय श्रावणशुक्ला १४ बुधवार राक्षससंवत्सर दिया है, जो ज्योतिषकी गणनानुसार इन दोनों संवतोंमें पड़ता है, जो राक्षस नामक संवत्सर था।

२ "विमलसेणमलधारिहि सीसें।" ३।
"सिरिमलधारिदेवपभणिज्जइ, णामें विमलसेणु जाणिज्जइ । तासु सीसु ·········· ·· ·· (प्रशस्ति)

३ सिरिकट्ठसंघ माहुरहो गच्छि पुक्खरगणि मुणि[वर] चई विं लच्छि।
संजायउ(या) वीरजिणुक्कमेण, परिवाडियजइवर णिहयएण।
सिरिदेवसेणु तह विमलसेणु, तह धम्मसेणु पुण भावसेणु।
तहो पट्ट उवएणउ सहसकित्ति अणवरय भमिय जइ जासु कित्ति।

४ प्रशस्तिका आद्य अंश इस प्रकार है :—

"अथ संवत्सरेस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यगताब्दः संवत् १५९३ वर्षे वैशाखसुदि त्रयोदशी १३ भौमदिने कुरुजांगलदेशे श्रीसुवर्णपथ-शुभदुर्गे पातिसाहबब्बरु मुगुलु काबिली तस्य पुत्र हुमाऊँ तस्य राज्य-प्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे मिथ्यातमविनाशनैककौमुदीप्रियागमार्थः गृहः भट्टारक-श्रीदेवसेनदेवाः तत्पट्टे वादिगजगंधहस्तिआचार्यश्रीविमलसेनदेवाः तत्पट्टे उभयभाषाप्रवीणतपोनिधि-भट्टारकश्रीधर्मसेनदेवाः तत्पट्टे मिथ्यात्वगिरिस्फोटनैकबहुदंडः आचार्यश्रीभावसेनदेवाः तत्पट्टे भ० श्रीसहस्रकीर्तिदेवाः तत्पट्टे आचार्यश्रीगुणकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ० यशःकीर्तिदेवाः तत्पट्टे ·· ······ ···॥"

हुई ६६ पत्रात्मक प्रतिमें पाई जाती है और जिसकी नकल उक्त पं० परमानन्दजीके पास से ही देखनेको मिली है।

(३) पाण्डवपुराण जब १४६७ मे समाप्त हुआ तब उसके कर्ता यशःकीर्तिकी पाँचवीं गुरुपरम्परामें होनेवाले देवसेनका समय वि० स० १४०० के लगभग ठहरता है। ऐसी स्थितिमें इन देवसेनके साथ एकत्व स्थापित करते हुए भावसंग्रहके कर्ता और सुलोचना-चरित्रके कर्ता देवसेनकी विक्रमकी १२वीं या १३वीं शताब्दीका विद्वान कैसे बतलाया जा सकता है? १३वीं शताब्दी तो उन दो संवतों ११३२ और १३७२ के भी विरुद्ध जाती है जिनमेंसे किसी एकमें सुलोचनाचरित्रके रचे जानेकी संभावना व्यक्त की गई है।

(४) भावसंग्रहकी 'सकाइदोसरहिय', 'रायगिहे णिस्संको', 'णिव्विदगिंछो राया', 'ठिदिय(क)रणगुणपउत्तो' 'उवगूहणगुणजुत्तो' और 'एरिसगुणअट्ठजुयं', ये छह (२७६ से २८४ नं० की) गाथाएँ वसुनन्दी आचार्यके श्रावकाचारमें (नं० ५१ स ५६ तक) उद्धृत की गई हैं, ऐसा वसुनन्दिश्रावकाचारकी उस देहली-धर्मपुरा के नये मन्दिरकी शुद्ध प्रतिपरसे जाना जाता है जो संवत् १६६१ की लिखी हुई है, और जिसमे उक्त गाथाओंको देते हुए साफतौरसे लिखा है—"अतो गाथाषट्कं भावसंग्रहात्।" इन वसुनन्दी आचार्यका समय विक्रमकी ११वीं-१२वीं शताब्दी है। अतः भावसंग्रहके कर्ता देवसेन उनसे पहले हुए, तब सुलोचनाचरित्रके कर्ता देवसेन और पाण्डवपुराणकी गुरु-परम्परावाले देवसेनके साथ उनकी एकता किसी तरह भी स्थापित नहीं की जा सकती और न उन्हें १२वीं या १३वीं शताब्दीका विद्वान् ही ठहराया जा सकता है। और इसलिये जब तक भिन्न कर्तृकताका द्योतक कोई दूसरा स्पष्ट प्रमाण सामने न आ जावे तब तक दर्शनसार और भावसग्रहको एक ही देवसेनकृत माननेमे कोई खास बाधा मालूम नहीं होती।

३३. भावसंग्रह—यह वही देवसेनकृत भावसग्रह है, जिसकी ऊपर दर्शनसारके प्रकरणमे चर्चा की गई है। इसमें मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थानोके क्रमसे जीवोंके औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ऐसे पाँच भावोका अनेकरूप से वर्णन है और उसमें कितनी ही बातोंका समावेश किया गया है। माणिकचन्द्रग्रथमाला के संस्करणानुसार इस ग्रथकी पद्यसंख्या ७०१ है परन्तु यह सख्या अभी सुनिश्चित नहीं कही जा सकती, क्योंकि अनेक प्रतियोंमे हीनाधिक पद्य पाये जाते हैं। प० नाथूरामजी प्रमीने पूनाके भाण्डारकर ओरियटल रिसर्च इन्स्टिट्यूटकी एक प्रति (नं० १४६३ सन् १८८६-६२) का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "इसके प्रारंभिक अशमें अन्य ग्रंथोंके उद्धरणोंकी भरमार है", जो मूल ग्रथकारके द्वारा उद्धृत नहीं हुए हैं, और अनेक स्थानोंपर—खासकर पाँचवें गुणस्थानके वर्णनमे—इसके पद्योकी स्थिति रयणसार-जैसी संदिग्ध पाई जाती है। अतः प्राचीन प्रतियोंकी खोज करके इसके मूलरूपको सुनिश्चित करनेकी खास जरूरत है।

३४. तत्त्वसार—यह भी उक्त देवसेनका ७४ गाथात्मक ग्रथ है। इसमे स्वगत और परगतके भेदसे तत्त्वका दो प्रकारसे निरूपण किया है और यह अपने विषयका अच्छा पठनीय तथा मननीय ग्रंथ है।

३५. आराधनासार—उक्त देवसेनका यह ग्रथ ११५ गाथासख्याको लिये हुए है और हेमकीर्तिके शिष्य रत्नकीर्तिकी सस्कृत टीकाके साथ माणिकचन्द्र-ग्रंथमालामे मुद्रित हुआ है। इसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपरूप चार आराधनाओंके कथनका सार निश्चय और व्यवहार दोनों रूपसे दिया है। ग्रथ अपने विषयका बड़ा ही सुन्दर है।

३६. नयचक्र—यह भी उक्त देवसेनकी कृति है और ८७ गाथासंख्याको लिये हुए है। इसे 'लघुनयचक्र' भी कहते हैं, जो किसी बडे नयचक्रको दृष्टिमे लेकर बादको किए

गए नामकरणका फल है। मूलके आदि-प्रतिज्ञा-वाक्यमे इसको 'नयलक्षण' और समाप्ति-वाक्यमे 'नयचक्र' प्रकट किया गया है। अन्यत्र भी 'नयचक्र' नामसे इसका उल्लेख मिलता है[1]। इससे इसका मूलनाम 'नयचक्र' ही है। परन्तु यह वह 'नयचक्र' नहीं जिसका विद्यानन्द आचार्यने अपने श्लोकवार्तिकके नयविवरण-प्रकरणमें निम्न शब्दोंद्वारा उल्लेख किया है :—

संक्षेपेण नयास्तावद् व्याख्याताः सूत्रसूचिताः ।
तद्विशेषाः प्रपञ्चेन संचिन्त्या नयचक्रतः ॥

क्योंकि इस कथनपरसे वह नयचक्र बहुत विस्तृत होना चाहिये। प्रस्तुत नयचक्र बहुत छोटा है, इससे अधिक कथन तो श्लोकवार्तिकके उक्त नयविवरण-प्रकरणमें पाया जाता है, जिसमे विशेष कथनके लिये नयचक्रको देखनेकी प्रेरणा की गई है। बहुत संभव है कि यह बड़ा नयचक्र वह हो जिसको दुःसमीरसे पोत (जहाज) की तरह नष्ट हो जानेका और उसके स्थानपर देवसेनद्वारा दूसरे नयचक्रके रचे जानेका उल्लेख माइल्लदेवने अपने 'दव्वसहावणयचक्क' के अन्तमे[2] किया है। इसके सिवाय, एक दूसरा बड़ा नयचक्र संस्कृतमे श्वेताम्बराचाय मल्लवादिका भी प्रसिद्ध है, जिसे 'द्वादशार-नयचक्र' कहते हैं और जो आज अपने मूलरूपमे उपलब्ध नहीं है। उसकी ओर भी संकेत हो सकता है। अस्तु।

देवसेनके इस नयचक्रमे नयोंका सूत्ररूपसे बड़ा सुन्दर वर्णन है, नयोके मूल दो भेद द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक किये गये हैं और शेप सब संख्यात असख्यात भेदोंको इन्हींके भेद-प्रभेद बतलाया गया है। नयोंके कथनका प्रारंभ करते हुए लिखा है कि—'जो नयदृष्टिसे विहीन हैं उन्हें वस्तुस्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती और जिन्हें वस्तुस्वरूपकी उपलब्धि नहीं—जो वस्तुस्वभावको नहीं पहचानते—वे सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते हैं? नहीं हो सकते,' यह बड़े ही मर्मकी बात है और इसपरसे ग्रंथके विषयका महत्त्व स्पष्ट जाना जाता है। इसी तरह ग्रंथके अन्तमें 'नयचक्र' के विज्ञानको सकल शास्त्रोंकी शुद्धि करनेवाला और दुर्णयरूप अन्धकारके लिये मार्तण्ड बतलाते हुए यह भी लिखा है कि 'यदि अज्ञान-महोदधिको लीलामात्रमे तिरना चाहते हो तो नयचक्रको जाननेके लिये अपनी बुद्धिको लगाओ—नयोंका ज्ञान प्राप्त किये विना अज्ञान-महासागरसे पार न हो सकोगे'।

३७. द्रव्यस्वभावप्रकाश-नयचक्र—यह ग्रंथ द्रव्यों, गुण-पर्यायों और उनके स्वरूपादिको सामान्य-विशेषादिकी दृष्टिसे प्रकाशित करनेवाला है और साथ ही उनको जाननेके साधनोंमे मुख्यभूत नयोंके स्वरूपादिपर प्रकाश डालनेवाला है, इसीसे इसका यह नाम प्रायः सार्थक है। वास्तवमें यह एक संग्रह-प्रधान ग्रंथ है। इसमें कुन्दकुन्दादि आचार्यो के ग्रंथोंकी कितनी ही गाथाओं तथा पद्य-वाक्योंका संग्रह किया गया है। और देवसेनके नयचक्रको तो प्रायः पूरा ही समाविष्ट कर लिया गया है। नयचक्रकी स्तुतिके कई पद्य भी इसके अन्तमे दिये हुए हैं और इसीसे इसे कुछ लोग बृहत् नयचक्र भी कहने अथवा समझने लगे हैं जो ठीक नहीं हैं, क्योंकि इसमें बृहत् नयचक्र जैसी कोई बात नहीं है। इसकी पद्यसंख्या देवसेनके नयचक्रसे प्रायः पंचगुनी अर्थात् ४२० जितनी होने और अन्तिम गाथाओंमे नयचक्रका ही सविशेषरूपसे उल्लेख पाये जानेके कारण यह बृहत् नयचक्र समझ लिया गया जान पड़ता है। ग्रंथके अन्य भागोंकी अपेक्षा अन्तका भाग कुछ विशेषरूपसे अव्यवस्थित मालूम होता है। 'जइ इच्छइ उत्तरिदुं' इस गाथा नं० ४१६ के

१ श्वेताम्बराचार्य यशोविजयने 'द्रव्यगुणपर्ययरासा' में और भोजसागरने 'द्रव्यानुयोगतर्कणा' में भी देवसेनके नामोल्लेखपूर्वक उनके नयचक्रका उल्लेख किया है।

२ दुसमीरणेण पोय पेरियसंतं जहा ति(चि)र णट्ठं ।
सिरिदेवसेणमुणिणा तह णयचक्कं पुणो रइयं ॥

बाद, जोकि देवसेनके नयचक्रकी पूर्वोद्धृत अन्तिम गाथा (नं० ८७) है, एक गाथा निम्न प्रकारसे दी हुई है, जिसमें बतलाया गया है कि—'दोहाथको सुनकर शुभंकर अथवा शंकर हँसकर बोला कि दोहोंमें अर्थ शोभित नहीं होता, उसे गाथाओंमें गूंथकर कहो—

सुणिऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहंकरो भणइ।
एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहाबंधेण तं भणह ॥ ४१७ ॥

इसके अनन्तर 'दारिय-दुण्णय-दणुयं' इत्यादि तीन गाथाओंमें देवसेनके नयचक्रकी प्रशंसाके साथ उसे नमस्कार करनेकी प्रेरणा की गई है, इससे यह गाथा, जिसमें ग्रंथ रचनेकी प्रेरणाका उल्लेख है, पूर्वाऽपर गाथाओंके साथ कुछ सम्बन्ध रखती हुई मालूम नहीं होती। इसी तरह नयचक्रकी प्रशंसात्मक उक्त तीन गाथाओंके बाद निम्न गाथा पाई जाती है जिसका उन तीन गाथाओं तथा अन्तकी (नं० ४२२) 'दुसमीरणेण पोयं' नामकी उस गाथाके साथ कोई सम्बन्ध नहीं बैठता, जिसमें प्राचीन नयचक्रके नष्ट होजानेपर देवसेनके द्वारा दूसरे नयचक्रके रचे जानेका उल्लेख है :—

दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं।
गाहाबंधेण पुणो रइयं माहल्लदेवेण ॥ ४२१ ॥

क्योंकि इसमे बतलाया है कि—'द्रव्यस्वभावप्रकाश' नामका कोई ग्रंथ पहलेसे दोहा छंदमें मौजूद था उसे माहल्ल अथवा माहिल्लदेवने गाथाछंदमे परिवर्तित करके पुनः रचा है। इस गाथाकी उक्त प्रेरणात्मक गाथा नं० ४१७ के साथ तो संगति बैठती है परन्तु आगे पाछेकी गाथाओंने ग्रंथके सन्दर्भमे गड़बड़ी उपस्थित कर रक्खी है। और इससे ऐसा मालूम होता है कि इन दोनों (नं० ४१७, ४२१) के पूर्वापर सन्बन्धकी कुछ गाथाएँ नष्ट हो गई हैं और दूसरी गाथाएँ उनके स्थानपर आ घुसी हैं। अतः इस ग्रंथकी प्राचीन प्रतियोंकी खोज होकर ग्रन्थसन्दर्भको ठीक एव सुव्यवस्थित किये जानेकी जरूरत है।

उक्त गाथा नं० ४२१ परसे ग्रंथकर्ताका नाम 'माहल्लदेव' उपलब्ध होता है; परन्तु (पं०नाथूरामजी प्रेमीने अपनी ग्रंथपरिचयात्मक प्रस्तावनामें तथा 'जैनसाहित्य और इतिहास' के अन्तर्गत 'देवसेन और नयचक्र' नामक लेखमें भी सर्वत्र ग्रंथकर्ताका नाम 'माइल्लधवल' दिया है। मालूम नहीं इस नामकी उपलब्धि उन्हें कहाँसे हुई है? क्योंकि इस पाठान्तर का उनके द्वारा कहीं कोई उल्लेख नहीं किया गया। हो सकता है कि कारंजाकी प्रतिमे यह पाठ हो, क्योंकि अपने उक्त लेखमे प्रेमीजीने एक जगह यह सूचित किया है कि 'कारंजाकी प्रतिमें 'माइल्लधवलेण' पर 'देवसेनशिष्येण' टिप्पण भी है। अस्तु, ये ग्रंथकार संभवतः उन्हीं देवसेनके शिष्य जान पडते हैं जिनके नयचक्रको इन्होने अपने इस ग्रथमें समाविष्ट किया है, जिन्हें 'सियसद्दसुणयदुण्णय' नामकी गाथा न० ४२० में भारी प्रशंसाके साथ नयचक्रकार बतलाया है और 'गुरु' लिखा है और जिसका समर्थन कारंजा प्रतिके उक्त टिप्पणसे भी होता है। इसके सिवाय, प्रमीजीने 'दुममीरणेण पोयं पेरिय' नामकी गाथा न० ४२२ का एक दूसरा पाठ मोरेनाकी प्रतिका निम्न प्रकारसे दिया है, जिस का पूर्वार्ध बहुत अशुद्ध है—

दसमीरपोयमि(नि)वाय पा(या)ता(णं) सिरिदेवसेणजोईणं।
तेसिं पायपमाए उवलद्धं समणतच्चेण ॥

और इस परसे यह कल्पना की है कि 'माइल्लधवलका देवसेनसूरिसे कुछ निकट का गुरु-शिष्य सम्बन्ध था,' जो उपर्युक्त अन्य कारणोंकी मौजूदगीमें ठीक हो सकता है।)

और इसलिये जब तक कोई दूसरा स्पष्ट प्रमाण सामने न आवे तब तक इन्हें देवसेनका शिष्य मानना अनुचित न होगा।

३८. **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति**—यह त्रिलोकप्रज्ञप्ति और त्रिलोकसार जैसे ग्रंथोंकी तरह करणानुयोग-विषयका ग्रंथ है। इसमें मध्यलोकके मध्यवर्ती जम्बूद्वीपका कालादि-विभागके साथ मुख्यतासे वर्णन है और वह वर्णन प्रायः जम्बूद्वीपके भरत, ऐरावत, महाविदेहक्षेत्रों, हिमवान आदि पर्वतों, गंगा-सिन्ध्वादि नदियों, पद्म-महापद्मादि द्रहों, लवणादि समुद्रों तथा अन्य बाह्य-प्रदेशों, कालके अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी आदि भेद-प्रभेदों, उनमें होनेवाले परिवर्तनों और ज्योतिषपटलादिसे सम्बन्ध रखता है। साथ ही, लौकिक-अलौकिक गणित, क्षेत्रादिकी पैमाइश और प्रमाणादिके कथनोंको भी साथमें लिये हुए है। संक्षेपमें इसे पुरातन भूगोल और खगोल-विषयक ग्रंथ समझना चाहिये। इसमें १३ उद्देश अथवा अधिकार हैं और गाथासंख्या प्रायः २४२७ पाई जाती है। यह ग्रंथ भी अभी तक प्रकाशित (मुद्रित) नहीं हुआ है।)

इस ग्रंथके कर्ता श्री पद्मनन्दि आचार्य हैं, जो बलनन्दिके शिष्य और वीरनन्दिके प्रशिष्य थे, जिन्होंने श्रीविजय गुरुके पाससे सुपरिशुद्ध आगमको सुनकर तथा जिनवचन-विनिर्गत अमृतभूत अर्थपदको धारण करके उन्हींके माहात्म्य अथवा प्रसादसे यह ग्रंथ पारियात्रदेशके वारानगरमें रहते हुए, उस नगरके स्वामी शक्तिभूपाल अथवा शान्तिभूपालके समयमें, उन श्रीनन्दि गुरुके निमित्त संक्षेपसे रचा है जो सकलचन्द्रके शिष्य और माघनन्दि गुरुके प्रशिष्य थे अथवा सकलचन्द्रके शिष्य न होकर माघनन्दीके शिष्य थे—प्रशिष्य नहीं[1]। ऐसा ग्रंथके अन्तिमभाग अर्थात् उसकी प्रशस्तिपरसे जाना जाता है, जो इस प्रकार है :—

णाणा-णरवइ-महिदो विगयभओ संगभंगउम्मुक्को।
सम्मद्दसणसुद्धो संजम-तव-सील-संपुण्णो ॥ १४३ ॥
जिणवर-वयण-विणिग्गय-परमागमदेसओ महासत्तो।
सिरिणिलओ गुणसहिओ सिरिविजयगुरु त्ति विक्खाओ ॥ १४४ ॥
सोऊण तस्स पासे जिणवयणविणिग्गयं अमदभूदं।
रइदं किंचिदुद्देसे अत्थपदं तह य लद्धूण ॥ १४५ ॥

× × × ×

अह तिरिय-उड्ढ लोएसु तेसु जे होंति बहु वियप्पा दु।
सिरिविजयस्स महप्पा ते सव्वे वण्णिदा किंचि ॥ १५३ ॥
गय-राय-दोस-मोहो सुद-सायर-पारओ मइ-पगब्भो।
तव-संजम-संपण्णो विक्खाओ माघणंदिगुरू ॥ १५४ ॥
तस्सेव य वरसिस्सो सिद्धंतमहोवहिम्मि धुयकलुसो।
णवणियमसीलकलिदो गुणउत्तो सयलचंदगुरू ॥ १५५ ॥

---

१ आमेर (जयपुर) की वि० संवत् १५१८ की प्रतिमें सकलचन्द्रके नामोल्लेखवाली गाथा (नं० १५५) नहीं है, ऐसा पं० परमानन्द शास्त्री वीरसेवामंदिरको मिलान करनेपर मालूम हुआ है। यदि वह वस्तुतः ग्रन्थका अङ्ग नहीं है तो श्रीनन्दीको माघनन्दीका प्रशिष्य न समझकर शिष्य समझना चाहिये।

तस्सेव य वर-सिस्सो णिम्मल-वरणाण-चरण-संजुत्तो ।
सम्मद्दंसण-सुद्धो सिरिणंदिगुरु त्ति विक्खाओ ॥ १५६ ॥
तस्स णिमित्तं लिहियं (रइयं) जंबूदीवस्स तह य पण्णत्ती ।
जो पढइ सुणइ एदं सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥ १५७ ॥
पंच-महव्वय-सुद्धो दंसण-सुद्धो य णाण-संजुत्तो ।
संजम-तव-गुण-सहिदो रागादि-विवज्जिदो धीरो ॥ १५८ ॥
पंचाचार-समग्गो छज्जीव-दयावरो विगद-मोहो ।
हरिस-विसाय-विहूणो णामेण वीरणंदि त्ति ॥ १५९ ॥
तस्सेव य वर-सिस्सो सुत्तत्थ-वियक्खणो मइ-पगब्भो ।
पर-परिवाद-णियत्तो णिस्संगो सव्व-संगेसु ॥ १६० ॥
सम्मत्त-अभिगद-मणो णाणे तह दंसणे चरित्ते य ।
परतंति-णियत्तमणो बलणंदिगुरु त्ति विक्खाओ ॥ १६१ ॥
तस्स य गुण-गण-कलिदो तिदंडरहिदो तिसल्ल-परिसुद्धो ।
तिण्णि वि गारव-रहिदो सिस्सो सिद्धंत-गय-पारो ॥ १६२ ॥
तव-णियम-जोग-जुत्तो उज्जुत्तो णाण-दंसण-चरित्ते ।
आरंभकरण-रहिदो णामेण पउमणंदि त्ति ॥ १६३ ॥
सिरिगुरुविजय-सयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं ।
मुणिपउमणंदिणा खलु लिहियं एयं समासेण ॥ १६४ ॥
सम्मद्दंसण-सुद्धो कद-वद-कम्मो सुसील-संपण्णो ।
अणवरय-दाणसीलो जिणसासण-वच्छलो धीरो ॥ १६५ ॥
णाणा-गुण-गण-कलिओ णरवइ-संपूजिओ कला-कुसलो ।
बारा-णयरस्स पहू णरुत्तमो सत्ति संति)-भूपालो ॥ १६६ ॥
पोक्खरणि-वावि-पउरे बहु-भवण-विहूसिए परम-रम्मे ।
णाणा-जण-संकिण्णे धण-धण्ण-समाउले दिव्वे ॥ १६७ ॥
सम्मादिट्ठिजणोघे मुणिगणणिवहेहिं मंडिये रम्म ।
देसम्मि पारियत्ते जिणभवण-विहूसिए दिव्वे ॥ १६८ ॥
जंबूदीवस्स तहा पण्णत्ती बहुपयत्थसंजुत्तं(त्ता) ।
लिहिय(या) संखेवेणं वाराए अच्छमाणेण ॥ १६९ ॥
छदुमत्थेण विरइयं जं किं पि हवेज्ज पवयण-विरुद्धं ।
सोधंतु सुगीदत्था तं पवयण-वच्छलत्ताए ॥ १७० ॥

—उद्देश १३

इस प्रशस्तिमें ग्रंथकारने अपनेको गुणगणकलित, त्रिदण्डरहित, त्रिशल्यपरिशुद्ध, त्रिगारवरहित, सिद्धान्तपारंगत, तपनियमयोगयुक्त, ज्ञानदर्शनचरित्रोद्युक्त और आरम्भ-

करणरहित बतलाया है; अपने गुरु बलनन्दिको सूत्रार्थविचक्षण, मतिप्रगल्भ, परपरिवाद-निवृत्त, सर्वसर्गनिःसंग, दर्शनज्ञानचरित्रमें सम्यक् अधिगतमन, परतृप्तिनिवृत्तमन, और विख्यात सूचित किया है, अपने दादागुरु वीरनन्दिको पंचमहाव्रतशुद्ध, दर्शनशुद्ध, ज्ञान-संयुक्त, संयमतपगुणसहित, रागादिविवर्जित, धीर, पंचाचारसमग्र, षट्जीवदयातत्पर, विगतमोह और हर्षविषादविहीन विशेषणोंके साथ उल्लेखित किया है; और अपने शास्त्र-गुरु श्रीविजयको नानानरपतिमहित, विगतभय, संगभंगउन्मुक्त, सम्यग्दर्शनशुद्ध, संयम-तप-शीलसम्पूर्ण, जिनवरवचनाविनिर्गत-परमागमदेशक, महासत्व, श्रीनिलय, गुणसहित और विख्यात विशेषणोंसे युक्त प्रकट किया है। साथ ही, सत्ति (सति) भूपालको सम्यग्-दर्शनशुद्ध, कृत-व्रत-कर्म, सुशीलसम्पन्न, अनवरतदानशील, जिनशासनवत्सल, धीर, नानागुणगणकलित, नरपतिसंपूजित, कलाकुशल, बारानगरप्रभु और नरोत्तम बतलाया है। परन्तु इतना सब कुछ बतलाते हुए भी अपने तथा अपने गुरुओंके संघ अथवा गण-गच्छादिके विषयमें कुछ नहीं बतलाया, न सत्ति भूपाल अथवा सति भूपालके वंशादिकका कोई परिचय दिया और न ग्रंथका रचनाकाल ही निर्दिष्ट किया है। ऐसी हालतमें ग्रंथकार और ग्रंथके निर्माणकालादिकका ठीक ठीक पता चलाना आसान नहीं है; क्योंकि पद्मनन्दि नामके दसों विद्वान आचार्य-भट्टारकादि हो गए हैं और वीरनन्दि, श्रीनन्दि, सकलचन्द्र, माघनन्दि, और श्रीविजय जैसे नामोंके भी अनेक आचार्यादिक हुए हैं। इसीसे सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीने, अपने 'जैन साहित्य और इतिहास' में, इस ग्रंथके समयनिर्णयको कठिन बतलाते हुए उसके विषयमें असमर्थता व्यक्त की है और अन्तको इतना कहकर ही सन्तोष धारण किया है कि—"फिर भी यह ग्रंथ हमारे अनुमानसे काफी प्राचीन है और उस समयका है जब प्राकृतमें ही ग्रंथरचना करनेकी प्रणाली अधिक थी, और जब संघ, गण आदि भेद अधिक रूढ नहीं हुए थे।" बादको उन्हें महामहोपाध्याय ओझाजीके 'राजपूतानेका इतिहास' द्वि० भागपरसे यह मालूम हुआ कि बारॉनगर जो वर्तमानमें कोटा राज्यके अन्तर्गत है वह पहले मेवाडके ही अन्तर्गत था और इसलिये मेवाड़ भी पारियात्र देशमें शामिल था, जिसे हेमचन्द्रकोषमें "उत्तरो विन्ध्यात्पारियात्र" इस वाक्यके अनुसार विन्ध्याचलके उत्तरमें बतलाया है। इस मेवाड़का एक गुहिलवंशी राजा शक्तिकुमार हुआ है, जिसका एक शिलालेख वैशाख सुदि १ वि० संवत् १०३४ का आहाडमें (उदयपुरके समीप) मिला है। अतः प्रेमीजीने अपने उक्त ग्रंथके परिशिष्टमें इस शक्तिकुमार और जम्बू-द्वीपप्रज्ञप्तिके उक्त सत्तिभूपालके एकत्वकी संभावना करते हुए अनिश्चितरूपमें लिखा है—"यदि इसी गुहिलवंशीय शक्तिकुमारके समयमें जंबूदीपपण्णत्तीकी रचना हुई हो, तो उसके कर्ता पद्मनन्दिका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दी मानना चाहिये।"

ऐसी वस्तुस्थितिमें अब मैं अपने पाठकोंको इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि भगवतीआराधनाकी 'विजयोदया' टीकाके कर्ता 'श्रीविजय' नामके एक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं, जिनका दूसरा नाम 'अपराजित' सूरि है। पं० आशाधरजीने, अपनी 'मूलाराधनादर्पण' नामकी टीकामें जगह जगह उन्हें 'श्रीविजयाचार्य' के नामसे उल्लेखित किया है और प्रायः इसी नामके साथ उनकी उक्त संस्कृत टीकाके वाक्योंको मतभेदादिके प्रदर्शनरूपमें उद्धृत किया है अथवा किसी गाथाके अमान्यतादि-विषयमें उनके इस नाम को पेश किया है[१]। श्रीविजयने अपनी उक्त टीका श्रीनन्दीगणीकी प्रेरणाको पाकर लिखी है। इधर यह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति भी एक श्रीनन्दि गुरुके निमित्त लिखी गई है और इसके कर्ता पद्मनन्दिने अपने शास्त्रगुरुके रूपमें श्रीविजयका नाम खासतौरसे कई बार उल्लेखित किया है। इससे बहुत संभव है कि दोनों 'श्रीविजय' एक हों और दोनों ग्रंथोंके निमित्त-

१ अनेकान्त वर्ष २ किरण १ पृ० ५७-६०।

भूत श्रीनन्दि गुरु भी एक ही हों। श्रीविजयने अपने गुरुका नाम बलदेव सूरि और प्रगुरु का चन्द्रनन्दि (महाकर्मप्रकृत्याचार्य) सूचित किया है और पद्मनन्दि अपने गुरुका नाम बलनन्दि और प्रगुरुका वीरनन्दि लिख रहे हैं। हो सकता है कि बलदेव और बलनन्दिका व्यक्तित्व भी एक हो और इस तरह श्रीविजय और पद्मनन्दि दोनो परस्परमे गुरुभाई हों जिनमे श्रीविजय ज्येष्ठ और पद्मनन्दि कनिष्ठ हों, और इस तरह पद्मनन्दिने श्रीविजयका उसी तरहसे गुरुरूपमें उल्लेख किया हो जिस तरह कि गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्रने इन्द्रनन्दि आदिका किया है, जो उन्हींके गुरु अभयनन्दिके बड़े शिष्योंमें थे। और दोनोंके प्रगुरुनामोंमे जो अन्तर है उसका कारण एकके अनेक गुरुओंका होना अथवा एक गुरुके अनेक नामोंका होना हो सकता है, जिनमेसे कोई भी अपनी इच्छानुसार चाहे जिस गुरु अथवा गुरुनामका उल्लेख कर सकता है, और ऐसा प्रायः होता आया है। यदि यह कल्पना ठीक हो तो फिर यह देखना चाहिये कि इस ग्रंथ और उसके कर्ता पद्मनन्दिका दूसरा समय क्या हो सकता है?

चन्द्रनन्दीका सबसे पुराना उल्लेख उनकी एक शिष्य-परम्पराके उल्लेख-सहित, श्रीपुरुषके दानपत्र अथवा नागमंगल ताम्रपत्रमें पाया जाता है[1] जो श्रीपुरके जिनालयके लिये शक संवत् ६९८ (वि० स० ८३३) मे लिखा गया है और जिसमे चन्द्रनन्दीके एक शिष्य कुमारनन्दी, कुमारनन्दीके शिष्य कीर्तिनन्दी और कीर्तिनन्दीके शिष्य विमलचन्द्र का उल्लेख है, और इससे चन्द्रनन्दीका समय शक संवत् ६३८ से कुछ पहलेका ही जान पड़ता है। बहुत संभव है कि उक्त श्रीविजय इन्हीं चन्द्रनन्दीके प्रशिष्य हों। यदि ऐसा है तो श्रीविजयका समय शक संवत् ६५८ के लगभग प्रारंभ होता है और तब जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति और उसके कर्ता पद्मनन्दिका समय शक संवत् ६७० अर्थात् वि० संवत् ८०५ के आसपासका होना चाहिये। उस समय पारियात्र देशके अन्तर्गत बारानगरका स्वामी कोई शक्ति या शान्ति नामका भूपाल (राजा) हुआ होगा, जिसका इतिहाससे पता चलाना चाहिये। और यह भी संभव है कि वह कोई बड़ा राजा न होकर बारानगरका जागीरदार (जमींदार) हो 'भूपाल' उसके नामका ही अश हो अथवा उसे टाईटिलके रूपमे प्राप्त हो और राजा या महाराजाके द्वारा सम्मानित होनेके कारण ही उसे 'नरवइसंपूजिओ' (नरपतिसंपूजित) विशेषण दिया गया हो। ऐसी हालतमे उसका नाम इतिहासमे मिलना ही कठिन है। कुछ भी हो, यह ग्रंथ अपने साहित्यादिकपरसे काफी प्राचीन मालूम होता है।

३९. **धर्मरसायन**—यह १९३ गाथाओंका ग्रथ है, सरल तथा सुबोध है और माणिकचन्द्रग्रथमालामे सस्कृत छायाके साथ प्रकट हो चुका है। इसमें धर्मकी महिमा, धर्म-अधर्मके विवेककी प्रेरणा, परीक्षा करके धर्मग्रहण करनेकी आवश्यकता, अधर्मका फल नरकादिकके दुःख, सर्वज्ञप्रणीत धर्मकी उपलब्धि न होनेपर चतुर्गतिरूप ससार-परिभ्रमण,

---

१ "अष्टानवत्युत्तरे षट्छतेषु शकवर्षेष्वतीतेष्वात्मानः प्रवर्द्धमान-विजयवीर्य-सवत्सरे पचशत्तमे प्रवर्त्तमाने मान्यपुरमधिवसति विजयस्कन्दावारे श्रीमूलमूलशरणाभिनन्दितनन्दिसंघान्वय एरेगित्तुर्नाम्नि गणे मूलिकलगच्छे स्वच्छतरगुणिकिरप्र(ण)तति-प्रल्हादित-सकललोकः चन्द्र इवापर' चन्द्रनन्दिनामगुरुरासीत्। तस्य शिष्यस्समस्तविबुधलोकपरिरक्षण-क्षमात्मशक्तिः परमेश्वरलालनीयमहिमाकुमारवद्वित्ति(ने)यः कुमारनन्दिनाममुनिपतिरभवत्। तस्यान्तेवासि-समधिगतसकलतत्त्वार्थ-समर्पित बुधसार्थ-सम्पत्सम्पादितकीर्तिः कीतिनन्द्याचार्यो नाम महामुनिस्समजनि। तस्य प्रियशिष्य शिष्यजनकमलाकर-प्रबोधनकः मिथ्याज्ञान-सततसनुतस्त्वसन्मानान्तक-सद्धर्म-व्योमावभासनभास्करः विमलचन्द्राचार्यस्समुदपादि। तस्य महर्षेधर्मोपदेशनया ....।"

(ताम्रपत्रका यह अश डा० ए० एन० उपाध्ये कोल्हापुरके सौजन्यसे प्राप्त हुआ है।)

सर्वज्ञोंकी परीक्षा, सर्वज्ञ-प्रणीत सागार तथा अनागार (गृहस्थ तथा मुनि) धर्मका संक्षिप्त स्वरूप और उसका फल-जैसे विषयोंका सामान्यतः वर्णन है। धर्मपरीक्षाकी आवश्यकताको जिन गाथाओं-द्वारा व्यक्त किया गया है उनमेंसे चार गाथाएँ नमूनेके तौरपर इस प्रकार हैं—

खीराइं जहा लोए सरिसाइं हवंति वण्ण-णामेण।
रसभेएण य ताइं वि णाणागुण-दोस-जुत्ताइं॥ ९॥
काइं वि खीराइं जए हवंति दुक्खावहाणि जीवाणं।
काइं वि तुट्ठि-पुट्ठिं करंति वरवण्णमारोग्गं॥ १०॥
धम्मा य तहा लोए अणेयभेया हवंति णायव्वा।
णामेण समा सव्वे गुणेण पुण उत्तमा केई॥ ११॥
× × × ×
तम्हा हु सव्व धम्मा परिक्खियव्वा णरेण कुसलेण।
सो धम्मो गहियव्वो जो दोसेहिं विवज्जिओ विमलो॥ १४॥

इनमे बतलाया है कि 'जिस प्रकार लोकमे विविध प्रकारके दूध वर्ण और नामकी दृष्टिसे समान होते हैं, परन्तु रसके भेदसे वे नाना प्रकारके गुण-दोषोंसे युक्त रहते हैं। कोई दूध तो उनमेंसे जीवोंको दुखकारी होते हैं और कोई दूध तुष्टि-पुष्टि तथा उत्तम वर्ण और आरोग्य प्रदान करते हैं। उसी प्रकार धर्म भी लोकमे अनेक प्रकारके होते हैं, धर्म-नामसे सब समान हैं, परन्तु गुणकी अपेक्षा कोई उत्ताम होते हैं, और कोई दुःखमूलकादि दूसरे प्रकारके। अतः कुशल मनुष्यको चाहिये कि सभी धर्मोंकी परीक्षा करके उस धर्मको ग्रहण करे जो दोषोंसे विवर्जित निर्मल हो।'

(इसके अनन्तर लिखा है कि 'जिस धर्ममे जीवोंका वध, असत्यभाषण, परद्रव्य-हरण, परस्त्रीसेवन, सन्तोषरहित बहुआरम्भ-परिग्रह-ग्रहण, पंच उदम्बर फल तथा मधु-मांसका भक्षण, दम्भधारण और मदिरापान विधेय है वह धर्म भी यदि धर्म है, तो फिर अधर्म अथवा पाप कैसा होगा? और ऐसे धर्मसे यदि स्वर्ग मिलता है तो फिर नरक कौनसे कर्म से जाना होगा? अर्थात् जीवोंका वधादिक ही अधर्म है—पाप कर्म है—और वैसे कर्मोंका फल ही नरक है।')

इस ग्रंथके कर्ता पद्मनन्दिमुनि हैं परन्तु अनेकानेक पद्मनन्दि-मुनियोंमेंसे ये पद्मनन्दि कौनसे हैं, इसकी ग्रंथपरसे कोई उपलब्धि नहीं होती; क्योंकि ग्रंथकारने अपने तथा अपने गुरु-आदिके विषयमे कुछ भी नहीं लिखा है। इस गुरु-नामादिके उल्लेखाऽभाव और भाषासाहित्यकी दृष्टिमे यह ग्रंथ उन पद्मनन्दि आचार्यकी तो कृति मालूम नहीं होता जो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके कर्ता हैं।

४०. गोम्मटसार और नेमिचन्द्र—'गोम्मटसार' जैनसमाजका एक बहुत ही सुप्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रंथ है, जो जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड नामके दो बड़े विभागोंमे विभक्त है और वे विभाग एक प्रकारसे अलग-अलग ग्रंथ भी समझे जाते हैं, अलग-अलग मुद्रित भी हुए हैं और इसीसे वाक्यसूचीमे उनके नामकी (गो० जी०, गो० क० रूपसे) स्पष्ट सूचना साथमे करदी गई है। जीवकाण्डकी अधिकार-संख्या २२ तथा गाथा-संख्या ७३३ है और कर्मकाण्ड की अधिकार-संख्या ९ तथा गाथा-संख्या ९७२ पाई जाती है। इस समूचे ग्रंथका दूसरा नाम 'पञ्चसंग्रह' है, जिसे टीकाकारोंने अपनी टीकाओंमे व्यक्त किया है। यद्यपि यह ग्रंथ प्रायः संग्रहग्रंथ है, जिसमे शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियोंसे सैद्धान्तिक विषयोंका संग्रह किया गया है, परन्तु विषयके संकलनादिकमे यह अपनी खास विशेषता रखता है और

इसमे जीव तथा कर्म-विषयक करणानुयोगके प्राचीन ग्रथोंका अच्छा सुन्दर सार खींचा गया है। इसीसे यह विद्वानोंको बड़ा ही प्रिय तथा रुचिकर मालूम होता है; चुनाँचे प्रसिद्ध विद्वान् पंडित सुखलालजीने अपने द्वारा सम्पादित और अनुवादित चतुर्थ कर्मग्रथकी प्रस्तावनामें, श्वेताम्बरीय कर्मसाहित्यकी गोम्मटसारके साथ तुलना करते हुए और चतुर्थ कर्मग्रंथके सम्पूर्ण विषयको प्रायः जीवकाण्डमे वर्णित बतलाते हुए, गोम्मटसारकी उसके विषय-वर्णन, विषय-विभाग और प्रत्येक विषयके सुस्पष्ट लक्षणोकी दृष्टिसे प्रशंसा की है और साथ ही निःसन्देहरूपसे यह बतलाया है कि—"चौथे कर्मग्रथके पाठियोंके लिये जीव-काण्ड एक खास देखनेकी वस्तु है, क्योंकि इससे अनेक विशेष बातें मालूम हो सकती हैं।"

इस ग्रथका प्रधानतः मूलाधार आचार्य पुष्पदन्त-भूतबलिका षट्खण्डागम और वीरसेनकी धवला टीका तथा दिगम्बरीय प्राकृत पञ्चसग्रह नामके ग्रथ है। पचसंग्रहमे पाई जानेवाली सैंकड़ो गाथाएँ इसमे ज्यों-की-त्यो तथा कुछ परिवर्तनके साथ उद्धृत हैं और उनमेसे बहुत-सी गाथाएँ ऐसी भी हैं जो धवलामे ज्यों-की-त्यों अथवा कुछ परिवर्तनके साथ 'उक्तञ्च' आदि रूपसे पाई जाती है। साथ ही षट्खण्डागमके बहुतसे सूत्रोंका सार खींचा गया है। शायद षट्खण्डागमके जीवस्थानादि पॉच खण्डोके विषयका प्रधानतासे सार-सग्रह करनेके कारण ही इसे 'पञ्चसग्रह' नाम दिया गया हो।

(क) ग्रन्थके निर्माणमें निमित्त चामुण्डराय 'गोम्मट'—

यह ग्रंथ नेमिचन्द्र-द्वारा चामुण्डरायके अनुरोध या प्रश्नपर रचा गया है, जो गङ्गवशी राजा राचमल्लके प्रधानमन्त्री एव सेनापति थे, अजितसेनाचार्यके शिष्य थे और जिन्होंने श्रवणबेल्गोलमे बाहुबलि-स्वामीकी वह सुन्दर विशाल एव अनुपम मूर्ति निर्माण कराई है जो संसारके अद्भुत पदार्थोंमे परिगणित है और लोकमे गोम्मटेश्वर-जैसे नामोंसे प्रसिद्ध है।

चामुण्डरायका दूसरा नाम 'गोम्मट' था और यह उनका खास घरेलू नाम था, जो मराठी तथा कनडी भाषामे प्रायः उत्तम, सुन्दर, आकर्षक एव प्रसन्न करनेवाला जैसे अर्थोंमे व्यवहृत होता है.[1] और 'राय' (राजा) की उन्हें उपाधि प्राप्त थी। ग्रंथमें इस नामका उपाधि-सहित तथा उपाधि-विहीन दोनों रूपसे स्पष्ट उल्लेख किया गया है और प्रायः इसी प्रिय नामसे उन्हें आशीर्वाद दिया गया है, जैसा कि निम्न दो गाथाओंसे प्रकट है —

> अज्जज्जसेण-गुणगणसमूह-संधारि-अजियसेणगुरू ।
> भुवणगुरू जस्स गुरू सो राओ गोम्मटो जयउ ॥७३३॥
> जेण विणिम्मिय-पडिमा-वयणं सव्वट्ठसिद्धि-देवेहिं ।
> सव्व-परमोहि-जोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ ॥क०६६६॥

इनमें पहली गाथा जीवकाण्डकी और दूसरी कर्मकाण्डकी है। पहलीमे लिखा है कि 'वह राय गोम्मट जयवन्त हो जिसके गुरु वे अजितसेनगुरु हैं जो कि भुवनगुरु हैं और आचार्य आर्यसेनके गुण-गण-समूहको सम्यक् प्रकार धारण करने वाले—उनके वास्तविक शिष्य—हैं।' और दूसरी गाथामे बतलाया है कि 'वह 'गोम्मट' जयवन्त हो जिसकी निर्माण कराई हुई प्रतिमा (बाहुबलीकी मूर्ति) का मुख सर्वार्थसिद्धिके देवो और सर्वावधि तथा परमावधि ज्ञानके धारक योगियों-द्वारा भी (दूरसे ही) देखा गया है।'

चामुण्डरायके इस 'गोम्मट' नामके कारण ही उनकी बनवाई हुई बाहुबलीकी मूर्ति 'गोम्मटेश्वर' तथा 'गोम्मटदेव' जैसे नामोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई है, जिनका अर्थ है गोम्मट-का ईश्वर, गोम्मटका देव। और इसी नामकी प्रधानताको लेकर ग्रन्थका नाम 'गोम्मटसार' दिया गया है, जिसका अर्थ है 'गोम्मटके लिये खींचा गया पूर्वके (षट्खण्डागम तथा

१ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण ३, ४ में डा० ए० एन० उपाध्येका 'गोम्मट' नामक लेख।

धवलादि) ग्रन्थोंका सार ।' ग्रन्थको 'गोम्मटसंग्रहसूत्र' नाम भी इसी आशयको लेकर दिया गया है, जिसका उल्लेख कर्मकाण्डकी निम्न गाथामें पाया जाता है:—

गोम्मट-संगहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य ।
गोम्मटराय-विणिम्मिय-दक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥९६८॥

इस गाथामें उन तीन कार्यों का उल्लेख है और उन्हींका जयघोष किया गया है जिनके लिये गोम्मट उर्फ चामुण्डरायकी खास ख्याति है और वे हैं—१ गोम्मटसंग्रहसूत्र, २ गोम्मटजिन और ३ दक्षिणकुक्कुटजिन । ('गोम्मटसंग्रहसूत्र' गोम्मटके लिये संग्रह किया हुआ 'गोम्मटसार' नामका शास्त्र है, 'गोम्मटजिन' पदका अभिप्राय श्रीनेमिनाथकी उस एक हाथ-प्रमाण इन्द्रनीलमणिकी प्रतिमासे है जिसे गोम्मटरायने बनवाकर गोम्मट-शिखर अर्थात् चन्द्रगिरि पर्वतपर स्थित अपने मन्दिर (वस्ति) में स्थापित किया था और जिसकी बाबत यह कहा जाता है कि वह पहले चामुण्डराय-वस्तिमें मौजूद थी परन्तु बादको मालूम नहीं कहाँ चली गई, उसके स्थान पर नेमिनाथकी एक दूसरी पाँच फुट ऊंची प्रतिमा अन्यत्रसे लाकर विराजमान की गई है और जो अपने लेखपरसे एचनके बनवाए हुए मन्दिरकी मालूम होती है। और 'दक्षिण-कुक्कुट-जिन' बाहुबलीकी उक्त सुप्रसिद्ध विशाल-मूर्तिका ही नामान्तर है. जिस नामके पीछे कुछ अनुश्रुति अथवा कथानक है और उसका सार इतना ही है कि उत्तर-देश पौदनपुरमें भरतचक्रवर्तीने बाहुबलीकी उन्हींकी शरीरा-कृति-जैसी मूर्ति बनवाई थी, जो कुक्कुट-सर्पोंसे व्याप्त हो जानेके कारण दुर्लभ-दर्शन हो गई थी। उसीके अनुरूप यह मूर्ति दक्षिणमें विन्ध्यगिरिपर स्थापित की गई है और उत्तरकी मूर्तिसे भिन्नता बतलानेके लिये ही इसको 'दक्षिण' विशेषण दिया गया है। अस्तु; इस गाथापरसे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि 'गोम्मट' चामुण्डरायका खास नाम था और वह संभवतः उनका प्राथमिक अथवा घरू बोलचालका नाम था। कुछ अर्से पहले आमतौरपर यह समझा जाता था कि गोम्मट' बाहुबलीका ही नामान्तर है और उनकी उक्त असाधारण मूर्तिका निर्माण करानेके कारण ही चामुण्डराय 'गोम्मट' तथा 'गोम्मटराय' नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं । चुनाँचे पं० गोविन्द पै जैसे कुछ विद्वानोंने इसी बातको प्रकारान्तरसे पुष्ट करनेका यत्न भी किया है, परन्तु डाक्टर ए० एन० उपाध्येने अपने 'गोम्मट' नामक लेखमें[1] उनकी सब युक्तियोंका निराकरण करते हुए, इस बातको बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि गोम्मट' बाहुबलीका नाम न होकर चामुण्डरायका ही दूसरा नाम था और उनके इस नामके कारण ही बाहुबलीकी मूर्ति 'गोम्मटेश्वर जैसे नामोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई है । इस मूर्तिके निर्माणसे पहले बाहुबलीके लिये 'गोम्मट' नामकी कहींसे भी उपलब्धि नहीं होती। बादको कारकल आदिमें बनी हुई मूर्तियोंको जो 'गोम्मटेश्वर' जैसा नाम दिया गया है उसका कारण इतना ही जान पड़ता है कि वे श्रवणबेल्गोलकी इस मूर्तिकी नकल-मात्र हैं और इसलिये श्रवणबेल्गोलकी मूर्तिके लिये जो नाम प्रसिद्ध हो गया था वही उनको भी दिया जाने लगा। अस्तु।)

चामुण्डरायने अपना त्रेसठ शलाकापुरुषोंका पुराण-ग्रंथ, जिसे 'चामुण्डरायपुराण' भी कहते हैं शक संवत् ९०० (वि० सं० १०३५) में बनाकर समाप्त किया है, और इसलिये उनके लिये निर्मित गोम्मटसारका सुनिश्चित समय विक्रमकी ११वीं शताब्दी है।

(ख) ग्रन्थकार और उनके गुरु—

गोम्मटसार ग्रन्थके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र 'सिद्धान्त-चक्रवर्ती' कह-लाते थे । चक्रवर्ती जिस प्रकार चक्रसे छह खण्ड पृथ्वीकी निर्विघ्न साधना

१ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ कि० ३, ४ पृ० २२९, २९३।

करके—उसे स्वाधीन बनाकर—चक्रवर्तिपदको प्राप्त होता है उसी प्रकार मति-चक्रसे षट्खण्डागमकी साधना करके आप सिद्धान्त-चक्रवर्तीके पदको प्राप्त हुए थे, और इसका उल्लेख उन्होने स्वयं कर्मकाण्डकी गाथा ३६७मे किया है[1]। आप अभयनन्दी आचार्यके शिष्य थे, जिसका उल्लेख आपने इस ग्रंथमे ही नहीं किन्तु अपने दूसरे ग्रंथों—त्रिलोकसार और लब्धिसारमे भी किया है। साथ ही, वीरनन्दी तथा इंद्रनन्दीको भी आपने अपना गुरु लिखा है[2]। ये वीरनन्दी वे ही जान पड़ते हैं जो 'चन्द्रप्रभ-चरित्र' के कर्ता हैं; क्योकि उन्होने अपनेको अभयनन्दीका ही शिष्य लिखा है[3]। परन्तु ये इन्द्रनन्दी कौनसे हैं ? इसके विषयमें निश्चयपूर्वक अभी कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योकि इन्द्रनन्दी नामके अनेक आचार्य हुए हैं—जैसे १ छेदपिंड नामक प्रायश्चित्त-शास्त्रके कर्ता, २ श्रुतावतारके कर्ता, ३ ज्वालामालिनीकल्पके कर्ता, ४ नीतिसार अथवा समयभूषणके कर्ता, ५ संहिताके कर्ता। इनमेसे पिछले दो तो हो नहीं सकते; क्योकि नीतिसारके कर्ताने उन आचार्योंकी सूचीमे जिनके रचे हुए शास्त्र प्रमाण हैं नेमिचंद्रका भी नाम दिया है, इसलिये वे नेमिचद्रके बाद हुए हैं और इद्रनन्दि संहितामे वसुनन्दीका भी नामोल्लेख है जिनका समय विक्रमकी प्रायः १२वीं शताब्दी है और इसलिये वे भी नेमिचद्रके बाद हुए हैं। शेषमेसे प्रथम दो ग्रथोके कर्ताओने न तो अपने गुरुका नाम दिया है और न ग्रंथका रचनाकाल ही, इससे उनके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, ज्वालामालिनीकल्पके कर्ता इंद्रनन्दिने ग्रंथ का रचनाकाल शक संवत् ८६१ (वि० स० ६६६) दिया है और यह समय नेमिचंद्रके गुरु इन्द्रनन्दीके साथ बिल्कुल सङ्गत बैठता है, परन्तु इस कल्पके कर्ता इंद्रनन्दीने अपनेको उन बप्पनन्दीका शिष्य बतलाया है जो वासवनन्दीके शिष्य और इन्द्रनन्दी (प्रथम) के प्रशिष्य थे। बहुत संभव है ये इन्द्रनन्दी बप्पनन्दीके दीक्षित हों और अभयनन्दीसे उन्होंने सिद्धान्तशास्त्रकी शिक्षा प्राप्त की हो, जो उस समय सिद्धान्त-विषयके प्रसिद्ध विद्वान थे, क्योंकि प्रशस्ति[4] मे बप्पनन्दीकी पुराण-विषयमे अधिक ख्याति लिखी है—सिद्धात विषयमे नहीं—

---

१ जह चक्केण य चक्की छक्खंड साहिय अविग्घेण ।
तह मइ-चक्केण मया छक्खंड साहिय सम्मं ॥३६७॥

२ जस्स य पायपसाएणणंतससारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरु ॥४३६॥
णमिऊण अभयणंदिं सुदसागरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥ कर्म० ७८५॥
इदि णेमिचन्द-मुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण ।
रइओ तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया ॥ त्रि० १०१८॥
वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण ।
दसण-चरित्त-लद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण ॥लब्धि० ४४८॥

३ मुनिजननुतपादः प्रास्तमिथ्याप्रवादः, सकलगुणसमृद्धस्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः ।
अभवदभयनन्दी जैनधर्माभिनन्दी स्वमहिमजितसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धुः ॥३॥
भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमतेर्भास्वत्समानत्विषः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः श्रीवीरनन्दीत्यभूत् ।
स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवनप्रख्यातकीर्तेः सता
ससत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो वाचः कुतर्काङ्कुशा ॥ ४ ॥
—चन्द्रप्रभचरित-प्रशस्ति ।

४ आसीदिन्द्रादिदेवस्तुतपदकमलश्रीन्द्रनन्दिर्मुनीन्द्रो
नित्योत्सर्प्पच्चरित्रो जिनमत जलधिर्धौतपापोपलेपः ।

और शिष्य इन्द्रनन्दी (द्वितीय) को 'जैनसिद्धान्तवार्धौ विमलितहृदयः' प्रकट किया है। जिससे सिद्धांत विषयमें उनके कोई खास गुरु होने भी चाहियें। इसके सिवाय, ज्वालिनी-कल्पके कर्ता इन्द्रनन्दीने जिन दो आचार्योंके पाससे इस मन्त्रशास्त्रका अध्ययन किया है उनमें एक नाम गुणनन्दी[1] का भी है, जो सम्भवतः वे ही जान पडते हैं जो चन्द्रप्रभचरित के अनुसार अभयनन्दीके गुरु थे, और इस तरह इन्द्रनन्दीके दीक्षा-गुरु वप्पनन्दी, मन्त्रशास्त्र-गुरु गुणनन्दी और सिद्धान्तशास्त्र-गुरु अभयनन्दी हो जाते हैं। यदि यह सब कल्पना ठीक है तो इससे नेमिचंद्रके गुरु इन्द्रनन्दीका ठीक पता चल जाता है, जिन्हें गोम्मटसार (क० ७८५) में श्रुतसागरका पारगामी लिखा है।

नेमिचन्द्रने अपने एक गुरु कनकनन्दि भी लिखे हैं और बतलाया है कि उन्होंने इन्द्रनन्दिके पाससे सकल सिद्धान्तको सुनकर 'सत्वस्थान' की रचना की है[2]। यह सत्वस्थान ग्रंथ 'विस्तरसत्वत्रिभंगी' के नामसे आराके जैन-सिद्धान्त-भवनमें मौजूद है, जिसका मैंने कई वर्ष हुए अपने निरीक्षणके समय नोट ले लिया था। पं० नाथूरामजी प्रेमीने इन कनक-नन्दीको भी अभयनन्दीका शिष्य बतलाया है,[3] परन्तु यह ठीक मालूम नहीं होता, क्योंकि कनकनन्दीके उक्त ग्रंथपरसे इसकी कोई उपलब्धि नहीं होती—उसमें साफतौरपर इन्द्रनन्दी को ही गुरुरूपसे उल्लेखित किया है। इस सत्वस्थान ग्रन्थको नेमिचन्द्रने अपने गोम्मटसारके तीसरे सत्वस्थान अधिकारमें प्रायः ज्यों-का-त्यों अपनाया है—(आराकी उक्त प्रतिके अनुसार

प्रज्ञानावामलोन्नतप्रगुणगणभृतोत्कीर्णविस्तीर्णसिद्धा—
न्ताम्भोराशिस्त्रिलोकाब्जाम्बुजवनविचरत्सद्यशोराजहंसः ॥ १ ॥
यद्वृत्तं दुरितारिसैन्यहनने चण्डासिधारायितम्
चित्तं यस्य शरत्सरत्सलिलवत्स्वच्छं सदा शीतलम् ।
कीर्तिः शारदकौमुदी शशिभृतो ज्योत्स्नेव यस्याऽमला
स श्रीवासवनन्दिसन्मुनिपतिः शिष्यस्तदीयो भवेत् ॥ २ ॥
शिष्यस्तस्य महात्मा चतुरनुयोगेषु चतुरमतिविभवः ।
श्रीवप्पणंदिगुरुरिति बुधनिषेवितपदाब्जः ॥ ३ ॥
लोके यस्य प्रसादादजनि मुनिजनस्तत्पुराणार्थवेदी
यस्याशास्तम्भमूर्धन्यतिविमलयशःश्रीवितानो निबद्धः ।
कालास्ता येन पौराणिककविवृषभा द्योतितास्तत्पुराण—
व्याख्यानाद् वप्पणंदिप्रथितगुणगणस्तस्य किं वर्ण्यतेऽत्र ॥४॥
शिष्यस्तस्येन्द्रनंदिर्विमलगुणगणोद्दामधामाभिरामः
प्रज्ञातीक्ष्णास्त्र-धारा-विदलित-बहलाऽज्ञानवल्लीवितानः ।
जैने सिद्धान्तवार्धौ विमलितहृदयस्तेन सद्ग्रंथतोऽयम्
हेलाचार्योदितार्थो व्यरचि निरुपमो ज्वालिनीमन्त्रवादः ॥ ५ ॥
अष्टशतस्यै(सै)कषष्ठिप्रमाणशकवत्सरेष्वतीतेषु ।
श्रीमान्यखेटकटके पर्वण्यक्षयतृतीयायाम् ॥

1 कन्दर्पेण ज्ञातं तेनाऽपि स्वसुतं निर्विशेषाय ।
गुणनंदिश्रीमुनये व्याख्यातं सोपदेशं तत् ॥ २ ॥
पार्श्वे तयोर्द्वयोरपि तच्छास्त्रं ग्रन्थतोऽर्थतश्चापि ।
मुनिनेन्द्रनन्दिनाम्ना सम्यगधीतं विशेषेण ॥ २५ ॥

2 वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयल-सिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥क०३९६॥

3 देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० २९६ ।

प्रायः ८ गाथाएँ छोड़ी गई हैं, शेष सब गाथाओंको, जिनमें मंगलाचरण और अन्तकी गाथाएँ[1] भी शामिल हैं, ग्रंथका अंग बनाया गया है और कहीं-कहीं उनमें कुछ क्रमभेद भी किया गया है। यहाँ मैं इस विषयका कुछ विशेष परिचय अपने पाठकोंको दे देना चाहता हूँ, जिससे उन्हें इस ग्रंथकी संग्रह-प्रकृतिका कुछ विशेष बोध हो सके :—

रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला संवत् १६६६ के संस्करणमें इस अधिकारकी गाथासंख्या ३५८ से ३६७ तक ४० दी है, जबकि आराकी उक्त ग्रंथ-प्रतिमें वह ४८ या ४६ पाई जाती है[2]। आठ गाथाएं जो उसमें अधिक हैं अथवा गोम्मटसारमे जिन्हें छोड़ा गया है वे निम्न प्रकार हैं। गोम्मटसारकी जिस गाथाके बाद वे उक्त ग्रंथ-प्रतिमें उपलब्ध हैं उसका नम्बर शुरूमे कोष्टकके भीतर दे दिया गया है :—

(३६०) घाई तियउज्जोवं थावर वियलं च ताव एइंदी।
णिरय-तिरिक्ख दु सुहुमं साहरणे होइ तेसट्ठी ॥ ४ ॥

(३६४) णिरयादिसु भुज्जेगं बंधुदगं बारि बारि दोण्णेत्थ
पुणरुत्तसमविहीणा आउगभंगा हु पज्जेव ॥ ६ ॥
णिरयतिरयाणु णरेइ पणहाउ(?) तिरियमणुयआऊ य
तेरिच्छिय-देवाऊ माणुस-देवाउ एगेगे ॥ १० ॥

(३७५) वध(बद्ध)देवाउगुवसमसद्दिट्ठी बंधिऊण आहा ।
सो चेव सासणे जादो तरिसं पुण बंध एक्को दु ॥ २२ ॥
तस्से वा बंधाउगठाणे भगा दु भुज्जमाणम्मि ।
मणुवाउगम्मि एक्को देवेसुववणगे (?) विदियो ॥२३ ॥

(३७६) मणुवणिरयाउगे णरसुरआये (?) णिराणबंधम्मि ।
तिरयाऊण तिगिदरे मिच्छव्वणम्मि (?) भुज्जमणुसाऊ ॥२८॥

(३८०) पुव्वुत्तपणपणाउगभगा बंधस्स भुज्जमणुसाऊ ।
अण्णतियाऊसहिया तिगतिगचउणिरयतिरियआऊण ॥ ३० ॥

(३६०) विदियं तेरसबारमठाणं पुणरुत्तमिदि विहाय पुणो ।
दुसु सादेदरपयडी परियट्टणदो दुगदुगा भंगा ॥ ४१ ॥

उक्त ग्रन्थप्रतिकी गाथाएं न० १५, १६, १७ गोम्मटसारमें क्रमशः नं० ३६८, ३६६, ३७० पर पाई जाती है; परन्तु गाथा न० १४ को ३७१ नम्बरपर दिया है, और इस तरह गोम्मटसारमे क्रमभेद किया गया है। इसी तरह २५, २६, नं० की गाथाओंको भी क्रमभेद करके नं० ३७८, ३७७ पर दिया है।

---

[1] अन्तकी दो गाथाएँ वे ही हैं जिनमेंसे एकमें इन्द्रनन्दीसे सकल-सिद्धान्तको सुनकर कनकनन्दीके द्वारा सत्वस्थानके रचे जानेका उल्लेख है और दूसरी 'जह चक्केण य चक्की' नामकी वह गाथा है जिसमें चक्री की तरह षट्खण्ड साधनेकी बात है और जिससे कनकनन्दीका भी 'सिद्धातचक्रवर्ती' होना पाया जाता है—आराकी उक्त प्रतिमें ग्रन्थको 'श्रीकनकनन्दि-सैद्धान्तचक्रवर्तिकृत' लिखा भी है। ये दोनों गाथाएं कर्मकाण्डकी गाथा न० ३६६ तथा ३६७ के रूपमें पीछे उद्धृत की जा चुकी हैं।

[2] सख्याङ्क ४६ दिये हैं परन्तु गाथाए ४८ हैं इससे या तो एक गाथा यहाँ छूट गई है और या सख्याङ्क गलत पड़े हैं। हो सकता है कि णिरयाऊ-तिरियाऊ' नामकी वह गाथा ही यहां छूट गई हो जो आगे उल्लेखित एक दूसरी प्रतिमें पाई जाती है।

आराके उक्त भवनमे एक दूसरी प्रति भी है, जिसमे तीन गाथाएं और अधिक हैं और वे इस प्रकार हैं:—

तित्थसमे णिधिमिच्छे वद्धाउसि माणुमीगदी एग ।
मणुवणिरयाऊ भंगु पज्जत्ते भुञ्जमाणणिरयाऊ ॥ १५ ॥
णिरयदुगं तिरियदुगं विगतिगचउरक्खजादि थीणतियं ।
उज्जोवं आदाविगि साहारण सुहुम थावरयं ॥ ३९ ॥
मज्झड कसाय संढं थीवेदं हस्सपमुहछक्कमाया ।
पुरिसो कोहो माणो अणियट्टी भागहीणपयडीओ ॥ ४० ॥

(हालमे उक्त सत्वस्थानकी एक प्रति संवत् १८०७ की लिखी हुई मुझे पं० परमानन्दजीके पाससे देखनेको मिली जो दूसरे त्रिभंगी आदि ग्रथोंके साथ सवाई जयपुरमें लिखी गई एक पत्राकार प्रति है और जिसके अन्तमे ग्रन्थका नाम 'विशेषसत्तात्रिभंगी' दिया है) इस ग्रथप्रतिमे गाथा-संख्या कुल ४१ है, अतः इस प्रतिके अनुसार गोम्मटसारके उक्त अधिकारमे केवल एक गाथा ही छूटी हुई है और वह 'णारकछक्कुव्वेल्ले' नामका गाथा (क० ३७०) के अनन्तर इस प्रकार है.—

णिरियाऊ तिरयाऊ णिरिय-णराऊ तिरय-मणुवायु ।
तेरंचिय-देवाऊ माणस-देवाउ एगेगं ॥ १५ ॥

शेष गाथाओका क्रम आराकी प्रतिके अनुरूप ही है, और इससे गोम्मटसारमे किये गये क्रमभेदकी बातको और भी पुष्टि मिलती है।

यहाँ पर मैं इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि सत्वस्थान अथवा सत्व (सत्ता)त्रिभंगीकी उक्त प्रतियोंमें जो गाथाओंकी न्यूनाधिकता पाई जाती है उनके तीन कारण हो सकते हैं—(१) एक तो यह कि, मूलमे आचार्य कनकनन्दीने ग्रथको ४० या ४१ गाथा-जितना ही निर्मित किया हो, जिसकी कापियाँ अन्यत्र पहुंच गई हों और बादको उन्होंने उसमे कुछ गाथाएं और बढ़ाकर उसे 'विस्तरसत्वत्रिभंगी' का रूप उसी प्रकार दिया हो जिस प्रकार द्रव्यसंग्रहके कर्ता नेमिचन्द्रने, टीकाकार ब्रह्मदेवके कथनानुसार, अपनी पूर्व-रचित २६ गाथाओंमे ३२ गाथाओकी वृद्धि करके उसे वर्तमान द्रव्यसग्रहका रूप दिया है[1]। और यह कोई अनोखी अथवा असभव बात नहीं है, आज भी ग्रन्थकार अपने ग्रथोंके सशोधित और परिवर्धित संस्करण निकालते हुए देखे जाते हैं। (२) दूसरा यह कि बादको अन्य विद्वानोने अपनी-अपनी प्रतियोंमे कुछ गाथाओंको किसी तरह बढ़ाया अथवा प्रक्षिप्त किया हो। परन्तु इस वाक्यसूचीके दूसरे किसी भी मूल ग्रथमें उक्त बारह गाथाओमेसे कोई गाथा उपलब्ध नहीं होती, यह बात खास तौरसे नोट करने योग्य है[2]। और (३) तीसरा कारण यह कि प्रतिलेखकोंके द्वारा लिखते समय कुछ गाथाए छूट गई हों, जैसा कि बहुधा देखनेमे आता है।

(ग) प्रकृतिसमुत्कीर्तन और कर्मप्रकृति—

इस ग्रंथके कर्मकाण्डका पहला अधिकार 'पयडिसमुक्कित्तण' (प्रकृतिसमुत्कीतन) नामका है. जिसमे मुद्रित प्रतिके अनुसार ८६ गाथाएं पाई जाती हैं। इस अधिकारको जब

१ देखो, ब्रह्मदेव-कृत टीकाकी पीठिका।

२ सूचीके समय पृथक्रूपमें इस सत्वत्रिभगी ग्रंथकी कोई प्रति अपने सामने नहीं थी और इसीसे इसके वाक्योंको सूचीमें शामिल नहीं किया जा सका। उन्हें अब यथास्थान बढाया जा सकता है।

पढ़ते हैं तो अनेक स्थानों पर ऐसा महसूस होता है कि वहाँ मूलग्रंथका कुछ अंश त्रुटित है—छूट गया अथवा लिखनेसे रह गया है—, इसीसे पूर्वाऽपर कथनोकी सङ्गति जैसी चाहिये वैसी ठीक नहीं बैठती और उससे यह जाना जाता है कि यह अधिकार अपने वर्तमान रूपमें पूर्ण अथवा सुव्यवस्थित नहीं है। अनेक शास्त्र-भंडारोंमे कर्मप्रकृति (कम्म-पयडी), प्रकृतिसमुत्कीर्तन, कर्मकाण्ड अथवा कर्मकाण्डका प्रथम अंश जैसे नामोंके साथ एक दूसरा अधिकार (प्रकरण) भी पाया जाता है, जिसकी सैकड़ो प्रतियाँ उपलब्ध हैं और जो उस अधिकारके अधिक प्रचारका द्योतन करती हैं। साथ ही उसपर टीका-टिप्पण भी उपलब्ध है[1] और उनपरसे उसकी गाथा-संख्या १६० जानी जाती है तथा ग्रंथ-कर्ताका नाम 'नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती' भी उपलब्ध होता है। उसमे ७५ गाथाएँ ऐसी हैं जो इस अधिकारमे नहीं पाई जातीं। उन बढ़ी हुई गाथाओंमेसे कुछ परसे उन अंशोंकी पूर्ति हो जाती है जो त्रुटित समझे जाते हैं और शेषपरसे विशेष कथनोकी उपलब्धि होती है। और इसलिये पं० परमानन्दजी शास्त्रीने 'गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी त्रुटि-पूर्ति' नामका एक लेख लिखा, जो अनेकान्त वर्ष ३ किरण ८-९ में प्रकाशित हुआ है और उसके द्वारा त्रुटियोंको तथा कर्मप्रकृतिकी गाथाओंपरसे उनकी पूर्तिको दिखलाते हुए यह प्रेरणा की कि कर्मप्रकृति की उन बढ़ी हुई गाथाओंको कर्मकाण्डमें शामिल करके उसकी त्रुटिपूर्ति कर लेनी चाहिये। यह लेख जहाँ पण्डित कैलाशचन्द्रजी आदि अनेक विद्वानोंको पसन्द आया वहाँ प्रो० हीरालालजी एम० ए० आदि कुछ विद्वानोंको पसन्द नहीं आया, और इसलिये प्रोफेसर साहबने इसके विरोधमे पं० फूलचन्दजी शास्त्री तथा पं० हीरालालजी शास्त्रीके सहयोगसे एक लेख लिखा, जो 'गो० कर्मकाण्डकी त्रुटिपर विचार' नामसे अनेकान्तके उसी वर्षकी किरण ११ मे प्रकट हुआ है और जिसमें यह बतलाया गया है कि 'उन्हें कर्मकाण्ड अधूरा मालूम नहीं होता, न उससे उतनी गाथाओंके छूट जाने व दूर पड जानेकी संभावना जँचती है और न गोम्मटसारके कर्ता-द्वारा ही कर्मप्रकृतिके रचित होनेके कोई पर्याप्त प्रमाण दृष्टिगोचर होये हैं, ऐसी अवस्थामे उन गाथाओको कमकाण्डमे शामिल कर देनेका प्रस्ताव बड़ा साहसिक प्रतीत होता है।' इसके उत्तरमे पं० परमानन्दजीने दूसरा लेख लिखा, जो अनेकान्तकी अगली १२ वीं किरणमे 'गो० कर्मकाण्डकी त्रुटि-पूर्तिके विचार पर प्रकाश' नामसे प्रकाशित हुआ है और जिसमे अधिकारके अधूरेपनको कुछ और स्पष्ट किया गया, गाथाओंके छूटनेकी संभावनाके विरोधका परिहार करते हुए प्रकारान्तरसे उनके छूटनेकी सभावनाको व्यक्त किया गया और टीका-टिप्पणके कुछ अंशोंको उद्धृत करके यह स्पष्ट करनेका यत्न किया गया कि उनमे ग्रन्थकाकर्ता 'नेमिचन्द्रसिद्धान्ती' 'नेमिचन्द्रसिद्धान्तदेव'

---

[1] (क) संस्कृत टीका भट्टारक ज्ञानभूषणने, जो कि मूलसंघी भ० लक्ष्मीचन्द्रके पट्टशिष्य वीरचन्द्रके वंशमें हुए हैं, सुमतिकीर्तिके सहयोगसे बनाई है और टीकामें मूल ग्रथका नाम 'कर्मकाण्ड' दिया है:—

तदन्वये दयाम्भोधिर्ज्ञानभूषो गुणाकर'।
टीकां हि कर्मकाण्डस्य चक्रे सुमतिकीर्तियुक् ॥ प्रशस्ति

(ख) दूसरी भाषा टीका पं० हेमराजकी बनाई हुई है, जिसकी एक प्रति सं० १८२९ की लिखी हुई तिगोडा जि० सागरके जैन मन्दिरमें मौजूद है।

(अनेकान्त वर्ष ३, किरण १२ पृष्ठ ७६४)

(ग) सटिप्पण-प्रति शाहगढ जि० सागरके सिंघीजीके मन्दिरमें सवत् १५२७ की लिखी हुई है, जिसकी अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है:—

"इति श्रीनेमिचन्द्र-सिद्धान्त-चक्रवर्ति-विरचित-कर्मकाण्डस्य प्रथमांशः समाप्तः। शुभं भवतु लेखक-पाठकयो: अथ सवत् १५२७ वर्षे माघवदि १४ रविवारे।"

(अनेकान्त वर्ष ३, कि० १२ पृ० ७६२-६४)

ही नहीं, किन्तु 'नेमिचन्द्र-सिद्धान्तचक्रवर्ती' भी लिखा है और ग्रन्थकी टीकामे 'कर्मकाण्ड' तथा टिप्पणमे 'कर्मकाण्डका प्रथम अंश' सूचित किया है। साथही, शाहगढ़ जि० सागरके सिंघईजीके मन्दिरकी एक ऐसी जीर्ण-शीर्ण प्रतिका भी उल्लेख किया है जिसमें कर्मकाण्डके शुरूके दो अधिकार तो पूरे हैं और तीसरे अधिकारकी ४० मेसे २५ गाथाएं हैं, शेष ग्रन्थ संभवतः अपनी अतिजीर्णताके कारण टूट-टाट कर नष्ट हुआ जान पड़ता है। इसके प्रथम अधिकारमे वे ही १६० गाथाएं पाई जाती हैं जो कर्मप्रकृतिमे उपलब्ध हैं और इस परसे यह घोषित किया गया कि कर्मप्रकृतिकी जिन गाथाओंको कर्मकाण्डमे शामिल करनेका प्रस्ताव रक्खा गया है वे पहलेसे कमकाण्डकी कुछ प्रतियोंमे शामिल हैं अथवा शामिल करली गई। इस लेखके प्रत्युत्तरमे प्रो० हीरालालजीन एक दूसरा लेख और लिखा, जो 'गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी त्रुटिपूर्ति-सम्बन्धी प्रकाशपर पुनः विचार' नामसे जैनसन्देश भाग ४ के अङ्क ३२ आदिमे प्रकाशित हुआ है और जिसमे अपनी उन्हीं बातोंको पुष्ट करने का यत्न किया गया है और गोम्मटसार तथा कर्मप्रकृतिके एककर्तृत्वपर अपना सन्देह कायम रक्खा गया है; परन्तु कल्पना अथवा संभावनाके सिवाय सन्देहका कोई खास कारण व्यक्त नहीं किया गया।

त्रुटिपूर्ति-सम्बन्धी यह चर्चा जब चल रही थी तब उससे प्रभावित होकर पं० लोकनाथजी शास्त्रीने मूडबिद्रीके सिद्धान्त-मन्दिरके शास्त्र-भण्डारमें, जहां धवलादिक सिद्धान्तग्रंथोंकी मूलप्रतियाँ मौजूद हैं, गोम्मटसारकी खोज की थी और उस खोजके नतीजेसे मुझे ३० दिसम्बर सन १६४० को सूचित करनेकी कृपा की थी, जिसके लिये मैं उनका बहुत आभारी हूँ। उनकी उस सूचनापरसे मालूम होता है कि उक्त शास्त्रभंडारमें गोम्मटसारके जीवकाण्ड और कर्मकाण्डकी मूलप्रति त्रिलोकसार और लब्धिसार-क्षपणासार सहित ताडपत्रोपर मौजूद है। पत्र-सख्या जीवकाण्डकी ३८, कर्मकाण्डकी ५३, त्रिलोकसार की ५१ और लब्धिसार-क्षपणासारकी ४१ है। ये सब ग्रंथ पूर्ण हैं और इनकी पद्य-सख्या क्रमशः ७३०, ८७२, १०१८, ८२० है[1]। ताडपत्रोंकी लम्बाई दो फुट दो इञ्च और चौडाई दो इञ्च है। लिपि 'प्राचीन कन्नड' है, और उसके विषयमे शास्त्रीजीने लिखा था—

"ये चारों ही ग्रंथोंमे लिपि बहुत सुन्दर एवं धवलादि सिद्धान्तोंकी लिपिके समान है। अतएव बहुत प्राचीन हैं। ये भी सिद्धान्त लिपि-कालीन ही होना चाहिये।"

साथ ही, यह भी लिखा था कि "कर्मकाण्डमे इस समय विवादस्थ कई गाथाएं (इस प्रतिमे) सूत्र रूपमे हैं" और वे सूत्र कर्मकाण्डके 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारकी जिस-जिस गाथाके बाद मूलरूपमे पाये जाते हैं उसकी सूचना साथमे देते हुए उनकी एक नकल भी उतार कर उन्होने भेजी थी। इस सूचनादिको लेकर मैंने उस समय 'त्रुटिपूर्ति-विषयक नई खोज' नामका एक लेख लिखना प्रारम्भ भी किया था परन्तु समयाभावादि कुछ कारणोंके वश वह पूरा नहीं हो सका और फिर दोनो विद्वानोकी ओरसे चर्चा समाप्त होगई, इससे उसका लिखना रह ही गया। अस्तु; आज मैं उन सूत्रोमेसे आदिके पाँच स्थलोंके सूत्रोंको, स्थल-विषयक सूचनादिके साथ नमूनेके तौरपर यहाँपर दे देना चाहता हूँ, जिससे पाठकोंको उक्त अधिकारकी त्रुटिपूर्तिके विषयमे विशेष विचार करनेका अवसर मिल सके

कर्मकाण्डकी २२वीं गाथामे ज्ञानावरणादि आठ मूल कर्मप्रकृतियोंकी उत्तरकर्म-प्रकृति-संख्याका ही क्रमशः निर्देश है—उत्तरप्रकृतियोंके नामादिक नहीं दिये और न आगे ही संख्यानुसार अथवा संख्याकी सूचनाके साथ उनके नाम दिये हैं। २३ वीं गाथामे क्रम-

---

१ रायचन्द्र-जैनशास्त्रमालामे प्रकाशित जीवकाण्डमे ७३३, कर्मकाण्डमें ६७२ और लब्धिसार-क्षपणासारमें ६४६ गाथा सख्या पाई जाती है। मुद्रित प्रतियोंमें कौन-कौन गाथाएं बढी हुई तथा घटी हुई हैं उनका लेखा यदि उक्त शास्त्रीजी प्रकट करें तो बहुत अच्छा हो।

प्राप्त ज्ञानावरणकी ५ प्रकृतियोंका कोई नामोल्लेख न करके और न उस विषयकी कोई सूचना करके दर्शनावरणकी ६ प्रकृतियोंमेसे स्त्यानगृद्धि आदि पाँच प्रकृतियोंके कार्यका निर्देश करना प्रारम्भ किया गया है, जो २५ वीं गाथा तक चलता रहा है। इन दोनो गाथाओंके मध्यमे निम्न गद्यसूत्र पाये जाते हैं, जिनमें ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीयकर्मों-की उत्तरप्रकृतियोंका संख्याके निर्देशसहित स्पष्ट उल्लेख है और जिनसे दोनों गाथाओंका सम्बन्ध ठीक जुड़ जाता है। इनमेंसे प्रत्येक सूत्र 'चेइ' अथवा 'चेदि'पर समाप्त होता है:—

"णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं [मोहणीयं] आउगं णामं गोदं अंतरायं चेइ। तत्थ णाणावरणीयं पचविहं आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जव-णाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेइ। दंसणावरणीयं णवविहं थीणगिद्धि णिद्दाणिद्दा पयलापयला णिद्दा य पयला य चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेइ।"

इन सूत्रोंकी उपस्थितिमे ही अगली तीन गाथाओमे जो स्त्यानगृद्धि आदिका क्रमशः निर्देश है वह सगत बैठता है, अन्यथा तत्त्वार्थसूत्रमे तथा षट्खण्डागमकी पयडिसमुक्कित्तणचूलियामे जब उनका भिन्नक्रम पाया जाता है तब उनके इस क्रमका कोई व्यवस्थापक नहीं रहता। अतः २३, २४, २५ नम्बरकी गाथाओंके पूर्व इन सूत्रोकी स्थिति आवश्यक जान पड़ती है।

२५वीं गाथामे दर्शनावरणीय कर्मकी ६ प्रकृतियोंमे 'प्रचला' प्रकृतिके उदयजन्य कार्यका निर्देश है। इसके बाद क्रमप्राप्त वेदनीय तथा मोहनीयकी उत्तर-प्रकृतियोंका कोई नामोल्लेख तक न करके एकदम २६ वीं गाथामे यह प्रतिपादन किया गया है कि मिथ्यात्व-द्रव्य (जो कि मोहनीय कर्मका दर्शनमोहरूप एक प्रधान भेद है) तीन भेदोंमे कैसे बँटकर तीन प्रकृतिरूप हो जाता है। परन्तु जब पहलेसे मोहनीयके दो भेदो और दर्शनमोहनीय के तीन उपभेदोंका कोई निर्देश नहीं तब वे तीन उपभेद कैसे हो जाते हैं यह बतलाना कुछ खटकता हुआ जरूर जान पड़ता है, और इसीसे दोनों गाथाओंके मध्यमें किसी अंश के त्रुटित होनेकी कल्पना की जाती है। मूडबिद्रीकी उक्त प्राचीन प्रतिमे दोनोंके मध्यमे निम्न गद्य-सूत्र उपलब्ध होते हैं, जिनसे उक्त त्रुटित अंशकी पूर्ति हो जाती है:—

"वेदनीयं दुविहं सादावेदणीयमसादावेदणीयं चेइ। मोहणीय दुविहं दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेइ। दसणमोहणीयं बंधादो एयविहं मिच्छत्तं, उदयं संतं पडुच्च तिविहं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं सम्मत्तं चेइ।"

उक्त दर्शनमोहनीयके भेदोंकी प्रतिपादक २६वीं गाथाके बाद चारित्रमोहनीयकी मूलोत्तर-प्रकृतियों, आयुकर्मकी प्रकृतियों और नामकर्मकी प्रकृतियोका कोई नाम निर्देश न करके २७वीं गाथामे एकदम किसी कर्मके १५ संयोगी भेदोंको गिनाया गया है, जो नाम-कर्मकी शरीर-बन्धनप्रकृतियोसे सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु वह कर्म कौनसा है और उसकी किन किन प्रकृतियोके ये सयोगी भेद होते हैं, यह सब उसपरसे ठीक तौरपर जाना नहीं जाता। और इसलिये वह अपने कथनकी सङ्गतिके लिये पूर्वमें किसी ऐसे कथनके अस्तित्वकी कल्पनाको जन्म देती है जो किसी तरह छूट गया अथवा त्रुटित हो गया है। वह कथन मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमे निम्न गद्यसूत्रोंमें पाया जाता है, जिससे उत्तर-कथनकी संगति ठीक बैठ जाती है, क्योंकि इनमे चारित्र-मोहनीयकी २८, आयुकी ४ और नामकर्मकी मूल ४२ प्रकृतियोका नामोल्लेख करनेके अनन्तर नामकर्मके जाति आदि भेदोंकी उत्तर-

प्रकृतियोंका उल्लेख करते हुए शरीर-बन्धन नामकर्मकी पाँच प्रकृतियों तक ही कथन किया गया है :—

"चारित्तमोहणीयं दुविहं कसायवेदणीयं णोकसायवेदणीयं चेइ । कसायवेदणीयं सोलसविहं खवणं पडुच्च अणंताणुबंधि-कोह-माण-माया-लोह अपच्चक्खाण-पच्चक्खाणावरण-कोह-माण-माया-लोहं कोह-संजलणं माण-संजलणं माया-संजलणं लोह-संजलणं चेइ । पक्कमदव्वं पडुच्च अणंताणुबंधि-लोह-कोह-माया-माणं संजलण-लोह-माया-कोह-माणं पच्चक्खाण-लोह-कोह-माया-माणं अपच्चक्खाण-लोह-कोह-माया-माण चेइ । णोकसायवेदणीयं णवविहं पुरिसित्थिणउसयवेद रदि-अरदि-हस्स-सोग-भय-दुगुंछा चेदि । आउगं चउविहं णिरयायुगं तिरिक्ख-माणुस्स-देवाउगं चेदि । णामं बादालीसं पिंडापिंडपयडिभेयेण गयि-जयि-सरीर-बंधण-संघाद-संठाण-अंगोवंग-संघडण-वण्ण-गंध- रस-फास-आणुपुव्वी-अगुरुगलहुगुवघाद-परघाद-उस्सास - आदाव-उज्जोद-विहायगयि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुभासुभ - सुभग - दुब्भग- सुस्सर - दुस्सर - आदेज्जाणादेज्ज-जसाजसकित्तिणिमिण-तित्थयरणामं चेदि । तत्थ गयिणाम चउविहं णिरयतिरिक्खगयिणाम मणुस-देवगयिणाम चेदि । जायिणाम पचविह एइंदिय-बीइंदिय तीइंदिय चउइंदिय-जायिणाम पंचिंदियजायिणामं चेदि । सरीरणाम पचविह ओरालिय वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइयसरीरणामं चेइ । सरीरबंधणणाम पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय-सरीरबंधणणामं चेइ ।"

२७वीं गाथाके बाद जो २८वीं गाथा है उसमे शरीरमे होने वाले आठ अङ्गोंके नाम देकर शेषको उपाङ्ग बतलाया है, परन्तु उस परसे यह मालूम नहीं होता कि ये अंग कौनसे शरीर अथवा शरीरोंमे होते है। पूर्वकी गाथा नं० २७ मे शरीरबन्धनसम्बन्धी १५ संयोगी भेदोकी सूचना करते हुए तैजस और कार्माण नामके शरीरोका तो स्पष्ट उल्लेख है शेष तीनका 'तिए' पदके द्वारा सकेतमात्र है, परन्तु उनका नामोल्लेख पहलेकी भी किसी गाथामे नहीं है, तब उन अंगो–उपाङ्गोको तैजस और कार्माणके अङ्ग–उपाङ्ग समझा जाय अथवा पाँचोमेसे प्रत्येक शरीरके अङ्ग–उपाङ्ग ? तैजस और कार्माण शरीरके अंगोपांग माननेपर सिद्धान्तका विरोध आता है; क्योकि सिद्धान्तमे इन दोनों शरीरोंके अंगोपाग नहीं माने गये हैं और इसलिये प्रत्येक शरीरके अंगोपांग भी उन्हें नहीं कहा जा सकता है। शेष तीन शरीरोंमेसे कौनसे शरीरके अङ्गोपाङ्ग यहाँ विवक्षित हैं यह सदिग्ध है । अतः गाथा नं० २८ का कथन अपने विपयमे अस्पष्ट तथा अधूरा है और उसकी स्पष्टता तथा पूर्तिके लिये अपने पूर्वमे किसी दूसरे कथनकी अपेक्षा रखता है । वह कथन मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमे दोनो गाथाओके मध्यमे उपलब्ध होनेवाले निम्न गद्यसूत्रोंमेसे अन्तके सूत्रमे पाया जाता है, जो उक्त २८वीं गाथाके ठीक पूर्ववर्ती है और जिसमे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरोंकी दृष्टिसे अङ्गोपाग नामकर्मके तीन भेद किये है, और इस तरह इन तीन शरीरोंमे ही अगोपांग होते हैं ऐसा निर्दिष्ट किया है :—

"सरीरसंघादणाम पचविहओरालिय वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय-सरीरसघादणाम चेदि । सरीरसंठाणणामकम्मं छव्विहं समचउरसंठाणणामं णग्गोद-परिमंडल-सादिय-

कुज्ज-वामण-हुंड-सरीसंठाणणामं चेदि। सरीर-अंगोवंगणामं तिविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहारसरीर-अगोवंगणामं चेदि।"

यहाँ पर इतना और जान लेना चाहिये कि २७वीं गाथाके पूर्ववर्ती गद्यसूत्रोंमें नामकर्मकी प्रकृतियोंका जो क्रम स्थापित किया गया है उसकी दृष्टिसे ही शरीरबन्धनादिके बाद २८वीं गाथामे अंगोपाङ्गका कथन किया गया है, अन्यथा तत्त्वार्थसूत्रकी दृष्टिसे वह कथन शरीरबन्धनादिकी प्रकृतियोके पूर्वमे ही होना चाहिये था; क्योंकि तत्त्वार्थसूत्रमें "शरीराङ्गोपांगनिर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-संहनन" इस क्रमसे कथन है। और इससे नामकर्म-विषयक उक्त सूत्रोंकी स्थिति और भी सुदृढ होती है।

(२८वीं गाथाके अनन्तर चार गाथाओं (नं० २६, ३०, ३१, ३२) में संहननोंका, जिनकी संख्या छह सूचित की है, वर्णन है अर्थात् प्रथम तीन गाथाओंमे यह बतलाया है कि किस किस संहननवाला जीव स्वर्गादि तथा नरकोमे कहाँ तक जाता अथवा मरकर उत्पन्न होता है और चौथी (नं० ३२) मे यह प्रतिपादन किया है कि 'कर्मभूमिकी स्त्रियोंके अन्तके तीन संहननोका ही उदय रहता है, आदिके तीन संहनन तो उनके होते ही नहीं, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।')परन्तु ठीक क्रम-आदिको लिये हुए छहों संहननोंके नामोंका उल्लेख नहीं किया—मात्र चार संहननोंके नाम ही इन गाथा-ओंपरसे उपलब्ध होते हैं—, जिससे 'आदिमतिगसंहडणं', 'अतिमतियसहडणस्स', 'तिदुगेगे सहडणे,' और 'पणचदुरेगसंहडणो' जैसे पदोका ठीक अर्थ घटित हो सकता। और न यही बतलाया है कि ये छहों संहनन कौनसे कर्मकी प्रकृतियाँ हैं—पूर्वकी किसी गाथापरसे भी छहोके नाम नामकर्मके नामसहित उपलब्ध नहीं होते। और इसलिये इन चारों गाथाओंका कथन अपने पूर्वमे ऐसे कथनकी माँग करता है जो ठीक क्रमादिके साथ छह संहननोके नामोल्लेखको लिये हुए हो। ऐसा कथन मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमे २८वीं गाथाके अनन्तर दिये हुए निम्न सूत्रपरसे उपलब्ध होता है:—

"सहडण णामं छव्विह वज्जरिसहणारायसहडणणामं वज्जणाराय-णाराय-अद्ध-णाराय-खीलिय-असपत्त-सेवट्टि सरीरसहडणणामं चेइ।"

यहाँ संहननोंके प्रथम भेदको अलग विभक्तिसे रखना अपनी खास विशेषता रखता है और वह ३०वीं गाथामे प्रयुक्त हुए 'इग' 'एग' शब्दोंके अर्थको ठीक व्यवस्थित करनेमे समर्थ है।

इसी तरह, मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमें, नामकर्मकी अन्य प्रकृतियोके भेदाऽभेदको लिये हुए तथा गोत्रकर्म और अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंको प्रदर्शित करनेवाले और भी गद्य-सूत्र यथास्थान पाये जाते हैं, जिन्हें स्थल-विशेषकी सूचनादिके विना ही मैं यहाँ, पाठकोंकी जानकारीके लिये उद्धृत कर देना चाहता हूँ—

"वण्णणाम पचविहं किण्ण-णील-रुहिर-पीद-सुक्किल-वण्णणाम चेदि। गंधणामं दुविह सुगध-दुगध-णामं चेदि। रसणामं पंचविहं तित्त-कडु-कसायंबिल-महुर-रसणाम चेइ। फासणाम अट्ठविह कक्कड-मउगगुरुलहुग-रुक्ख-सणिद्ध-सीदुसुण-फासणाम चेदि। आणु-पुव्वीणामं चउविहं णिरय-तिरक्खगाय-पाओग्गाणुपुव्वीणाम मणुस-देवगयि-पाओग्गा-णुपुव्वीणामं चेइ। अगुरुलघुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदव-उज्जोद-णाम चेदि। विहाय-गदिणामकम्म दुविह पसत्थविहायगदिणामं अप्पसत्थविहायगदिणाम चेदि। तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरणाम चेदि। थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारण-सरीर-अथिर-असुह-दुब्भग-दुस्सर-अणादेज्ज-अज-

सकिदिणामं चेदि । * ¹गोदकम्मं दुविहं उच्च-णीचगोदं चेइ । अंतरायं पंचविहं दाण-लाभ-भोगोपभोग-वीरिय-अंतरायं चेइ ।"

मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमे पाये जाने वाले ये सब सूत्र षट्खण्डागमके सूत्रोंपरसे थोड़ा बहुत संक्षेप करके बनाये गये मालूम होते हैं², अन्यत्र कहीं देखनेमे नहीं आते और ग्रन्थके पूर्वाऽपर सम्बन्धको दृष्टिमें रखते हुए उसके आवश्यक अंग जान पड़ते हैं, इसलिये इन्हें प्रस्तुत ग्रन्थके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्रकी ही कृति अथवा योजना समझना चाहिये। पद्य-प्रधान ग्रन्थोमे गद्यसूत्रो अथवा कुछ गद्य भागका होना कोई अस्वाभाविक अथवा दोषकी बात भी नही है, दूसरे अनेक पद्य-प्रधान ग्रन्थोंमे भी पद्योंके साथ कहीं-कहीं कुछ गद्यभाग उपलब्ध होता है; जैसे कि तिलोयपण्णत्ती और प्राकृतपञ्चसंग्रहमें। ऐसा मालूम होता है कि ये गद्यसूत्र टीका-टिप्पणका अंश समझे जाकर लेखकोंकी कृपासे प्रतियोंमे छूट गये हैं और इसलिये इनका प्रचार नहीं हो पाया। परन्तु टीकाकारोकी आँखोंसे ये सर्वथा ओझल नहीं रहे हैं—उन्होंने अपनी टीकाओमे इन्हे ज्यो-के-त्यों न रखकर अनुवादितरूपमे रक्खा है, और यही उनकी सबसे बड़ी भूल हुई है, जिससे मूलसूत्रोंका प्रचार रुक गया और उनके अभावमे ग्रंथका यह अधिकार त्रुटिपूर्ण जंचने लगा। चुनाँचे कलकत्तासे जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्था-द्वारा दो टीकाओंके साथ प्रकाशित इस ग्रंथकी संस्कृत टीकामें (और तदनुसार भाषा टीकामे भी) ये सब सूत्र प्राय ³ ज्यो-के-त्यों अनुवादके रूपमें पाये जाते हैं, जिसका एक नमूना २५वीं गाथाके साथ पाये जाने वाले सूत्रोंका इस प्रकार है —

¹ इस* चिन्हसे पूर्ववर्ती सूत्रोंको गाथा नं० ३२ के बाद के और उत्तरवर्ती सूत्रोंको गाथा नं० ३३ के बादके समझना चाहिये।

२ तुलनाके लिये दोनोंके कुछ सूत्र उदाहरणके तौरपर नीचे दिये जाते हैं:—

(क) "वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ।" "सादावेदणीयं चेव असादावेदणीय चेव।"

—षट्ख० १, ६ चू० ८

"वेदणीयं दुविहं सादावेदणीयमसादावेदणीयं चेइ" —गो० क० मूडबिद्री-प्रति

(ख) जं त सरीरबंधणणामकम्म तं पंचविहं ओरालिय-सरीरबंधणणामं, वेउव्विय-सरीरबंधणणाम आहार-सरीरबधणणाम तेजासरीरबधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि।

—षट्ख० १, ६ चू० ८

"सरीरबंधणणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय-सरीरबधणणाम चेइ।"

—गो० क० मूडबिद्री-प्रति

३ 'प्राय:' शब्दके प्रयोगका यहाँ आशय इतना ही है कि दो एक जगह थोडासा भेद भी पाया जाता है, वह या तो अनुवादादिकी गलती अथवा अनुवाद-पद्धतिसे सम्बन्ध रखता है और या उसे सम्पादनकी गलती समझना चाहिये। सम्पादनकी गलतीका एक स्पष्ट उदाहरण २२वीं गाथा-टीकाके साथ पाये जानेवाले निम्न सूत्रमें उपलब्ध होता है—

"दर्शनावरणीयं नवविध स्त्यानगृद्धि-निद्रा निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीय चेति।"

इसमें स्त्यानगृद्धिके बाद दो हाईफनों (-) के मध्यमें जो 'निद्रा' को रक्खा है उसे उस प्रकार वहाँ न रखकर 'प्रचलाप्रचला' के मध्यमें रखना चाहिये था और इस "प्रचलाप्रचला" के पूर्वमें जो हाइफन है उसे निकाल देना चाहिये था, तभी मूलसूत्रके साथ और ग्रन्थकी अगली तीन गाथाओंके साथ इसकी सगति ठीक बैठ सकती थी। पं० टोडरमल्लजीकी भाषा टीकामें मूलसूत्रके अनुरूप ही अनुवाद किया गया है। अनुवाद-पद्धतिका एक नमूना ऊपर उद्धृत मोहनीय-कर्म-विषयक सूत्रमें पाया जाता है, जिसमें 'एकविध' और 'विविध' पदोंको थोड़ा-सा स्थानान्तरित करके रक्खा गया है। और दूसरा

"वेदनीयं द्विविधं सातावेदनीयमसातावेदनीयं चेति । मोहनीयं द्विविधं दर्शन-मोहनीयं चारित्रमोहनीयं चेति । तत्र दर्शनमोहनीयं बंध-विवक्षया मिथ्यात्वमेकविधं उदयं सत्वं प्रतीत्य मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतिश्चेति त्रिविधं ।"

और इससे इन सूत्रोंके मूलग्रंथका अंग होनेकी बात और भी सुदृढ हो जाती है। वस्तुत इन सूत्रोंकी मौजूदगीमे ही अगली गाथाओंके भी कितने ही शब्दों, पद-वाक्यों अथवा सांकेतिक प्रयोगोंका अर्थ ठीक घटित किया जा सकता है—इनके अथवा इन जैसे दूसरे पद-वाक्योंके अभावमे नहीं। इस विषयके विशेष प्रदर्शन एवं स्पष्टीकरणको मैं लेखके बढ़ जानेके भयसे ही नहीं, किन्तु वर्तमानमे अनावश्यक समझकर भी, यहाँ छोड़े देता हूँ—विज्ञ पाठक उसका अनुभव स्वतः कर सकते हैं; क्योंकि मैं समझता हूँ इस विषयमे ऊपर जो कुछ लिखा गया और विवेचन किया गया है वह सब इस बातके लिये पर्याप्त है कि ये सब सूत्र मूलग्रथके अंगभूत हैं और इसलिये इन्हें ग्रथमे यथास्थान गाथाओंवाले टाइपमे ही पुनः स्थापित करके ग्रथके प्रकृत अधिकारकी त्रुटिको दूर करना चाहिये।

अब रही उन ७५ गाथाओकी बात, जो 'कर्मप्रकृति' प्रकरणमे तो पाई जाती हैं किन्तु गोम्मटसारके इस 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारमे नहीं पाई जातीं, और जिनके विषयमे पं० परमानन्दजी शास्त्रीका यह कहना है कि वे सब कर्मकाण्डकी अंगभूत आवश्यक और संगत गाथाएँ हैं, जो किसी समय लेखकोंकी कृपासे कर्मकाण्डसे छूट गई अथवा उससे जुदी पड़ गई हैं, 'कर्मप्रकृति' जैसे ग्रथ-नामोंके साथ प्रचारको प्राप्त हुई हैं, और इस लिये उन्हें फिरसे कर्मकाण्डमे यथास्थान शामिल करके उसकी उस त्रुटिको पूरा करना चाहिये जिसके कारण वह अधूरा और लँडूरा जान पडता है।

जहाँ तक मैंने उन विवादस्थ गाथाओंपर, उनके कर्मकाण्डका आवश्यक तथा सगत अंग होने, कमकाण्डसे किसी समय छूटकर कर्म-प्रकृतिके रूपमे अलग पड़ जाने और कर्मकाण्डमे उनके पुनः प्रवेश कराने आदिके प्रश्नोंको लेकर, विचार किया है मुझे प्रथम तो यह मालूम नहीं हो सका कि 'कर्मप्रकृति' प्रकरण और 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकार दोनोको एक कैसे समझ लिया गया है, जिसके आधारपर एकमे जो गाथाएं अधिक हैं उन्हें दूसरेमे भी शामिल करानेका प्रस्ताव रक्खा गया है, जब कि कर्मप्रकृतिमे प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधि-कारसे ७५ गाथाएं अधिक ही नहीं बल्कि उसकी ३५ गाथाएं (न० ५२ से ८६ तक) कम भी हैं, जिन्हें कर्मप्रकृतिमे शामिल करनेके लिये नहीं कहा गया, और इसी तरह ७३ गाथाएं

नमूना २२वीं गाथाकी टीकामें उपलब्ध होता है, जिसका प्रारम्भ 'ज्ञानावरणादीना यथासंख्यमुत्तरभेदा' पच नव' इत्यादि रूपसे किया गया है, और इसलिये मूलकर्मोंके नाम-विषयक प्रथम सूत्रके ('तत्थ' शब्द सहित) अनुवादको छोड दिया है; जब कि प० टोडरमल्लजीकी टीकामें उसका अनुवाद किया गया है और उसमें ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके नाम देकर उन्हें "आठ मूलप्रकृति" प्रकट किया है, जो कि सगत है और इस बातको सूचित करता है कि उक्त प्रथम सूत्रमें या तो उक्त आशयका कोई पद त्रुटित है अथवा 'मोहणीय' पदकी तरह उद्धृत होनेसे रह गया है। इसके सिवाय, 'शरीरबन्धन' नामकर्मके पाच भेदोंका जो सूत्र २७वीं गाथाके पूर्व पाया जाता है उसे टीकामें २७वीं गाथाके अनन्तर पाये जाने वाले सूत्रोंमें प्रथम रक्खा है और इससे 'शरीरबन्धन' नामकर्मके जो १५ भेद होते थे वे 'शरीर' नामकर्मके १५ भेद हो जाते हैं, जो कि एक सैद्धान्तिक गलती है और टीकाकार-द्वारा उक्त सूत्रको नियत स्थानपर न रखनेके कारण २७ वीं गाथाके अर्थमें घटित हुई है, क्योंकि पट्खण्डागममें भी 'ओरालिय-ओरालिय-सरीरबधो' इत्यादि रूपसे १५ भेद शरीरबन्धके ही दिये हैं और उन्हें देकर श्रीवीरसेनस्वामीने धवला-टीकामें साफ लिखा है—

"एसो पण्णारसविहो बधो सो सरीरबधो त्ति घेत्तव्वो।"

कर्मकाण्डके द्वितीय अधिकारकी (नं० १२७ से १४५, १६३, १८०, १८१, १८४,) तथा ११ गाथाएं छठे अधिकारकी (नं० ८०० से ८१० तक) भी उसमें और अधिक पाई जाती हैं, जिन्हें पण्डित परमानन्दजीने अधिकार-भेदसे गाथा-सख्याके कुछ गलत उल्लेखके साथ स्वयं स्वीकार किया है, परन्तु प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारमे उन्हें शामिल करनेका सुझाव नहीं रक्खा गया। दोनोंके एक होनेकी दृष्टिसे यदि एककी कमीको दूसरेसे पूरा किया जाय और इस तरह 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारकी उक्त ३५ गाथाओंको कर्मप्रकृतिमे शामिल करानेके साथ-साथ कर्मप्रकृतिकी उक्त ३४ (२३+११) गाथाओंको भी प्रकृतिसमुत्कीर्तनमें शामिल करानेके लिये कहा जाय अर्थात् यह प्रस्ताव किया जाय कि 'ये ३४ गाथाएं चूंकि कर्मप्रकृतिमे पाई जाती हैं, जो कि वास्तवमे कर्मकाण्डका प्रथम अधिकार है और 'प्रथम अश' आदिरूपसे उल्लेखित भी मिलता है, इसलिये इन्हें भी वर्तमान कर्मकाण्डके 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारमे त्रुटित समझा जाकर शामिल किया जाय' तो यह प्रस्ताव बिल्कुल ही असगत होगा; क्योंकि ये गाथाएं कर्मकाण्डके 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारके साथ किसी तरह भी सगत नहीं हैं और साथ ही उसमे अनावश्यक भी हैं। वास्तवमें ये गाथाएं प्रकृतिसमुत्कीर्तनसे नहीं किन्तु स्थिति-बन्धादिकसे सम्बन्ध रखती हैं, जिनके लिये ग्रन्थकारने ग्रन्थमे द्वितीयादि अलग अधिकारोकी सृष्टि की है। और इसलिये एक योग्य ग्रन्थकारके लिये यह संभव नहीं कि जिन गाथाओंको वह अधिकृत अधिकारमें रक्खे उन्हें व्यर्थ ही अनधिकृत अधिकारमे भी डाल देवे। इसके सिवाय, कर्मप्रकृतिमे. जिसे गोम्मट-सारके कर्मकाण्डका प्रथम अधिकार समझा और बतलाया जाता है, उक्त गाथाओंका देना प्रारम्भ करनेसे पहले ही 'प्रकृतिसमुत्कार्तन' के कथनको समाप्त कर दिया है—लिख दिया है "इति पयडिसमुक्कित्तणं समत्तं ॥" और उसके अनन्तर तथा 'तीसं कोडाकोडी' इत्यादि गाथाको देनेसे पूर्व टीकाकार ज्ञानभूषणने साफ लिखा है:—

"इति प्रकृतीनां समुत्कीर्तनं समाप्तं ॥ अथ प्रकृतिस्वरूपं व्याख्याय स्थितिबन्ध-मनुपक्रमन्नादौ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धमाह ।"

इससे 'कर्मप्रकृति' की स्थिति बहुत स्पष्ट हो जाती है और वह गोम्मटसारके कर्म-काण्डका प्रथम अधिकार न होकर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही ठहरता है, जिसमे 'प्रकृतिसमु-त्कीर्तन' को ही नहीं किन्तु प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके कथनोंको भी अपनी रुचिके अनुसार सकलित किया गया है और जिसका संकलन गोम्मटसारके निर्माणसे किसी समय बादको हुआ जान पड़ता है। उसे छोटा कर्मकाण्ड समझना चाहिये। इसीसे उक्त टीकाकारने उसे 'कर्मकाण्ड' ही नाम दिया है—कर्मकाण्डका 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधि-कार नाम नहीं, और अपनी टीकाको 'कर्मकाण्डस्य टीका' लिखा है; जैसाकि ऊपर एक फुटनोटमे उद्धृत किये हुए उसके प्रशस्तिवाक्यसे प्रकट है। पं० हेमराजने भी, अपनी भाषा टीकामे, ग्रन्थका नाम 'कर्मकाण्ड' और टीकाको 'कर्मकाण्ड-टीका' प्रकट किया है। और इस लिये शाहगढकी जिस सटिप्पण प्रतिमे इसे 'कर्मकाण्डका प्रथम अंश' लिखा है वह किसी गलतीका परिणाम जान पड़ता है। संभव है कर्मकाण्डके आदि-भाग 'प्रकृतिसमु-त्कीर्तन' से इसका प्रारम्भ देखकर और कर्मकाण्डसे इसको बहुत छोटा पाकर प्रतिलेखकने इसे पुष्पिकामे 'कर्मकाण्डका प्रथम अश' सूचित किया हो। और शाहगढ़की जिस प्रतिमे ढाई अधिकारके करीब कर्मकाण्ड उपलब्ध है उसमें कमप्रकृतिकी १६० गाथाओंको जो प्रथम अधिकारके रूपमे शामिल किया गया है वह संभवतः किसी ऐसे व्यक्तिका कार्य है जिसने कर्मकाण्डके 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारको त्रुटित एव अधूरा समझकर, प० परमानन्दजीकी तरह, 'कर्मप्रकृति' ग्रन्थसे उसकी पूर्ति करनी चाही है और इसलिये कर्म-

काण्डके प्रथम अधिकारके स्थानपर उसे ही अपनी प्रतिमें लिख लिया अथवा लिखा लिया है और अन्य बातोंके सिवाय, जिन्हें आगे प्रदर्शित किया जायगा, इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया कि स्थितिवधादिसे संबन्ध रखनेवाली उक्त २३ गाथाएं, जो एक कदम आगे दूसरे ही अधिकारमें यथास्थान पाई जाती हैं उनकी इस अधिकारमे व्यर्थ ही पुनरावृत्ति हो रही है। अथवा यह भी हो सकता है कि वह कर्मकाण्ड कोई दूसरा ही बादको संकलित किया हुआ कर्मकाण्ड हो और कर्मप्रकृति उसीका प्रथम अधिकार हो। अस्तु, वह प्रति अपने सामने नहीं है और उतना मात्र अधूरी भी बतलाई जाती है, अतः उसके विषयमे उक्त संगत कल्पनाके सिवाय और अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऐसी हालतमे प० परमानन्दजीका उक्त प्रतियों परसे यह फलित करना कि "कर्मकाण्डके प्रथम अधिकारमें उक्त ७५ गाथाएं पहलेसे ही सकलित और प्रचलित हैं"[1] कुछ विशेष महत्व नहीं रखता।

अब उन त्रुटित कही जाने वाली ७५ गाथाओंपर उनके प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारका आवश्यक तथा संगत अंग होने न होने आदिकी दृष्टिसे, विचार किया जाता है:—

(१) गो० कर्मकाण्डकी १५वीं गाथाके अनन्तर जो 'सियअत्थिणत्थिउभयं' नामकी गाथा त्रुटित बतलाई जाती है वह ग्रन्थ-संदर्भकी दृष्टिसे उसका सगत तथा आवश्यक अंग मालूम नहीं होती, क्योकि १५वीं गाथामे जीवके दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्वगुणोंका निर्देश किया गया है, बीचमे स्यात् अस्ति-नास्ति आदि सप्तनयोंका स्वरूपनिर्देशके विना ही नामोल्लेखमात्र करके यह कहना कि 'द्रव्य आदेशवशसे इन सप्तभगरूप होता है' कोई संगत अर्थ नहीं रखता। जान पडता है १४वीं गाथामे सत्तभंगो-द्वारा श्रद्धानकी जो बात कही गई है उसे लेकर किसीने 'सत्तभगीहि' पदके टिप्पणरूपमें इस गाथाको अपनी प्रतिमे पंचास्तिकाय ग्रंथसे, जहाँ वह न० १४ पर पाई जाती है, उद्धृत किया होगा, जो बादको सग्रह करते समय कर्मप्रकृतिके मूलमे प्रविष्ट हो गई। शाहगढ़वाले टिप्पणमे इसे 'प्रक्षिप्त' सूचित भी किया है[2]।

(२) २०वीं गाथाके अनन्तर 'जीवपएसेक्केक्के', 'अत्थिअणाईभूओ', 'भावेण तेण पुनरवि', 'एकसमयणिबद्धं' सो बंधो चउभेओ' इन पांच गाथाओको जो त्रुटित बतलाया है[3] वे भी गोम्मटसारके इस प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारका कोई आवश्यक अग मालूम नहीं होतीं और न सगत ही जान पड़ती हैं; क्योंकि २०वीं गाथामे आठ कर्मोंका जो पाठ-क्रम है उसे सिद्ध सूचित करके २१वीं गाथामे दृष्टान्तोंद्वारा उनके स्वरूपका निर्देश किया है, जो संगत है। इन पाँच गाथाओंमें जीवप्रदेशों और कर्मप्रदेशोंके बन्धादिका उल्लेख है और अन्तकी गाथामे बन्धके प्रकृति, स्थिति आदि चार भेदोंका उल्लेख करके यह सूचित किया है कि प्रदेशबन्धका कथन ऊपर हो चुका;[3] चुनाँचे आगे प्रदेशबन्धका कथन किया भी नहीं। और इसलिये

---

१ अनेकान्त वर्ष ३ किरण १२ पृ० ७६३।

२ अनेकान्त वर्ष ३ कि० ८-९ पृ० ५४०।

मेरे पास कर्म-प्रकृतिकी एक वृत्तिसहित प्रति और है, जिसमें यहाँ पाँचके स्थानपर छह गाथाएँ हैं। छठी गाथा 'सो बधो चउभेओ' से पूर्व इस प्रकार है :—

"आउगभागो थोवो णामागोदे समो ततो अहियो।
घादितिये वि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदी(दि)ये॥"

३ "पयडिट्ठिदिअणुभाग पएसबधो पुरा कहियो," कर्मप्रकृतिकी अनेक प्रतियोंमें यही पाठ पाया जाता है जो ठीक जान पडता है, क्योंकि 'जीवपएसेक्केक्के' इत्यादि पूर्वकी तीन गाथाओंमें प्रदेशबन्धका ही कथन है। ज्ञानभूषणने टीकामें इसका अर्थ देते हुए लिखा है'—" ते चत्वारो भेदा: के? प्रकृतिस्थित्यनुभागा प्रदेशबन्धश्च अय भेद: पुरा कथित:।" अत: अनेकान्तकी उक्त किरण ८-९ में जो

पूर्वापर कथनके साथ इनकी संगति ठीक नहीं बैठती। कर्मप्रकृति ग्रंथमें चूंकि चारों वर्णों का कथन है, इसलिये उसमे खींचतान करके किसी तरह इनका सम्बन्ध विठलाया जा सकता है परन्तु गोम्मटसारके इस प्रथम अधिकारमे तो इनकी स्थिति समुचित प्रतीत नहीं होती, जब कि उसके दूसरे ही अधिकारमे बन्ध-विपयका स्पष्ट उल्लेख है। ये गाथाएँ कर्म-प्रकृतिमे देवसेनके भावसंग्रहग्रंथसे उठाकर रक्खी गई मालूम होती हैं, जिसमे ये नं० ३२५ से ३२६ तक पाई जाती है।

(३) २१वीं और २२वीं गाथाओके मध्यमे 'णाणावरणं कम्मं', दंसणआवरणं पुण', 'महुलित्त-खग्गसरिसं', 'मोहेइ मोहणीयं, 'आउं चउप्पयारं', 'चित्तं पड व विचित्तं','गोद कुलालसरिसं', जह भंडयारिपुरिसो' इन आठ गाथाओकी स्थिति भी संगत मालूम नहीं होती। इनकी उपस्थितिमे २१वीं और २२वीं दोनो गाथाएँ व्यर्थ पड़ती हैं; क्योंकि २१वीं गाथामें जब दृष्टान्तों-द्वारा आठो कर्मोंके स्वरूपका और २२वीं गाथामे उन कर्मोंकी उत्तर प्रकृति-संख्याका निर्देश है तब इन आठो गाथाओंमे दोनों वातोका एक साथ निर्देश है। इन गाथाओंमे जब प्रत्येक कर्मकी अलग अलग उत्तरप्रकृतियोंकी सख्याका निर्देश किया जाचुका तब फिर २२वीं गाथामें यह कहना कि 'कर्मोंकी क्रमशः ५, ६, २, २८, ४, ६३ या १०३, २, ५ उत्तरप्रकृतियाँ होती हैं' क्या अर्थ रखता है? व्यर्थताके सिवाय उससे और कुछ भी फलित नहीं होता। एक सावधान ग्रंथकारके द्वारा ऐसी व्यर्थ रचनाकी कल्पना नहीं की जा सकती। ये गाथाएँ यदि २२वीं गाथाके बाद रक्खी जातीं तो उसकी भाष्य-गाथाएँ हो सकती थीं, और फिर २१वीं गाथाको देनेकी जरूरत नहीं थी; क्योंकि उसका विपय भी इनमें आगया है। ये गाथाएँ भी उक्त भावसग्रहकी हैं और वहींसे उठाकर कर्मप्रकृतिमें रक्खी गई मालूम होती हैं। भावसंग्रहमे ये ३३१ से ३३८ नम्बरकी गाथाएँ हैं[१]।

(४) गो० कर्मकाण्डकी २२वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमे 'अहिमुहणियमियबोहण', अत्थादो अत्थतर', 'अवहीयदि त्ति ओही', 'चिंतियमचिंतियं वा', 'संपुण्णं तु समग्गं', 'मादसुदओहीमणपज्जवं', 'जं सामण्णं गेहणं', 'चक्खूण जं पयासइ, परमाणुआदियाइ', 'बहुविहबहुप्पयारा', 'चक्खुअचक्खूओही', 'अह थीणगिद्धिणिद्दा' ये १२ गाथाएँ पाई जाती हैं, जिन्हें कर्मकाण्डके प्रथम अधिकारमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेसे मतिज्ञानादि पाँच ज्ञानों और चक्षु-दर्शनादि चार दर्शनोंके लक्षणोकी जो ९ गाथाएँ हैं वे उक्त अधिकारकी कथनशैली और विषयप्रतिपादनकी दृष्टिसे उसका कोई आवश्यक अंग मालूम नहीं होतीं—खासकर उस हालतमें जब कि वे ग्रन्थके पूर्वार्ध जीवकाण्डमें पहलेसे आचुकी हैं और उसमें क्रमश. नं० ३०५, ३१४, ३६६, ४३७, ४५६, ४८१, ४८३ ४८४, ४८५ पर दर्ज हैं। शेष तीन गाथाएँ ('मदिसुद-ओहीमणपज्जव', 'चक्खुअचक्खूओही' 'अह थीणगिद्धिणिद्दा') जिनमें ज्ञानावरणकी ५ और दर्शनावरणकी ६ उत्तरप्रकृतियोके नाम हैं, प्रकरणके साथ संगत हैं अथवा यों कहिये कि २२वीं गाथाके बाद उनकी स्थिति ठीक कही जा सकती है, क्योंकि मूलसूत्रोंकी तरह उनसे भी अगली तीन गाथाओ (नं० २३, २४, २५) की संगति ठीक बैठ जाती है।

(५) कर्मकाण्डमे २५वीं गाथाके बाद 'दुविहं खु वेयणीयं' और 'बंधादेगं मिच्छं' नामकी जिन दो गाथाओंको कर्मप्रकृतिके अनुसार त्रुटित बतलाया जाता है वे भी प्रकरणके साथ संगत हैं अथवा उनकी स्थितिको २५वीं गाथाके बाद ठीक कहा जा सकता है, क्योंकि मूलसूत्रोंकी तरह उनमें भी क्रमप्राप्त वेदनीयकर्मकी दो उत्तर-प्रकृतियों और मोहनीय कर्मके

"पयडिट्ठिदिअणुभागप्पएसबंधो हु चउविहो कहियो" पाठ दिया है वह ठीक मालूम नहीं होता—उसके पूर्वार्धमे 'चउभेयो' पदके होते हुए उत्तरार्धमें 'चउविहो' पदके द्वारा उसकी पुनरुक्ति खटकती भी है।

१ देखो, माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें प्रकाशित 'भावसंग्रहादि' ग्रन्थ।

दो भेद करके प्रथम भेद दर्शनमोहके तीन भेदोंका उल्लेख है, और इसलिये उनसे भी अगली २६वीं गाथाकी सङ्गति ठीक बैठ जाती है।

(६) कर्मकाण्डकी २६वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमे 'दुविहं चरित्तमोहं' 'अणं अपच्चक्खाणं' 'सिलपुढविभेदधूली' 'सिअट्ठिकट्ठवेत्ते' 'वेणुवमूलोरब्भय', 'किमिरायचक्कतणुमल' 'सम्मत्तं देस-सयल' 'हस्सरदिअरदिसोय' 'छादयदि सयं दोसे' 'पुरुगुणभोगे सेदे' 'णेवित्थी णेव पुमं' 'णारयतिरियणरामर' 'णेरइयतिरियमाणुस' 'ओरालियवेगुव्विय' ये १४ गाथाए पाई जाती हैं जिन्हें कर्मकाण्डके इस प्रथम अधिकारमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेसे ८ गाथाएं जो अनंतानुबन्धि आदि सोलह कषायों और स्त्रीवेदादि तीन वेदोंके स्वरूपसे सम्बन्ध रखती हैं वे भी इस अधिकारकी कथन-शैली आदिकी दृष्टिसे उसका कोई आवश्यक अङ्ग मालूम नहीं होतीं—खासकर उस हालतमें जब कि वे जीवकाण्डमे पहले आ चुकी हैं और उसमे क्रमश नं० २८३, २८४, २८५, २८६, २८२, २७३, २७२, २७४ पर दर्ज हैं। शेष ६ गाथाएं (पहली दो, मध्यकी 'हस्सरदिअरदिसोयं' नामकी एक और अन्तकी तीन), जो चारित्रमोहनीय कर्मकी २५, आयु कर्मकी ४ और नामकर्मकी ४२ पिण्डाऽपिण्ड प्रकृतियोंमेसे गतिकी ४, जातिकी ५ और शरीरकी ५ उत्तर प्रकृतियोंके नामोल्लेखको लिये हुए हैं, प्रकरणके साथ सङ्गत कही जा सकती हैं, क्योंकि इस हद तक वे भी मूलसूत्रोंके अनुरूप हैं। परन्तु मूलसूत्रोंके अनुसार २७वीं गाथाके साथ सङ्गत होनेके लिये शरीरबन्धनकी उत्तर-प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली 'पंच य सरीरबंधण' नामकी वह गाथा उनके अनन्तर और होनी चाहिये जो २७वीं गाथाके अनन्तर पाई जाने वाली ४ गाथाओंमे प्रथम है, अन्यथा २७वीं गाथामे जिन १५ संयोगी भेदोंका उल्लेख है वे शरीरबन्धनके न होकर शरीरके हो जाते हैं, जो कि एक सैद्धान्तिक भूल है और जिसका ऊपर स्पष्टीकरण किया जा चुका है। एक सूत्र अथवा गाथाके आगे-पीछे हो जानेसे, इस विषयमे, कर्मकाण्ड और कर्मप्रकृतिके प्राय सभी टीकाकारोंने गलती खाई है, जो उक्त २७वीं गाथाकी टीकामे यह लिख दिया है कि 'ये १५ संयोगी भेद शरीरके हैं', जबकि वे वास्तवमें 'शरीरबन्धन' नामकर्मके भेद हैं।

(७) कर्मकाण्डकी २७वीं गाथाके पश्चात् कर्मप्रकृतिमें 'पंच य सरीरबंधण' 'पंच संघादणाम' 'समचउर णग्गोह' 'ओरालियवेगुव्विय' ये चार गाथाएं पाई जाती हैं, जिन्हें कर्मकाण्डमे त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेसे पहली गाथा तो २७वीं गाथाके ठीक पूर्वमे सगत बैठती है, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। शेष तीन गाथाएं यहाँ सगत कही जा सकती हैं, क्योकि इनमे मूल-सूत्रोंके अनुरूप संघातकी ५, संस्थानकी ६ और अङ्गोपाङ्ग नामकर्मकी ३ उत्तरप्रकृतियोंका क्रमशः नामोल्लेख है। पिछली (चौथी) गाथाकी अनुपस्थितिमे तो अगली कर्मकाण्डवाली २८वीं गाथाका अर्थ भी ठीक घटित नहीं हो सकता, जिसमे आठ अङ्गोंके नाम देकर शेषको उपाङ्ग बतलाया है और यह नहीं बतलाया कि वे अङ्गोपाङ्ग कौनसे शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं।

(८) कर्मकाण्डकी २८वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमें 'दुविहं विहायणाम' 'तह अद्ध णाराय' 'जस्स कम्मस्स उदये वज्जमय' 'जस्सुदये वज्जमय' 'जस्सुदये वज्जमया' 'वज्जविसेसणरहिदा' 'जस्स कम्मस्स उदये अवज्जहड्डा' 'जस्स कम्मस्स उदये अण्णोण्ण' ये ८ गाथाएं उपलब्ध हैं, जिन्हें कर्मकाण्डमे त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेसे पहली दो गाथाएँ तो आवश्यक और सङ्गत हैं, क्योकि वे मूलसूत्रोके अनुरूप हैं और उनकी उपस्थितिसे कर्मकाण्डकी अगली तीन गाथाओं (२९, ३०, ३१) का अर्थ ठीक बैठ जाता है। शेष ६ गाथाएं, जो छहों संहननोंके स्वरूपकी निर्देशक हैं इस अधिकारका कोई आवश्यक तथा अनिवार्य अग नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि सब प्रकृतियोंके स्वरूप अथवा लक्षण निर्देशकी

पद्धतिको इस अधिकारमें अपनाया नहीं गया है। इन्हें भाष्य अथवा व्याख्यान गाथाएं कहा जा सकता है। इनकी अनुपस्थितिसे मूल ग्रन्थके सिलसिले अथवा उसकी सम्बद्ध रचनामे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

(६) कर्मकाण्डकी ३१वीं गाथाके बाद कर्मप्रकृतिमे 'घम्मा वसा मेघा' 'मिच्छापुव्व-दुगादिसु' 'विमलचउक्के छट्ठं' 'सव्वविदेहेसु तहा' नामकी ४ गाथाए उपलब्ध हैं, जिन्हें भी कर्मकाण्डमे त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेसे पहली गाथा जो नरकभूमियोंके नामोंकी है, प्रकृत अधिकारका कोई आवश्यक अग मालूम नहीं होती। जान पड़ता है ३१वीं गाथामे 'मेघा' पृथ्वीका जो नामोल्लेख है और शेप नरकभूमियोंकी विना नामके ही सूचना पाई जाती है, उसे लेकर किसीने यह गाथा उक्त गाथाकी टिप्पणीरूपमे त्रिलोकसार अथवा जवूद्वीप-प्रज्ञप्ति परसे अपनी प्रतिमे उद्धृत की होगी, जहाँ यह क्रमश नं० १४५ पर तथा ११वें अ० के नं० ११२ पर पाई जाती है, और वहाँसे सग्रह करते हुए यह कर्मप्रकृतिके मूलमें प्रविष्ट हो गई है। शाहगढ़के उक्त टिप्पणमे इसे भी 'सिय अत्थि णत्थि' गाथाकी तरह प्रक्षिप्त बतलाया है और सिद्धान्त-गाथा प्रकट किया है[1]। शेप तीन गाथाएं जो सहनन-सम्बन्धी विशेप कथनको लिये हुए हैं, यद्यपि प्रकरणके साथ संगत हो सकती हैं परन्तु वे उसका कोई ऐसा आवश्यक अंग नहीं कही जा सकतीं जिसके अभावमें उसे त्रुटित अथवा असम्बद्ध कहा जा सके। मूल-सूत्रोंमे इन चारों ही गाथाओंमेसे किसीके भी विषयसे मिलता जुलता कोई सूत्र नहीं है, और इसलिये इनकी अनुपस्थितिसे कर्मकाण्डमें कोई असंगति पैदा नहीं होती।

(१०) कर्मकाण्डकी ३२वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमें 'पंच य वण्णस्सेदं' 'तित्तं कडुवकसायं' 'फासं अट्ठवियप्पं' 'एदा चोद्दसपिंडप्पयडीओ' 'अगुरुलघुगउवघाद' नामकी ५ गाथाएं उपलब्ध हैं और ३३वीं गाथाके अनन्तर 'तस थावर च बादर' 'सुहअसुहसुहग-दुब्भग' 'तसबादरपज्जत' 'थावरसुहुमपज्जत्तं' 'इदि णामप्पयडीओ' 'तह दाणलाहभोगे' ये ६ गाथाएँ उपलब्ध हैं, जिन सबको भी कर्मकाण्डमे त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेसे ६ गाथाओंमें नामकर्मकी शेप वर्णादि-विषयक उत्तरप्रकृतियोंकी और पिछली दो गाथाओंमे गोत्रकर्मकी २ तथा अन्तरायकर्मकी ५ उत्तरप्रकृतियोंका नामोल्लेख है। यद्यपि मूल-सूत्रोंके साथ इनका कथनक्रम कुछ भिन्न है परन्तु प्रतिपाद्य विपय प्राय. एक ही है, और इसलिये इन्हें संगत तथा आवश्यक कहा जा सकता है। ग्रन्थमे इन उत्तरप्रकृतियोंकी पहलेसे प्रतिष्ठाके विना ३२वीं तथा अगली-अगली गाथाओंमे इनसे सम्बन्ध रखने वाले विशेष कथनोकी सगति ठीक नहीं बैठती। अतः प्रतिपाद्य विषयकी ठीक व्यवस्थाके लिये इन सब उत्तरप्रकृतियोंका मूलत: अथवा उद्देश्यरूपमे उल्लेख बहुत जरूरी है—चाहे वह सूत्रोंमें हो या गाथाओमे।

(११) कर्मकाण्डकी ३४वीं गाथाके बाद कर्मप्रकृतिमे 'वण्णरसगंधफासा' नामकी जो एक गाथा पाई जाती है उसमे प्रायः उन बन्धरहित प्रकृतियोका ही स्पष्टीकरण है जिनका सूचना पूर्वकी गाथा (३४) मे की गई है और उत्तरकी गाथा (३५ से भी जिनकी संख्या-विषयक सूचना मिलती है और इसलिये वह कर्मकाण्डका कोई आवश्यक अग नहीं है—उसे व्याख्यान-गाथा कह सकते हैं। मूल-सूत्रोमे भी उसके विषयका कोई सूत्र नहीं है। यह पञ्चसंग्रहके द्वितीय अधिकारकी गाथा है और सभवतः वहींसे संग्रह की गई है।

(१२) कर्मकाण्डकी 'मणवयणकायवक्को' नामकी ८०८वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमे 'दंसणविसुद्धिविणय' 'सत्तोदो चागतवा' 'पवयणपरमाभत्ती' 'ए देहिं पसत्थेहिं'

१ अनेकान्त वर्ष ३, कि० १२, पृष्ठ ७६३।

'तित्थयरसत्तकम्म' ये पाँच गाथाएँ पाई जाती हैं, जिन्हें भी कर्मकाण्डमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेसे प्रथम चार गाथाओंमे दर्शनविशुद्धि आदि षोडश भावनाओंको तीर्थङ्कर नामकर्मके बन्धकी कारण बतलाया है और पॉचवींमें यह सूचित किया है कि तीर्थङ्कर नामकर्मकी प्रकृतिका जिसके बन्ध होता है वह तीन भवमें सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त होता है और जो क्षायिक-सम्यक्त्वसे युक्त होता है वह अधिक-से-अधिक चौथे भवमे जरूर मुक्त हो जाता है। यह सब विशेष कथन है और विशेष कथनके करने-न-करनेका हरएक ग्रन्थ-कारको अधिकार है। ग्रन्थकार महोदयने यहाँ छठे अधिकारमें सामान्य-रूपसे शुभ और अशुभ नामकर्मके बन्धके कारणोंको बतला दिया है—नामकर्मकी प्रत्येक प्रकृति अथवा कुछ खास प्रकृतियोंके बन्ध-कारणोंको बतलाना उन्हें उसी तरह इष्ट नहीं था, जिस तरह कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय जैसे कर्मोंकी अलग-अलग प्रकृतियोंके बंध-कारणोंको बतलाना उन्हें इष्ट नही था; क्योकि वेदनीय, आयु और गोत्र नामके जिन कर्मोंकी अलग-अलग प्रकतियोके बन्ध-कारणोंको बतलाना उन्हें इष्ट था उनको उन्होने बतलाया है। ऐसी हालतमे उक्त विशेष-कथन-वाली गाथाओंको त्रुटित नहीं कहा जा सकता और न उनकी अनुपस्थितिसे ग्रन्थको अधूरा या लँडूरा ही घोषित किया जा सकता है। उनके अभावमे ग्रन्थकी कथन-संगतिमे कोई अन्तर नहीं पड़ता और न किसी प्रकारकी बाधा ही उपस्थित होती है।

इस प्रकार त्रुटित कही जानेवाली ये ७५ गाथाएँ हैं, जिनमेंसे ऊपरके विवेचना-नुसार मूलसूत्रोंसे सम्बन्ध रखने वाली मात्र २८ गाथाएं ही ऐसी हैं जिनका विषय प्रस्तुत कर्मकाण्डके प्रथम अधिकारमे त्रुटित है और उस त्रुटित विषयकी दृष्टिसे जिन्हें त्रुटित कहा जा सकता है, शेष ४७ गाथाओंमेसे कुछ असगत हैं, कुछ अनावश्यक हैं और कुछ लक्षण-निर्देशादिरूप विशेष कथनको लिये हुए हैं, जिसके कारण वे त्रुटित नहीं कही जा सकतीं। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या उक्त २८ गाथाओंको, जिनका विषय त्रुटित है, उक्त अधिकारमे यथास्थान प्रविष्ट एव स्थापित करके उसकी त्रुटि-पूर्ति और गाथा-सख्यामे वृद्धि की जाय? इसके उत्तरमे मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि, जब गोम्मटसारकी प्राचीनतम ताडपत्रीय प्रतिमे मूल-सूत्र उपलब्ध हैं और उनकी उपस्थितिमे उन स्थानोंपर त्रुटित अंशकी कोई कल्पना उत्पन्न नहीं होती—सब कुछ संगत हो जाता है—तब उन्हें ही ग्रन्थकी दूसरी प्रतियोंमें भी स्थापित करना चाहिये। उन सूत्रोंके स्थानपर इन गाथाओंको तभी स्थापित किया जा सकता है जब यह निश्चित और निर्णीत हो कि स्वयं ग्रन्थकार नेमिच-न्द्राचार्यने ही उन सूत्रोके स्थानपर बादको इन गाथाओंकी रचना एव स्थापना की है, परन्तु इस विषयके निर्णयका अभी तक कोई समुचित साधन नहीं है।

कर्मप्रकृतिको उन्हीं सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्रकी कृति कहा जाता है, परन्तु उसके उन्हींकी कृति होनेमे अभी सन्देह है। जहॉ तक मैंने इस विषयपर विचार किया है मुझे वह उन्हीं आचार्य नेमिचन्द्रकी कृति मालूम नहीं होती, क्योंकि उन्होंने यदि गोम्मटसार-कर्मकाण्डके बाद उसके प्रथम अधिकारको विस्तार देनेकी दृष्टिसे उसकी रचना की होती तो वह कृति और भी अधिक सुव्यवस्थित होती उसमे असंगत तथा अनावश्यक गाथा-ओंको—खासकर ऐसी गाथाओंको जिनसे पूर्वापरकी गाथाएं व्यर्थ पड़ती हैं अथवा अगले अधिकारोंमें जिनकी उपस्थितिसे व्यर्थकी पुनरावृत्ति होती है—स्थान न दिया जाता, जो कि सिद्धान्त-चक्रवर्ती-जैसे योग्य ग्रथकारकी कृतिमे बहुत खटकती हैं, और न उन ३५ (न० ५२ से ८६ तककी) सङ्गत गाथाओको निकाला ही जाता जो उक्त अधिकारमे पहलेसे मौजूद थीं और अब तक चली आती हैं और जिन्हें कर्मप्रकृतिमे नहीं रक्खा गया। साथ ही, अपनी १२१वीं अथवा कर्मकाण्डकी 'गदिजादीउस्सासं' नामक ५१वीं गाथाके अनन्तर ही 'प्रकृतिसमु-

त्कीर्तन' अधिकारकी समाप्तिको घोषित न किया जाता। और यदि कर्मकाण्डसे पहले उन्हीं आचार्य महोदयने कर्मप्रकृतिकी रचना की होती तो उन्हें अपनी उन पूर्व-निर्मित २८ गाथाओंके स्थानपर सूत्रोको नवनिमाण करके रखनेकी जरूरत न होती—खासकर उस हालतमे जब कि उनका कर्मकाण्ड भी पद्यात्मक था। और इस लिये मेरी रायमे यह 'कर्म-प्रकृति' या तो नेमिचन्द्र नामके किसी दूसरे आचार्य, भट्टारक अथवा विद्वानकी कृति है जिनके साथ नाम-साम्यादिके कारण 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' का पद बादको कहीं-कहीं जुड गया है—सब प्रतियोंमे वह नहीं पाया जाता,[1] और या किसी दूसरे विद्वान्ने उसका संकलन कर उसे नेमिचन्द्र आचार्यके नामाङ्कित किया है, और ऐसा करनेमे उसकी दो दृष्टि हो सकती है—एक तो ग्रंथ-प्रचारकी और दूसरी नेमिचन्द्रके श्रेय तथा उपकार-स्मरणको स्थिर रखनेको। क्योकि इस ग्रथका अधिकाश शरीर आद्यन्तभागों सहित, उन्हींके गोम्मट-सारपरसे बना है—इसमे गोम्मटसारकी १०२ गाथाएं तो ज्यो-की-त्यों उद्धृत हैं और २८ गाथाएं उसीके गद्यसूत्रोपरसे निर्मित हुई जान पड़ती हैं। शेष ३० गाथाओंमेसे १६ दूसरे कई ग्रथोकी ऊपर सूचित की जा चुकी है और १४ ऐसी हैं जिनके ठीक स्थानका अभी तक पता नहीं चला—वे धवलादि ग्रंथोंके षट्संहननोंके लक्षण-जैसे वाक्योंपरसे खुदकी निर्मित भी हो सकती हैं।

हॉ, ऐसी सन्दिग्ध अवस्थामे यह हो सकता है कि प्राकृत मूल-सूत्रोंके नीचे उनके अनुरूप इन सूत्रानुसारिणी २८ गाथाओंको भी यथास्थान ब्रैकट [ ] के भीतर रख दिया जावे, जिससे पद्य-प्रेमियोंको पद्य-क्रमसे ही उनके विषयके अध्ययन तथा कण्ठस्थादि करने मे सहायता मिल सके। और तब यह गाथाओंके सस्कृत छायात्मक रूपकी तरह गद्य-सूत्रोका पद्यात्मक रूप कहलाएगा, जिसके साथ रहनेमे कोई बाधा प्रतीत नहीं होती—मूल ज्यो-का त्यो अक्षुण्ण बना रहता है। आशा है विद्वज्जन इसपर विचार कर समुचित मार्गको अङ्गीकार करेंगे।

(घ) ग्रंथकी टीकाएँ—

इस गोम्मटसार ग्रंथपर मुख्यतः चार टीलाएँ उपलब्ध हैं—एक, अभयचन्द्राचार्यकी संस्कृत टीका 'मन्दप्रबोधिका', जो जीवकाण्डकी गाथा न० ३८३ तक ही पाई जाती है, ग्रंथ के शेष भागपर वह बनी या कि नहीं इसका कोई ठीक निश्चय नहीं। दूसरी, केशववर्णीकी संस्कृत-मिश्रित कनडी टीका 'जीवतत्त्वप्रदीपिका', जो ग्रंथके दोनों काण्डोपर अच्छे विस्तारको लिये हुए है और जिसमे मन्दप्रबोधिकाका पूरा अनुसरण किया गया है। तीसरी, नेमिचंद्राचार्यकी संस्कृत टीका 'जीवतत्त्वप्रदीपिका', जो पिछली दोनों टीकाओंका गाढ अनुसरण करती हुई ग्रंथके दोनो काण्डोपर यथेष्ट विस्तारके साथ लिखी गई है। और चौथी, प० टोडरमल्लजीकी हिन्दी टीका 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका', जो संस्कृत टीकाके विषयको खूब स्पष्ट करके बतलानेवाली है और जिसके आधारपर हिन्दी, अंग्रेजी तथा मराठीके

[1] भट्टारक ज्ञानभूषणने अपनी टीकामें कर्मकाण्ड अपर नाम कर्मप्रकृतिको 'सिद्धान्तज्ञानचक्रवर्ती-श्रीनेमिचन्द्रविरचित' लिखा हैं। इसमें 'सिद्धान्त' और 'चक्रवर्ति'के मध्यमें 'ज्ञान' शब्दका प्रयोग अपनी कुछ खास विशेषता रखता हुआ मालूम होता है और उसके संयोगसे इस विशेषण-पदकी वह स्पिरिट नहीं रहती जो मतिचक्रसे षट्खण्डरूप आगम-सिद्धान्तकी साधना कर सिद्धान्तचक्रवर्ती बननेकी बतलाई गई है (क० ३९७), बल्कि सिद्धान्तज्ञानके प्रचारकी स्पिरिट सामने आती है। और इसलिये इसका संग्रहकर्ता प्रचारकी स्पिरिटको लिये हुए कोई दूसरा ही होना चाहिये, ऐसा इस प्रयोगपरसे खयाल उत्पन्न होता है।

अनुवादों[1] का निर्माण हुआ है। इनमेंसे दूसरी केशववर्णीकी टीकाको छोड़कर, जो अभी तक अप्रकाशित है, शेष तीनों टीकाएं कलकत्तासे 'गांधी हरिभाई देवकरण-जैनग्रंथमाला' में एक साथ प्रकाशित हो चुकी हैं। कनडी और संस्कृत दोनों टीकाओंका एक ही नाम (जीवतत्त्वप्रदीपिका) होने, मूल ग्रंथकर्ता और संस्कृत टीकाकारका भी एक ही नाम (नेमिचन्द्र) होने, कर्मकाण्डकी गाथा नं० ६७२ के एक अस्पष्ट उल्लेखपरसे चामुण्डरायको कनडी टीकाका कर्ता समझा जाने और संस्कृत टीकाके 'श्रित्वा कर्णाटकीं वृत्ति' पद्यके द्वितीय चरणमें 'वर्णिश्रीकेशवैः कृतां[2]' की जगह कुछ प्रतियोंमे 'वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः' पाठ उपलब्ध होने आदि कारणोंसे पिछले अनेक विद्वानोंको, जिनमे प० टोडरमल्लजी भी शामिल हैं, संस्कृत टीकाके कर्तृत्व-विषयमे भ्रम रहा है और उसके फलस्वरूप उन्होंने उसका कर्ता केशववर्णी' लिख दिया है[3]। चुनॉचे कलकत्तासे गोम्मटसारका जो संस्करण दो टीकाओं-सहित प्रकाशित हुआ है उसमे भी संस्कृत टीकाको "केशववर्णीकृत" लिख दिया है। इस फैले हुए भ्रमको डा० ए० एन० उपाध्ये एम० ए० ने तीनों टीकाओं और गद्य-पद्यात्मक प्रशस्तियोंकी तुलना आदिके द्वारा, अपने एक लेखमे[4] बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है और यह साफ घोषित कर दिया है कि 'संस्कृत टीका नेमिचन्द्राचार्यकृत है और उसमें जिस कनडी टीकाका गाढ अनुसरण है वह अभयसूरिके शिष्य केशववर्णीकी कृति है और उसकी रचना धर्मभूषण भट्टारकके आदेशानुसार शक सं० १२८१ (ई० सन १३५६) मे हुई है; जब कि संस्कृत टीका मल्लिभूपालके समयमे लिखी गई है, जो कि सालुव मल्लिराय थे और जिनका समय शिलालेखों आदि परसे ईसाकी १६वीं शताब्दीका प्रथमचरण पाया जाता है, और इसलिये इस टीकाको १६वीं शताब्दीके प्रथम चरणकी ठहराया जा सकता है।'

साथ ही यह भी बतलाया है कि दोनों प्रशस्तियोंपरसे इस संस्कृत टीकाके कर्ता वे आचार्य नेमिचन्द्र उपलब्ध होते हैं जो मूलसंघ, शारदागच्छ, बलात्कारगण, कुन्दकुन्द-अन्वय और नन्दि-आम्नायके आचार्य थे, ज्ञानभूषण भट्टारकके शिष्य थे, जिन्हें प्रभाचद्र भट्टारकने, जोकि सफलवादी तार्किक थे, सूरि बनाया अथवा आचार्यपद प्रदान किया था, कर्नाटकके जैन राजा मल्लिभूपालके प्रयत्नोंके फलस्वरूप जिन्होने मुनिचद्रसे, जोकि 'त्रैविद्यविद्यापरमेश्वर'के पदसे विभूषित थे, सिद्धान्तका अध्ययन किया था; जो लालावर्णी के आग्रहसे गौर्जरदेशसे आकर चित्रकूटमे जिनदासशाह-द्वारा निर्मापित पार्श्वनाथके मन्दिरमे ठहरे थे और जिन्होंने धर्मचन्द अभयचन्द्र तथा अन्य सज्जनोंके हितके लिये खण्डेलवालवंशके साह सांग और साह सहेसकी प्राथनापर यह संस्कृत टीका, कर्णाटकवृत्ति-का अनुसरण करते हुए, त्रैविद्यविद्या-विशालकीर्तिकी सहायतासे लिखी थी। और इस टीकाकी प्रथम प्रति अभयचंद्रने जोकि निर्ग्रन्थाचार्य और त्रैविद्य-चक्रवर्ती कहलाते थे, संशोधन करके तैयार की थी। दोनों प्रशस्तियोंकी

---

१ हिन्दी अनुवाद जीवकाण्डपर पं० खूबचन्दका, कर्मकाण्डपर प० मनोहरलालका, अंग्रेजी अनुवाद जीवकाण्डपर मिस्टर जे एल. जैनीका, कर्मकाण्डपर ब्र० शीतलप्रसाद तथा बाबू अजितप्रसादका, और मराठी अनुवाद गांधी नेमचन्द बालचन्दका है।

२ यह पाठ ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बईकी जीवतत्वप्रदीपिका सहित गोम्मटसारकी एक हस्तलिखित प्रतिपरसे उपलब्ध होता है (रिपोर्ट १ वीर स० २४४६, पृ० १०४-१०६)।

३ प० टोडरमल्लजीने लिखा है—

"केशववर्णी भव्य विचार कर्णाटक-टीका-अनुसार।
संस्कृत टीका कीनी एहु जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु॥"

४ अनेकान्त वर्ष ४ कि० १ पृ० ११३-१२०।

मौलिक बातोंमें कोई खास भेद नहीं है, उल्लेखनीय भेद केवल इतना ही है कि पद्यप्रशस्तिमें ग्रन्थकारने अपना नाम नेमिचन्द्र नहीं दिया, जब कि गद्य-पद्यात्मक प्रशस्तिमें वह स्पष्टरूपसे पाया जाता है, और उसका कारण इतना ही है कि पद्यप्रशस्ति उत्तमपुरुषमे लिखी गई है । ग्रन्थकी संधियों—"इत्याचार्य-नेमिचन्द्र-विरचितायां गोम्मटसारापरनाम - पंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकायां" इत्यादिमें—जीवतत्त्वप्रदीपिका टीकाके कर्तृत्वरूपमें नेमिचन्द्रका नाम स्पष्ट उल्लिखित है और उससे गोम्मटसारके कर्ताका आशय किसी तरह भी नहीं लिया जा सकता। इसी तरह संस्कृत-टीकामे जिस कर्नाटकवृत्तिका अनुसरण है उसे स्पष्टरूपमें केशववर्णीकी घोषित किया गया है, चामुण्डरायकी वृत्तिका उसमें कोई उल्लेख नहीं है और न उसका अनुसरण सिद्ध करनेके लिये कोई प्रमाण ही उपलब्ध है । चामुण्डरायवृत्तिका कहीं कोई अस्तित्व मालूम नहीं होता और इसलिये यह सिद्ध करनेकी कोई संभावना नहीं कि संस्कृत-जीवतत्त्वप्रदीपिका चामुण्रायकी टीकाका अनुसरण करती है। गो० कर्मकाण्डकी ९७२वीं गाथामें चामुण्डराय (गोम्मटराय) के द्वारा जिस 'देशी'के लिखे जानेका उल्लेख है उसे 'कर्नाटकवृति' समझा जाता है—अर्थात् वह वस्तुतः गोम्मटसारपर कर्णाटकवृत्ति लिखी गई है इसका कोई निश्चय नहीं है ।'

सचमुचमें चामुण्रायकी कर्णाटकवृत्ति अभी तक एक पहेली ही बनी हुई है, कर्मकाण्डकी उक्त गाथा[1] में प्रयुक्त हुए 'देसी' पद परसे की जानेवाली कल्पनाके सिवाय उसका अन्यत्र कहीं कोई पता नहीं चलता । और उक्त गाथाकी शब्द-रचना बहुत कुछ अस्पष्ट है—उसमें प्रयुक्त 'जा' पदका संबंध किसी दूसरे पदके साथ व्यक्त नहीं होता, उत्तरार्धमे 'राओ' पद भी खटकता हुआ है, उसकी जगह कोई क्रियापद होना चाहिये। और जिस 'वीरमत्तंडी' पदका उसमें उल्लेख है वह चामुण्डरायकी 'वीरमार्तण्ड' नामकी उपाधिकी दृष्टिसे उनका एक उपनाम है, न कि टीकाका नाम; जैसा कि प्रो० शरच्चन्द्र घोशालने समझ लिया है,[2] और जो नाम गोम्मटसारकी टीकाके लिये उपयुक्त भी मालूम नहीं होता । मेरी रायमे 'जा' के स्थानपर 'जं' पाठ होना चाहिये, जो कि प्राकृतमे एक अव्यय पद है और उससे 'जेण'(येन) का अर्थ (जिसके द्वारा) लिया जा सकता है और उसका सम्बन्ध 'सो' (वह) पदके साथ ठीक बैठ जाता है। इसी तरह 'राओ' के स्थान पर 'जयउ' क्रियापद होना चाहिये, जिसकी वहाँ आशीर्वादात्मक अर्थकी दृष्टिसे आवश्यकता है—अनुवादकों आदिने 'जयवंत प्रवर्तो' अर्थ दिया भी है, जो कि 'जयउ' पदका संगत अर्थहै। दूसरा कोई क्रियापद गाथामें है भी नहीं, जिससे वाक्यके अर्थकी ठीक संगति घटित की जा सके। इसके सिवाय, 'गोम्मटरायेण' पदमे राय' शब्दकी मौजूदगीसे 'राओ' पदकी ऐसी कोई खास जरूरत भी नहीं रहती, उससे गाथाके तृतीय चरणमें एक मात्राकी वृद्धि होकर छदोभंग भी हो रहा है । 'जयउ' पदके प्रयोगसे यह दोष भी दूर हो जाता है । और यदि 'राओ' पदको स्पष्टताकी दृष्टिसे रखना ही हो तो, 'जयउ' पदको स्थिर रखते हुए, उसे 'कालं' पदके स्थानपर रखना चाहिये' क्योंकि तब 'कालं' पदके विना ही 'चिरं' पदसे उसका काम चल जाता है, इस तरह उक्त गाथाका शुद्धरूप निम्नप्रकार ठहरता है :—

---

१ "गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी ।
सो राओ चिरं कालं णामेण य वीरमत्तंडी ॥ ९७२ ॥"

२ प्रो० शरच्चन्द्र घोशाल एम ए. कलकत्ताने, 'द्रव्यसंग्रह'के अँग्रेजी संस्करणकी अपनी प्रस्तावनामें, गोम्मटसारकी उक्त गाथापरसे कनडी टीकाका नाम 'वीरमार्तण्डी' प्रकट किया है और जिसपर मैंने जनवरी सन् १९१८ में, अपनी समालोचना (जैनहितैषी भाग १३ अङ्क १२) के द्वारा आपत्ति की थी।

गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण जं कया देसी ।
सो जयउ चिरं कालं (राओ) णामेण य वीरमत्तंडी ॥

गाथाके इस संशोधित रूपपरसे उसका अर्थ निम्न प्रकार होता है :—

'गोम्मट-सूत्रके लिखे जानेके अवसरपर—गोम्मटसार शास्त्रकी पहली प्रति तैयार किये जानेके समय—जिस गोम्मटरायके द्वारा देशीकी रचना की गई है—देशकी भाषा कनडीमें उसकी छायाका निर्माण किया गया है—वह 'वीरमार्तण्डी' नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त राजा चिरकाल तक जयवन्त हो।'

यहाँ 'देसी' का अर्थ 'देशकी कनडी भाषामे छायानुवादरूपसे प्रस्तुत की गई कृति' का ही संगत वैठता है न कि किसी वृत्ति अथवा टीकाका; क्योंकि ग्रंथकी तैयारीके बाद उसकी पहली साफ कापीके अवसरपर, जिसका ग्रंथकार स्वयं अपने ग्रंथके अन्तमें उल्लेख कर सके, छायानुवाद-जैसी कृतिकी ही कल्पना की जा सकती है, समय-साध्य तथा अधिक परिश्रमकी अपेक्षा रखनेवाली टीका-जैसी वस्तुकी नहीं। यही वजह है कि वृत्तिरूपमे उस देशीका अन्यत्र कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता—वह संस्कृत-छायाकी तरह कन्नड-छायारूपमे ही उस वक्तकी कर्नाटक-देशीय कुछ प्रतियोंमे रही जान पड़ती है।

अब मैं दूसरी दो टीकाओंके सम्बन्धमें इतना और बतला देना चाहता हूँ कि अभयचन्द्रकी 'मन्दप्रबोधिका' टीकाका उल्लेख चूँकि केशववर्णीकी कन्नड-टीकामें पाया जाता है इससे वह ई० सन १३५६ से पहलेकी बनी हुई है इतना तो सुनिश्चित है; परन्तु कितने पहलेकी? इसके जाननेका इस समय एक ही साधन उपलब्ध है और वह है मंदप्रबोधिकामें एक 'बालचन्द्र पण्डितदेव' का उल्लेख[1]। डा० उपाध्येने, अपने उक्त लेखमे इनकी तुलना उन 'बालेन्दु' पंडितसे की है जिनका उल्लेख श्रवणबेल्गोलके ई० सन १३१३ के शिलालेख नं० ६५ में हुआ है[2] और जिनकी प्रशंसा अभयचन्द्रकी प्रशंसाके साथ वेलूर के शिलालेखों[3] नं० १३१–१३३ में की गई है और जिनपरसे बालचंद्रके स्वर्गवासका समय ई० सन् १२७४ तथा अभयचन्द्रके स्वर्गवासका समय ई० सन् १२७६ उपलब्ध होता है। और इस तरह 'मन्दप्रबोधिका' का समय ई० सनकी १३वीं शताब्दीका तीसरा चरण स्थिर किया जा सकता है। शेष रही पंडित टोडरमल्लजीकी 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' टीका, उसका समय सुनिश्चित है ही—वह माघ सुदी पञ्चमी सं० १८१८ को लब्धिसार-क्षपणासारकी टीकाकी समाप्तिसे कुछ पहले ही बनकर पूर्ण हुई है। इसी हिन्दी टीकाको, जो खूब परिश्रमके साथ लिखी गई है, गोम्मटसार ग्रंथके प्रचारका सबसे अधिक श्रेय प्राप्त है।

इन चारों टीकाओके अतिरिक्त और भी अनेक टीका-टिप्पणादिक इस ग्रंथराज पर पिछली शताब्दियोंमें रचे गये होंगे, परन्तु वे इस समय अपनेको उपलब्ध नहीं हैं और इसलिये उनके विषयमे यहाँ कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

४१. लब्धिसार—यह लब्धिसार ग्रंथ भी उन्हीं श्रीनेमिचन्द्राचार्यकी कृति है जो कि गोम्मटसारके कर्ता हैं और इसे एक प्रकारसे गोम्मटसारका परिशिष्ट समझा जाता है। गोम्मटसारके दोनों काण्डोंमे क्रमशः जीव और कर्मका वर्णन है, तब इसमे बतलाया गया है कि कर्मो को काटकर जीव कैसे मुक्तिको प्राप्त कर सकता अथवा अपने शुद्धरूपमें स्थित होसकता है। इसका प्रधान आधार कसायपाहुड और उसकी धवला टीका है। इसमें

---

१ जीवकाण्ड, कलकत्ता संस्करण, पृ० १५० ।

२ एपिग्रेफिया कर्णाटिका जिल्द न० २ ।

३ एपिग्रेफिया कर्णाटिका जिल्द न० ५ ।

१ दर्शनलब्धि, चारित्रलब्धि और ३ क्षायिकचारित्र नामके तीन अधिकार हैं। प्रथम अधिकारमें पाँच लब्धियोंके स्वरूपादिका वर्णन है, जिनके नाम हैं—१ क्षयोपशम २ विशुद्धि, ३ देशना, ४ प्रायोग्य और ५ करण। इनमेसे प्रथम चार लब्धियां सामान्य हैं, जो भव्य और अभव्य दोनों ही प्रकारके जीवोंके होती हैं। पाँचवीं करणलब्धि सम्यग्दर्शन और सम्यक्चरित्रकी योग्यता रखने वाले भव्यजीवोंके ही होती है और उसके तीन भेद हैं—१ अधःकरण, २ अपूर्वकरण ३ अनिवृत्तिकरण। दूसरे अधिकारमें चरित्र-लब्धिका स्वरूप और चारित्रके भेदों-उपभेदों आदिका संक्षेपमें वर्णन है। साथ ही. उपशमश्रेणी चढ़नेका विधान है। तीसरे अधिकारमें चारित्रमोहकी क्षपणाका संक्षिप्त विधान है, जिसका अन्तिम परिणाम मुक्ति है। इस प्रकार यह ग्रन्थ संक्षेपमें आत्मविकासकी कुंजी अथवा उस की साधन-सूचीको लिये हुए है। रायचन्द्र-जैनशास्त्रमालामे मुद्रित प्रतिके अनुसार इसकी गाथासंख्या ६४६ है। इसपर भी दूसरे नेमिचंद्राचार्यकी संस्कृत टीका और पं० टोडरमल्ल जीकी हिन्दी टीका उपलब्ध है। पण्डित टोडरमल्लजीने इसके दो अधिकारोंका व्याख्यान तो संस्कृत टीकाके अनुसार किया है और तीसरे 'क्षपणा' अधिकारका व्याख्यान उस संस्कृत गद्यात्मक क्षपणासारके अनुसार किया है जो श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्यदेवकी कृति है। और इसीसे उन्होंने अपनी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाको लब्धिसार-क्षपणासार-सहित गोम्मटसारकी टीका व्यक्त किया है।

४२. **त्रिलोकसार**—यह त्रिलोकसार ग्रन्थ भी उक्त नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती-की कृति है। इसमे ऊर्ध्व मध्य, अध ऐसे तीनो लोकोके आकार-प्रकारादिका विस्तारके साथ वर्णन है। इसका आधार 'तिलोयपण्णत्ती' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) और 'लोकविभाग' जैसे प्राचीन ग्रन्थ जान पड़ते हैं। इसकी गाथासंख्या १०१८ है, जिसमे कुछ गाथाएँ माधवचन्द्र त्रैविद्यके द्वारा भी रची गई हैं, जो कि ग्रन्थकारके प्रधान शिष्योंमे थे और जिन्होंने इस ग्रन्थपर संस्कृत टीका भी लिखी है। वे गाथाएं नेमिचन्द्राचार्यको सम्मत थीं अथवा उनके अभिप्रायानुसार लिखी गई हैं, ऐसा टीकाकी प्रशस्तिमे व्यक्त किया गया है। गोम्मटसार ग्रन्थमे भी कुछ गाथाएं आपकी बनाई हुई शामिल हैं, जिनकी सूचना टीकाओं-के प्रस्तावना-वाक्योंसे होती है। गोम्मटसारकी तरह इस ग्रन्थका निर्माण भी प्रधानत. चामुण्डरायको लक्ष्य करके—उनके प्रतिबोधनार्थ हुआ है और इस बातको माधवचन्द्रजीने अपनी टीकाके प्रारम्भमे व्यक्त किया है। अस्तु, यह ग्रन्थ उक्त संस्कृत टीका-सहित माणि-कचन्द्र-ग्रन्थमालामे प्रकाशित हो चुका है। इसपर भी पं० टोडरमल्लजीकी विस्तृत हिन्दी टीका है, जिसमे गणितके विषयको विशेष रूपसे खोला गया है।

४३. **द्रव्यसंग्रह**—यह संक्षेपमे जीव और अजीव द्रव्योंके कथनको लिये हुए एक बड़ा ही सुन्दर सरल एवं रोचक ग्रन्थ है। इसमें षट्द्रव्यों, पंचास्तिकायों, सप्ततत्त्वों और नवपदार्थोंका सूत्ररूपसे वर्णन है। साथ ही, निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्गका भी सूत्रतः निरूपण है। और इस लिये यह एक पद्यात्मक सूत्र ग्रन्थ है, जिसकी पद्य संख्या कुल ५८ है। ग्रन्थके अन्तिम पद्यमे ग्रन्थकारने अपना नाम 'नेमिचन्द्रमुनि' दिया है—अपना तथा अपने गुरु आदिका और कोई परिचय नहीं दिया। इन नेमिचन्द्रमुनिको आम तौर पर गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती समझा जाता है; परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी मालूम नहीं होती और उसके निम्नकारण हैं:—

प्रथम तो इन ग्रन्थकार महोदयका 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' के रूपमे कोई प्राचीन उल्लेख नहीं मिलता। संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेवने भी इन्हें 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' नहीं लिखा, किन्तु 'सिद्धान्तिदेव' प्रकट किया है। सिद्धान्ती होना और बात है और सिद्धान्तचक्रवर्ती होना दूसरी बात है। सिद्धान्तचक्रवर्तीका पद सिद्धान्ती, सैद्धान्तिक अथवा सिद्धान्तिदेवके

पदसे बड़ा है।)

(दूसरे, गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्राचार्यकी यह खास पद्धति रही है कि वे अपने ग्रन्थोंमे अपने गुरु अथवा गुरुवोंका नामोल्लेख जरूर करते आए हैं, चुनॉचे लब्धिसार और त्रिलोकसारके अन्तमे भी उन्होंने अपने नामके साथ गुरु-नामका उल्लेख किया है; परन्तु इस ग्रन्थमे वैसा कुछ नहीं है[1]। अतः इसे भी उन्हींकी कृति कहनेमे संकोच होता है।)

(तीसरे, टीकाकार ब्रह्मदेवने, इस ग्रन्थके रचे जानेका सम्बन्ध व्यक्त करते हुए अपनी टीकाके प्रस्तावना-वाक्यमे लिखा है कि—'यह द्रव्यसंग्रह नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवके द्वारा, भाण्डागारादि अनेक नियोगोंके अधिकारी 'सोम' नामके राजश्रेष्ठिके निमित्त, 'आश्रम' नाम नगरके मुनिसुव्रत-चैत्यालयमें रचा गया है, और वह नगर उस समय धारा-धीश महाराज भोजदेव कलिकालचक्रवर्ती-सम्बन्धी श्रीपाल मण्डलेश्वरके अधिकारमे था। साथ ही, यह भी सूचित किया है कि 'पहले २६ गाथा-प्रमाण लघुद्रव्यसंग्रहकी रचना की गई थी, बादको विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थ उसे बढ़ाकर यह ब्रहद्द्रव्यसंग्रह बनाया गया है[2]।' यह सब कथन ऐसे ढंगसे और ऐसी तफसीलके साथ लिखा गया है कि इसे पढ़ते समय यह खयाल आये विना नहीं रहता कि या तो ब्रह्मदेव उस समय मौजूद थे जब कि द्रव्य-संग्रह बनकर तय्यार हुआ, अथवा उन्हें दूसरे किसी खास विश्वस्त मार्गसे इन सब बातोका ज्ञान प्राप्त हुआ है, और इस लिये इसे सहसा असत्य या अप्रमाण नहीं कहा जा सकता। और जब तक इस कथनको असत्य सिद्ध न कर दिया जाय तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रन्थ उन्हीं नेमिचन्द्रके द्वारा रचा गया है जो कि चामुण्डरायके समका-लीन थे; क्योंकि उनका समय ईसाकी १०वीं शताब्दी है, जब कि भोजकालीन नेमिचन्द्रका समय ईसाकी ११वीं शताब्दी बैठता है।)

चौथे, द्रव्यसंग्रहके कर्ताने भावास्रवके भेदोंमे 'प्रमाद' को भी गिनाया है और अविरतके पाँच तथा कषायके चार भेद ग्रहण किये हैं। परन्तु गोम्मटसारके कर्त्ताने 'प्रमाद' को भावास्रवके भेदोंमें नहीं माना और अविरतके (दूसरे ही प्रकारके) बारह तथा कषायके २५ भेद स्वीकार किये हैं; जैसा कि दोनों ग्रंथोंके निम्नवाक्योंसे प्रकट है:—

> मिच्छत्ताऽविरदि-पमादजोग-कोहादओऽथ विण्णेया।
> पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥ —द्रव्यसंग्रह
> मिच्छत्तं अविरमणं कसाय-जोगा य आसवा होंति।
> पण बारस पणवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया ॥७८६॥ —गो० कर्म्मकाण्ड

---

१ "वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण।
दंसणचरित्तलद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण" ॥ ६४८ ॥—लब्धिसार
"इदि णेमिचदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण।
रइयो तिलोयसारो खमतु त बहुसुदाइरिया" ॥ १०१८ ॥—त्रिलोकसार
"दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥ ५८ ॥—द्रव्यसंग्रह

२ "अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपतिराजाभोजदेवाभिधान-कलिकालचक्रवर्तिसम्बन्धिनः श्रीपाल-मण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याऽऽश्रमनामनगरे श्रीमुनिसुव्रततीर्थंकरचैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसम्पन्न-सुखामृतरसास्वादविपरीतनारकादिदुःखभयभीतस्य परमात्मभावनोत्पन्नसुखसुधारसपिपासितस्य भेदाऽभेद-रत्नत्रयभावनाप्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेक-नियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनोनिमित्तं श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिलघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद्विशेष-तत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य बृहद्द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन वृत्तिः प्रारभ्यते।"

एक ही विषयपर, दोनों ग्रंथोंके इन विभिन्न कथनोंसे ग्रंथकर्ताओंकी विभिन्नताका बहुत कुछ बोध होता है। और इस लिये उक्त सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए यह कहनेमें कोई बाधा मालूम नहीं होती कि द्रव्यसंग्रहके कर्ता नेमिचन्द्र गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीसे भिन्न हैं। इसी बातको मैंने आजसे कोई २६ वर्ष पहले द्रव्यसंग्रहकी अपनी उस विस्तृत समालोचनामे व्यक्त किया था, जो आरासे बा० देवेन्द्रकुमार द्वारा प्रकाशित द्रव्यसंग्रहके अंग्रेजी संस्करणपर की गई थी और जैन हितैषी भाग १३ के १२वें अंकमे प्रकट हुई थी। उसके विरोधमे किसीका भी कोई लेख अभी तक मेरे देखनेमें नहीं आया। प्रत्युत इसके, प० नाथूरामजी प्रेमीने, त्रिलोकसारकी अपनी (ग्रंथकर्तृपरिचयात्मक) प्रस्तावनामें, उसे स्वीकार किया है। अस्तु; नेमिचन्द्र नामके अनेक विद्वान् आचार्य जैनसमाजमे होगए हैं, जिनमेसे एक ईसाकी प्रायः ११वीं शताब्दीमें भी हुए हैं जो वसुनन्दि-सद्धान्तिकके गुरु थे, जिन्हें वसुनन्दि-श्रावकाचारमे 'जिनागमरूप समुद्रकी वेला-तरंगोंसे धूयमान और संपूर्णजगतमे विख्यात' लिखा है। आश्चर्य तथा असंभव नहीं जो ये ही नेमिचन्द्र द्रव्यसंग्रहके कर्ता हों, परन्तु यह बात अभी निश्चितरूपसे नहीं कही जा सकती—उसके लिये और भी कुछ साधन-सामग्रीकी जरूरत है।

ग्रंथपर ब्रह्मदेवकी उक्त टीका आध्यात्मिक दृष्टिसे निश्चय और व्यवहारका पृथक्करण करते हुए कुछ विस्तारके साथ लिखी गई है। इस टीकाकी एक हस्तलिखित प्रति जेसलमेरके भण्डारमे संवत् १४८५ अर्थात् ई० सन् १४२८ की छिखी हुई उपलब्ध है और इससे यह टीका ई० सन १४२८ से पहलेकी बनी हुई है। चूंकि टीकामें धाराधीश भोजका उल्लेख है, जिसका समय ई० सन् १०१८ से १०६० है अत. यह टीका ईसाकी ११वीं शताब्दी से पहलेकी नहीं है। इसका समय अनुमानतः १२वीं-१३वीं शताब्दी जान पड़ता है।

४४. **कर्मप्रकृति**—यह वही १६० गाथाओंका एक संग्रह ग्रंथ है जो प्रायः गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्राचार्य (सिद्धान्तचक्रवर्ती) की कृति समझा जाता है; परन्तु वस्तुतः उनके द्वारा संकलित मालूम नहीं होता—उन्हींके नामके अथवा उन्हींके नामसे किसी दूसरे विद्वानके द्वारा संकलित या संगृहीत जान पड़ता है—और जिसका विशेष ऊहापोहके साथ पूर्ण परिचय गोम्मटसार-विषयक प्रकरणमे 'प्रकृति समुत्कीर्तन और कर्मप्रकृति' उपशीर्षकके नीचे दिया जा चुका है। वहींपर इस ग्रंथपर उपलब्ध होनेवाली टीकाओ तथा टिप्पणादिका भी उल्लेख किया गया है, जिनपरसे ग्रंथका दूसरा नाम 'कर्मकाण्ड' उपलब्ध होता है और गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी दृष्टिसे जिसे 'लघुकर्मकाण्ड' कहना चाहिये। (यहाँपर मैं सिर्फ इतना ही बतलाना चाहता हूँ कि इस ग्रंथका अधिकांश शरीर, आदि-अन्तभागों-सहित गोम्मटसारकी गाथाओंसे निर्मित हुआ है—गोम्मटसारकी १०२ गाथाएं इसमे ज्यो-की-त्यों उद्धृत हैं और २८ गाथाएं उसीके गद्य सूत्रोंपरसे निर्मित जान पड़ती हैं। शेष ३० गाथाओंमें १६ गाथाएं तो देवसेनादिके भावसंग्रहादि ग्रंथोंसे ली गई मालूम होती हैं और १४ ऐसी हैं जिनके ठीक स्थानका अभी तक पता नहीं चला—वे धवलादि ग्रंथोके षट्संहननोंके लक्षण-जैसे वाक्योंपरसे संग्रहकारद्वारा खुदकी निर्मित भी हो सकती हैं। इन सब गाथाओंका विशेष परिचय गोम्मटसार-प्रकरणके उक्त उपशीर्षकके नीचे (पृष्ठ ७४ से ८८ तक) दिया है, वहींसे उसे जानना चाहिये।)

४५. **पंचसंग्रह**—यह गोम्मटसार-जैसे विषयोंका एक अच्छा अप्रकाशित संग्रह ग्रंथ है। गोम्मटसारका भी दूसरा नाम "पंचसंग्रह' है; परन्तु उसमे सारे ग्रंथको जिस प्रकार दो काण्डों (जीव, कर्म) में विभक्त किया है और फिर प्रत्येक काण्डके अलग अलग अधिकार दिये हैं उस प्रकारका विभाजन इस ग्रंथमे नहीं है। इसमें समूचे ग्रंथको पाच अधिकारों

में विभक्त किया है और वे अधिकार हैं १ जीवस्वरूप, २ प्रकृति समुत्कीर्तन, ३ कर्मस्तव, ४ शतक और ५ सप्ततिका। ग्रंथकी गाथासंख्या १५०० के लगभग है—किसी किसी प्रतिमे कुछ गाथाएं कम-बढ़ती भी पाई जाती हैं, इससे अभी निश्चित गाथासंख्याका निर्देश नहीं किया जा सकता। गाथाओंके अतिरिक्त कहीं कहीं कुछ गद्य-भाग भी पाया जाता है। ग्रंथकी जो दो चार प्रतियाँ देखनेमे आई उनमेसे किसीपरसे भी ग्रंथकर्ताका नाम उपलब्ध नहीं होता और न रचनाकाल ही पाया जाता है। और इससे यह समस्या अभी तक खड़ी ही चली जाती है कि इस ग्रंथके कर्ता कौन आचार्य है और कब यह ग्रंथ बना है ? ग्रंथपर सुमतिकीर्तिकी संस्कृत टीका और किसीका संस्कृतटिप्पण भी उपलब्ध है, परन्तु उनपरसे भी इस विषयमे कोई सहायता नहीं मिलती।

प० परमानन्दजी शास्त्रीने इस ग्रंथका प्रथम परिचय अनेकान्तके तृतीय वर्षकी तीसरी किरणमें 'अतिप्राचीन प्राकृत पंचसंग्रह' नामसे प्रकाशित कराया है। यह परिचय जिस प्रतिके आधारपर लिखा गया है वह बम्बईके ऐलकपन्नालाल-सरस्वती-भवनकी ६२ पत्रात्मक प्रति है[1], जो माघ वदी ३ गुरुवार संवत् १५२७ की टंबकनगरकी लिखी हुई है। इस परिचयमे चौथे-पाँचवें अधिकारकी निम्न दो गाथाओंको उद्धृत करके बतलाया है कि "ग्रंथकी अधिकांश रचना दृष्टिवादनामक १२वें अंगसे सार लेकर और उसकी कुछ गाथाओंको भी उद्धृत करके की गई है।" और इस तरह ग्रंथकी अति-प्राचीनताको घोषित किया है :—

> सुणह इह जीव-गुणसन्निहीसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
> वोच्छं कदिवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवादाओ ॥ ४-३ ॥
> सिद्धपदेहिं महत्थं बंधोदय-सत्त-पयडि-ठाणाणि ।
> वोच्छ पुण संखेवेण णिस्सदं दिट्ठिवादाओ ॥ ५-२ ॥

साथ ही, कुछ गाथाओंकी तुलना करते हुए यह भी बतलाया है कि वीरसेनाचार्यकी धवला टीकामे जो सैकड़ों गाथाएँ 'उक्तं च' आदि रूपसे उद्धृत पाई जाती हैं। वे तो प्रायः इसी (ग्रन्थ) परसे उद्धृत जान पड़ती हैं। उनमेंसे जिन १०० गाथाओंको प्रो० हीरालालजीने, धवलाके सत्प्ररूपणा-विषयक प्रथम अंशकी प्रस्तावनामें, धवलापरसे गोम्मटसारमे संग्रह किया जाना लिखा है वे गाथाएँ गोम्मटसारमें तो कुछ पाठभेदके साथ भी उपलब्ध होती हैं परन्तु पंचसंग्रहमें प्रायः ज्योंकी त्यों पाई जाती हैं।' और इस परसे फिर यह फलित किया है कि 'आचार्य वीरसेनके सामने 'पंचसग्रह' जरूर था, इसीसे उन्होंने उसकी उक्त गाथाओंको अपने ग्रन्थ (धवला) मे उद्धृत किया है। आचार्य वीरसेनने अपनी 'धवला टीका शक संवत् ७३८ (वि० सं० ८७३) मे पूर्ण की है। अतः यह निश्चित है कि पचसग्रह इससे पहलेका बना हुआ है।" परन्तु यह फलितार्थ अपने औचित्यके लिये कुछ अधिक प्रमाणकी आवश्यकता रखता है—कमसे कम जब तक धवलामे एक जगह भी किसी गाथाके उद्धरणके साथ पंचसंग्रहका स्पष्ट नामोल्लेख न बतला दिया जाय तब तक मात्र गाथाओंकी समानतापरसे यह नहीं कहा जा सकता कि धवलामे वे गाथाएँ इसी पचसंग्रह ग्रन्थपरसे उद्धृत की गई हैं, जो खुद भी एक सग्रह ग्रन्थ है। हो सकता है कि धवला परसे ही वे गाथाएँ पंचसंग्रहमें उसी प्रकार सग्रह की गई हो जिस प्रकार कि गोम्मटसारमे बहुत-सी गाथाएँ सग्रहीत पाई जाती हैं। साथ ही, यह भी हो सकता है कि पचसंग्रहपरसे ही धवलामें उनको उद्धृत किया गया हो। इसके सिवाय, यह

---

१ ग्रन्थकी दूसरी प्रतिया जयपुर आमेर, नागौर आदिके शास्त्रभण्डारोंमें पाई जाती हैं।

भी संभव है कि धवलामें वे किसी दूसरे ही प्राचीन ग्रन्थपरसे उद्धृत की गई हों और उसी परसे पंचसंग्रहकारने भी उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक अपनाया हो। और इस तरह विशेष प्रमाणके अभावमें पंचसंग्रह धवलासे पूर्ववर्ती तथा पश्चाद्वर्ती दोनों ही हो सकता है।

इसी तरह पंचसंग्रहमें "पुट्ठं सुणेइ सद्दं अपुट्ठं पुण पस्सदे रूवं, फासं रसं च गंधं बद्धं पुट्ठं वियाणादि" इस गाथाको देखकर और तत्त्वार्थसूत्र १, १९की 'सर्वार्थसिद्धि' वृत्तिमें उसे उद्धृत पाकर यह जो नतीजा निकाला गया है कि "विक्रमकी छठी शताब्दीके पूर्वार्धके विद्वान आचार्य देवनन्दी (पूज्यपाद) ने अपनी सर्वार्थसिद्धिमें आगमसे चक्षु-इन्द्रियको अप्राप्यकारी सिद्ध करते हुए पंचसंग्रहकी यह गाथा उद्धृत की है, जिससे स्पष्ट है कि पंचसंग्रह पूज्यपादसे पहलेका बना हुआ है" वह भी अपने औचित्यके लिये विशेष प्रमाणकी आवश्यकता रखता है, क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें उक्त गाथाको उद्धृत करते हुए 'पंचसंग्रह'का कोई नामोल्लेख नहीं किया गया है, बल्कि स्पष्ट रूपमे "आगमतस्तावत्" इस वाक्य के साथ उसे उद्धृत किया है और इससे बहुत संभव है कि मौलिक कृतिरूपमें रचे गये किसी स्वतंत्र आगम ग्रन्थकी ही उक्त गाथा हो और वहींपरसे उसे सर्वार्थसिद्धिमें उद्धृत किया गया हो, न कि किसी संग्रहग्रन्थपरसे। साथ ही, यह भी संभव है कि सर्वार्थसिद्धिपरसे ही उक्त गाथाको पंचसंग्रहमें अपनाया गया हो अथवा उस आगम ग्रन्थ परसे सीधा अपनाया गया हो जिसपरसे वह सर्वार्थसिद्धिमें उद्धृत हुई है। और इसलिये सर्वार्थसिद्धिमें उक्त गाथाके उद्धृत होने मात्रसे यह लाजिमी नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि 'पंचसंग्रह' सर्वार्थसिद्धिसे पहलेका बना हुआ है। वह नतीजा तभी निकाला जा सकता है जब पहले यह साबित (सिद्ध) हो जाय कि उक्त गाथा पंचसंग्रहकारकी ही मौलिक कृति है—दूसरी गाथाओंकी तरह अन्यत्रसे ग्रंथमे संगृहीत नहीं है।

ग्रंथके प्रथम अधिकारमें दर्शनमोहकी उपशमना और क्षपणा-विषयक तीन गाथाएँ ऐसी संगृहीत हैं जो श्रीगुणधराचार्यके कषायपाहुड (कषायप्राभृत) में नं० ९१, १०६, १०९ पर पाई जाती हैं, उन्हें तुलनाके साथ देनेके अनन्तर परिचयलेखमे लिखा है कि कषायप्राभृतका रचनाकाल यद्यपि निर्णीत नहीं है तो भी इतना तो निश्चित है कि इसकी रचना कुन्दकुन्दाचार्यसे पहले हुई है। साथ ही, यह भी निश्चित है कि गुणधराचार्य पूर्ववित् थे और उनके इस ग्रंथकी रचना सीधी ज्ञानप्रवादपूर्वके उक्त अंशपरसे स्वतंत्र हुई है—किसी दूसरे आधारको लेकर नहीं हुई। अतः यह कहना होगा कि उक्त तीनों गाथाएं कषायप्राभृतकी ही हैं और उसीपरसे पंचसंग्रहमें उठाकर रक्खी गई हैं।" इससे पंचसंग्रहकी पूर्वसीमाका निर्धारण होता है अर्थात् वह कषायप्राभृतसे, जिसका समय विक्रमकी १ली शताब्दीसे बादका मालूम नहीं होता, पूर्वकी रचना नहीं है, बादकी ही है; परन्तु कितने बादकी, यह अभी ठीक नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना जरूर कहा जा सकता है कि पंच-संग्रहकी रचना विक्रम संवत् १०७३ से बादकी नहीं है—पहलेकी ही है; क्योंकि इस संवत में अमितगति आचार्यने अपना संस्कृतका पंचसंग्रह बनाकर समाप्त किया है[1] जो प्रायः इसी प्राकृत पंचसंग्रहके आधारपर—इसे सामने रखकर—अधिकांशतः अनुवादरूपमें प्रस्तुत किया गया है। और इसलिये इस संवत्को पंचसंग्रहके निर्माण-कालकी उत्तरवर्ती सीमा कहना चाहिये, अर्थात् इस संवत्के बाद उसका निर्माणसंभव नहीं—वह इससे पहले ही हो चुका है। पंचसंग्रहके निर्माणके बाद उसके प्रचार, प्रसिद्धि, अमितगति तक पहुँचने और उसे संस्कृतरूप देनेकी प्रेरणा मिलने आदिके लिये भी कुछ समय चाहिये ही, वह समय यदि कमसे कम ५०-६० वर्षका भी मान लिया जाय, जो अधिक नहीं है, तो यह

१ त्रिसप्तत्यधिकेऽब्दानां सहस्रे शकविद्विषः।
मसूतिकापुरे जातमिदं शास्त्रं मनोरमम्॥

कहना भी कुछ अनुचित नहीं होगा कि प्रस्तुत ग्रंथ गोम्मटसारसे, जो विक्रम संवत् १०३५ के बाद बना है, पहलेकी रचना है। और इसलिये यह ग्रंथ विक्रमकी ११वी शताब्दीसे पूर्व की ही कृति है। कितने पूर्वकी ? यह विशेष अनुसंधानसे सम्बन्ध रखता है और इससे निश्चितरूपमे उसकी बाबत अभी कुछ नहीं कहा जा सकता, फिर भी इतना तो कह ही सकते हैं कि वह विक्रमकी ९ वी और १०वीं शताब्दीके मध्यवर्ती कोई काल होना चाहिये।

(अब मै यहाँ पर इतना और बतला देना चाहता हूँ कि इस ग्रन्थके जो अन्तिम तीन अधिकार कर्मस्तव, शतक और सप्ततिका नामके हैं उन्हीं नामोके तीन ग्रन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदायमे अलग भी पाये जाते हैं, जिनकी गाथासंख्या क्रमशः ५५, १०० तथा १०८, ७५ पाई जाती है। उनमेसे शतकको वन्ध-विषयक कथनकी प्रधानताके कारण 'बन्धशतक' भी कहते हैं और उसका कर्ता कर्मप्रकृतिके रचयिता शिवशर्मसूरिको बतलाया जाता है। 'कर्मस्तव' को द्वितीय प्राचीन कर्मग्रथ कहा जाता है और उसका अधिक स्पष्ट नाम 'बन्धोदयसत्वयुक्तस्तव' है, उसके कर्ताका कोई पता नहीं। सप्ततिकाको छठा कर्मग्रंथ कहते हैं और उसे चन्द्रर्षि आचार्यकी कृति बतलाया जाता है। श्वेताम्बरोंके इन ग्रंथोंकी पंचसग्रहके साथ तुलना करते हुए, पं० परमानन्दजी शास्त्रीने 'श्वेताम्बर कर्मसाहित्य और दिगम्बर पचसंग्रह' नामका एक लेख लिखा है, जो तृतीय वर्षके अनेकान्तकी छठी किरणमें प्रकाशित हुआ है। उसमे कुछ प्रमाणों तथा ऊहापोहके साथ यह प्रकट किया गया है कि 'वन्धशतक' शिवशर्मकी, जिनका समय विक्रमकी ५वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है, कृति मालूम नहीं होता और न सप्ततिका चन्दर्षिकी कृति जान पड़ती है। साथ ही तीनों ग्रन्थोंमे पाई जानेवाली कुछ असगतता, विशृंखलता तथा त्रुटियोंका दिग्दर्शन कराते हुए गाथानम्बरोंके निर्देश सहित यह भी बतलाया है कि पंचसंग्रहके शतक प्रकरणकी ३०० गाथाओंमेसे ९४ गाथाएँ बन्धशतकमे, कर्मस्तवकी ७८ गाथाओंमेसे ५३ और दो गाथाएँ प्रकृतिसमुत्कीर्तन प्रकरणकी इस तरह ५५ गाथाए कर्मस्तव ग्रन्थमे और सप्ततिका प्रकरणकी कईसौ गाथाओंमेसे ५१ गाथाए सप्ततिका ग्रन्थमे प्रायः ज्योंकी-त्यों अथवा थोड़ेसे पाठभेद, मान्यताभेद या शब्दपरिवर्तनके साथ पाई जाती हैं, जिनके कुछ नमूने भी दिये गये हैं और उन सबका पचसंग्रहपरसे उठाकर अलग अलग ग्रन्थोंके रूपमे सकलित किया जाना घोषित किया है। शास्त्रीजीका यह सब निर्णय कहाँ तक ठीक है इस सम्बन्धमे मैं अभी कुछ कहनेके लिये तय्यार नहीं हूँ, क्योंकि दिगम्बर पंचसंग्रह और श्वेताम्बर कर्मग्रंथोंके यथेष्ट रूपमे स्वतंत्र अध्ययन एवं गवेषणापूर्ण विचारका मुझे अभी तक कोई अवसर नहीं मिल सका है। अवसर मिलनेपर उस दिशामे प्रयत्न किया जायगा और तब जैसा कुछ विचार स्थिर होगा उसे प्रकट किया जायगा।

हाँ, एक बात यहाँ पर और भी प्रकट कर देने की है और वह यह कि पंचसंग्रहके शतक अधिकारमे जो ३०० गाथाएं हैं उनकी बावत यह मालूम हुआ है कि उनमे मूलगाथाएं १०० हैं, बाकी दोसौ २०० भाष्य-गाथाए हैं। इसी तरह सप्ततिकामे मूलगाथाएं ७० और शेष सब भाष्यगाथाएं हैं। और इससे स्पष्ट है कि पंचसंग्रहका सकलन उस वक्त हुआ है जबकि स्वतंत्र प्रकरणोंके रूपमे शतक और सप्ततिकाकी मूल गाथाए ही नहीं बल्कि उनपर भाष्यगाथाएं भी बन चुकी थीं, इसीसे पंचसग्रहकार दोनोका सग्रह करनेमें समर्थ हो सका है। दोनो मूलप्रकरणोपर प्राकृतकी चूर्णि भी उपलब्ध है, दोनोंका ही सम्बन्ध दृष्टिवादकी गाथाओं आदिसे वतलाया गया है। और इससे दोनो प्रकरण अधिक प्राचीन हैं। यह भी मालूम होता है कि भाष्यगाथाओका प्रचार प्रायः दिगम्बर सम्प्रदायमे रहा है—श्वेताम्बर सम्प्रदायकी टीकाओके साथ वे नहीं पाई जातीं—और उनमेंसे 'सव्वट्ठिदीणमुक्कस्स' तथा 'सुहपगदी(यडी)ण विसोही' नामकी दो गाथाएं अकलंकदेवके राजवार्तिक (६-३) में 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत भी मिलती है, जिससे भाष्यगाथाओंका प्राय.

७ वी शताब्दीसे पहले ही निर्मित होना जान पड़ता है और इससे भाष्य भी अधिक प्राचीन ठहरता है। अब देखना यह है कि दोनों मूल प्रकरण दिगम्बर हैं या श्वेताम्बर अथवा ऐसे सामान्य स्रोतसे सम्बन्ध रखते हैं जहाँसे दोनों ही सम्प्रदायोंने उन्हें अपनी अपनी रुचि एवं सैद्धान्तिक स्थितिके अनुसार अपनाया है और उनका कर्ता कौन है तथा रचना-काल क्या है? साथ ही दोनों प्रकरणोंकी भाष्यगाथाएँ तथा चूर्णियाँ कब बनी हैं और किस किसके द्वारा निर्मित हुई हैं? ये सब बातें गहरी छान-बीन और गंभीर विचारणासे सम्बन्ध रखती हैं, जिनके होने पर सारा रहस्य सामने आ सकेगा।

संक्षेपमें यह ग्रन्थ अपने साहित्यकी दृष्टिसे बहुत प्राचीन और विषयवर्णनादिकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्वपूर्ण है—भले ही इसका वर्तमान 'पंचसंग्रह'के रूपमें संकलन विक्रमकी ११वीं शताब्दीसे पहले कभी क्यों न हुआ हो और किसीके भी द्वारा क्यो न हुआ हो।

४६. **ज्ञानसार**—यह ग्रंथ ध्यान-विषयक ज्ञानके सारको लिये हुए है, इसमें ध्यान-विषयका सारज्ञान कराया गया है। अथवा ज्ञानप्राप्तिका सार अमुकरूपसे ध्यान-प्रवृत्तिको बतलाया है। और इसीसे इसका ऐसा नाम रक्खा गया मालूम होता है। अन्यथा इसे 'ध्यानसार' कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। ध्यानविषयका इसमे कितना ही उपयोगी वर्णन है। इसकी गाथासंख्या ६३ है और उसे ७४ श्लोकपरिमाण बतलाया गया है। इसके कर्ता श्रीपद्मसिंह मुनि हैं, जिन्होने अपने मनके प्रतिबोधनार्थ और परमात्म-स्वरूपकी भावनाके निमित्त श्रावण शुक्ला नवमी वि० संवत् १०८६ को 'अम्बक' नगरमे इस ग्रन्थकी रचना की है। ग्रन्थकारने अपना तथा अपने गुरु आदिकका कोई परिचय नहीं दिया, और इसलिये उनके विषयमे कुछ नहीं कहा जा सकता, यह सब विशेष अनुसन्धानसे सम्बन्ध रखता है। ग्रन्थकी ३६वीं गाथामे बतलाया है कि जिस प्रकार पाषाण में सुवर्ण और काष्ठमें अग्नि दोनों विना प्रयोगके दिखाई नहीं पड़ते उसी प्रकार ध्यानके बिना आत्माका दर्शन नहीं होता और इससे ध्यानका माहात्म्य, लक्ष्य एवं फल स्पष्ट जान पड़ता है, जिसे ध्यानमे लेकर ही यह ग्रन्थ लिखा गया है। यह ग्रन्थ मूलरूपसे माणिक-चन्द्रग्रंथमालामें प्रकट हो चुका है।

४७. **रिष्टसमुच्चय**—यह ग्रंथ मृत्युविज्ञानसे सम्बन्ध रखता है। इसमे अनेक पिण्डस्थ, पदस्थ तथा रूपस्थादि चिन्हों-लक्षणों, घटनाओं एव निमित्तोंके द्वारा मृत्युको पहलेसे जान लेनेकी कलाका निर्देश है। इसके कर्ता श्रीदुर्गदेव हैं जो उन सयमदेव मुनीश्वरके शिष्य थे जिनकी बुद्धि षट्दर्शनोंके अभ्याससे तर्कमय हो गई थी, जो पञ्चाङ्ग तथा शब्दशास्त्रमे कुशल थे, समस्त राजनीतिमे निपुण थे, वादिगजोंके लिये सिंह थे और सिद्धान्तसमुद्रके पारको पहुँचे हुए थे। उन्हींकी आज्ञासे यह ग्रन्थ 'मरणकण्डिका' आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थोका उपयोग करके तीन दिनमे रचा गया है और (विक्रम) सवत् १०८९ की श्रावण शुक्ला एकादशीको मूल नक्षत्रके समय श्रीनिवास राजाके राज्य-कालमें कुम्भनगरके शान्तिनाथ मन्दिरमे बनकर समाप्त हुआ है। दुर्गदेवने अपनेको 'देसजई' (देशयति) बतलाया है, और इससे वे अष्टमूलगुण सहित श्रावकीय १२ व्रतोंसे भूपित[1] अथवा क्षुल्लक साधुके पदपर प्रतिष्ठित जान पड़ते हैं। साथ ही, अपने गुरुओंमे संयमसेन और माधवचन्द्रका भी नामोल्लेख किया है, परन्तु उनके विषयमे अधिक कुछ नहीं लिखा। डा० अमृतलाल सवचन्द गोपाणीने अपनी प्रस्तावनामे उन्हें सयमदेवके क्रमश. गुरु तथा दादा गुरु बतलाया है, परन्तु यह बात मूलपरस स्पष्ट नहीं होता[2]।

---

१ "मूलगुणट्ठपउत्ता बारहवयभूसिओ हु देसजई"—भावसग्रहे देवसेन:

२ जयउ जए जियमाणो संजमदेवो मुणीसरो इत्य।
तह वि हु सजमसेणो माहवचंदो गुरू तह य ॥ २५४ ॥

ग्रन्थकी गाथासंख्या २६१ है और जिस मरणकंडिकाके उपयोगका इसमे स्पष्ट उल्लेख है उसकी अधिकांश गाथाएं इसमें ज्यों-की-त्यों देखी जाती हैं, शेषके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि मरणकण्डिका अधूरी ही उपलब्ध है और इसीसे उसके रचयिताका नाम भी मालूम नहीं होता—वह मरणविषयपर अच्छा प्राचीन एवं विस्तृत ग्रन्थ जान पड़ता है। मरणकंडिकाके अतिरिक्त और भी रिष्टविषयक कुछ ग्रन्थोके वाक्योंका शब्दशः अथवा अर्थश· सग्रह इसमे होना चाहिये; क्योंकि ग्रन्थकारने 'रइयं बहुसत्थत्थं उवजीवित्ता' इस वाक्यके द्वारा स्वय उसकी सूचना की है और तभी यह संग्रहग्रन्थ तीन दिनमें तय्यार हो सका है, जो अपने विषयका एक अच्छा उपयोगी संकलन है। यह ग्रन्थ हालमें उक्त डा० गोपाणीके द्वारा सम्पादित होकर सिघी-जैनग्रन्थमालामें बम्बईसे अंग्रेजी अनुवादादिके साथ प्रकाशित हुआ है। मेरा विचार कई वर्ष पहलेसे इस ग्रन्थको, और भी कुछ प्रकरणो सहित 'मत्युविज्ञान' के रूपमें हिन्दी अनुवादादिके साथ वीरसेवामन्दिरसे प्रकट करनेका था. चुनॉचे वीरसेवामन्दिर ग्रन्थमालाके प्रथम ग्रन्थ 'समाधितंत्र' में, ग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थोकी सूची देते हुए, इसके भी नामका उल्लेख किया गया था; परन्तु अभी तक इस कामको हाथमे लेनेका यथेष्ट रूपसे अवसर ही नहीं मिल सका। अस्तु।

यहॉ पर मैं इतना और बतला देना चाहता हूँ कि इस ग्रन्थकारके रचे हुए दो ग्रन्थ और भी हैं—एक 'अर्घकाण्ड' और दूसरा 'मंत्रमहोदधि'। अर्घकाण्ड उपलब्ध है उसकी गाथासंख्या १४६ है और वह वस्तुओंकी मंदी-तेजी जाननेके विज्ञानको लिये हुए एक अच्छा महत्वका ग्रन्थ है। वाक्य-सूचीके समय यह अपनेको उपलब्ध नहीं हुआ था, इसीसे वाक्यसूचीमे शामिल नहीं हो सका। मंत्रमहोदधिका उल्लेख बृहत्टिप्पणिका[1] मे "मंत्रमहोदधिः प्रा० दिगंबर श्रीदुर्गदेव कृतः मं० गा० ३६" इस रूपसे मिलता है और इसपरसे उसकी गाथासंख्या ३६ जानी जाती है। यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। इसकी खोज होनेकी जरूरत है।

४८. वसुनन्दि-श्रावकाचार—यह वसुनन्दि आचार्यकी कृति-रूप श्रावकाचार-विषयका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमे दर्शनादि ११ प्रतिमाओंके क्रमसे आचारादि-विषयका निरूपण किया है। मुद्रित प्रतिके अनुसार इसकी गाथासंख्या ५४८ है और श्लोककी दृष्टिसे इसका परिमाण अन्तकी गाथामे ६५० दिया है। ग्रन्थकी दूसरी गाथामे 'सावयधम्मं परूवेमो' इस प्रतिज्ञाके द्वारा ग्रन्थनाम श्रावकधर्म (श्रावकाचार) सूचित किया है और अन्तकी ५४६ वीं गाथामे 'रइयं भवियाणमुवासयज्झयणं' इस वाक्यके द्वारा उसे 'उपासकाध्ययन' नाम दिया है। आशय दोनोंका एक ही है—चाहे 'उपासकाध्ययन' कहो और चाहे 'श्रावकाचार'।

इस ग्रन्थके अन्तमे वसुनन्दीने अपनी गुरुपरम्पराका जो उल्लेख किया है उससे मालूम होता है कि श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी वश-परम्परामे श्रीनन्दी नामके एक बहुत ही यशस्वी, गुणी एव सिद्धातशास्त्रके पारगामी आचार्य हुए हैं। उनके शिष्य नयनन्दी भी वैसे ही प्रख्यातकीर्ति, गुणशाली और सिद्धान्तके पारगामी थे। नयनन्दीके शिष्य नेमिचन्द्र थे. जो जिनागमसमुद्रकी वेलातरंगोंसे धूयमान और सकल जगतमे विख्यात थे। उन्हीं नेमिचन्द्रके शिष्य वसुनन्दीने, अपने गुरुके प्रसादसे, आचार्यपरम्परासे चले आए हुए श्रावकाचारको इस ग्रन्थमे निबद्ध किया है। यह ग्रन्थ अभी तक बहुत कुछ अशुद्ध रूपमे प्रकाशित हुआ है, इसकी एक अच्छी शुद्ध प्रति देहलीके शास्त्रभण्डारमे मौजूद है। उसपरसे तथा और भी शुद्ध प्रतियोका उपयोग करके इसका एक अच्छा शुद्ध सस्करण प्रकाशित होना चाहिये।

---

१ जैनसाहित्यसशोधक प्रथमखण्ड अक ४, पृ० १५७।

इस ग्रन्थमें वसुनन्दीने ग्रन्थरचनाका कोई समय नहीं दिया, परन्तु उनकी इस कृतिका उल्लेख १३वीं शताब्दीके विद्वान पं० आशाधरने अपनी सागारधर्मामृतकी टीकामें[1] किया है, इससे वे १३वीं शताब्दीसे पहले हुए हैं। और चूंकि उन्होंने मूलाचारकी अपनी 'आचारवृत्ति' में ११वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य अमितगतिके उपासकाचारसे 'त्यागो देहममत्वस्य तनूत्सृतिरुदाहृता' इत्यादि पाँच श्लोक 'उपासकाचारे उक्तमास्ते' रूपसे उद्धृत किये हैं, इसलिये वे अमितगतिके बाद हुए हैं। और इसलिये उनका तथा उनकी इस कृतिका समय विक्रमकी १२वीं शताब्दीका पूर्वार्ध जान पड़ता है और यह भी हो सकता है कि वह ११वीं शताब्दीका चतुर्थ चरण हो, क्योंकि, पं० नाथूरामजीके उल्लेखानुसार[2] अमितगतिने अपनी भगवतीआराधनाके अन्तमें आराधनाकी स्तुति करते हुए उसे 'श्रीवसुनन्दियोगिमहिता' लिखा है। यदि ये वसुनन्दी योगी कोई दूसरे न होकर प्रस्तुत श्रावकाचारके कर्ता ही हैं तो वे अमितगतिके समकालीन भी हो सकते हैं और १२वीं शताब्दीके प्रथम चरणमें भी उनका अस्तित्व बन सकता है।

यहाँ पर मैं इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि एक 'तत्त्वविचार' नामका ग्रन्थ भी वसुनन्दिसूरिकी कृतिरूपमें उपलब्ध है, जिसके वाक्य इस वाक्य-सूचीमें शामिल नहीं हो सके हैं। उसकी एक प्रति बम्बईके ऐलकपन्नालालसरस्वतीभवनमें मौजूद है जिसकी पत्रसंख्या २७ है[3]। सी० पी० और बरारके कैटेलॉगमें भी उसकी एक प्रतिका उल्लेख है। ग्रन्थकी गाथासंख्या ६५ है और उसका प्रारंभ 'णमिय जिणपासपय' और 'सुयसायरो अपारो' इन दो गाथाओंसे होता है तथा अन्तकी दो गाथाएँ समाप्ति-वाक्यसहित इस प्रकार हैं—

"एसो तच्चवियारो सारो सज्जन-जणाण सिवसुहदो।
वसुनंदिसूरि-रइयो भव्वाणं पबोहणट्ठं खु ॥ ६४ ॥
जो पढइ सुणइ अक्खइ अण्णं पाढेइ देइ उवएसं।
सो हणइ णिय य कम्मं कमेण सिद्धालयं जाई ॥ ६५ ॥
इति वसुनन्दि-सिद्धांति-विरचित-तत्त्वविचारः समाप्तः।"

इस ग्रन्थमें १ णवकारफल, २ धर्म, ३ एकोनविंशद्भावना, ४ सम्यक्त्व, ५ पूजाफल, ६ विनयफल, ७ वैय्यावृत्य, ८ एकादशप्रतिमा, ९ जीवदया, १० श्रावकविधि, ११ अणुव्रत, और १२ दान नामके बारह प्रकरण हैं। इनमेंसे प्रतिमा, विनय, और वैयावृत्य प्रकरणोंका जो मिलान किया गया तो मालूम हुआ कि इन प्रकरणोंमें बहुतसी गाथाएँ वसुनन्दिश्रावका-चारसे ली गई हैं, बहुतसी गाथाएं उस श्रावकाचारकी छोड़ दी गई हैं और कुछ गाथाएं इधर उधरसे भी दी गई हैं। व्रतप्रतिमामें 'गुणव्रत' और 'शिक्षाव्रत' के कथनकी जो गाथाएं दी हैं वे इस प्रकार हैं:—

---

१ "यस्तु—पचुंबरसहियाइं सत्त वि वसणाइं जो विवज्जेइ। सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ।" इति वसुनन्दिसैद्धान्तिमतेन दर्शनप्रतिमायां प्रतिपन्नस्तस्येदं। तन्मतेनैव व्रतप्रतिमा विभ्रतो ब्रह्माणुव्रतं स्यात् तद्यथा—पव्वेसु इत्थिसेवा अणंगकीडा सया विवज्जेइ। थूलअड बम्भयारी जिणेहि भणिदो पवयणम्मि ॥" (४-५२ पृ० ११६)

२ जैनसाहित्य और इतिहास पृ० ४६३।

३ यह ग्रन्थ बम्बईमें अगस्त सन् १९२८ में देखा था और तभी इसके कुछ नोट लिये थे, जिनके आधार पर ये परिचय-पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं। इस विषयपर 'तत्त्वविचार और वसुनन्दी' नामका एक नोट भी अनेकान्तके प्रथम वर्षकी किरण ५ में पृ० २७४ पर प्रकाशित किया गया था।

दिसिविदिसिपच्चक्खाणं अणत्थदंडाण होइ परिहारो ।
भोओवभोयसंखा एए हु गुणव्वया तिण्णि ॥ ५९ ॥
देवे थुवइ तियाले पव्वे पव्वे य पोसहोवासं ।
अतिहीण संविभाओ मरणंते कुणइ सल्लिहणं ॥ ६० ॥

इनमेंसे पहलीमे दिग्विदिक्प्रत्याख्यान, अनर्थदण्डपरिहार और भोगोपभोग-संख्याको तीन गुणव्रत बतलाया है, और दूसरीमे त्रिकालदेवस्तुति, पर्व-पर्वमे प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग और मरणान्तमे सल्लेखना, इन चारको शिक्षाव्रत सूचित किया है। परन्तु वसुनन्दिश्रावकाचारका कथन इससे भिन्न है—उसमे दिग्विरति, देशविरति और अनर्थदण्डविरति, इन तीन व्रतोके आशयको लिए हुए तो तीन गुणव्रत बतलाये हैं, और भोगविरति, परिभोगनिवृत्ति, अतिथिसंविभाग और सल्लेखना, इन चारको शिक्षाव्रत निर्दिष्ट किया है। ऐसे स्पष्ट भिन्न विचारों एवं कथनोकी हालतमें दोनों ग्रथोंके कर्ता एक ही वसुनन्दी नहीं कहे जा सकते। और इसलिए तत्त्वविचारको किसी दूसरे ही वसुनन्दीका सग्रहग्रथ समझना चाहिये; क्योंकि प्रतिमाप्रकरणकी उक्त दोनों गाथाएँ भी उसमे संगृहीत हैं और वे देवसेनके भावसंग्रहसे ली गई हैं जहाँ वे न० ३५४, ३५५ पर पाई जाती हैं। और यह भी हो सकता है कि उसे वसुनन्दीसे भिन्न किसी दूसरे ही व्यक्तिने रचा हो, जो वसुनन्दीके नामसे अपने विचारोंको चलाना चाहता हो। ऐसे विचारोंका एक नमूना यह है कि इसमे 'णमोकारमंत्रके एक लाख जापसे निःसन्देह तीर्थंकर गोत्रका बन्ध होना' बतलाया है[1]। कुछ भी हो, यह ग्रथ वसुनन्दिश्रावकाचारके अनेक प्रकरणोकी काट-छाँट करके, कुछ इधर उधरसे अपने प्रयोजनानुकूल लेकर और कुछ अपनी तरफसे मिलाकर बनाया गया जान पड़ता है और उक्त श्रावकाचारके कर्ताकी कृति नहीं है। शैली भी इसकी महत्वकी मालूम नहीं होती।

४६. आयज्ञानतिलक—यह प्रश्नविद्यासे सम्बन्ध रखनेवाला एक महत्वका प्रश्नशास्त्र है, जिसमे ध्वजादि ८ प्राचीन आयपदार्थोंको लेकर स्थिरचक्र और चलचक्रादिकी रचना एव विधिव्यवस्था-द्वारा अनेकविध प्रश्नोंके शुभाऽशुभ फलको जानने और बतलानेकी कलाका निर्देश है। इसमें २५ प्रकरण हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं —

१ आयस्वरूप, २ पातविभाग, ३ आयावस्था, ४ ग्रहयोग, ५ पृच्छाकार्यज्ञान, ६ शुभाऽशुभ, ७ लाभाऽलाभ, ८ रोगनिर्देश, ९ कन्यापरीक्षण, १० भूलक्षण, ११ गर्भपरिज्ञान, १२ विवाह, १३ गमनाऽऽगमन, १४ परिचितज्ञान, १५ जय-पराजय, १६ वर्षालक्षण, १७ अर्घकाण्ड, १८ नष्टपरिज्ञान, १९ तपोनिर्वाहपरिज्ञान, २० जीवितमान, २१ नामाक्षरोद्देश, २२ प्रश्नाक्षर-संख्या, २३ सकीर्ण, २४ काल, २५ चक्रपूजा।

ग्रथकी गाथासंख्या ४१५ है और उसे दिगम्बराचार्य प० दामनन्दीके शिष्य भट्टवोसरिने गुरु दामनन्दीके पाससे आयोंके बहुत गुह्य (रहस्य) को जानकर[2] आयविषयक संपूर्ण शास्त्रोंके साररूपमे[3] रचा है। इसपर ग्रथकारकी स्वयंकी बनाई हुई एक सस्कृत टीका भी है, जिसमे ग्रंथकारने ग्रंथ अथवा टीकाके रचनेका कोई समय नहीं दिया। इस सटीक ग्रथकी एक जीर्ण-शीर्ण प्रति घोघा बन्दरके शास्त्रभंडारकी मुझे कुछ समयके लिये मुनि

१ जो गुणइ लक्खमेग पूयविही जिणणमोक्कार। तित्थयरनामगोत्त सो बधइ णत्थि सदेहो ॥ १५ ॥

२ ज दामनन्दिगुरुणोऽमणयं आयाण जाणि[य] गुज्झ। त आयणाणतिलए वोसरिणा भन्नए पयड ॥ २ ॥

३ श(स)वीयशास्त्रसारेण यत्कृत जनमडन। तदायज्ञानतिलकं स्वय विव्रियते मया ॥ २ ॥

पुण्यविजयजीके सौजन्यसे प्राप्त हुई थी, जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। उसीपरसे एक प्रति आरा जैनसिद्धान्तभवनको करा दी गई थी। दूसरी कोई प्राचीन प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई, और उपलब्ध प्रति कितने ही स्थानोंपर अशुद्ध पाई जाती है।

इस सटीक ग्रंथके सन्धिवाक्योंका एक नमूना इस प्रकार है :—

"इति दिगम्बराचार्य-पंडित श्रीदामनन्दि-शिष्य-भट्टवोसारि-विरचिते साय-श्रीटीकायज्ञानतिलके आयस्वरूप-प्रकरणं प्रथमं ॥ १ ॥"

अन्तिम संधिवाक्यके पूर्व अथवा टीकाके अन्तमे ग्रंथकारका एक प्रशस्तिपद्य इसमें निम्न प्रकारसे उपलब्ध होता है :—

"महादेवान्मांत्री प्रमितविषयं रागविमुखो
विदित्वा श्रीकोत्कविसमयशा सुप्रणयिनीं।
कलां दद्धाच्छाब्दीं विरचयदिदं शास्त्रमनुजः
स्फुरद्वर्णायश्रीशुभगमधुना वोसरिसुधीः ॥ १२ ॥"

यह पद्य कुछ अशुद्ध है और इससे यद्यपि इसका पूरा आशय व्यक्त नहीं होता, फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि इसमे ग्रंथकारने ग्रंथसमाप्तिकी सूचनाके साथ, अपना कुछ परिचय दिया है—अपनेको मंत्री (मंत्रवादी) और सुधीः (पंडित) व्यक्त करनेके साथ साथ रागविमुख (विरक्त) अनुज और किसी उत्कट कविके समान यशस्वी भी बतलाया है। रागविमुख होनेकी बात तो समझमें आजाती है; क्योंकि ग्रंथकार एक दिगम्बर आचार्यके शिष्य थे, इससे उनका रागसे विमुख—विरक्तचित्त होना स्वाभाविक है। परन्तु आप अनुज (लघुभ्राता) किसके? और किस कविके समान यशस्वी थे? ये दोनों बातें विचारणीय रह जाती हैं। कविके उल्लेखवाले पदमे एक अक्षरकी कमी है और वह 'को' अक्षरके पूर्व या उत्तरमे दीर्घस्वरवाला अक्षर होना चाहिये, जिसके विना छंदोभंग हो रहा है; क्योंकि यह पद्य शिखरिणी छंदमे है, जिसके प्रत्येक चरणमें १७ अक्षर, चरणान्तमे लघु-गुरु और गण क्रमशः य, म, न, स, भ-संज्ञक होते हैं। वह अक्षर 'को' हो सकता है और उसके छूट जानेकी अधिक सम्भावना है। यदि वही अभिमत हो तो पूरा पद 'श्रीकोकोत्कविसमयशाः' होकर उससे 'कोक' कविका आशय हो सकता है जो कि कोक-शास्त्रका कर्ता एक प्रसिद्ध कवि हुआ है। तीसरे चरणमे भी 'दद्धाच्छाब्दीं' पद अशुद्ध जान पड़ता है—उससे कोई ठीक अर्थ घटित नहीं होता। उसके स्थान पर यदि 'लब्ध्वा शाब्दीं' पाठ होवे तो फिर यह अर्थ घटित हो सकता है कि 'महादेव नामके विद्वानसे प्रमित (अल्प) विषयको जानकर और सुप्रणयिनीके रूपमे' शाब्दिकी कलाको प्राप्त करके उनके छोटे भाई वोसरिसुधीने यह शास्त्र रचा है, जो कि स्फुरायमान वर्णोंवाली आय-श्रीके सौभाग्यको प्राप्त है अथवा उस आयश्रीसे सुशोभित है, और इससे इस स्वोपज्ञ टीकाका नाम 'आयश्री' जान पडता है। इस तरह इस पद्यमे महादेव नामके जिस व्यक्तिका विद्यागुरुके रूपमे उल्लेख है वह ग्रन्थकारका बड़ा भाई भी हो सकता है।

अनुजका एक अर्थ 'पुनर्जन्म' अथवा 'द्वितीय-जन्मकोप्राप्त' का भी है और वह पुनर्जन्म अथवा द्वितीयजन्म संस्कारजन्य होता है जैसे द्विजोंका यज्ञोपवीत-संस्कारजन्य द्वितीयजन्म[१]। बहुत सभव है कि भट्टवोसरि पहले अजैन रहे हों और बादको जैन

---

१ अनुज—4 Born again inrested with the sacred thread—V. S. Apte Sanskrit, English Dictionary

संस्कारोंसे संस्कृत होकर जैनधर्ममें दीक्षित हुए हों और दिगम्बराचार्य दामनन्दीके शिष्य बने हों, जिनकी गुरुता और अपनी शिष्यताका उन्होंने ग्रन्थमें खास तौरपर उल्लेख किया है। और इसीसे उन्होंने अपनेको 'अनुज' लिखा हो। यदि ऐसा हो तो फिर 'महादेव' को उनका बड़ा भाई न कहकर कोई दूसरा ही विद्वान कहना होगा।

भट्टवोसरिने जिन दिगम्बराचार्य दामनन्दीका अपनेको शिष्य घोषित किया है वे संभवतः वे ही जान पड़ते हैं जिनका श्रवणबेल्गोलके शिलालेख नं० ५५ (६६) में उल्लेख है, जिन्होने महावादी विष्णुभट्टको वादमे पराजित किया था—पीस डाला था, और इसीसे जिनको 'विष्णुभट्ट-घरट्ट' लिखा है। ये दामनन्दी, शिलालेखके अनुसार, उन प्रभाचन्द्राचार्यके सधर्मा (साथी अथवा गुरुभाई) थे जिनके चरण धाराऽधिपति भोजराजके द्वारा पूजित थे और जिन्हें महाप्रभावक उन गोपनन्दी आचार्यका सधर्मा लिखा है जिन्होंने कुवादि-दैत्य धूर्जटिको वादमे पराजित किया था। धूर्जटि और महादेव दोनों पर्याय नाम हैं, आश्चर्य नहीं जिन महादेवका उक्त प्रशस्तिपद्यमे उल्लेख है वे ये ही धूर्जटि हो और इनकी तथा विष्णुभट्टकी घोर पराजयको देखकर ही भट्टवोसरि जैनधर्ममे दीक्षित हुए हों, और इसीसे उन्होंने महादेवस प्राप्त ज्ञानको 'प्रमितविषय' विशेषण दिया हो और दामनन्दीसे प्राप्त ज्ञानको 'अमनाक्' विशेषणस विभूषित किया हो। अस्तु, गुरुदामनन्दीके विषयमे मेरी उक्त कल्पना यदि ठीक है तो वे भोजराजके प्रायः समकालीन ठहरे और इसलिये उनके शिष्यका यह ग्रन्थ विक्रमकी १२वीं शताब्दीका बना हुआ होना चाहिये।

५० श्रुतस्कन्ध—यह ६४ गाथात्मक ग्रंथ द्वादशाङ्गश्रुतके अवतार एवं पदसंख्यादि-सहित वर्णनको लिये हुए है। इसके कर्ता ब्रह्म हेमचंद्र हैं, जो देशयति थे और जिन्होंने रामनन्दी सिद्धान्तिके प्रसादसे तिलंगदेशान्तर्गत कुण्डनगरके उद्यानमें स्थित सुप्रसिद्ध चन्द्रप्रभजिनके मन्दिरमे इसकी रचना की है[1]। ग्रंथमें रचनाकाल नहीं दिया और जिन रामनन्दीके प्रसादसे यह ग्रंथ रचा गया है उन्हें सिद्धान्ती—सिद्धान्तशास्त्र अथवा आगम के जानकार—सूचित करनेके सिवाय उनका और कोई परिचय भी नहीं दिया गया। ऐसी स्थितिमे ग्रंथपरसे यह मालूम करना कठिन है कि वह कबका बना हुआ है। (हाँ, रामनन्दी का उल्लेख अग्गलदेवके चंद्रप्रभपुराणमे आया है, जहाँ उन्हें नमस्कार किया गया है, और यह चंद्रप्रभपुराण शक संवत् ११११, वि० सं० १२४६ मे बना है, इसलिये रामनन्दी वि०सं० १२४६ (ई० सन् ११८६) से पहले हुए हैं, और तदनुसार यह ग्रंथ भी वि० सं० १२४६ से पहलेका बना हुआ जान पड़ता है। परन्तु कितने पहलेका? यह रामनन्दीके समयपर निर्भर है।)

एक रामनन्दीका उल्लेख कुन्दकुन्दान्वयी माणिक्यनन्दी त्रैविद्यके शिष्य नयनन्दी ने अपने सुदर्शनचरितकी प्रशस्तिमे किया है, जो अपभ्रंशभाषाका ग्रथ है, और उन्हें अपने गुरु माणिक्यनन्दीका गुरु तथा वृषभनन्दी सिद्धान्तीका शिष्य सूचित किया है[2]।

---

१ "रइओ तिलंगदेसे आरामे कुडणयरि सुपसिद्धे।
चंदप्पहजिणमंदरि रइया गाहा इमे विमला ॥ ८६ ॥"
"सिद्धंतिरामणंदीमहापसाएण रयउ सुयखंधो।
लइओ संसारफलो देसजईहेमचंदेण" ॥ ६२ ॥

२ जिणिंदस्स वीरस्स तित्थे महंते, महा कुंदकुंदन्नए एत संते।
सुणक्खाहिहाणो तहा पोमणंदी खमाजुत्त सिद्धंतउ विसहणंदी ॥ १ ॥
जिणिंदागमाहासणे एयचित्तो तवायारणिट्ठीए लद्धीयजुत्तो।
णरिंदामरिंदेहि सो णंदवंतो हुओ तस्स सीसो गणी रामणंदी ॥ २ ॥

यह सुदर्शनचरित्र विक्रमसंवत् ११०० में[१] धारानगरीमें बनकर समाप्त हुआ है, जब कि भोजराजाका वहाँ राज्य था। और इससे रामनन्दी विक्रम सं० ११०० से कुछ पूर्वके अर्थात् विक्रमकी ११वीं शताब्दीके उत्तरार्धके विद्वान जान पड़ते हैं। बहुत संभव है कि ये ही रामनन्दी वे रामनन्दी हों जिनके प्रसादसे ब्रह्महेमचंदने इस श्रुतस्कन्ध ग्रंथकी रचना की है। यदि ऐसा है तो यह कहना होगा कि ब्रह्महेमचंद विक्रमकी ११वीं शताब्दीके उत्तरार्ध के विद्वान् थे और उसी समयकी उनकी यह रचना है।

५१. ढाढसीगाथा—यह एक औपदेशिक अध्यात्मविषयका ग्रंथ है, जिसकी गाथासंख्या ३६ बतलाई गई है; परन्तु माणिकचंद्र ग्रथमालाकी प्रकाशित प्रतिमें वह ३८ पाई जाती है। मूलमें ग्रंथ और ग्रंथकर्ताका कोई नाम नहीं। अन्तमें 'इति ढाढसी गाथा समाप्ता' लिखा है। 'ढाढसीगाथा' यह नामकरण किस दृष्टिको लेकर किया गया है इसका कुछ पता नहीं। इसके कर्ता कोई काष्ठासंघी आचार्य हैं ऐसा पं० नाथूराम जी प्रेमीने व्यक्त किया है और वह ग्रंथमे आए हुए 'कट्ठो वि मूलसंघो' (काष्ठासंघ भी मूलसंघ है) जैसे शब्दों परसे अनुमानित जान पड़ता है, परन्तु 'पिच्छे ण हु सम्मत्तं करगहिए चमर-मोर-डंबरए' जैसे वाक्योंपरसे उसके कर्ता निःपिच्छसंघके अर्थात् माथुरसंघके आचार्य भी हो सकते हैं। और यह भी हो सकता है कि वे संघवादकी कट्टरतासे रहित कोई तटस्थ विद्वान् हों। अस्तु। ग्रंथमें मनको रोकने, कषायोंको जीतने और आत्मध्यान करनेकी प्रेरणा की गई है और लिखा है कि 'संघ कोई भी पार नहीं उतारता, चाहे वह काष्ठासंघ हो, मूल-संघ हो अथवा निःपिच्छसंघ हो; बल्कि आत्मा ही आत्माको पार उतारता है, इसलिये आत्माका ध्यान करना चाहिये। उसके लिये अर्हन्तों और सिद्धोंके ध्यानको उपयोगी बतलाया है और उनकी प्रतिष्ठित मूर्तियोंको, चाहे वे मणि-रत्न-धातु-पाषाण और काष्ठादिमेंसे किसीसे भी बनी हों, सालम्ब ध्यानके लिये निमित्तकारण बतलाया है। और अन्तमें ग्रन्थका फल बन्ध-मोक्षको जानना तथा ज्ञानमय होना निर्दिष्ट किया है। इसी उद्देश्यको लेकर वह रचा गया है। ग्रन्थकी आदिमें कोई मंगलाचरण नहीं है।

ग्रन्थमें बननेका कोई समय न होनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि वह कब रचा गया है। इसकी एक गाथा षट्प्राभृतकी टीकामें "निष्पिच्छिका मयूरपिच्छादिकं न मन्यन्ते। उक्तं च ढाढसीगाथासु" इन वाक्योंके साथ निम्नरूपमें पाई जाती है:—

पिच्छे ण हु सम्मत्तं करगहिए मोरचमरडंवरए।
अप्पा तारइ अप्पा तम्हा अप्पा वि झायव्वो ॥ १ ॥

इसका पूर्वार्ध ढाढसीगाथा नं० २८ का पूर्वार्ध है, जिसका उत्तरार्ध है—'समभावे जिणदिट्ठं रायाईदोसचत्तेण" और इसका उत्तरार्ध ढाढसीगाथा नं० २० का उत्तरार्ध है, जिसका पूर्वार्ध है—"सघो को वि ण तारइ कट्ठो मूलो तहेव णिप्पिच्छो।" इसीसे पूर्वार्ध और उत्तरार्ध यहाँ संगत मालूम नहीं होते। परन्तु टीकाके उक्त उल्लेखसे यह स्पष्ट है कि ढाढसी-गाथा षटप्राभृतकी टीकासे पहलेकी रचना है। षटप्राभृतटीकाके कर्ता श्रुतसागरसूरि विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं और इसलिये यह ग्रंथ १६वीं शताब्दीसे पहले का बना हुआ है, इतना तो सुनिश्चित है, परन्तु कितने पहलेका? यह अभी निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता।

महापडिओ तस्स माणिक्कणदी भुयगप्पहाओ इमो णामछंदी।
पढमसीसु तहो जायउ जगविक्खायउ मुणिणयणणंदि अणदिउ ॥
१ ... णिवविक्कमकालहो ववगएसु एयारहसंवच्छरसएसु ॥ ६ ॥
तहिं केवलिचरिउ अमच्छरेण णयणंदि विरइउ वत्थरेण। ...

५२. छेदपिण्ड और इन्द्रनन्दी—(यह प्रायश्चित-विषयका एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, प्रायश्चित्त, छेद, मलहरण, पापनाशन, शुद्धि, पुण्य, पवित्र, पावन ये सब प्रायश्चित्तके ही नामान्तर हैं (गा० ३)। प्रायश्चित्तके द्वारा चित्तादिकी शुद्धि करके आत्मविकासको सिद्ध किया जाता है। जिन्हें अपने आत्मविकासको सिद्ध करना अथवा मुक्तिको प्राप्त करना इष्ट है उन्हें अपने दोषों–अपराधोंपर कड़ी दृष्टि रखनेकी जरूरत है और उनकी मात्रानुसार दण्ड लेनेके लिये स्वयं सावधान एवं तत्पर रहनेकी बड़ी जरूरत है। किस दोष अथवा अपराधका किसके लिये क्या प्रायश्चित्त विहित है, यही सब इस ग्रन्थका विषय है, जो अनेक परिभाषाओं तथा व्याख्याओंके साथ वर्णित है। यह मुनि, आर्यिका श्रावक-श्राविकारूप चतुःसंघ और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्ररूप चतुर्वर्णके सभी स्त्री-पुरुषोंको लक्ष्य करके लिखा गया है—सभीसे बन पड़नेवाले दोषों–अपराधोंके प्रकारोंका और उनके आगमादिविहित तपश्चरणादिरूप संशोधनोंका इसमें निर्देश और संकेत है। यह अनेक आचार्योंके उपदेशको अधिगत करके जीत और कल्पव्यवहारादि प्राचीन शास्त्रोंके आधारपर लिखा गया है (३५६)। इतने पर भी परमार्थशुद्धि और व्यवहारशुद्धिके भेदोंमे यदि कहीं कोई विरुद्ध अर्थ अज्ञानभावसे निबद्ध हो गया हो तो उसके संशोधनके लिये ग्रन्थकारने छेदशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वानोंसे प्रार्थना की है (गा०३५९)। वास्तवमे आत्मशुद्धि का मर्म और उस शुद्धिकी प्राप्तिका मार्ग ऐसे ही रहस्य-शास्त्रोंसे जाना जाता है। इसीसे ऐसे शास्त्रोंके जानकार एवं भावनाकारको लौकिक तथा लोकोत्तर व्यवहारमे कुशल बतलाया है (गा० ३६१)।)

इस ग्रंथकी गाथासंख्या ग्रंथमे दी हुई संख्याके अनुसार ३३३ है, जिसे ४२० श्लोक-परिमाण बतलाया है[१]। परन्तु मुद्रित प्रतिमें वह ३६२ पाई जाती हैं। इसपर पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने ग्रंथपरिचयमें यह कल्पना की है कि "मूलमें 'तेतीसुत्तर' की जगह 'बासट्ठित्तुर' या इसीसे मिलता जुलता कोई और पाठ होना चाहिये; क्योंकि ३२ अक्षरोंके श्लोकके हिसाबसे अब भी इसकी श्लोकसंख्या ४२० के ही लगभग है और ३३३ गाथाओंके ४२० श्लोक हो भी नहीं सकते हैं।" यद्यपि 'बासट्ठ्युत्तर' के स्थानपर 'तेतीसुत्तर' पाठके लिखे जानेकी संभावना कम है और यह भी सर्वथा नहीं कहा जा सकता कि ३३३ गाथाओंके ४२० श्लोक हो ही नहीं सकते; क्योंकि गाथामें अक्षरोंकी संख्याका नियम नहीं है—वह वर्णिक छंद न होकर मात्रिक छंद है और उसमे भी कई प्रकार हैं जिनमें मात्राओंकी भी कमी-वेशी होती है—ऐसी कितनी ही गाथाएँ देखी जाती हैं जिनके पूर्वार्धमें यदि २२–२३ अक्षर हैं तो उत्तरार्धमें १८–२० अक्षर तक पाये जाते हैं, और इस तरह एक गाथाका परिमाण प्रायः सवा १ $\frac{1}{4}$ श्लोक जितना हो जाता है, जिससे उक्त गाथासंख्या और श्लोकसंख्याकी पारस्परिक संगति ठीक बैठ जाती है; फिर भी ग्रन्थकी सब गाथाएं सवा श्लोक-जितनी नहीं हैं और उनका औसत भी सवा श्लोक जितना न होनेसे गाथासंख्या और श्लोकसंख्याकी पारस्परिक संगतिमें कुछ अन्तर रह ही जाता है। इस सम्बन्धमें मेरा एक विचार और है और वह यह कि गाथाओके साथ जो श्लोकसंख्याको दिया जाता है उसका लक्ष्य प्रायः लेखकोंके लिये ग्रन्थका परिमाण निर्दिष्ट करना होता है; क्योंकि लिखाई उन्हें प्रायः श्लोक-संख्याके हिसाबसे ही दी जाती है। और इस दृष्टिसे अंकादिकको शामिल करके कुछ परिमाण अधिक ही रक्खा जाता है। ऐसी हालतमें ३३३ गाथाओंके लिये ४२० की श्लोकसंख्याका निर्देश सर्वथा असंगत या असंभव नहीं कहा जा सकता। यदि दोनों संख्याओंको ठीक

१ चउरसयाइं वीसुत्तराइं गंथस्स परिमाणं। तेतीसुत्तरतिसयं पमाण गाहाणिवद्धस्स ॥ ३६० ॥

माना जाता है तो फिर यह कहना होगा कि ग्रन्थमें २६ गाथाएं बढ़ी हुई हैं, जो किसी तरह ग्रन्थमें प्रक्षिप्त हुई हैं और जिन्हें प्राचीन प्रतियों आदिपरसे खोजनेकी जरूरत है। यहाँ पर मैं एक गाथा नमूनेके तौर पर प्रस्तुत करता हूँ, जो स्पष्टतया प्रक्षिप्त जान पडती है और जिसकी मौजूदगीमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूरी ३६२ गाथाओंका ग्रंथ है—उसमें कोई गाथा प्रक्षिप्त नहीं है:—

अणुकंपाकहणेण य विरामवयगहण सह तिसुद्धीए ।
पादद्धतयं सव्वं णासइ पावं ण संदेहो ॥ ३५७ ॥

इसके पूर्वकी 'एदं पायच्छित्तं' गाथामे ग्रन्थसमाप्तिकी सूचनाका प्रारंभ करते हुए केवल इतना ही कहा गया है कि 'बहुत आचार्योंके उपदेशको जानकर और जीत आदि शास्त्रोंको सम्यक् अवधारण करके यह प्रायश्चित्त ग्रंथ', और फिर उक्त गाथाको देकर उत्तरवर्ती 'चाउव्वण्णपराधविसुद्धिणिमित्तं' नामकी गाथामे उस समाप्तिकी बातको पूरा करते हुए लिखा है कि 'चातुवर्णोंके अपराधोंकी विशुद्धिके निमित्त मैंने कहा है, इसका नाम 'छेदपिण्ड' है, साधुजन आदर करो'। इससे स्पष्ट है कि पूर्वोत्तरवर्ती दोनों गाथाओं-का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है और वे 'युग्म' कहलाये जाने योग्य गाथाएँ हैं, उनके मध्यमे उक्त गाथा नं० ३५७ असंगत है। वह गाथा दूसरे 'छेदशास्त्र' की है, जिसका परिचय आगे दिया जायगा और उसमे नं० ६१ पर सस्कृतवृत्तिके साथ दर्ज है, तथा छेदपिण्डके उक्त स्थलपर किसी तरह प्रक्षिप्त हुई है। इसी तरह खोज करनेपर और भी प्रक्षिप्त गाथाएँ मालूम हो सकती हैं। कुछ गाथाएं इसमे ऐसी भी हैं जो एकसे अधिक स्थानोपर ज्योंकी-त्यो पाई जाती हैं, जिनका एक नमूना इस प्रकार है:—

जे वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायादा ।
तेसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव संसुद्धी ॥

यह गाथा १७० और १८१ नम्बर पर पाई जाती है और इसमे इतना ही बतलाया गया है कि 'जो साधु दूसरे गणसे अपने गणको अध्ययनके लिये आये हुए हैं उनके लिये भी आलोचन नामका प्रायश्चित्त है।' अतः यह एक ही स्थानपर होनी चाहिये—दूसरे स्थलपर इसकी व्यर्थ पुनरावृत्ति जान पड़ती है। एक दूसरी 'ख' प्रतिमे यह १७० वें स्थलपर है भी नहीं। एक दूसरा नमूना 'तस्सिस्साणं सुद्धी(सोही)' नामकी गाथा नं० २५६ का है, जो पहले नं० २४७ पर आ चुकी है, यहाँ व्यर्थ पड़ती है और 'ख. ग' नामकी दो प्रतियोंमे पिछले स्थलपर है भी नहीं। और भी कई गाथाएं ऐसी हैं जिनकी बाबत फुटनोटोंमें यह सूचना की गई है कि वे दूसरी प्रतियोंमे नहीं पाई जातीं। जांचनेपर उनमेंसे भी अनेक गाथाए प्रक्षिप्त तथा व्यर्थ बढ़ी हुई हो सकती हैं।

इस प्रकार प्रक्षिप्त और व्यर्थ बढ़ी हुई गाथाओंके कारण भी ग्रन्थकी वास्तविक गाथासख्या ३६२ नहीं हो सकती, और इस लिये 'तेतीसुत्तर' की जगह 'बासट्ठित्तुर' पाठ की जो कल्पना की गई है वह समुचित प्रतीत नहीं होती। अस्तु।

इस ग्रंथके कर्ता इन्द्रनन्दी नामके आचार्य हैं, जिन्होंने अन्तकी दो गाथाओंमे क्रमशः 'गणी' तथा 'योगीन्द्र' विशेषणोंके साथ अपना नामोल्लेख करनेके सिवाय और कोई अपना परिचय नहीं दिया। इन्द्रनन्दी नामके अनेक आचार्य जैन समाजमे हो गए हैं, और इसलिये यह कहना सहज नहीं कि उनमेसे यह इन्द्रनन्दी गणी अथवा योगीन्द्र कौनसे हैं? एक इन्द्रनन्दी गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्रके गुरुवोंमें—ज्येष्ठ गुरुभाईके रूपमे—हुए हैं और प्राय. वे ही ज्वालामालिनीकल्पके कर्ता जान पड़ते हैं, जिसकी रचना शक संवत

८६१ वि० सं० ६६६ मे हुई है, जैसा कि 'गोम्मटसार और 'नेमिचंद्र' नामक परिचयलेखमे स्पष्ट किया जा चुका है। दूसरे इन्द्रनन्दी इनसे भी पहले हुए है, जिनका उल्लेख ज्वालामालिनी कल्पके कर्ता इन्द्रनन्दीने अपने गुरु बप्पनन्दीके दादागुरुके रूपमें किया है—अर्थात् वासवनन्दी जिनके शिष्य और बप्पनन्दी प्रशिष्य थे। और इसलिये जिनका समय प्रायः विक्रमकी ९वीं शताब्दीका अन्तिम चरण और १०वीं शताब्दीका प्रथम चरण जान पड़ता है। इन्हें ही यहाँ प्रथम इन्द्रनन्दी समझना चाहिये। तीसरे इन्द्रनन्दी 'श्रुतावतार' के कर्ता रूपमे प्रसिद्ध हैं और जिनके विषयमे प. नाथूरामजी प्रेमीका यह अनुमान है कि 'वे गोम्मटसार और मल्लिषेणप्रशस्तिके[1] इन्द्रनन्दीसे अभिन्न होंगे (क्योंकि श्रुतावतारमे वीरसेन और जिनसेन आचार्य तक ही सिद्धान्त रचनाका उल्लेख है। यदि वे नेमिचन्द्र आचार्यके पीछे हुए होते, तो बहुत संभव है कि गोम्मटसारका भी उल्लेख करते।' चौथे इन्द्रनन्दी नीतिसार अथवा समयभूषणके कर्ता हैं, जो नेमिचन्द्र आचार्यके बाद हुए हैं; क्योंकि उन्होंने नीतिसारके ७०वें श्लोकमें सोमदेवादिके साथ नेमिचन्द्रका भी नामोल्लेख उन आचार्योंमें किया है जिनके रचे हुए शास्त्र प्रमाण बतलाए गए हैं। पाँचवें और छठे इन्द्रनन्दी 'संहिता' शास्त्रोंके कर्ता हैं। छठे इन्द्रनन्दीकी संहितापरसे पाँचवें इन्द्रनन्दीका संहिताकारके रूपमें पता चलता है, क्योंकि उसके दायभागप्रकरणके अन्तमें पाई जाने वाली गाथाओंमेंसे जिन तीन गाथाओंको प्रेमीजीने अपने 'ग्रन्थपरिचय' मे उद्धृत किया है, उनमे इन्द्रनन्दीकी पूजाविधिके साथ उनकी संहिताका भी उल्लेख है और उसे भी प्रमाण बतलाया है वे गाथाएं इस प्रकार हैं:—

पुज्जं पुज्जविहाणे जिणसेणाइवीरसेणगुरुजुत्तइ ।
पुज्जस्स या य गुणभद्दसूरीहि जह तहुद्दिट्ठा ॥ ६३ ॥
वसुणंदि-इंदणंदि य तह य मुणिएमसंधिगणिनाहं(हिं) ।
रचिया पुज्जविही या पुव्वकमदो विणिद्दिट्ठा ॥ ६४ ॥
गोयम-समंतभद्द य अयलंकसुमाहणंदिमुणिणाहिं ।
वसुणंदि-इंदणंदिहिं रचिया सा संहिता पमाणा हु ॥ ६५ ॥

पहली गाथामें वसुनन्दीके साथ चूंकि एकसंधिमुनिका भी उल्लेख है, जो एकसंधि-जिनसंहिताके कर्ता हैं और जिनका समय विक्रमकी १३वीं शताब्दी है, इसलिये इन छठे इन्द्र-नन्दीको एकसंधि भट्टारकमुनिके बादका विद्वान् समझना चाहिये। अब देखना यह है कि इन छहोंमें कौनसे इन्द्रनन्दीकी यह 'छेदपिण्ड' कृति हो सकती है अथवा होनी चाहिये।

पं० नाथूरामजी प्रेमीके विचारानुसार प्रथम तीन इन्द्रनन्दी तो इस छेदपिण्डके कर्ता हो नहीं सकते, क्योंकि उन्होने गोम्मटसार तथा मल्लिषेणप्रशस्तिमे उल्लिखित इन्द्रनन्दी और श्रुतावतारके कर्ता इन्द्रनन्दीको एक मानकर उनके कर्तृत्व-विषयका निषेध किया है, और इसलिये ज्वालामालिनीकल्पके कर्ता और उनकी गुरुपरम्परामे उल्लिखित प्रथम इन्द्रनन्दीका निषेध स्वतः होजाता है, जिनके विषयका कोई विचार भी प्रस्तुत नहीं किया गया। चौथे इन्द्रनन्दीकी छठे इन्द्रनन्दीके साथ एक होनेकी संभावना व्यक्त की गई है और संहिताके कर्ता छठे इन्द्रनन्दीको ही ग्रंथका कर्ता माना है, जिससे पाँचवे इन्द्रनन्दीका

१ दुरितग्रहनिग्रहाद्भयं यदि भो भूरिनरेन्द्रवन्दितम्।
ननु तेन हि भव्यदेहिनो भजत श्रीमुनिमिन्द्रनन्दिनम् ॥ २७ ॥
—श्र० शि० ५४, शक सं० १०५० का उत्कीर्ण

भी निषेध होजाता है। इस तरह प्रेमीजीकी दृष्टिमें यह छेदपिण्ड उपलब्ध इन्द्रनन्दि-संहिताके कर्ताको ही कृति है, और उसका प्रधान कारण इतना ही है कि यह ग्रंथ उनके कथनानुसार उक्त संहितामें भी पाया जाता है और उसके चतुर्थ अध्यायके रूपमें स्थित है।[१] इसीसे प्रेमीजीने छेदपिण्ड-कर्ताके समय-सम्बन्धमें विक्रमकी १४वीं शताब्दी तककी कल्पना करते हुए इतना तो निःसन्देहरूपमें कह ही डाला है कि "छेदपिण्डके कर्ता विक्रमकी १३वीं शताब्दीके पहलेके तो कदापि नहीं हैं।"

परन्तु संहितामे किसी स्वतंत्र ग्रंथ या प्रकरणका उपलब्ध होना इस बातकी कोई दलील नहीं है कि वह उस संहिताकारकी ही कृति है; क्योंकि अनेक संग्रह-ग्रंथोंमें दूसरोंके ग्रंथ अथवा प्रकरणके प्रकरण उद्धृत पाये जाते हैं; परन्तु इससे वे उन संग्रहकारोंकी कृति नहीं हो जाते। उदाहरणके तौरपर गोम्मटसारके तृतीय अधिकाररूपमें कनकनन्दी सि० च० का 'सत्वस्थान' नामका प्रकरणग्रंथ मंगलाचरण और अन्तकी प्रशस्त्यादिविषयक गाथाओं सहित अपनाया गया है, इससे वह गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्रकी कृति नहीं हो गया—उनके द्वारा मान्य भले ही कहा जा सकता है। प्रभाचन्द्रके क्रियाकलापमें अनेक भक्तिपाठोका और स्वामी समन्तभद्रके स्वयम्भूस्तोत्र तकका संग्रह है, परन्तु इतने मात्रसे वे सब ग्रंथ प्रभाचन्द्रकी कृति नहीं हो गए।

मेरी रायमे यह छेदपिण्ड, जो अपनी रचनाशैली आदिपरसे एक व्यवस्थित स्वतंत्र ग्रंथ मालूम होता है, यदि उक्त इन्द्रनन्दिसंहितामे भी पाया जाता है तो उसमें उसी तरह अपनाया गया है जिस तरह कि १७वीं शताब्दीकी बनी हुई भद्रबाहुसंहितामें[२] 'भद्रबाहु-निमित्तशास्त्र' नामके एक प्राचीन ग्रंथको अपनाया गया है। और जिस तरह उसके उक्त प्रकार अपनाए जानेसे वह १७वीं शताब्दीका ग्रंथ नहीं हो जाता उसी तरह छेदपिण्डके इन्द्रनन्दि-संहितामे समाविष्ट होजाने मात्रसे वह विक्रमकी १३वीं शताब्दी अथवा उससे बादकी कृति नहीं हो जाता। वास्तवमे छेदपिण्ड संहिताशास्त्रकी अपेक्षा न रखता हुआ अपने विषयका एक बिल्कुल स्वतंत्र ग्रंथ है, यह बात उसके साहित्यको आद्योपान्त गौरसे पढ़नेपर भले प्रकार स्पष्ट हो जाती है। उसके अन्तमे गाथासंख्या तथा श्लोकसंख्याका दिया जाना और उसे ग्रंथपरिमाण (गंथस्स परिमाणं) प्रकट करना भी इसी बातको पुष्ट करता है। यदि वह मूलतः और वस्तुत संहिताका ही एक अंग होता तो ग्रंथपरिमाण उसी तक सीमित न रहकर सारी संहिताका ग्रंथपरिमाण होता और वह संहिताके ही अन्तमें रहता न कि उसके किसी अंगविशेषके अन्तमें। इसके सिवाय, छेदपिण्डकी साहित्यिक प्रौढता, गम्भीरता और विषय-व्यवस्था भी उसे संहिताकारके खुदके स्वतंत्र साहित्यसे, जो बहुत कुछ साधारण है और जिसका एक नमूना दायभागप्रकरणके अन्तमें पाई जानेवाली उक्त अप्रासंगिक गाथाओंसे जाना जाता है, पृथक् सूचित करती है। उसमे जीतशास्त्र और कल्पव्यवहार जैसे प्राचीन ग्रंथोंका ही उल्लेख होनेसे, जो आज दिगम्बर जैन समाजमें उपलब्ध भी नहीं हैं, उसकी प्राचीनताका ही बोध होता है। और इसलिये, इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए, मेरी इस ग्रंथसम्बन्धमे यही राय होती है कि यह ग्रंथ उक्त इन्द्रनन्दि-संहिताके कर्ताकी कृति नहीं है और न साहित्यादिकी दृष्टिसे नीतिसारके कर्ताकी ही कृति इसे कहा जा सकता है; बल्कि यह अधिकांशमे उन इन्द्रनन्दीकी कृति जान पड़ता है और होना चाहिये जो गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्र और सत्वस्थानके कर्ता कनकनन्दीके गुरु

१ देहलीके पंचायतीमन्दिरमें इन्द्रनन्दिसंहिता' की जो प्रति है उसमें तीन अध्याय ही पाये जाते हैं, और उनपरसे यह संहिता बहुत कुछ साधारण तथा भट्टारकीय लीलाको लिये हुए आधुनिक कृति जान पड़ती है।

२ देखो, ग्रन्थपरीक्षा द्वितीयभाग पृ० ३६।

थे तथा ज्वालामालिनी-कल्पके रचयिता थे अथवा जो उनसे भी पूर्व वासवनन्दीके गुरु हुए हैं और जिनका उल्लेख ज्वालामालिनी-कल्पकी प्रशस्तिमे पाया जाता है। और इसलिये यह ग्रन्थ विक्रमकी ६वीं १०वीं शताब्दीके मध्यका बना हुआ होना चाहिये। मल्लिषेण-प्रशस्तिमें जिन इन्द्रनन्दीका उल्लेख है वे भी प्राय. इस प्रायश्चित्त ग्रंथके कर्ता ही जान पड़ते हैं; इसीसे उस प्रशस्ति-पद्यमें कहा गया है कि 'भो भव्यो ! यदि तुम्हें दुरित-ग्रह-निग्रहसे—पापरूपी ग्रहके द्वारा पकड़े जानेसे—कुछ भय होता है तो अनेक नरेन्द्र-वन्दित इन्द्रनन्दी मुनिको भजो।' चूँकि ये इन्द्रनन्दी अपनी प्रायश्चित्त-विधिके द्वारा पाप-रूप ग्रहका निग्रहकरनेमे समर्थ थे, और इसलिये उनके सम्यक् उपासक—उनकी प्रायश्चित्त-विधिका ठीक उपयोग करने वाले—पापकी पकड़मे नहीं आते, इसीसे वैसा कहा गया जान पड़ता है।

५३. छेदशास्त्र—यह ग्रन्थ भी प्रायश्चित्त-विषयका है। इसका दूसरा नाम 'छेदनवति' है, जिसका उल्लेख अन्तकी एक गाथामे है और उसका कारण ग्रन्थका ९० गाथाओंमें निर्दिष्ट होना ('णउदिगाहाहि णिद्दिट्ठं') है। परन्तु मुद्रित ग्रन्थ-प्रतिमे ९४ गाथाएँ उपलब्ध हैं, और इसलिए ३ या ४ गाथाएं इसमे बढ़ी हुई अथवा प्रक्षिप्त समझनी चाहियें। यह ग्रन्थ प्रधानतः साधुओंको लक्ष्य करके लिखा गया है, इसी से प्रथम मगल-गाथामें 'वुच्छामि छेदसत्थं साहूण सोहणट्ठाणं' ऐसा प्रतिज्ञा-वाक्य दिया है। परन्तु अन्तमे कुछ थोड़ा-सा कथन श्रावकोके लिये भी दे दिया गया है। ग्रन्थकी अधिकांश गाथाओंके साथ छोटी-सी वृत्ति भी लगी हुई है, जिसे टिप्पणी कहना चाहिये।

इस ग्रन्थका कर्ता कौन है, यह अज्ञात है—न मूलमें उसका उल्लेख है, न वृत्तिमे और न आद्यन्तमे ही उसकी कोई सूचना की गई है। और इसलिये उसके तथा ग्रन्थके रचनाकाल-विषयमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, इस ग्रन्थको जब छेदपिण्डके साथ पढ़ते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि एक ग्रंथकारके सामने दूसरा ग्रन्थ रहा है, इसीसे कितनी ही गाथाओंमे एक दूसरेका अनुकरण अनेक अंशोंमे पाया जाता है और एक दो गाथाएँ ऐसी भी देखनेमे आती हैं जो प्रायः समान हैं। समान गाथाओंमें एक गाथा तो 'अणुकपाकहणेण' नामकी वही है जिसे ऊपर छेदपिण्ड-परिचयमे प्रक्षिप्त सिद्ध किया गया है और दूसरी 'आयविलम्हि पादूण' नामकी है जो इस ग्रन्थमे नं० ५ पर और छेदपिण्डमें नं० ११ पर पाई जाती है और जिसके विषयमे छेदपिण्डके फुटनोटमें लिखा है कि वह 'ख' प्रतिमें उपलब्ध नहीं है। हो सकता है कि वह भी छेदपिण्डमें प्रक्षिप्त हो। अब तीन नमूने ऐसे दिये जाते हैं जिनमें कुछ अनुकरण, अतिरिक्त कथन और स्पष्टी-करणका भाव पाया जाता है:—

१ पायच्छित्तं सोही मलहरणं पावणासणं छेदो । पज्जाया······ ॥ २ ॥

२ एक्कम्मि वि उवसग्गे णव णवकारा हवंति वारसहिं ।
सयमट्ठोत्तरभेदे हवंति उववास जस्स फलं ॥ ६ ॥

३ जावदिया परिणामा तावदिया होंति तत्थ अवराहा ।
पायच्छित्तं सक्कइ दादुं कादुं च को समए ॥ ९० ॥

—छेदशास्त्र

१ पायच्छित्तं छेदो मलहरणं पावणासणं सोही ।
पुण्णं पवित्तं पावणमिदि पायच्छित्तनामाइं ॥ ३ ॥

२ गाव पंचणमोक्कारा काउस्सग्गम्मि होंति एगम्मि ।
एदेहिं बारसेहिं उववासो जायदे एक्को ॥ १० ॥
३ जावदिया अविसुद्धा परिणामा तेत्तिया अदीचारा ।
को ताण पायच्छित्तं दाउं काउं च सक्केज्जो ॥ ३५४ ॥
—छेदपिण्ड

दोनों ग्रन्थोंके इन वाक्योंकी तुलनापरसे ऐसा मालूम होता है कि छेदशास्त्रसे छेदपिण्ड कुछ उत्तरवर्ती कृति है; क्योंकि उसमें छेदशास्त्रके अनुसरणके साथ पहली गाथामें प्रायश्चित्तके नामोंमें कुछ वृद्धि की गई है, दूसरी गाथामें 'णवकारा' पदको 'पंचणमोक्कारा' पदके द्वारा स्पष्ट किया गया है और तीसरी गाथामें 'परिणामा' पदके पूर्व 'अविसुद्धा' विशेषण लगाकर उसके आशयको व्यक्त किया गया और 'अवराहा' पदके स्थानपर 'अदीचारा' जैसे सौम्य पदका प्रयोग करके उसके भावको सूचित किया गया है।

५४. भावत्रिभंगी(भावसंग्रह)—इस ग्रंथका नाम 'भावसंग्रह' भी है, जो कि अनेक प्राचीन ताडपत्रीय आदि प्रतियोंमे पाया जाता है। मूलमें 'मूलुत्तरभावसरूवं पवक्खामि'(गा.२), 'इदि गुणमग्गणठाणे भावा कहिया'(गा.११६), इन प्रतिज्ञा तथा समाप्ति-सूचक वाक्योंसे भी यह भावोंका एक संग्रह ही जान पड़ता है—भावोंको अधिकांशमें तीन भंग करके कहनेसे 'भावत्रिभंगी' भी इसका नाम रूढ हो गया है। इसमें जीवोंके १ औपशमिक, २ क्षायिक, ३ क्षायोपशिक, ४ औदयिक और ५ पारिणामिक ऐसे पाँच मूलभावों और इनके क्रमशः २, ६, १८, २१, ३ ऐसे ५३ उत्तरभावोंका वर्णन किया गया है। और अधिकांश वर्णन १४ गुणस्थानों तथा १४ मार्गणाओंकी दृष्टिको लिये हुए हैं। ग्रंथ अपने विषयका अच्छा महत्वपूर्ण है और उसकी प्रशस्ति-सहित कुल गाथा संख्या १२३ (११६x७) है। माणिकचन्द्रग्रन्थमालामे मूलके साथ प्रशस्ति मुद्रित नहीं हुई है। उसे मैंने आरा जैन-सिद्धांतभवनकी एक ताडपत्रीय प्रति परसे मालूम करके उसकी सूचना ग्रंथमालाके मंत्री सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीको की थी और इसलिये उन्होंने 'ग्रन्थपरिचय' नामकी अपनी प्रस्तावनामे उसे दे दिया है। वह प्रशस्ति, जिससे ग्रन्थकार श्रुतमुनिका और उनके गुरुवोंका अच्छा परिचय मिलता है, इस प्रकार हैं:—

"अणुवद-गुरु-बालेंदू महव्वदे अभयचंद सिद्धंति ।
सत्थेऽभयसूरि-पहाचंदा खलु सुयमुणिस्स गुरू ॥ ११७ ॥
सिरिमूलसंघदेसिय[गण] पुत्थयगच्छ कोंडकुंदमुणिणाहं(कुंदाणं ?)
परमण्ण इंगलेसबलिम्मि जाद [स्स] मुणिपहद(हाण)स्स ॥ ११८ ॥
सिद्धंताऽहयचंदस्स य सिस्सो बालचंदमुणिपवरो ।
सो भवियकुवलयाणं आणंदकरो सया जयऊ ॥ ११९ ॥
सद्दागम-परमागम-तक्कागम-निरवसेसवेदी हु ।
विजिद-सयलण्णवादी जयउ चिरं अभयसूरिसिद्धंति ॥ १२० ॥
णय-णिक्खेव-पमाणं जाणित्ता विजिद-सयल-परसमओ ।
वर-णिवइ-णिवह-वंदिय- पय-पम्मो चारुकित्तिमुणी ॥ १२१ ॥
णाद-णिखिलत्थसत्थो सयलणरिंदेहिं पूजिओ विमलो ।
जिण-मग्ग-गयण-सूरो जयउ चिरं चारुकित्तिमुणी ॥ १२२ ॥

वर-सारत्तय-णिउणो सुद्धप्परओ विरहिय-परभाओ ।
भवियाणं पडिवोहणपरो पहाचंदणाममुणी ॥ १२३ ॥

इति भावसंग्रहः समाप्तः ।"

इसमें बतलाया है कि श्रुतमुनिके अणुव्रतगुरु बालेन्दु-बालचन्द्र मुनि थे—बालचन्द्रमुनिसे उन्होंने श्रावकीय अहिंसादि पाँच अणुव्रत लिये थे, महाव्रतगुरु अर्थात् उन्हें मुनिधर्ममें दीक्षित करनेवाले आचार्य अभयचन्द्र सिद्धान्ती थे और शास्त्रगुरु अभयसूरि तथा प्रभाचन्द्र नामके मुनि थे। ये सभी गुरु-शिष्य (संभवतः प्रभाचन्द्रको छोड़कर[1]) मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छके कुन्दकुन्दान्वयकी इंगलेश्वर शाखामें हुए हैं। इनमे बालचन्द्रमुनि भी अभयचन्द्र-सिद्धान्तीके शिष्य थे और इससे वे श्रुतमुनिके ज्येष्ठ गुरुभाई भी हुए। शास्त्रगुरुवोंमें अभयसूरि भी सिद्धान्ती थे, शब्दागम-परमागम-तर्कागमके पूर्णजानकार थे और उन्होंने सभी परवादियोंको जीता था; और प्रभाचन्द्रमुनि उत्तम सारत्रयमे अर्थात् प्रवचनसार, समयसार और पंचास्तिकायसार नामके ग्रंथोंमे निपुण थे, परभावसे रहित हुए शुद्धात्मस्वरूपमे लीन थे और भव्यजनोंको प्रतिबोध देनेमें सदा तत्पर थे। प्रशस्तिमे इन सभी गुरुवोंका जयघोष किया गया है, साथ ही गाथाओंमे चारुकीर्तिमुनिका भी जयघोष किया गया है, जोकि श्रवणबेल्गोलकी गद्दीके भट्टारकोंका एक स्थायी रूढनाम जान पड़ता है, और उन्हें नयों-निक्षेपों तथा प्रमाणोंके जानकार, सारे धर्मोंके विजेता, नृपगणसे वंदितचरण, समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता और जिनमार्गपर चलनेमें शूर प्रकट किया है।

ग्रंथमे रचनाकाल दिया हुआ नहीं और इससे ग्रंथकारका समय उसपरसे मालूम नहीं होता। परन्तु 'परमागमसार' नामके अपने दूसरे ग्रंथमे ग्रंथकारने रचनाकाल दिया है और वह है शक सवत् १२६३ (वि०सं० १३९८) वृष संवत्सर, मंगसिर सुदी सप्तमी, गुरुवारका दिन, जैसा कि उसकी निम्न गाथासे प्रकट है:—

सगगाले हु सहस्से विसय-तिसट्ठी १२६३ गदे दु विसवरिसे ।
मग्गसिरसुद्धसत्तमि गुरुवारे गंथसंपुण्णो ॥ २२४ ॥

इसके बाद उक्त ग्रन्थमें भी वही प्रशस्ति दी हुई है जो इस भावसंग्रहके अन्तमें पाई जाती है—मात्र चारुकीर्ति सम्बन्धी दूसरी गाथा (१२२) उसमें नहीं है। और इसपरसे श्रुतमुनिका समय बिलकुल सुनिश्चित होजाता है—वे विक्रमकी १४वीं शताब्दीके विद्वान् थे।

५५. **आस्रवत्रिभंगी**—यह ग्रन्थ भी भावत्रिभंगी (भावसंग्रह) के कर्ता श्रुतमुनिकी ही रचना है। इसमे मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग इन मूल आस्रवोंके क्रमशः ५, १२ २५, १५, ऐसे ५७ भेदोंका गुणस्थान और मार्गणाओंकी दृष्टिसे वर्णन है। ग्रंथ अपने विषयका अच्छा सूत्रग्रंथ है और उसमे गोम्मटसारादि दूसरे ग्रंथोंकी भी अनेक गाथाओंको अपनाकर ग्रंथका अंग बनाया गया है; जैसे 'मिच्छत्तं अविरमणं' नामकी दूसरी गाथा गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी ७८६ नं० की गाथा है और 'मिच्छोदएण मिच्छत्तं' नामकी तीसरी गाथा गोम्मटसार-जीवकाण्डकी १५ नंबरकी गाथा है। इस ग्रंथकी कुल गाथा-संख्या ६२ है। अन्तकी गाथामे 'बालेन्दु' (बालचन्द) का जयघोष किया गया है— जो कि श्रुतमुनिके अणुव्रत गुरु थे—और उन्हें विनेयजनोंसे पूजामाहात्म्यको प्राप्त तथा कामदेवके

---

१ अपनी शाखाके गुरुवोंका उल्लेख करते हुए अभयसूरिके बाद प्रभाचन्द्रका जयघोष न करके चारुकीर्तिके भी बाद जो प्रभाचन्द्रका परिचय पद्य दिया गया है उसपरसे उनके उसी शाखाके मुनि होनेका सन्देह होता है।

प्रभावको निराकृत करनेवाले लिखा है। और इसलिये यह ग्रंथ भी विक्रमकी १४वीं शताब्दी की रचना है।

५६. परमागमसार—यह ग्रंथ भी भावत्रिभंगी (भावसंग्रह) के कर्ता श्रुतमुनिकी कृति है, और इसकी गाथासंख्या २३० है। वाक्यसूचीके समय यह ग्रंथ सामने नहीं था और इसलिये इसकी गाथाओंको सूचीमे शामिल नहीं किया जा सका। इस ग्रंथमे आठ अधिकार हैं—१ पंचास्तिकाय, २ षट्द्रव्य, ३ सप्ततत्त्व, ४ नवपदार्थ, ५ वन्ध, ६ वन्ध-कारण, ७ मोक्ष और मोक्षकारण[१]। और उनमे संक्षेपसे अपने अपने विषयका क्रमशः अच्छा वर्णन है। यह ग्रंथ मँगसिर सुदि सप्तमी शक संवत् १२६३ को गुरुवारके दिन बन कर समाप्त हुआ है; जैसा कि उस गाथासे प्रकट है जो भावत्रिभंगी (भावसग्रह) के प्रकरण में उद्धृत की गई है। और जिसके अनन्तर चारुकीर्ति-विषयक दूसरी गाथाको छोड़कर, शेष सब प्रशस्ति वही दी हुई है जोकि भावसंग्रहकी ताड़पत्रीय प्रतिमे पाई जाती है और जिसे भावत्रिभंगी (भावसंग्रह) के प्रकरणमे ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। अस्तु, यह ग्रंथ ऐलक-पन्नालाल सरस्वती-भवन बम्बईमें मौजूद है। उसे देखकर अगस्त सन् १९२८ मे जो नोट लिये गये थे उन्हीके आधारपर यह परिचय लिखा गया है।

५७. कल्याणालोचना—यह ५४ पद्योंमे वर्णित ग्रंथ आत्मकल्याणकी आलोचनाको लिये हुए है। इसमे आत्मसम्बोधनरूपसे अपनी भूलो-गलतियो-अपराधोंकी चिन्ता-विचारणा करते हुए अपनेसे जो दुष्कृत बने हैं, जिन-जिन जीवादिकोंकी जिस जिस प्रकारसे विराधना हुई है उन सबके लिये खेद व्यक्त किया है और 'मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज' जैसे शब्दों-द्वारा उन दुष्कृतोंके मिथ्या होनेकी भावना की है। अपने स्वभावसिद्ध निर्विकल्पज्ञान-दर्शनादिरूप एक आत्माको अथवा एक परमात्माको ही अपना शरण्य माना है और 'अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा' जैसे शब्दोंद्वारा उसकी बार बार घोषणा की है। साथ ही, जिनदेव-जिनशासनमें भक्ति और संन्यासके साथ मरणको अपनी सम्पत् माना है। और अन्तमें 'एवं आराहंतो आलोयण-वंदणा-पडिक्कमणं' जैसे शब्दोंद्वारा अपने इस सब कृत्यको आलोचन, वन्दना तथा प्रतिक्रमणरूप धार्मिक क्रियाका आराधन बतलाया है। ग्रंथ साधारण है और सरल है।

ग्रन्थकारने ग्रंथकी अन्तिम गाथामें, 'णिद्दिट्ठं अजिय-बंभेण' इस वाक्यके द्वारा, अपना नाम 'अजितब्रह्म' सूचित किया है—और कोई विशेष परिचय अपना नहीं दिया। इससे ग्रंथकारके विषयमें अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, ब्रह्मअजितका बनाया हुआ एक 'हनुमच्चरित' जरूर उपलब्ध है, जिसे उन्होंने देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य भ० विद्यानन्दिके आदेशसे भृगुकच्छ नगरमें रचा है। और उससे मालूम होता है कि ब्रह्मअजित भ० देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे, उनके पिताका नाम वीरसिंह', माताका नाम 'वीधा' या 'पृथ्वी' (दो प्रतियोंमें दो प्रकारसे) और वंशका नाम 'गोलश्रृङ्गार' (गोलसिंघाड) था। और इससे वे विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके विद्वान हैं; क्योंकि भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति और विद्यानंदिका यही समय पाया जाता है। बहुत संभव है कि दोनों ग्रंथोंके कर्ता ब्रह्मअजित एक ही हो, यदि ऐसा है तो इस ग्रंथको विक्रमकी १६वीं शताब्दीकी कृति समझना चाहिये।

५८. अङ्गप्रज्ञप्ति—यह ग्रंथ द्वादशाङ्गश्रुतकी प्रज्ञापनाको लिये हुए है। इसमें जिनेन्द्रकी द्वादशाङ्ग-वाणीके ११ अङ्गों और १४ पूर्वोंके स्वरूप, विषय, भेद और पद-संख्यादिका वर्णन है। आदि तीर्थंकर श्रीवृषभदेवकी वाणीसे कथनके प्रसंगको उठाया गया

[१] पंचत्थिकाय दव्वं छक्कं तच्चाणि सत्त य पदत्था। णव बन्धो तक्कारण मोक्खो तक्कारणं चेदि ॥ ९ ॥
अहियो अट्ठविहो जिणवयण-णिरूविदो सवित्थरदो। वोच्छामि समासेण य सुणुय जणा दत्त चित्ता हु ॥१०॥

है और फिर यह सूचना की गई है कि जिस प्रकार वृषभदेवने अपने वृषभसेन गणधरको उसके प्रश्नपर यह सब द्वादशाङ्गश्रुत प्रतिपादित किया है उसी प्रकार दूसरे तीर्थंकरोंने भी अपने अपने गणधरोके प्रति प्रतिपादित किया है। तदनुसार ही श्रीवर्द्धमान तीर्थंकरके मुखकमलसे निकले हुए द्वादशाङ्गश्रुतज्ञानकी श्रीगौतम गणधरने अविरुद्ध रचना की और वह द्वादशाङ्ग-श्रुत वादको पूर्णतः अथवा खण्डशः जिन जिनको आचार्य-परम्परासे प्राप्त हुआ है उन आचार्यों का नामोल्लेख किया है। और इस तरह श्रुतज्ञानकी परम्पराको बतलाया है। इसकी कुल गाथा-संख्या २४८ है और वह तीन अधिकारोंमे विभक्त है। प्रथम अंगनिरूपणाधिकारमें ७७, दूसरे चतुर्दशपूर्वाधिकारमे ११७ और तीसरे चूलिकाप्रकीर्णकाधिकारमे ५४ गाथाएँ हैं।

इस ग्रंथके कर्ता भट्टारक शुभचन्द्र हैं, जिन्होंने ग्रंथमे अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार दी है :—सकलकीर्तिके पट्टशिष्य भुवनकीर्ति, भुवनकीर्तिके पट्टशिष्य ज्ञानभूषण, ज्ञानभूषणके शिष्य विजयकीर्ति और विजयकीर्तिके शिष्य शुभचन्द्र (ग्रंथकार)। शुभचन्द्र नामके यद्यपि अनेक विद्वान् आचार्य होगए हैं, जिनका समय भिन्न है और उनकी अनेक कृतियाँ भी अलग अलग पाई जाती हैं, परन्तु ये विजयकीर्तिके शिष्य और ज्ञानभूषण भ० के प्रशिष्य शुभचन्द्र विक्रमकी १६वीं शताब्दीके उत्तरार्ध और १७वीं शताब्दीके पूर्वार्धके विद्वान् हैं, क्योंकि इन्होंने संवत १५७३ मे समयसारकलशाकी टीका 'परमाध्यात्मतरंगिणी' लिखी है, सं० १६०८ मे पाण्डवपुराणकी तथा संवत् १६११ में करकंडुचरितेकी और सं० १६१३ मे कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकाको बनाकर समाप्त किया है[1]। पाण्डवपुराणमें चूँकि उन ग्रंथोंकी एक सूची दी हुई है जो उसकी रचनासे पहले बन चुके थे और उनमे अंगप्रज्ञप्तिका भी नाम है[2] अतः यह ग्रंथ वि० संवत १६०८ से पहलेकी रचना है। कितने पहलेकी? यह नहीं कहा जा सकता—अधिकसे अधिक ३०-४० वर्ष पहलेकी हो सकती है।

५६. सिद्धान्तसार—यह ७६ गाथाओंका ग्रंथ सिद्धान्त-विषयक कुछ कथनोंके सारको लिए हुए है और वे कथन हैं—(१) चौदह मार्गणाओंमे १५ जीवसमास, १४ गुणस्थान, १५ योग, १२ उपयोग और ५७ प्रत्यय अर्थात् आस्रव, (२) चौदह जीवसमासों मे १५ योग १२ उपयोग तथा ५७ आस्रव, और (३) चौदह गुणस्थानोंमे १५ योग १२ उपयोग तथा ५७ आस्रव। इन सब कथनोंकी सूचना तृतीय गाथामे की गई है, जो इस प्रकार है—

> जीव-गुणे तह जोए सपच्चए मग्गणासु उवओगे।
> जीव-गुणेसु वि जोगे उवजोगे पच्चए वुच्छं ॥ ३ ॥

इसके बाद क्रमश मार्गणाओं, जीवसमासो और गुणस्थानोंमे योगों तथा उपयोगोंकी सख्यादिका कथन करके अन्तमे प्रत्ययों (आस्रवों) की सख्यादिका कथन किया गया है। यह ग्रंथ अपने विषयका एक महत्वका सूत्रग्रंथ है। इसमें अतिसंक्षेपसे—सूत्रपद्धतिसे-प्रायः सूचनारूपमे कथन किया गया है। और ग्रंथमे रही हुई त्रुटियोंको सुधारने तथा कमी की पूर्ति करनेका अधिकार भी ग्रंथकारने उन्हीं साधुओंको दिया है जो वरसूत्रगेह हैं—उत्तम सूत्रोंके मन्दिर हैं—साथ ही जिननाथके भक्त हैं, विरागचित्त हैं और (सम्यग्दर्शनादि-रूप) शिवमार्गसे युक्त हैं[3]। और इससे यह जाना जाता है कि ग्रंथकारमे ग्रंथके रचनेकी कितनी सावधानता थी। अस्तु।

---

[1] देखो, वीरसेवामन्दिरका 'जैन-ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह' पृ० ४२, ४७, ५४, १३६।

[2] "कृता येनाङ्गप्रज्ञप्तिः सर्वाङ्गार्थप्ररूपिका"—२५-१८०॥

[3] सिद्धतसारं वरसुत्तगेहा सोहंतु साहू मय-मोह-चत्ता।
पूरंतु हीणं जिणणाहभत्ता विरायचित्ता सिवमग्गजुत्ता ॥ ७६ ॥

इस ग्रंथके कर्ता, ७८वीं गाथामें आए हुए 'जिणइंदेण पउत्तं' वाक्यके अनुसार, 'जिनेन्द्र' नामके कोई साधु अथवा आचार्य मालूम होते हैं, जो आगम-भक्तिसे युक्त थे और जिन्होंने अपने आपको प्रवचन (आगम), प्रमाण (तर्क), लक्षण (व्याकरण), छन्द और अलंकारसे रहित-हृदय बतलाया है, और इस तरह इन अगाध और अपार शास्त्रोंमें अपनी गतिको अधिक महत्व न देकर अपनी विनम्रताको ही सूचित किया है। ग्रंथकारने अपने गुरु आदिका और कोई परिचय नहीं दिया और इसी लिये इनके विषय में ठीक तौरपर अभी कुछ कहना सहज नहीं है।

पंडित नाथूरामजी प्रेमीने, 'ग्रथकर्ताओंका परिचय' नामकी प्रस्तावनामें, इस ग्रंथ का कर्ता जिनचन्द्राचार्यको बतलाया है और फिर जिनचन्द्राचार्यके विषयमें यह कल्पना की है कि वे या तो तत्त्वार्थसूत्रकी सुखबोधिका-टीकाके कर्ता भास्करनन्दीके गुरु जिनचन्द्र होंगे और या धर्मसंग्रहश्रावकाचारके कर्ता पं० मेधावीके गुरु जिनचन्द्र होंगे, दोनोंकी संभावना है, दोनों सिद्धान्तशास्त्रके पारंगत अथवा सैद्धान्तिक विद्वान् थे। और दोनोंमें भी अधिक संभावना पं० मेधावीके गुरु जिनचन्द्रकी बतलाई है; क्योंकि इस ग्रंथपर भ० ज्ञानभूषणकी एक संस्कृत टीका है, जो कि पं० मेधावीके गुरु जिनचन्द्रके कुछ ही पीछे प्रायः समकालीन हुए हैं, इसीसे उन्हें इस ग्रंथपर टीका लिखनेका उत्साह हुआ होगा। और इसलिये प्रेमीजीने इस ग्रन्थकी रचनाका समय भी वि० सं० १५१६ के लगभगका अनुमान किया है, जिस सम्वत्में पं० मेधावीने 'त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति' की एक दानप्रशस्ति लिखी है, जिससे उस समय उनके गुरु जिनचन्द्रका अस्तित्व जाना जाता है।

यहांपर इतना और भी जान लेना चाहिये कि ग्रन्थकी आदिमें 'श्रीजिनेन्द्राचार्य-प्रणीतः' विशेषणके द्वारा ग्रन्थका कर्ता जिनेन्द्राचार्यको ही सूचित किया है; परन्तु उक्त प्रस्तावनामें प्रेमीजीने लिखा है कि "प्रारम्भमे 'जिनेन्द्राचार्य' नाम सशोधककी भूलसे मुद्रित होगया है।" और संशोधक एव सम्पादक पं० पन्नालालसोनीने ग्रंथके अन्तमे एक फुटनोट[1] द्वारा अपनी भूलको स्वीकार भी किया है। साथ ही, यह भी व्यक्त किया है कि किसी दूसरी मूलपुस्तकको देखकर उनसे यह भूल हुई है। और इसपरसे यह फलित होता है कि मूल पुस्तकमे ग्रंथकर्ताका नाम 'जिनेन्द्राचार्य' उपलब्ध है, टीकामें चूंकि 'जिनइंदेण' का अर्थ 'जिनचन्द्रनाम्ना' किया गया है इसीसे सम्पादकजीने मूलपुस्तकमे 'जिनेन्द्राचार्य' नाम होते हुए भी, अपनी भूल स्वीकार कर ली है और साथ ही उस पुस्तक (प्रति) लेखककी भी भूल मान ली है!! परन्तु मेरी रायमें जिसे टीकापरसे 'भूल' मान लिया गया है वह वास्तवमें भूल नहीं है; बल्कि टीकाकारकी ही भूल है। क्योंकि 'इंदेण' पदका अर्थ 'चन्द्रेण' घटित नहीं होता किन्तु 'इन्द्रेण' होता है और पूर्वमें 'जिन' शब्दके लगनेसे 'जिनेन्द्रेण' होजाता है। 'इंदेण' पदका अर्थ 'चंद्रेण' तभी हो सकता है जब 'इंद' का अर्थ 'चन्द्र' हो; परन्तु 'इंद' का अर्थ चन्द्र न होकर इन्द्र होता है, चन्द्र अर्थ 'इंदु' शब्दका होता है—'इन्द्र' का नहीं। शायद 'इंदु' शब्दकी कल्पना करके ही 'इंदेण' पदका अर्थ चद्रेण किया गया हो, परन्तु इंदुका तृतीयाके एकवचनमे रूप 'इंदेण' नहीं होता किन्तु 'इंदुणा' होता है. और यहां स्पष्टरूपसे 'इंदेण' पदका प्रयोग है जिससे उसे 'इंदु' शब्दका तृतीयान्तरूप नहीं कहा जासकता। और इसलिये उससे चन्द्र अर्थ नहीं निकाला जासकता। चुनाँचे इस ग्रथकी कनडी टीका-टिप्पणीमें भी 'जिनेन्द्रदेवाचार्य' नाम दिया है। यदि ग्रथकारको यहा चन्द्र अर्थ विवक्षित होता तो वे सहजमे ही 'जिनइदेण' की जगह 'जिनचंदेण' पद रख सकते थे और यदि 'जिनेन्दु' जैसे नामके ज़िये इन्दु शब्द ही विवक्षित होता तो वे उक्त पदको जिणइंदुणा' का रूप दे सकते थे, जिसके लिये छन्दकी दृष्टिसे भी कोई बाधा नहीं थी। परन्तु ऐसा कुछ भी

१ "प्रारंभे हि जिनेन्द्राचार्य इति विस्मृत्य लिखितोऽस्माभिरन्यन्मूलपुस्तकं विलोक्य।—सं०।"

नहीं है, और इसलिये 'जिनइंदेण' पदकी मौजूदगीमें उसपरसे ग्रंथकर्ताका नाम 'जिनचन्द्र' फलित नहीं किया जा सकता। ऐसी हालतमें जिनचन्द्रके सम्बन्धमे जो कल्पनाएँ की गई हैं, उनपर विचार करनेकी कोई जरूरत नहीं रहती। मेरे खयालमे जिणइंदका अर्थ जिनचन्द्र करनेमे संस्कृतटीकाकारादिकी उसी प्रकारकी भूल जान पडती है जिस प्रकारकी भूल परमात्मप्रकाशके टीकाकारादिकने 'जोइन्दु' का अर्थ 'योगीन्द्र' करनेमे की है और जिसका स्पष्टीकरण डा० उपाध्येने अपनी परमात्मप्रकाशकी प्रस्तावनामे किया है। वहाँ इन्दु' का अर्थ 'इन्द्र' किया गया है तो यहाँ 'इंद' का अर्थ 'इंदु'(चन्द्र) कर दिया गया है। अतः इस ग्रन्थके कर्ता 'जिनेन्द्र' का ठीक पता लगाना चाहिये कि वे किसके शिष्य अथवा गुरु थे, कब हुए हैं और उनके इस ग्रन्थके वाक्योंको कौन कौन ग्रन्थोंमें उद्धृत किया गया है।

६०. नन्दिसंघ-पट्टावली—इस पट्टावली[1] मे १६ गाथाएँ हैं, जिनमेसे १७ तो पट्टावली-विषयकी हैं और शेप दो विक्रम राजाकी उत्पत्ति आदिसे सम्बन्ध रखती हैं, जिनके अनुसार विक्रमकाल वीरनिर्वाणसे ४७० वर्षके बाद प्रारम्भ होता है। इनमेसे किसी भी गाथामें संघ, गण, गच्छादिका कोई उल्लेख नहीं है। पट्टावलीकी आदिमे तीन पद्य संस्कृत भाषाके दिये हैं, जिनमे तीसरा पद्य बहुत कुछ स्खलित है, और उनके द्वारा इस प्राचीन पट्टावलीको मूलसघकी नन्दि-आम्नाय, बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छके कुन्दकुन्दान्वयी गणाधिपों(आचार्यो)के साथ सम्बद्ध किया गया है। वे तीनों पद्य, जिनके क्रमाङ्क भी गाथाओंसे अलग हैं, इस प्रकार हैं:—

> श्रीत्रैलोक्याधिपं नत्वा स्मृत्वा सद्गुरु-भारतीम्।
> वक्ष्ये पट्टावलीं रम्यां मूलसंघ-गणाधिपाम्॥ १॥
> श्रीमूलसघ-प्रवरे नन्द्याम्नाये मनोहरे।
> बलात्कार-गणोत्तंसे गच्छे सारस्वतीयके॥ २॥
> कुन्दकुन्दान्वये श्रेष्ठं उत्पन्नं श्रीगणाधिपम्।
> तमेवाऽत्र प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सज्जना जनाः॥ ३॥

इन पद्योंके अनन्तर पट्टावलीकी मूलगाथाओंका प्रारम्भ है और उनमे अन्तिम जिन(श्रीवीर भगवान)के निर्वाणके बाद क्रमशः होनेवाले तीन केवलियों, पाँच श्रुतकेवलियों, ग्यारह दशपूर्वधारियों पांच एकादशांगधारियो, चार दशांगादिके पाठियो और पांच एकागके धारियोंका, उनके अलग-अलग अस्तित्वकालके वर्षो-सहित नामोल्लेख किया है। साथ ही, प्रत्येक वर्गके साधुओंका इकट्ठा काल भी दिया है, जैसे गौतमादि तीनों केवलियों का काल ६२ वर्ष, विष्णु-नन्दिमित्रादि पांचों श्रुतकेवलियोंका उसके बाद १०० वर्ष अर्थात् वीरनिर्वाणसे १६२ वर्ष पर्यन्त, तदनन्तर विशाखाचार्यादि ग्यारह दशपूर्वधारियोंका १८३ वर्ष, नक्षत्रादि पाँच एकादशांगधारियोंका १२३ वर्ष, सुभद्रादि चार दशांगादिकधारियों का ६७ वर्ष और अर्हद्बलि आदि पाच एकागधारियोंका काल ११८ वर्ष। इस तरह वीर-निर्वाणसे ६८३ वर्ष तकके अर्सेमे होनेवाले केवलियों, श्रुतकेवलियों और अगपूर्वके पाठियों की यह पट्टावली है। उस वक्त तक दिगम्बर सम्प्रदायमें कोई खास संघ-भेद नहीं हुआ था, और इसलिये बादको होनेवाले नन्दि-सेनादि सभी सघो और गण-गच्छोंके द्वारा यह पूर्वकी पट्टावली अपनाई जा सकती है। तदनुसार ही यह नन्दिसंघके द्वारा अपनाई गई है और इसीसे इसको नन्दिसघ (बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ)की पट्टावली कहा जाता है। यह पट्टावली प्रत्येक आचार्यके अलग-अलग समयके निर्देशादिकी दृष्टिसे अपना खास महत्व

[1] देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर, भाग १ किरण ४ पृ० ७१।

रखती है। इस पट्टावलीमें वर्णित ६८३ वर्षकी यह संख्या किसी भी अंग-पूर्वादिके पूर्णतः पाठियोंके लिये दिगम्बरसमाजमें रूढ है, इसमे कहीं कोई विरोध नहीं पाया जाता। आंशिक रूपसे अंग-पूर्वादिके पाठी इन ६८३ वर्षों मे भी हुए हैं और इनके वाद भी हुए हैं।

६१. सावयधम्मदोहा—यह २२४ दोहोमे वर्णित श्रावकाचार-विषयका अच्छा ग्रंथ है, जिसे देहली आदिकी कुछ प्रतियोंमे 'श्रावकाचारदोहक' भी लिखा है और कुछ प्रतियों में 'उपासकाचार' जैसे नामोसे भी उल्लेखित किया है। मूलके प्रतिज्ञावाक्यमें 'अक्खमि-सावयधम्मु' वाक्यके द्वारा इसका नाम श्रावकधर्म' सूचित किया। दोहाबद्ध होनेसे अनेक प्रतियोंमें दोहाबद्ध दोहक तथा दोहकसूत्र-जैसे विशेपणोंको भी साथमे लगाया गया है। इसके कर्ताका मूलपरसे कोई पता नहीं चलता। अनेक प्रतियोंके अन्तमे कर्तृविषयक विभिन्न सूचनाएँ पाई जाती हैं—किसीमे जोगेन्दु तथा योगीन्द्रको, किसीमे लक्ष्मीचन्द्रको और किसीमें देवसेनको कर्ता वतलाया है। भाण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट पूनाकी एक सटीक प्रतिमें यहाँ तक लिखा है कि "मूलं योगीन्द्रदेवस्य लक्ष्मीचन्द्रस्य पंजिका"—अर्थात् मूलग्रंथ योगीन्द्रदेवका और उसपर पंजिका लक्ष्मीचन्द्रकी है। इन सब बातोंकी चर्चा और उनका ऊहापोह प्रो० हीरालालजी एम० ए० ने अपनी भूमिकामें किया है और देवसेनके भावसंग्रह-की गाथाओं नं० ३५० से ५६६ तकके साथ तुलना करके यह मालूम किया है कि दोनोंमे वहुत कुछ सादृश्य है और उसपरसे उन्हीं देवसेनको ग्रंथका कर्ता ठहराया है जिन्होंने विक्रम संवत् ६६० में अपने दूसरे ग्रंथ दर्शनसारको बनाकर समाप्त किया है। और इस तरह इस ग्रथको १०वीं शताब्दीकी रचना सूचित किया है। परन्तु मेरी रायमे यह विपय अभी और भी विचारणीय है। शायद इसीसे प्रो० साहवने भी टाइटिल आदिपर ग्रथनामके साथ उस-के कर्ताका नाम निश्चित रूपमे प्रकट करना उचित नहीं समझा। अस्तु।

यह ग्रंथ अपभ्रंश भापाका है। इसमे श्रावकीय प्रतिमाओं तथा व्रतादिकोंका वर्णन करते हुए एक स्थानपर लिखा है :—

एहुं धम्मु जो आयरइ बंभणु सुद्दु वि कोइ।
सो सावउ किं सावयहँ अण्णु कि सिरि मणि होइ॥ ७६॥

इसमे श्रावकका लक्षण वतलाते हुए कहा है कि—'इस धर्मका जो आचरण करता है, चाहे वह ब्राह्मण या शूद्र कोई भी हो, वही श्रावक है श्रावकके शिरपर और क्या कोई मणि होता है? अर्थात् श्रावकधर्मके पालनके सिवाय श्रावककी पहचानका और कोई चिन्ह नहीं है और श्रावकधर्मके पालनका सबको अधिकार है—उसमे कोई भी जाति-भेद बाधक नहीं है।

६२. पाहुडदोहा—यह २२० पद्योंका ग्रंथ है, जिसमें अधिकांश दोहे ही हैं—कुछ गाथा आदि दूसरे छंद भी पाये जाते हैं, और दो तीन पद्य संस्कृतके भी हैं। इसका विपय योगीन्दुके परमात्मप्रकाश तथा योगसारकी तरह प्रायः अध्यात्मविषयसे सम्बन्ध रखता है। दोनोंकी शैली-सरणि तथा उक्तियोंको भी इसमे अपनाया गया है. इतना ही नहीं बल्कि ५० के करीब दोहे इसमे ऐसे भी हैं जो परमात्मप्रकाशके साथ प्रायः एकता रखते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो योगसारके साथ समानभावको प्राप्त हैं। शायद इस समानताके कारण ही एक प्रतिमे[1] इसे 'योगीन्द्रदेवविरचित' लिख दिया है। परन्तु यह ग्रंथ रामसिंह-मुनिकृत है. जैसा कि २०६वें पद्यमे प्रयुक्त 'रामसीहु मुणि इम भणइ' जैसे वाक्य[2]से प्रकट है

१ यह प्रति डा० ए० एन० उपाध्ये एम० ए० के पास एक गुटकेमें है।—देखो, 'अनेकान्त' वर्ष १, कि० ८-९-१०, पृ० ५४५।

२ अणुपेहा वारह वि जिया भविवि एक्कमणेण।
रामसीहु मुणि इम भणइ सिवपुर पावहि जेण॥ २०६॥

और देहली नयामन्दिरकी प्रतिके अन्तमें, जो पौष शुक्ला ६ शुक्रवार संवत् १७६४ की लिखी हुई है, साफ लिखा है— "इति श्रीमुनिरामसिंहविरचितपाहुडदोहासमाप्तम् ।" यह ग्रंथ भी, 'सावयधम्मदोहा' की तरह, प्रो० हीरालालजी एम० ए० के द्वारा सम्पादित होकर अम्बालाल चवरे दि० जैन ग्रंथमालामें प्रकाशित हो चुका है।

ग्रंथमे ग्रंथकर्ताने अपना तथा अपने गुरु आदिका कोई खास परिचय नहीं दिया और न ग्रंथका रचनाकाल ही दिया है, इससे इनके विषयमे अभी विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रो० हीरालालजीने 'भूमिका' में बतलाया है कि 'इस ग्रंथके ४३ और २१५ नम्बरके दोहे वे ही हैं जो 'सावयधम्मदोहा' में क्रमशः न० १२६ व ३० पर पाये जाते हैं। उनकी स्थिति 'सावयधम्मदोहा' में जैसी स्वाभाविक, उपयुक्त और प्रसंगोपयोगी है वैसी इस पाहुडदोहामे नहीं है, इसलिये वे वहीं परसे पाहुडदोहामे उद्धृत किये गये हैं। और चूँकि सावयधम्मदोहा दर्शनसारके कर्ता देवसेन (वि० सं० ६६०) की कृति है इसलिये यह पाहुडदोहा वि० सं० ६६० (ई० सन् ९३३) के बादकी कृति ठहरती है।' साथ ही, यह भी बतलाया है कि 'हेमचन्द्राचार्यने अपने व्याकरणमे अपभ्रंश-सम्बन्धी सूत्रोंके उदाहरणरूप पाँच दोहे ऐसे दिये हैं जो इस ग्रन्थपरसे परिवर्तित करके रक्खे गये मालूम होते हैं। चूँकि हेमचन्द्रका व्याकरण गुजरातके चालुक्यवंशी राजा सिद्धराजके राज्य-कालमें—ई० सन १०६३ और ११४३ के मध्यवर्ती समयमे—बना है। इससे प्रस्तुत ग्रन्थ सन् ११०० से पूर्वका बना हुआ सिद्ध होता है।' परन्तु हेमचन्द्रके व्याकरणमें उक्त दोहे जिस स्थितिमे पाये जाते हैं उसपरसे निश्चितरूपमे यह नहीं कहा जा सकता कि वे इसी ग्रन्थपरसे लिये गये हैं परिवर्तन करके रखनेकी बात उनके विषयके अनुमानको और भी कमजोर बना देती है—उदाहरणके तौरपर उद्धृत किये जानेवाले पद्योंमे स्वेच्छासे परिवर्तनकी बात कुछ जीको भी नहीं लगती। इसी तरह 'सावयधम्मदोहा' का देवसेनकृत होना भी अभी सुनिर्णीत नहीं है। ऐसी हालतमे इस ग्रंथका समय ई० सन् ६३३ के बादका और सन् ११०० से पूर्वका जो निश्चित किया गया है वह अभी सन्दिग्ध जान पड़ता है और विशेष विचारकी अपेक्षा रखता है। अत ग्रंथके समय-सम्बन्धादिके विषयमें अधिक खोज होनेकी जरूरत है।

ग्रंथकार महोदयने इस ग्रंथमें जो उपदेश दिया है उसके कुछ अंशोंका सार प्रो० हीरालालजीके शब्दोंमें इस प्रकार है :—

"उनका (ग्रंथकारका) उपदेश है कि सुखके लिये बाहरके पदार्थोंपर अवलम्बित होनेकी आवश्यकता नहीं है, इससे तो केवल दुःख और संताप ही बढ़ेगा। सच्चा सुख इन्द्रियोंपर विजय और आत्मध्यानमे ही मिलता है। यह सुख इंद्रियसुखाभासोंके समान क्षणभंगुर नहीं है, किन्तु चिरस्थायी और कल्याणकारी है, आत्माकी शुद्धिके लिये न तीर्थ-जलकी आवश्यकता है, न नानाप्रकारका वेष धारण करनेकी। आवश्यकता है केवल, राग और द्वेषकी प्रवृत्तियोंको रोककर, आत्मानुभवकी। मूंड मुंडानेसे, केश लौंचकरनेसे या नग्न होनेसे ही कोई सच्चा योगी और मुनि नहीं कहा जा सकता। योगी तो तभी होगा जब समस्त अंतरग परिग्रह छूट जावे और मन आत्मध्यानमे विलीन होजावे। देवदर्शनके लिये पाषाणके बड़े बड़े मन्दिर बनवाने तथा तीर्थों-तीर्थों भटकनेकी अपेक्षा अपने ही शरीरके भीतर निवास करनेवाले देवका दर्शन करना अधिक सुखप्रद और कल्याणकारी है। आत्मज्ञानसे हीन क्रियाकाड कणरहित तुष और पयाल कूटनेके समान निष्फल हैं। ऐसे व्यक्तिको न इन्द्रियसुख ही मिलता और न मोक्षका मार्ग ही।"

६३. **सुप्रभदोहा**—यह प्रायः दोहोंमें नीति, धर्म और अध्यात्म-विषयकी शिक्षाको लिये हुए अपभ्रंश भाषाका एक ग्रंथ है, जिसकी पद्य-सख्या ७७ है और जो अभी तक

अप्रकाशित जान पड़ता है। इसमें प्रायः आत्मा, मन और धार्मिकों तथा योगियोंको सम्बोधन करके ही उपदेश दिया गया है और दान, परोपकार, आत्मध्यान, संसार-विरक्ति एवं अर्हद्भक्तिकी प्रेरणा की गई है।

इसके रचयिता सुप्रभाचार्य हैं, जिन्होंने प्रायः प्रत्येक पद्यमें 'सुप्पह भणइ' जैसे वाक्यके द्वारा अपने नामका निर्देश किया है और एक स्थानपर (दोहा ५६ में) 'सुप्पहु भणइ मुणीसरहु' वाक्यके द्वारा अपनेको 'मुनीश्वर' भी सूचित किया है; परन्तु अपना तथा अपने गुरु आदिका अन्य कोई विशेष परिचय नहीं दिया। और इसलिये इनके विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, ग्रंथपरसे इतना स्पष्ट है कि ये निर्ग्रन्थ जैन मुनि थे—निर्ग्रन्थ-तपश्चरण और निरंजन भावको प्राप्त करनेकी इन्होने प्रेरणा की है।

इस ग्रंथकी एक प्रति नयामन्दिर धर्मपुरा देहलीके शास्त्रभण्डारमे मौजूद है, जो श्रावणशुक्ला ४ सोमवार विक्रम संवत् १८३५ की लिखी हुई है, जैसाकि उसके अन्तकी निम्न पुष्पिकासे प्रकट है:—

"इति श्रीसुप्रभाचार्यविरचितदोहा समाप्ता। संवत् १८३५ वर्षे शाके १७०० मीति श्रावणशुक्ल ४ वार शोमवार लीषते लोकमनपठनार्थं। लिष्यौ आणंदरामजीका-देहरामे संपूर्ण कियो। शुभं भवतु।"

इस ग्रन्थकी आदिमें कोई मंगलाचरण अथवा प्रतिज्ञा-वाक्य नहीं है—ग्रन्थ 'इक्कहिं घरे वधावणउ' से प्रारम्भ होता है— और अन्तमें समाप्तिसूचक पद्य भी नहीं है। यहाँ ग्रन्थके कुछ पद्य नमूनेके तौरपर नीचे दिये जाते हैं, जिससे पाठकोंको उसके भाषा-साहित्य और उक्तियों आदिका कुछ आभास प्राप्त हो सके:—

इक्कहिं घरे वधावणउ, अण्णहिं घरि धाहहिं रोविज्जइ।
परमत्थइं सुप्पहु भणइ, किम वइरायभाउ ण उ किज्जइ॥ १॥

अह घरु करि दाणेण सहुं, अह तउ करि णिग्गंथु।
बिहु चुक्कउ सुप्पहु भणइ, रे जिय इत्थ ण उत्थ॥ ५॥

जिम झाइज्जइ वल्लहु, तिम जइ जिय अरहंतु।
सुप्पहु भणइ ते माणुसहं, सग्गु घरंगणि हंतु॥ ६॥

धणु दीणहं गुणसज्जणहं, मणु धम्महं जो देइ।
तहं पुरिसहं सुप्पहु भणइ, विहि दासत्तु करेइ॥ ३८॥

जसु मणु जीवइ विसयवसु, सो णर मुवा भणेहु।
जसु पुणु सुप्पहु मण मरय, सो णह जियउ भणेहु॥ ६०॥

जसु लग्गउ सुप्पहु भणइ, पियघर-घरणि-पिसाउ।
सो किं कहिउ समायरइ, मित्त णिरंजण-भाउ॥ ६१॥

जिम चिंतिज्जइ घरु घरणि, तिम जइ परउवयारु।
तो णिच्छउ सुप्पहु भणइ, खणि तुट्टइ संसारु॥ ६४॥

सो धरवइ सुप्पहु भणइ, जसु कर दाणि वहंति।
जो पुणु संचे धणु जि धणु, सो णरु संढु भणंति॥ ७६॥

ग्रन्थकी उक्त देहली-प्रतिके साथ कर्तृनाम-विहीन एक छोटीसी संस्कृत टीका भी लगी हुई है जो बहुत कुछ साधारण तथा अपर्याप्त है और कहीं कहीं अर्थके विपर्यासको भी लिये हुए है।

६४. **सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन**—'सन्मतिसूत्र' जैनवाङ्मयमें एक महत्वका गौरवपूर्ण ग्रंथरत्न है, जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें समानरूपसे माना जाता है। श्वेताम्बरोंमें यह 'सम्मतितर्क', 'सम्मतितर्कप्रकरण' तथा 'सम्मतिप्रकरण' जैसे नामोंसे अधिक प्रसिद्ध है, जिनमें 'सन्मति' की जगह 'सम्मति' पद अशुद्ध है और वह प्राकृत 'सम्मइ' पदका गलत संस्कृत रूपान्तर है। पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने, ग्रन्थका गुजराती अनुवाद प्रस्तुत करते हुए, प्रस्तावनामें इस गलतीपर यथेष्ट प्रकाश डाला है और यह बतलाया है कि 'सन्मति' भगवान महावीरका नामान्तर है, जो दिगम्बर-परम्परामे प्राचीनकालसे प्रसिद्ध तथा 'धनञ्जयनाममाला' मे भी उल्लेखित है, ग्रन्थ नामके साथ उसकी योजना होनेसे वह महावीरके सिद्धान्तोंके साथ जहाँ ग्रन्थके सम्बन्धको दर्शाता है वहाँ श्लेषरूपसे श्रेष्ठ मति अर्थका सूचन करता हुआ ग्रन्थकर्ताके योग्य स्थान-को भी व्यक्त करता है और इसलिये औचित्यकी दृष्टिसे 'सम्मति' के स्थानपर 'सन्मति' नाम ही ठीक बैठता है। तदनुसार ही उन्होंने ग्रन्थका नाम 'सन्मति-प्रकरण' प्रकट किया है दिगम्बर-परम्पराके धवलादिक प्राचीन ग्रन्थोंमे यह सन्मतिसूत्र (सम्मइसुत्त) नामसे ही उल्लेखित मिलता है[1] और यह नाम सन्मति-प्रकरण नामसे भी अधिक औचित्य रखता है, क्योंकि इसकी प्रायः प्रत्येक गाथा एक सूत्र है अथवा अनेक सूत्रवाक्योंको साथमे लिये हुए है। (पं० सुखलालजी आदिने भी प्रस्तावना (पृ० ६३) मे इस बातको स्वीकार किया है कि 'सम्पूर्ण सन्मति ग्रंथ सूत्र कहा जाता है और इसकी प्रत्येक गाथाको भी सूत्र कहा गया है।' भावनगरकी श्वेताम्बर सभासे वि० सं० १६६५ में प्रकाशित मूलप्रतिमें भी "श्रीसंमतिसूत्र समाप्तमिति भद्रम्" वाक्यके द्वारा इसे सूत्र नामके साथ ही प्रकट किया है —तर्क अथवा प्रकरण नामके साथ नहीं।)

इसकी गणना जैनशासनके दर्शन-प्रभावक ग्रंथोंमें है। श्वेताम्बरोंके 'जीतकल्पचूर्णि' ग्रंथकी श्रीचन्द्रसूरि-विरचित विषमपदव्याख्या' नामकी टीकामें श्रीअकलङ्कदेवके 'सिद्धि-विनिश्चय' ग्रंथके साथ इस 'सन्मति' ग्रंथका भी दर्शनप्रभावक ग्रंथोंमें नामोल्लेख किया गया है और लिखा है कि 'ऐसे दर्शनप्रभावक शास्त्रोंका अध्ययन करते हुए साधुको अकल्पित प्रतिसेवनाका दोष भी लगे तो उसका कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं है, वह साधु शुद्ध है।' यथा—

"दंसण त्ति—दंसण-पभावगाणि सत्थाणि सिद्धिविणिच्छय-सम्मत्यादि गिण्हतो-ऽसंथरमाणो जं अकप्पियं पडिसेवइ जयणाए तत्थ सो सुद्धोऽप्रायश्चित्त इत्यर्थः[2]।"

इससे प्रथमोल्लेखित सिद्धिविनिश्चयकी तरह यह ग्रंथ भी कितने असाधारण महत्व-का है इसे विज्ञपाठक स्वयं समझ सकते हैं। ऐसे ग्रंथ जैनदर्शनकी प्रतिष्ठाको स्व-पर हृदयोंमे अंकित करने वाले होते हैं। तदनुसार यह ग्रंथ भी अपनी कीर्तिको अक्षुण्ण बनाये हुए है।

इस ग्रंथके तीन विभाग हैं जिन्हें 'काण्ड' संज्ञा दी गई है। प्रथम काण्डको कुछ हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियोंमे 'नयकाण्ड' बतलाया है—लिखा है "नयकंडं सम्मत्त"— और यह ठीक ही है, क्योंकि सारा काण्ड नयके ही विषयको लिये हुए है और उसमें द्रव्या-र्थिक तथा पर्यायार्थिक दो नयोंको मूलाधार बनाकर और यह बतलाकर कि 'तीर्थंकर

---

१ "अणेण सम्मइसुत्तेण सह कथमिदं वक्खाणं ण विरुज्झदे ? इदि ण, तत्थ पज्जायस्स लक्खण खइणो भावब्भुवगमादो।" (धवला १)

"ण च सम्मइसुत्तेण सह विरोहो उजुसुद-णय-विसय-भावणिक्खेवमस्सिदूण तप्पउत्तीदो।" (जयधवला १)

२ श्वेताम्बरोंके निशीथ ग्रन्थकी चूर्णिमें भी ऐसा ही उल्लेख है:—

'दंसणगाही—दंसणणाणप्पभावगाणि सत्थाणि सिद्धिविणिच्छय-संमतिमादि गेण्हंतो असंथरमाणे जं अकप्पिय पडिसेवति जयणाते तत्थ सो सुद्धो अप्रायश्चित्ती भवतीत्यर्थः।" (उद्देशक १)

वचनोंके सामान्य और विशेपरूप प्रस्तारके मूलप्रतिपादक ये ही दो नय हैं—शेप सब नय इन्हींके विकल्प हैं,[1] उन्हींके भेद-प्रभेदों तथा विपयका अच्छा सुन्दर विवेचन और संसूचन किया गया है। दूसरे काण्डको उन प्रतियोंमें 'जीवकाण्ड' बतलाया है—लिखा है "जीव-कंडयं सम्मत्तं"। पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीकी रायमे यह नामकरण ठीक नहीं है, इसके स्थानपर, 'ज्ञानकाण्ड' या 'उपयोगकाण्ड' नाम होना चाहिये; क्योंकि इस काण्डमें, उनके कथनानुसार, जीवतत्त्वकी चर्चा ही नहीं है—पूर्ण तथा मुख्य चर्चा ज्ञानकी है। यह ठीक है कि इस काण्डमे ज्ञानकी चर्चा एक प्रकारसे मुख्य है परन्तु वह दर्शनकी चर्चाको भी साथमे लिये हुए है—उसीसे चर्चाका प्रारंभ है—और ज्ञान-दर्शन दोनो जीवद्रव्यकी पर्याय हैं, जीवद्रव्यसे भिन्न उनकी कहीं कोई सत्ता नहीं, और इसलिये उनकी चर्चाको जीवद्रव्य की ही चर्चा कहा जा सकता है। फिर भी ऐसा नहीं है कि इसमें प्रकटरूपसे जीवतत्त्वकी कोई चर्चा ही न हो—दूसरी गाथामे 'दव्वट्ठिओ वि होऊण दंसणे पज्जवट्ठिओ होई' इत्यादिरूपसे जीवद्रव्यका कथन किया गया है, जिसे पं० सुखलालजी आदिने भी अपने अनुवादमे 'आत्मा दर्शन वखते" इत्यादिरूपसे स्वीकार किया है। अनेक गाथाओंमें कथन-सम्बन्धको लिये हुए सर्वज्ञ, केवली, अर्हन्त तथा जिन जैसे अर्थपदोंका भी प्रयोग है जो जीवके ही विशेप हैं। और अन्तकी 'जीवो अणाइणिहणो' से प्रारंभ होकर 'अण्णे वि य जीवपज्जाया' पर समाप्त होनेवाली सात गाथाओंमे तो जीवका स्पष्ट ही नामोल्लेख-पूर्वक कथन है—वही चर्चाका विपय बना हुआ है। ऐसी स्थितिमे यह कहना समुचित प्रतीत नहीं होता कि 'इस काण्डमे जीवतत्त्वकी चर्चा ही नहीं है' और न 'जीवकाण्ड' इस नामकरणको सर्वथा अनुचित अथवा अयथार्थ ही कहा जा सकता है। कितने ही ग्रंथोंमे ऐसी परिपाटी देखनेमे आती है कि पर्व तथा अधिकारादिके अन्तमे जो विपय चर्चित होता है उसीपरसे उस पर्वादिकका नामकरण किया जाता है,[2] इस दृष्टिसे भी काण्डके अन्तमे चर्चित जीवद्रव्यकी चर्चाके कारण उसे 'जीवकाण्ड' कहना अनुचित नहीं कहा जा सकता। अब रही तीसरे काण्डकी बात, उसे कोई नाम दिया हुआ नहीं मिलता। जिस किसीने दो काण्डोंका नामकरण किया है उसने तीसरे काण्डका भी नामकरण जरूर किया होगा, सभव है खोज करते हुए किसी प्राचीन प्रतिपरसे वह उपलब्ध हो जाए। डाक्टर पी० एल० वैद्य एम० ए० ने, न्यायावतारकी प्रस्तावना (Introduction) मे, इस काण्डका नाम असंदिग्धरूपसे 'अनेकान्तवादकाण्ड' प्रकट किया है। मालूम नहीं यह नाम उन्हें किस प्रति परसे उपलब्ध हुआ है। काण्डके अन्तमे चर्चित विपयादिककी दृष्टिसे यह नाम भी ठीक हो सकता है। यह काण्ड अनेकान्तदृष्टिको लेकर अधिकाँशमे सामान्य-विशेषरूपसे अर्थकी प्ररूपणा और विवेचनाको लिये हुए है, और इसलिये इसका नाम 'सामान्य-विशेपकाण्ड' अथवा 'द्रव्य-पर्याय-काण्ड' जैसा भी कोई हो सकता है। पं० सुखलालजी और पं० बेचर-दासजीने इसे 'ज्ञेय-काण्ड' सूचित किया है, जो पूर्वकाण्डको 'ज्ञानकाण्ड' नाम देने और दोनों काण्डोंके नामोंमे श्रीकुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीत प्रवचनसारके ज्ञान ज्ञेयाधिकारनामोंके साथ समानता लानेकी दृष्टिसे सम्बद्ध जान पड़ता है।

इस ग्रंथकी गाथा-संख्या ५४, ४३, ७० के क्रमसे कुल १६७ है। परन्तु पं० सुखलाल-जी और प० बेचरदासजी उसे अब १६६ मानते हैं; क्योंकि तीसरे काण्डमे अन्तिम गाथाके पूर्व जो निम्न गाथा लिखित तथा मुद्रित मूलप्रतियोंमें पाई जाती है उसे वे इसलिये बादको प्रक्षिप्त हुई समझते हैं कि उसपर अभयदेवसूरिकी टीका नहीं है:—

---

१ तित्थयर-वयण-संगह-विसेस-पत्थारमूलवागरणी। दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ य सेसा वियप्पासिं ॥ ३ ॥

२ जैसे जिनसेनकृत हरिवंशपुराणके तृतीय सर्गका नाम 'श्रेणिकप्रश्नवर्णन', जब कि प्रश्नके पूर्वमें वीरके विहारादिका और तत्त्वोपदेशका कितना ही विशेष वर्णन है।

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स ॥ ६६ ॥

इसमें बतलाया है कि 'जिसके विना लोकका व्यवहार भी सर्वथा बन नहीं सकता उस लोकके अद्वितीय (असाधारण) गुरु अनेकान्तवादको नमस्कार हो।' इस तरह जो अनेकान्तवाद इस सारे ग्रंथकी आधार-शिला है और जिसपर उसके कथनोंकी ही पूरी प्राण-प्रतिष्ठा ही अवलम्बित नहीं है बल्कि उस जिनवचन, जैनागम अथवा जैनशासनकी भी प्राण-प्रतिष्ठा अवलम्बित है जिसकी अगली (अन्तिम) गाथामें मंगल-कामना की गई है और ग्रंथकी पहली (आदिम) गाथामें जिसे 'सिद्धशासन' घोषित किया गया है, उसीकी गौरव-गरिमाको इस गाथामे अच्छे युक्तिपुरस्सर ढंगसे प्रदर्शित किया गया है। और इस लिये यह गाथा अपनी कथनशैली और कुशल-साहित्य-योजनापरसे ग्रंथका अंग होनेके योग्य जान पड़ती है तथा ग्रंथकी अन्त्य मंगल-कारिका मालूम होती है। इसपर एकमात्र अमुक टीकाके न होनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि वह मूलकारके द्वारा योजित न हुई होगी, क्योंकि दूसरे ग्रंथोंकी कुछ टीकाए ऐसी भी पाई जाती हैं जिनमेसे एक टीकामे कुछ पद्य मूलरूपमें टीका-सहित हैं तो दूसरीमे वे नहीं पाये जाते[1] और इसका कारण प्रायः टीकाकारको ऐसी मूल प्रतिका ही उपलब्ध होना कहा जा सकता है जिसमे वे पद्य न पाये जाते हों। दिगम्बराचार्य सुमति (सन्मति) देवकी टीका भी इस ग्रंथपर बनी है, जिसका उल्लेख वादिराजने अपने पार्श्वनाथचरित (शक सं० ६४७) के निम्न पद्यमे किया है :—

नमः सन्मतये तस्मै भव-कूप-निपातिनाम्।
सन्मतिर्विवृता येन सुखधाम-प्रवेशिनी ॥

यह टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई—खोजका कोई खास प्रयत्न भी नहीं हो सका। इसके सामने आनेपर उक्त गाथा तथा और भी अनेक बातोंपर प्रकाश पड़ सकता है, क्योंकि यह टीका सुमतिदेवकी कृति होनेसे ११वीं शताब्दीके श्वेताम्बरीय आचार्य अभयदेवकी टीकासे कोई तीन शताब्दी पहलेकी बनी हुई होनी चाहिये। श्वेताम्बराचार्य मल्लवादीकी भी एक टीका इस ग्रंथपर पहले बनी है, जो आज उपलब्ध नहीं है और जिसका उल्लेख हरिभद्र तथा उपाध्याय यशोविजयके ग्रंथोमें मिलता है[2]।

इस ग्रंथमे, विचारको दृष्टि प्रदान करनेके लिये, प्रारम्भसे ही द्रव्यार्थिक (द्रव्यास्तिक) और पर्यायार्थिक (पर्यायास्तिक) दो मूल नयोंको लेकर नयका जो विषय उठाया गया है वह प्रकारान्तरसे दूसरे तथा तीसरे काण्डमे भी चलता रहा है और उसके द्वारा नयवाद-पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यहाँ नयका थोड़ा-सा कथन नमूनेके तौरपर प्रस्तुत किया जाता है, जिससे पाठकोंको इस विषयकी कुछ झाँकी मिल सके :—

प्रथम काण्डमे दोनों नयोंके सामान्य-विशेषविषयको मिश्रित दिखलाकर उस मिश्रितपनाकी चर्चाका उपसंहार करते हुए लिखा है—

दव्वट्ठिओ त्ति तम्हा णत्थि णओ नियम सुद्धजाईओ।
ण य पज्जवट्ठिओ णाम कोई भयणाय उ विसेसो ॥ ६ ॥

---

१ जैसे समयसारादि ग्रन्थोंकी अमृतचन्द्रसूरिकृत तथा जयसेनाचार्यकृत टीकाएँ, जिनमें कतिपय गाथाओंकी न्यूनाधिकता पाई जाती है।

२ "उक्तं च वादिमुख्येन श्रीमल्लवादिना सम्मतौ" (अनेकान्तजयपताका)
"इहार्थे कोटिशा भङ्गा निदिष्टा मल्लवादिना।
मूलसम्मति-टीकायामिदं दिङ्मात्रदर्शनम् ॥" —(अष्टसहस्री–टिप्पण) स० प्र० पृ०४०

'अतः कोई द्रव्यार्थिक नय ऐसा नहीं जो नियमसे शुद्धजातीय हो—अपने प्रतिपक्षी पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा न रखता हुआ उसके विषय-स्पर्शसे मुक्त हो। इसी तरह पर्यायार्थिक नय भी कोई ऐसा नहीं जो शुद्धजातीय हो—अपने विपक्षी द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा न रखता हुआ उसके विषय-स्पर्शसे रहित हो। विवक्षाको लेकर ही दोनोंका भेद हैं—विवक्षा मुख्य-गौणके भावको लिये हुए होती है द्रव्यार्थिकमें द्रव्य-सामान्य मुख्य और पर्याय-विशेष गौण होता है और पर्यायार्थिकमे विशेष मुख्य तथा सामान्यगौण होता है।'

इसके बाद बतलाया है कि—'पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे द्रव्यार्थिकनयका वक्तव्य (सामान्य) नियमसे अवस्तु है। इसी तरह द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमे पर्यायार्थिकनयका वक्तव्य (विशेष) अवस्तु है। पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे सर्व पदार्थ नियमसे उत्पन्न होते हैं और नाशको प्राप्त होते हैं। द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमे न कोई पदार्थ उत्पन्न होता है और न नाशको प्राप्त होता है। द्रव्य पर्याय (उत्पाद-व्यय) के विना और पर्याय द्रव्य (ध्रौव्य) के विना नहीं होते; क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनो द्रव्य-सत्का अद्वितीय लक्षण हैं[१]। ये तीनों एक दूसरेके साथ मिलकर ही रहते हैं, अलग-अलगरूपमे ये द्रव्य (सत) के कोई लक्षण नहीं होते और इसलिये दोनो मूलनय अलग-अलगरूपमे—एक दूसरेकी अपेक्षा न रखते हुए—मिथ्यादृष्टि हैं। तीसरा कोई मूलनय नहीं है[२] और ऐसा भी नहीं कि इन दोनों नयोमें यथार्थपना न समाता हो—वस्तुके यथार्थ स्वरूपको पूर्णतः प्रतिपादन करनेमे ये असमर्थ हों—; क्योंकि दोनों एकान्त (मिथ्यादृष्टियाँ) अपेक्षाविशेषको लेकर ग्रहण किये जाते ही अनेकान्त (सम्यग्दृष्टि) बन जाते हैं। अर्थात् दोनों नयोंमेंसे जब कोई भी नय एक दूसरेकी अपेक्षा न रखता हुआ अपने ही विषयको सत्‌रूप प्रतिपादन करनेका आग्रह करता है तब वह अपने द्वारा ग्राह्य वस्तुके एक अंशमे पूर्णताका माननेवाला होनेसे मिथ्या है और जब वह अपने प्रतिपक्षी नयकी अपेक्षा रखता हुआ प्रवर्तता है—उसके विषयका निरसन न करता हुआ तटस्थरूपसे अपने विषय (वक्तव्य) का प्रतिपादन करता है—तब वह अपने द्वारा ग्राह्य वस्तुके एक अंशको अंशरूपमे ही (पूर्णरूपमे नहीं) माननेके कारण सम्यक् व्यपदेशको प्राप्त होता है। इस सब आशयकी पाँच गाथाएँ निम्न प्रकार हैं—

दव्वट्ठिय-वत्तव्वं अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स।
तह पज्जवत्थु अवत्थुमेव दव्वट्ठियणयस्स॥ १०॥
उप्पज्जंति वियंति य भावा पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सया अणुप्पण्णमविणट्ठं॥ ११॥
दव्वं पज्जव-विउयं दव्व-विउत्ता य पज्जवा णत्थि।
उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा हंदि दवियलक्खणं एयं॥ १२॥
एए पुण संगहओ पाडिक्कमलक्खणं दुवेण्हं पि।
तम्हा मिच्छादिट्ठी पत्तेयं दो वि मूल-णया॥ १३॥

---

१ "पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जवा णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति॥ १-१२॥"
—पञ्चास्तिकाये, श्रीकुन्दकुन्दः।

सद्द्रव्यलक्षणम्॥ २९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्॥ ३०॥ —तत्त्वार्थसूत्र अ० ५।

२ तीसरे काण्डमें गुणार्थिक (गुणास्तिक) नयकी कल्पनाको उठाकर स्वयं उसका निरसन किया गया है (गा० ९ से १५)।

ण य तइयो अत्थि णओ ण य सम्मत्तं ण तेसु पडिपुण्णं ।
जेण दुवे एगंता विभज्जमाणा अणेगंतो ॥ १४ ॥

इन गाथाओंके अनन्तर उत्तर नयोंकी चर्चा करते हुए और उन्हें भी मूलनयोंके समान दुर्नय तथा सुनय प्रतिपादन करते हुए और यह बतलाते हुए कि किसी भी नयका एकमात्र पक्ष लेनेपर संसार, सुख, दुःख, बन्ध और मोक्षकी कोई व्यवस्था नहीं बन सकती, सभी नयोंके मिथ्या तथा सम्यक् रूपको स्पष्ट करते हुए लिखा है—

तम्हा सव्वे वि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।
अण्णोण्णणिस्सिआ उण हवंति सम्मत्तसब्भावा ॥ २१ ॥

'अतः सभी नय—चाहे वे मूल, उत्तर या उत्तरोत्तर कोई भी नय क्यों न हों—जो एकमात्र अपने ही पक्षके साथ प्रतिवद्ध हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं—वस्तुको यथार्थरूपसे देखने-प्रतिपादन करनेमें असमर्थ हैं। परन्तु जो नय परस्परमें अपेक्षाको लिये हुए प्रवर्तते हैं वे सब सम्यग्दृष्टि हैं—वस्तुको यथार्थरूपसे देखने-प्रतिपादन करनेमें समर्थ हैं।'

तीसरे काण्डमें, नयवादकी चर्चाको एक दूसरे ही ढगसे उठाते हुए, नयवादके परिशुद्ध और अपरिशुद्ध ऐसे दो भेद सूचित किये हैं, जिनमें परिशुद्ध नयवादको आगममात्र अर्थका—केवल श्रुतप्रमाणके विषयका—साधक बतलाया है और यह ठीक ही है; क्योंकि परिशुद्धनयवाद सापेक्षनयवाद होनेसे अपने पक्षका—अंशोंका—प्रतिपादन करता हुआ परपक्षका—दूसरे अंशोंका—निराकरण नहीं करता और इसलिये दूसरे नयवादके साथ विरोध न रखनेके कारण अन्तको श्रुतप्रमाणके समग्र विषयका ही साधक बनता है। और अपरिशुद्ध नयवादको 'दुर्निक्षिप्त' विशेषणके द्वारा उल्लेखित करते हुए स्वपक्ष तथा परपक्ष दोनोंका विघातक लिखा है और यह भी ठीक ही है, क्योंकि वह निरपेक्षनयवाद होनेसे एकमात्र अपने ही पक्षका प्रतिपादन करता हुआ अपनेसे भिन्न पक्षका सर्वथा निराकरण करता है—विरोधवृत्ति होनेसे उसके द्वारा श्रुतप्रमाणका कोई भी विषय नहीं सधता और इस तरह वह अपना भी निराकरण कर बैठता है। दूसरे शब्दोंमे यो कहना चाहिये कि वस्तुका पूर्णरूप अनेक सापेक्ष अंशो—धर्मोंसे निर्मित है जो परस्पर अविनाभाव-सम्बन्धको लिये हुए है, एकके अभावमें दूसरेका अस्तित्व नहीं बनता, और इसलिये जो नयवाद परपक्षका सर्वथा निषेध करता है वह अपना भी निषेधक होता है—परके अभावमें अपने स्वरूपको किसी तरह भी सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकता।

नयवादके इन भेदों और उनके स्वरूपनिर्देशके अनन्तर बतलाया है कि 'जितने वचनमार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं और जितने (अपरिशुद्ध अथवा परस्परनिरपेक्ष एवं विरोधी) नयवाद हैं उतने ही परसमय—जैनेतरदर्शन—हैं। उन दर्शनोमे कपिलका सांख्यदर्शन द्रव्यार्थिकनयका वक्तव्य है। शुद्धोदनके पुत्र बुद्धका दर्शन परिशुद्ध पर्यायनय का विकल्प है। उलूक अर्थात् कणादने अपना शास्त्र (वैशेषिक दर्शन) यद्यपि दोनों नयोंके द्वारा प्ररूपित किया है फिर भी वह मिथ्यात्व है—अप्रमाण है, क्योंकि ये दोनो नयदृष्टियाँ उक्त दर्शनमे अपने अपने विषयकी प्रधानताके लिये परस्परमे एक दूसरेकी कोई अपेक्षा नही रखतीं। इस विषयमे सम्बन्ध रखनेवाली गाथाएं निम्न प्रकार हैं—

परिसुद्धो णयवाओ आगममेत्तत्थ साधको होइ ।
सो चेव दुण्णिगिण्णो दोण्णि वि पक्खे विधम्मेइ ॥ ४६ ॥
जावइया वयणवहा तावइया चेव होंति णयवाया ।

जावइया णयवाया तावइया चेव परसमया ॥ ४७ ॥
जं काविलं दरिसणं एयं दव्वट्ठियस्स वत्तव्वं ।
सुद्धोअण-तणअस्स उ परिसुद्धो पज्जवविअप्पो ॥ ४८ ॥
दोहि वि णएहि णीयं सत्थमुलूएण तह वि मिच्छत्तं ।
जं सविसअप्पहाणत्तणेण अण्णोण्णणिरवेक्खा ॥ ४९ ॥

इनके अनन्तर निम्न दो गाथाओंमे यह प्रतिपादन किया है कि 'सांख्योंके सद्वाद पक्षमें बौद्ध और वैशेपिक जन जो दोप देते हैं तथा बौद्धों और वैशेपिकोंके असद्वाद पक्षमे सांख्य जन जो दोप देते है वे सब सत्य हैं—सर्वथा एकान्तवादमे वैस दोष आते ही हैं। ये दोनों सद्वाद और असद्वाद दृष्टियाँ यदि एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हुए संयोजित होजायँ—समन्वयपूर्वक अनेकान्तदृष्टिमे परिणत हो जायँ—तो सर्वोत्तम सम्यग्दर्शन बनता है; क्योंकि ये सत्-असत्रूप दोनो दृष्टियाँ अलग अलग संसारके दुःखसे छुटकारा दिलानेमें समर्थ नहीं है—दोनोके सापेक्ष संयोगसे ही एक-दूसरेकी कमी दूर होकर संसारके दुःखोंसे शान्ति मिल सकती है :—

जे संतवाय-दोसे सक्कोलूया भणंति संखाणं ।
संखा य असव्वाए तेसि सव्वे वि ते सच्चा ॥ ५० ॥
ते उ भयणोवणीया सम्मद्दंसणमणुत्तरं होंति ।
जं भव-दुक्ख-विमोक्खं दो वि ण पूरेंति पाडिक्कं ॥ ५१ ॥

इस सब कथनपरसे मिथ्यादर्शनो और सम्यग्दर्शनका तत्त्व सहज ही समझमें आजाता है और यह मालूम हो जाता है कि कैसे सभी मिथ्यादर्शन मिलकर सम्यग्दर्शनके रूपमें परिणत हो जाते हैं। मिथ्यादर्शन अथवा जैनेतरदर्शन जब तक अपने अपने वक्तव्यके प्रतिपादनमे एकान्तताको अपनाकर परविरोधका लक्ष्य रखते हैं तब तक वे सम्यग्दर्शनमे परिणत नहीं होते, और जब विरोधका लक्ष्य छोड़कर पारस्परिक अपेक्षाको लिये हुए समन्वयकी दृष्टिको अपनाते हैं तभी सम्यग्दर्शनमे परिणत हो जाते हैं और जैनदर्शन कहलानेके योग्य होते हैं। जैनदर्शन अपने स्याद्वादन्याय-द्वारा समन्वयकी दृष्टिको लिये हुए है—समन्वय ही उसका नियामक तत्त्व है, न कि विरोध—और इसलिये सभी मिथ्यादर्शन अपने अपने विरोधको भुलाकर उसमें समा जाते है। इसीसे ग्रन्थकी अन्तिम गाथामे जिनवचनरूप जिनशासन अथवा जैनदर्शनकी मंगलकामना करते हुए उसे 'मिथ्यादर्शनोंका समूहमय' बतलाया है। वह गाथा इस प्रकार है:—

भद्दं मिच्छादंसण-समूहमइयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स ॥ ७० ॥

इसमें जैनदर्शन (शासन) के तीन खास विशेषणोंका उल्लेख किया गया है—पहला विशेषण मिथ्यादर्शनसमूहमय, दूसरा अमृतसार और तीसरा संविग्नसुखाधिगम्य है। मिथ्यादर्शनोंका समूह होते हुए भी वह मिथ्यात्वरूप नहीं है, यही उसकी सर्वोपरि विशेषता है और यह विशेषता उसके सापेक्ष नयवादमे संनिहित है—सापेक्ष नय मिथ्या नहीं होते, निरपेक्ष नय ही मिथ्या होते हैं[१]। जब सारी विरोधी दृष्टियाँ एकत्र स्थान पाती हैं तब फिर उनमे विरोध नहीं रहता और वे सहज ही कार्यसाधक बन जाती हैं। इसीपरसे दूसरा विशे-

१ मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्तताऽस्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्याः सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥ १०८ ॥—देवागमे, स्वामिसमन्तभद्रः।

पण ठीक घटित होता है, जिसमे उसे अमृतका अर्थात् भवदुःखके अभावरूप अविनाशी मोक्षका प्रदान करनेवाला बतलाया है; क्योंकि वह सुख अथवा भवदुःखविनाश मिथ्यादर्शनोंसे प्राप्त नहीं होता, इसे हम ५१वीं गाथासे जान चुके हैं। तीसरे विशेषणके द्वारा यह सुझाया गया है कि जो लोग ससारके दुःखों-क्लेशोंसे उद्विग्न होकर सवेगको प्राप्त हुए हैं—सच्चे मुमुक्षु बने हैं—उनके लिये जैनदर्शन अथवा जिनशासन सुखसे समझमे आने योग्य है—कोई कठिन नहीं है। इससे पहले ६४वीं गाथामे 'अत्थगई उण णयवायगहणलीणा दुरभिगम्मा' वाक्यके द्वारा सूत्रोकी जिस अर्थगतिको नयवादके गहन-वनमे लीन और दुरभिगम्य बतलाया था उसीको ऐसे अधिकारियोके लिये यहाँ सुगम घोषित किया गया है, यह सब अनेकान्तदृष्टिकी महिमा है। अपने ऐसे गुणोंके कारण ही जिनवचन भगवत्पदको प्राप्त है—पूज्य है।

ग्रंथकी अन्तिम गाथामे जिस प्रकार जिनशासनका स्मरण किया गया है उसी प्रकार वह आदिम गाथामें भी किया गया है। आदिम गाथामे किन विशेषणोंके साथ स्मरण किया गया है यह भी पाठकोके जानने योग्य है और इसलिये उस गाथाको भी यहाँ उद्धृत किया जाता है—

सिद्धं सिद्धत्थाणं ठाणमणोवमसुहं उवगयाणं।
कुसमय-विसासणं सासणं जिणाणं भव-जिणाणं ॥ १ ॥

इसमे भवको जीतनेवाले जिनों-अर्हन्तोंके शासन-आगमके चार विशेषण दिये गये हैं—१ सिद्ध, २ सिद्धार्थोंका स्थान, ३ शरणागतोंके लिये अनुपम सुखस्वरूप, ४ कुसमयों—एकान्तवादरूप मिथ्यामतोंका निवारक। प्रथम विशेषणके द्वारा यह प्रकट किया गया है कि जैनशासन अपने ही गुणोंसे आप प्रतिष्ठित है। उसके द्वारा प्रतिपादित सब पदार्थ प्रमाणसिद्ध हैं—कल्पित नहीं हैं—यह दूसरे विशेषणका अभिप्राय है और वह प्रथम विशेषण सिद्धत्वका प्रधान कारण भी है। तीसरा विशेषण बहुत कुछ स्पष्ट है और उसके द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि जो लोग वास्तवमे जैनशासनका आश्रय लेते हैं उन्हें अनुपम मोक्ष-सुख तककी प्राप्ति होती है। चौथा विशेषण यह बतलाता है कि जैनशासन उन सब कुशासनों—मिथ्यादर्शनोंके गर्वको चूर-चूर करनेकी शक्तिसे सम्पन्न है जो सर्वथा एकान्तवादका आश्रय लेकर शासनारूढ बने हुए हैं और मिथ्यातत्त्वोंके प्ररूपण-द्वारा जगतमें दुःखोंका जाल फैलाये हुए हैं।

इस तरह आदि-अन्तकी दोनो गाथाओंमे जिनशासन अथवा जिनवचन (जैनागम) के लिये जिन विशेषणोंका प्रयोग किया गया है उनसे इस शासन (दर्शन) का असाधारण महत्त्व और माहात्म्य ख्यापित होता है। और यह केवल कहनेकी ही बात नहीं है बल्कि सारे ग्रथमे इसे प्रदर्शित करके बतलाया गया है। स्वामी समन्तभद्रके शब्दोंमे 'अज्ञान-अन्धकारकी व्याप्ति (प्रसार) को जैसे भी बने दूर करके जिनशासनके माहात्म्यको जो प्रकाशित करना है उसीका नाम प्रभावना[१] है। यह ग्रंथ अपने विषय-वर्णन और विवेचनादिके द्वारा इस प्रभावनाका बहुत कुछ साधक है और इसीलिये इसकी भी गणना प्रभावक-ग्रंथोंमे की गई है। यह ग्रथ जैनदर्शनका अध्ययन करनेवालों और जैनदर्शनसे जैनेतर दर्शनोंके भेदको ठीक अनुभव करनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये बड़े कामकी चीज है और उनके द्वारा खास मनोयोगके साथ पढे जाने तथा मनन किये जानेके योग्य है। इसमे अनेकान्तके अगस्वरूप जिस नयवादकी प्रमुख चर्चा है और जिसे एक प्रकारसे 'दुरभिगम्य गहन-वन' बत-

---

१ "अज्ञान-तिमिर-व्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिन-शासन-माहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ १८ ॥"—रत्नकरण्डश्रा०।

लाया गया है—अमृतचन्द्रसूरिने भी जिसे 'गहन' और 'दुरासद' लिखा है[1]—उसपर जैन वाङ्मयमे कितने ही प्रकरण अथवा 'नयचक्र' जैसे स्वतंत्र ग्रंथ भी निर्मित है, उनका साथ मे अध्ययन अथवा पूर्व-परिचय भी इस ग्रंथके समुचित अध्ययनमे सहायक है। वास्तवमें यह ग्रंथ सभी तत्त्वजिज्ञासुओं एवं आत्महितैषियोंके लिये उपयोगी है। अभी तक इसका हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ है। वीरसेवामन्दिरका विचार उसे प्रस्तुत करनेका है।

(क) ग्रंथकार सिद्धसेन और उनकी दूसरी कृतियाँ—

इस 'सन्मति' ग्रंथके कर्ता आचार्य सिद्धसेन हैं, इसमे किसीको भी कोई विवाद नहीं है। अनेक ग्रंथोमें ग्रंथनामके साथ सिद्धसेनका नाम उल्लेखित है और इस ग्रन्थके वाक्य भी सिद्धसेन नामके साथ उद्धृत मिलते हैं; जैसे जयधवलामे आचार्य वीरसेनने 'णामट्ठवणा दविय' नामकी छठी गाथाको 'उक्तं च सिद्धसेणेण' इस वाक्यके साथ उद्धृत किया है और पंचवस्तुमे आचार्य हरिभद्रने "आयरियसिद्धसेणेण सम्मईए पइट्ठिअजसेण" वाक्य के द्वारा 'सन्मति' को सिद्धसेनकी कृतिरूपमें निर्दिष्ट किया है, साथ ही 'कालो सहाव णियई' नामकी एक गाथा भी उसकी उद्धृत की है। परन्तु ये सिद्धसेन कौनसे हैं—किस विशेष परिचयको लिये हुए हैं? कौनसे सम्प्रदाय अथवा आम्नायसे सम्बन्ध रखते हैं?, इनके गुरु कौन थे?, इनकी दूसरी कृतियाँ कौन-सी हैं? और इनका समय क्या है? ये सब बातें ऐसी हैं जो विवादका विषय जरूर हैं। क्योंकि जैनसमाजमे सिद्धसेन नामके अनेक आचार्य और प्रखर तार्किक विद्वान् भी होगये हैं और इस ग्रंथमें ग्रंथकारने अपना कोई परिचय दिया नहीं, न रचनाकाल ही दिया है—ग्रंथकी आदिम गाथामें प्रयुक्त हुए 'सिद्धं' पदके द्वारा श्लेषरूपमे अपने नामका सूचनमात्र किया है, इतना ही समझा जा सकता है। कोई प्रशस्ति भी किसी दूसरे विद्वान्के द्वारा निर्मित होकर ग्रंथके अन्तमे लगी हुई नहीं है। दूसरे जिन ग्रंथों—खासकर द्वात्रिंशिकाओं तथा न्यायावतार—को इन्हीं आचार्यकी कृति समझा जाता और प्रतिपादन किया जाता है उनमे भी कोई परिचय-पद्य तथा प्रशस्ति नहीं है और न कोई ऐसा स्पष्ट प्रमाण अथवा युक्तिवाद ही सामने लाया गया है जिससे उन सब ग्रंथोंको एक ही सिद्धसेनकृत माना जा सके। और इसलिये अधिकाँशमें कल्पनाओं तथा कुछ भ्रान्त धारणाओंके आधारपर ही विद्वान् लोग उक्त बातोंके निर्णय तथा प्रतिपादनमें प्रवृत्त होते रहे हैं, इसीसे कोई भी ठीक निर्णय अभी तक नहीं हो पाया—वे विवादापन्न ही चली जाती है और सिद्धसेनके विषयमे जो भी परिचय-लेख लिखे गये हैं वे सब प्रायः खिचड़ी बने हुए हैं और कितनी ही गलतफहमियोंको जन्म दे रहे तथा प्रचारमें ला रहे हैं। अतः इस विषयमे गहरे अनुसन्धानके साथ गम्भीर विचारकी जरूरत है और उसीका यहाँपर प्रयत्न किया जाता है।

(दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें सिद्धसेनके नामपर जो ग्रंथ चढ़े हुए हैं उनमेसे कितने ही ग्रंथ तो ऐसे हैं जो निश्चितरूपमें दूसरे उत्तरवर्ती सिद्धसेनोंकी कृतियाँ हैं; जैसे १ जीतकल्पचूर्णि, २ तत्त्वार्थाधिगमसूत्रकी टीका, ३ प्रवचनसारोद्धारकी वृत्ति, ४ एकविंशतिस्थानप्रकरण (प्रा०) और ५ सिद्धिश्रेयसमुदय (शक्रस्तव) नामका मंत्रगर्भित गद्यस्तोत्र। कुछ ग्रंथ ऐसे हैं जिनका सिद्धसेन नामके साथ उल्लेख तो मिलता है परन्तु आज वे उपलब्ध नहीं हैं, जैसे १ बृहत् षड्दर्शनसमुच्चय[2] (जैनग्रंथावली पृ० ६४), २ विषोग्रग्रहशमन-

---

१ देखो, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय—"इति विविधभङ्ग-गहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्" । (५८)
"अत्यन्तनिशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रम्" । (५९)

२ हो सकता है कि यह ग्रन्थ हरिभद्रसूरिका 'षड्दर्शनसमुच्चय' ही हो और किसी गलतीसे सूरतके उन सेठ भगवानदास कल्याणदासकी प्राइवेट रिपोर्टमें, जो पिटर्सन साहबकी नौकरीमें थे, दर्ज होगया हो,

विधि, जिसका उल्लेख उग्रादित्याचार्य (विक्रम ६वीं शताब्दी) के 'कल्याणकारक' वैद्यक ग्रंथ (२०-८५) मे पाया जाता है[1] और ३ नीतिसारपुराण, जिसका उल्लेख केशवसेनसूरि-(वि० सं० १६८८) कृत कर्णामृतपुराणके निम्न पद्योमे पाया जाता है और जिनमें उसकी श्लोकसंख्या भी १५६३०० दी हुई है—

> सिद्धोक्त-नीतिसारादिपुराणोद्भूत-सन्मतिं ।
> विधास्यामि प्रसन्नार्थं ग्रन्थं सन्दर्भगर्भितम् ॥ १६ ॥
> खखाग्निरसबाणेन्दु(१५६३००)श्लोकसंख्या प्रसूत्रिता ।
> नीतिसारपुराणस्य सिद्धसेनादिसूरिभिः ॥ २० ॥

उपलब्ध न होनेके कारण ये तीनों ग्रन्थ विचारमे कोई सहायक नहीं हो सकते । इन आठ ग्रन्थोंके अलावा चार ग्रन्थ और हैं—१ द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, २ प्रस्तुत सन्मतिसूत्र, ३ न्यायावतार और ४ कल्याणमन्दिर । 'कल्याणमन्दिर' नामका स्तोत्र ऐसा है जिसे श्वेताम्बर सम्प्रदायमे सिद्धसेनदिवाकरकी कृति समझा और माना जाता है; जबकि दिगम्बर परम्परामे वह स्तोत्रके अन्तिम पद्यमे सूचित किये हुए 'कुमुदचन्द्र' नामके अनुसार कुमुचन्द्राचार्यकी कृति माना जाता है। इस विषयमे श्वेताम्बर-सम्प्रदायका यह कहना है कि 'सिद्धसेनका नाम दीक्षाके समय 'कुमुदचन्द्र' रक्खा गया था, आचार्यपदके समय उनका पुराना नाम ही उन्हें दे दिया गया था, ऐसा प्रभाचन्द्रसूरिके प्रभावकचरित (सं० १३३४) से जाना जाता है और इसलिये कल्याणमन्दिरमे प्रयुक्त हुआ 'कुमुदचन्द्र' नाम सिद्धसेनका ही नामान्तर है ।' दिगम्बर समाज इसे पीछेकी कल्पना और एक दिगम्बर कृतिको हथियानेकी योजनामात्र समझता है; क्योंकि प्रभावकचरितसे पहले सिद्धसेन-विषयक जो दो प्रबन्ध लिखे गये हैं उनमें कुमुदचन्द्र नामका कोई उल्लेख नहीं है—पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने अपनी प्रस्तावनामें भी इस बातको व्यक्त किया है । बादके बने हुए मेरुतुङ्गाचार्यके प्रबन्धचिन्तामणि (सं० १३६१) मे और जिनप्रभसूरिके विविधतीर्थकल्प (सं० १३८६) में भी उसे अपनाया नहीं गया है । राजशेखरके प्रबन्धकोश अपरनाम चतुर्विंशतिप्रबन्ध (स० १४०५) मे कुमुदचद्र नामको अपनाया जरूर गया है परन्तु प्रभावकचरितके विरुद्ध कल्याणमन्दिरस्तोत्रको 'पार्श्वनाथद्वात्रिंशिका' के रूपमे व्यक्त किया है और साथ ही यह भी लिखा है कि वीरकी द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका स्तुतिसे जब कोई चमत्कार देखनेमे नहीं आया तब यह पार्श्वनाथद्वात्रिंशिका रची गई है, जिसके ११वें से नहीं किन्तु प्रथम पद्यसे ही चमत्कारका प्रारम्भ हो गया[2] । ऐसी स्थितिमे पार्श्वनाथद्वात्रिंशिकाके रूपमे जो कल्याणमन्दिरस्तोत्र रचा गया वह ३२ पद्योंका कोई दूसरा ही होना चाहिये, न कि वर्तमान कल्याणमन्दिरस्तोत्र, जिसकी रचना ४४ पद्योंमे हुई है और इससे दोनो कुमुदचंद्र भी भिन्न होने चाहियें । इसके सिवाय, वर्तमान कल्याणमन्दिरस्तोत्रमे 'प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषात्' इत्यादि तीन पद्य ऐसे हैं जो पार्श्वनाथको दैत्यकृत उपसर्गसे युक्त प्रकट करते हैं, जो दिगम्बर मान्यताके अनुकूल और श्वेताम्बर मान्यताके प्रतिकूल हैं; क्योंकि श्वेताम्बरीय

जिसपरसे जैनग्रन्थावलीमें लिया गया है ? क्योंकि इसके साथमें जिस टीकाका उल्लेख है उसे 'गुणरत्न' की लिखा है और हरिभद्रके षड्दर्शनसमुच्चायपर भी गुणरत्नकी टीका है ।

१ "शालाक्य पूज्यपाद-प्रकटितमधिकं शल्यतंत्रं च पात्रस्वामि-प्रोक्तं विषोग्रग्रहशमनविधिः सिद्धसेनैः प्रसिद्धैः ।"

२ "इत्यादिश्रीवीरद्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता । परं तस्मात्तादृशं चमत्कारमनालोक्य पश्चात् श्रीपार्श्वनाथद्वात्रिंशिकामभिकर्तुं कल्याणमन्दिरस्तवं चक्रे प्रथमश्लोके एव प्रासादस्थितात् शिखिशिखाग्रादिव लिङ्गाद् धूमवर्तिरुदतिष्ठत् ।"—पाटनकी हेमचन्द्राचार्य-ग्रन्थावलीमें प्रकाशित प्रबन्धकोश ।

आचाराङ्ग-निर्युक्तिमें वद्र्धमानको छोडकर शेष २३ तीर्थंकरोंके तपःकर्मको निरुपसर्ग वर्णित किया है[1]। इससे भी प्रस्तुत कल्याणमन्दिर दिगम्बर कृति होनी चाहिये।

प्रमुख श्वेताम्बर विद्वान् पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने ग्रंथकी गुजराती प्रस्तावनामें[2] विविधतीर्थकल्पको छोडकर शेष पाँच प्रबन्धोका सिद्धसेन-विषयक सार बहुपरिश्रमके साथ दिया है और उसमें कितनी ही परस्पर विरोधी तथा मौलिक मतभेदकी बातोंका भी उल्लेख किया है और साथ ही यह निष्कर्ष निकाला है कि 'सिद्धसेन दिवाकर का नाम मूलमें कुमुदचद्र नहीं था, होता तो दिवाकर-विशेषणकी तरह यह श्रुतिप्रिय नाम भी किसी-न-किसी प्राचीन ग्रंथमें सिद्धसेनकी निश्चित कृति अथवा उसके उद्धृत वाक्योंके साथ जरूर उल्लेखित मिलता—प्रभावकचरितसे पहलेके किसी भी ग्रंथमे इसका उल्लेख नहीं है। और यह कि कल्याणमन्दिरको सिद्धसेनकी कृति सिद्ध करनेके लिये कोई निश्चित प्रमाण नही है—वह सन्देहास्पद है।' ऐसी हालतमे कल्याणमन्दिरकी बातको यहाँ छोड़ ही दिया जाता है। प्रकृत-विषयके निर्णयमे वह कोई विशेष साधक-बाधक भी नहीं है।

अब रही द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, सन्मतिसूत्र और न्यायावतारकी बात। न्यायावतार एक ३२ श्लोकोंका प्रमाण-नय-विषयक लघुग्रंथ है, जिसके आदि-अन्तमे कोई मंगलाचरण तथा प्रशस्ति नहीं है, जो आमतौरपर श्वेताम्बराचार्य सिद्धसेनदिवाकरकी कृति माना जाता है और जिसपर श्वे० सिद्धर्षि (सं० ९६२) की विवृति और उस विवृतिपर देवभद्रकी टिप्पणी उपलब्ध है और ये दोनो टीकाएं डा० पी० एल० वैद्यके द्वारा सम्पादित होकर सन् १९२८ मे प्रकाशित होचुकी हैं। सन्मतिसूत्रका परिचय ऊपर दिया ही जा चुका है। उसपर अभय-देवसूरिकी २५ हजार श्लोक-परिमाण जो संस्कृतटीका है वह उक्त दोनों विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर संवत् १९८७ में प्रकाशित हो चुकी है। द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका ३२-३२ पद्योंकी ३२ कृतियाँ बतलाई जाती हैं, जिनमेसे २१ उपलब्ध हैं। उपलब्ध द्वात्रिंशिकाएं भावनगरकी जैनधर्मप्रसारक सभाकी तरफसे विक्रम संवत् १९६५में प्रकाशित होचुकी हैं। ये जिस क्रमसे प्रकाशित हुई हैं उसी क्रमसे निर्मित हुई हो ऐसा उन्हें देखनेसे मालूम नहीं होता—वे बाद को किसी लेखक अथवा पाठक-द्वारा उस क्रमसे संग्रह की अथवा कराई गई जान पड़ती हैं। इस बातको पं० सुखलालजी आदिने भी प्रस्तावनामे व्यक्त किया है। साथ ही यह भी बत-लाया है कि 'ये सभी द्वात्रिंशिकाएं सिद्धसेनने जैनदीक्षा स्वीकार करनेके पीछे ही रची हों ऐसा नहीं कहा जा सकता, इनमेंसे कितनी ही द्वात्रिंशिकाएं (बत्तीसियाँ) उनके पूर्वाश्रममें भी रची हुई होसकती हैं।' और यह ठीक है, परन्तु ये सभी द्वात्रिंशिकाएं एक ही सिद्धसेनकी रची हुई हों ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; चुनाँचे २१ वीं द्वात्रिंशिकाके विषयमे पं० सुखलालजी आदिने प्रस्तावनामे यह स्पष्ट स्वीकार भी किया है कि 'उसकी भाषारचना और वर्णित वस्तुकी दूसरी बत्तीसियोंके साथ तुलना करनेपर ऐसा मालूम होता है कि वह बत्तीसी किसी जुदे ही सिद्धसेनको कृति है और चाहे जिस कारणसे दिवाकर (सिद्धसेन) की मानी जानेवाली कृतियोंमे दाखिल होकर दिवाकरके नामपर चढ़ गई है।' इसे महा-वीरद्वात्रिंशिका[3] लिखा है—महावीर नामका इसमे उल्लेख भी है, जबकि और किसी

---

१ "सव्वेसिं तवो कम्मं निरुवसग्गं तु वण्णियं जिणाणं। नवरं तु वद्धमाणस्स सोवसग्गं मुणेयव्वं ॥२७६॥"

२ यह प्रस्तावना ग्रन्थके गुजराती अनुवाद-भावार्थके साथ सन् १९३२ में प्रकाशित हुई है और ग्रन्थका यह गुजराती संस्करण बादको अंग्रेजीमें अनुवादित होकर 'सन्मतितर्क' के नामसे सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ है।

३ यह द्वात्रिंशिका अलग ही है ऐसा ताडपत्रीय प्रतिसे भी जाना जाता है, जिसमें २० ही द्वात्रिंशिकाएं अंकित हैं और उनके अन्तमें "ग्रन्थाग्र ८३० मंगलमस्तु" लिखा है, जो ग्रन्थकी समाप्तिके साथ उसकी श्लोकसख्याका भी द्योतक है। जैनग्रन्थावली (पृ० २८१) गत ताडपत्रीयप्रतिमें भी २० द्वात्रिंशिकाएं हैं।

द्वात्रिंशिकामे 'महावीर' उल्लेख नहीं है—प्रायः 'वीर' या 'वर्द्धमान' नामका ही उल्लेख पाया जाता है। इसकी पद्यसंख्या ३३ है और ३३वें पद्यमें स्तुतिका माहात्म्य दिया हुआ है; ये दोनों बातें दूसरी सभी द्वात्रिंशिकाओंसे विलक्षण हैं और उनसे इसके भिन्नकर्तृत्वकी द्योतक हैं। इसपर टीका भी उपलब्ध है जब कि और किसी द्वात्रिंशिकापर कोई टीका उपलब्ध नहीं है। चंद्रप्रभसूरिने प्रभावकचरितमें न्यायावतारकी, जिसपर टीका उपलब्ध है, गणना भी ३२ द्वात्रिंशिकाओंमें की है ऐसा कहा जाता है परन्तु प्रभावकचरितमें वैसा कोई उल्लेख नहीं मिलता और न उसका समर्थन पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती अन्य किसी प्रबन्धसे ही होता है। टीकाकारोंने भी उसके द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाका अंग होनेकी कोई बात सूचित नहीं की, और इसलिये न्यायावतार एक स्वतंत्र ही ग्रंथ होना चाहिये तथा उसी रूपमे प्रसिद्धिको भी प्राप्त है।

२१ वीं द्वात्रिंशिकाके अन्तमें 'सिद्धसेन' नाम भी लगा हुआ है, जबकि ५ वीं द्वात्रिंशिकाको छोडकर और किसी द्वात्रिंशिकामें वह नहीं पाया जाता। हो सकता है कि ये नामवाली दोनों द्वात्रिंशिकाएं अपने स्वरूपपरसे एक नहीं किन्तु दो अलग अलग सिद्धसेनोंसे सम्बन्ध रखती हों और शेष विना नामवाली द्वात्रिंशिकाएं इनसे भिन्न दूसरे ही सिद्धसेन अथवा सिद्धसेनोंकी कृतिस्वरूप हों। पं० सुखलालजी और पं० वेचरदासजीने पहली पाँच द्वात्रिंशिकाओंको, जो वीर भगवानकी स्तुतिपरक हैं, एक ग्रुप (समुदाय) में रक्खा है और उस ग्रुप (द्वात्रिंशिकापंचक) का स्वामी समन्तभद्रके स्वयम्भूस्तोत्रके साथ साम्य घोषित करके तुलना करते हुए लिखा है कि स्वयम्भूस्तोत्रका प्रारम्भ जिस प्रकार स्वयम्भू शब्दसे होता है और अन्तिम पद्य (१४३) मे ग्रन्थकारने श्लेषरूपसे अपना नाम समन्तभद्र सूचित किया है उसी प्रकार इस द्वात्रिंशिका-पंचकका प्रारम्भ भी स्वयम्भू शब्द से होता है और उसके अन्तिम पद्य (५, ३२) में भी ग्रंथकारने श्लेषरूपमे अपना नाम सिद्धसेन दिया है।' इससे शेष १५ द्वात्रिंशिकाएं भिन्न ग्रुप अथवा ग्रुपोंसे सम्बन्ध रखती हैं और उनमे प्रथम ग्रुपकी पद्धतिको न अपनाये जाने अथवा अन्तमें ग्रंथकारका नामोल्लेख तक न होनेके कारण वे दूसरे सिद्धसेन या सिद्धसेनोंकी कृतियाँ भी हो सकती हैं। उनमेसे ११ वीं किसी राजाकी स्तुतिको लिये हुए हैं, छठी तथा आठवीं समीक्षात्मक हैं और शेष बारह दार्शनिक तथा वस्तुचर्चा वाली हैं।

इन सब द्वात्रिंशिकाओंके सम्बन्धमें यहाँ दो बातें और भी नोट किये जानेके योग्य हैं—एक यह कि द्वात्रिंशिका (बत्तीसी) होनेके कारण जब प्रत्येककी पद्यसंख्या ३२ होनी चाहिये थी तब वह घट-बढ़रूपमें पाई जाती है। १०वींमे दो पद्य तथा २१वींमें एक पद्य बढ़ती है, और ८वींमे छह पद्योंकी, ११वींमे चारकी तथा १५वींमे एक पद्यकी घटती है। यह घट-बढ़ भावनगरकी उक्त मुद्रित प्रतिमे ही नहीं पाई जाती बल्कि पूनाके भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट और कलकत्ताको एशियाटिक सोसाइटीकी हस्तलिखित प्रतियोंमे भी पाई जाती है। रचना-समयकी तो यह घट-बढ़ प्रतीतिका विषय नहीं—पं० सुखलालजी आदिने भी लिखा है कि 'बढ़-घटकी यह घालमेल रचनाके बाद ही किसी कारणसे होनी चाहिये।' इसका एक कारण लेखकोंकी असावधानी हो सकता है; जैसे १९वीं द्वात्रिंशिकामे एक पद्यकी कमी थी वह पूना और कलकत्ताकी प्रतियोंसे पूरी हो गई। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि किसीने अपने प्रयोजनके वश यह घालमेल की हो। कुछ भी हो, इससे उन द्वात्रिंशिकाओंके पूर्णरूपको समझने आदिमें बाधा पड़ रही है, जैसे ११वीं द्वात्रिंशिकासे यह मालूम ही नहीं होता कि वह कौनसे राजाकी स्तुति है, और इससे उसके रचयिता तथा रचना-कालको जाननेमें भारी बाधा उपस्थित है। यह नहीं हो सकता कि किसी विशिष्ट राजाकी स्तुति की जाय और उसमें उसका नाम तक भी न हो—दूसरी स्तुत्यात्मक द्वात्रिंशिकाओमे स्तुत्यका

नाम बराबर दिया हुआ है, फिर यही उससे शून्य रही हो यह कैसे कहा जा सकता है? नहीं कहा जा सकता। अतः जरूरत इस बातकी है कि द्वात्रिंशिका-विषयक प्राचीन प्रतियों की पूरी खोज की जाय। इससे अनुपलब्ध द्वात्रिंशिकाएं भी यदि कोई होंगी तो उपलब्ध हो हो सकेंगी और उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंसे वे अशुद्धियाँ भी दूर हो सकेंगी जिनके कारण उनका पठन-पाठन कठिन होरहा है और जिसकी पं० सुखलालजी आदिको भी भारी शिकायत है।

दूसरी बात यह कि द्वात्रिंशिकाओंको स्तुतियाँ कहा गया है[1] और इनके अवतारका प्रसङ्ग भी स्तुति-विषयका ही है; क्योंकि श्वेताम्बरीय प्रबन्धोंके अनुसार विक्रमादित्य राजा की ओरसे शिवलिंगको नमस्कार करनेका अनुरोध होनेपर जब सिद्धसेनाचार्यने कहा कि यह देवता मेरा नमस्कार सहन करनेमें समर्थ नहीं है—मेरा नमस्कार सहन करनेवाले दूसरे ही देवता हैं—तब राजाने कौतुकवश, परिणामकी कोई पर्वाह न करते हुए नमस्कारके लिये विशेष आग्रह किया[2]। इसपर सिद्धसेन शिवलिंगके सामने आसन जमाकर बैठ गये और इन्होंने अपने इष्टदेवकी स्तुति उच्चस्वर आदिके साथ प्रारम्भ करदी; जैसा कि निम्न वाक्योंसे प्रकट है :—

> "श्रुत्वेति पुनरासीनः शिवलिंगस्य स प्रभुः।
> उदाजह्रे स्तुतिश्लोकान् तारस्वरकरस्तदा ॥ १३८ ॥
>
> —प्रभावकचरित
>
> ततः पद्मासनेन भूत्वा द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाभिर्देवं स्तुतिमुपचक्रमे।"
>
> —विविधतीर्थकल्प, प्रबन्धकोश।

परन्तु उपलब्ध २१ द्वात्रिंशिकाओंमे स्तुतिपरक द्वात्रिंशिकाएं केवल सात ही हैं, जिनमे भी एक राजाकी स्तुति होनेसे देवताविषयक स्तुतियोंकी कोटिसे निकल जाती है और इस तरह छह द्वात्रिंशिकाएं ही ऐसी रह जाती हैं जिनका श्रीवीरवर्द्धमानकी स्तुतिसे सम्बन्ध है और जो उस अवसरपर उच्चरित कही जा सकती हैं—शेष १४ द्वात्रिंशिकाएं न तो स्तुति-विषयक हैं, न उक्त प्रसगके योग्य हैं और इसलिये उनकी गणना उन द्वात्रिंशिकाओं मे नहीं की जा सकती जिनकी रचना अथवा उच्चारणा सिद्धसेनने शिवलिङ्गके सामने बैठ कर की थी।

यहाँ इतना और भी जान लेना चाहिये कि प्रभावकचरितके अनुसार स्तुतिका प्रारम्भ "प्रकाशितं त्वयैकेन यथा सम्यग्जगत्त्रयं।" इत्यादि श्लोकोंसे हुआ है जिनमेसे 'तथा हि" शब्दके साथ चार श्लोकोंको[3] उद्धृत करके उनके आगे 'इत्यादि" लिखा गया

---

१ "सिद्धसेणेण पारद्धा बत्तीसिगाहिं जिणथुई" × × —(गद्यप्रबन्ध-कथावली)
"तस्सागयस्स तेणं पारद्धा जिणथुई समत्ताहिं।बत्तीसाहिं बत्तीसियाहिं उद्दामसद्देण॥
—(पद्यप्रबन्ध स. प्र. पृ. ५६)
न्यायावतारसूत्रं च श्रीवीरस्तुतिमप्यथ। द्वात्रिंशच्छ्लोकमानाश्च त्रिंशदन्याः स्तुतीरपि॥ १४३॥
—प्रभावकचरित

२ ये मत्प्रणामसोढारस्ते देवा अपरे ननु। किं भावि प्रणम त्वं द्राक् प्राह राजेति कौतुकी॥ १३५॥
देवान्निजप्रणाम्यांश्च दर्शय त्वं वदन्निति। भूपतिर्जल्पितस्तेनोत्पाते दोषो न मे नृप॥ १३६॥

३ चारों श्लोक इस प्रकार हैं :—
प्रकाशितं त्वयैकेन यथा सम्यग्जगत्त्रयम्। समस्तैरपि नो नाथ! परतीर्थाधिपैस्तथा॥ १३९॥
विद्योतयति वा लोकं यथैकोऽपि निशाकरः। समुद्गतः समग्रोऽपि तथा किं तारकागणः॥ १४०॥
त्वद्वाक्यतोऽपि केषाञ्चिदबोध इति मेऽद्भुतम्। भानोर्मरीचयः कस्य नाम नालोकहेतवः॥ १४१॥

है। और फिर 'न्यायावतारसूत्र च' इत्यादि श्लोकद्वारा ३२ कृतियोंकी और सूचना की गई है, जिनमेसे एक न्यायावतारसूत्र दूसरी श्रीवीरस्तुति और ३० बत्तीस बत्तीस श्लोकोंवाली दूसरी स्तुतियाँ हैं। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार स्तुतिका प्रारम्भ—

"प्रशान्तं दर्शनं यस्य सर्वभूताऽभयप्रदम् ।
मांगल्यं च प्रशस्तं च शिवस्तेन विभाव्यते ॥"

इस श्लोकसे होता है, जिसके अनन्तर "इति द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता" लिखकर यह सूचित किया गया है कि वह द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका स्तुतिका प्रथम श्लोक है। इस श्लोक तथा उक्त चारों श्लोकोंमेसे किसीसे भी प्रस्तुत द्वात्रिंशिकाओंका प्रारंभ नहीं होता है, न ये श्लोक किसी द्वात्रिंशिकामे पाये जाते हैं और न इनके साहित्यका उपलब्ध प्रथम २० द्वात्रिंशिकाओंके साहित्यके साथ कोई मेल ही खाता है। ऐसी हालतमे इन दोनों प्रबन्धों तथा लिखित पद्यप्रबन्धमे उल्लेखित द्वात्रिंशिका स्तुतियाँ उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओसे भिन्न कोई दूसरी ही होनी चाहियें। प्रभावकचरितके उल्लेखपरसे इसका और भी समर्थन होता है; क्योंकि उसमे 'श्रीवीरस्तुति' के बाद जिन ३० द्वात्रिंशिकाओंको "अन्याः स्तुतीः" लिखा है वे श्रीवीरसे भिन्न दूसरे ही तीर्थङ्करादिकी स्तुतियाँ जान पड़ती हैं और इसलिये उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंके प्रथम ग्रुप द्वात्रिंशिकापञ्चकमे उनका समावेश नहीं किया जा सकता, जिस मेकी प्रत्येक द्वात्रिंशिका श्रीवीरभगवानसे ही सम्बन्ध रखती है। उक्त तीनों प्रबन्धोंके बाद बने हुए विविध तीर्थकल्प और प्रबन्धकोश (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) मे स्तुतिका प्रारम्भ 'स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्रं' इत्यादि पद्यसे होता है, जो उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंके प्रथम ग्रुपका प्रथम पद्य है, इसे देकर "इत्यादि श्रीवीरद्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता" ऐसा लिखा है। यह पद्य प्रबन्धवर्णित द्वात्रिंशिकाओंका सम्बन्ध उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंके साथ जोड़नेके लिये बादको अपनाया गया मालूम होता है; क्योकि एक तो पूर्वरचित प्रबन्धोंसे इसका कोई समर्थन नहीं होता, और उक्त तीनों प्रबन्धोंसे इसका स्पष्ट विरोध पाया जाता है। दूसरे, इन दोनों ग्रंथोंमे द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाको एकमात्र श्रीवीरसे सम्बन्धित किया गया है और उसका विषय भी "देवं स्तोतुमुपचक्रमे" शब्दोंके द्वारा 'स्तुति' ही बतलाया गया है; परन्तु उस स्तुतिको पढ़नेसे शिवलिंगका विस्फोट होकर उसमेसे वीरभगवानकी प्रतिमाका प्रादुर्भूत होना किसी ग्रथमें भी प्रकट नहीं किया गया—विविध तीर्थकल्पका कर्ता आदिनाथकी और प्रबन्धकोश का कर्ता पार्श्वनाथकी प्रतिमाका प्रकट होना बतलाया है। और यह एक असंगत-सी बात जान पड़ती है कि स्तुति तो किसी तीर्थंकरकी की जाय और उसे करते हुए प्रतिमा किसी दूसरे ही तीर्थंकरकी प्रकट होवे।

इस तरह भी उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंमे उक्त १४ द्वात्रिंशिकाए, जो स्तुतिविषय तथा वीरकी स्तुतिसे सम्बन्ध नहीं रखतीं, प्रबन्धवर्णित द्वात्रिंशिकाओंमे परिगणित नहीं की जा सकतीं। और इसलिये पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदासजीका प्रस्तावनामे यह लिखना कि 'शुरुआतमे दिवाकर (सिद्धसेन) के जीवन वृत्तान्तमे स्तुत्यात्मक बत्तीसियो (द्वात्रिंशिकाओं) को ही स्थान देनेकी जरूरत मालूम हुई और इनके साथमे सस्कृत भाषा तथा पद्यसंख्यामें समानता रखनेवाली परन्तु स्तुत्यात्मक नहीं ऐसी दूसरी घनी बत्तीसियॉ इनके जीवनवृत्तान्तमें स्तुत्यात्मक कृतिरूपमे ही दाखिल होगईं और पीछे किसीने इस हकीकतको देखा तथा खोजा ही नहीं कि कही जानेवाली बत्तीस अथवा उपलब्ध इक्कीस बत्तीसियोंमे

नो वाद्गुनमुलूकस्य प्रकृत्या क्लिष्टचेतसः। स्वच्छा अपि तमस्त्वेन भासन्ते भास्वतः कराः ॥ १४२ ॥
लिखित पद्यप्रबन्धमें भी ये ही चारों श्लोक 'तस्सागयस्स तेए पारद्धा जिणथुई' इत्यादि पद्यके अनन्तर 'यथा' शब्दके साथ दिये हैं।—(स. प्र. पृ. ५४ टि० ५८)

कितनी और कौन स्तुतिरूप हैं और कौन कौन स्तुतिरूप नहीं हैं' और इस तरह सभी प्रबंध-रचयिता आचार्योंको ऐसी मोटी भूलके शिकार बतलाना कुछ भी जीको लगने वाली बात मालूम नहीं होती। उसे उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंकी संगति बिठलानेका प्रयत्नमात्र ही कहा जा सकता है, जो निराधार होनेसे समुचित प्रतीत नहीं होता।

द्वात्रिंशिकाओंकी इस सारी छान-बीनपरसे निम्न बातें फलित होती हैं—

१ द्वात्रिंशिकाएं जिस क्रमसे छपी हैं उसी क्रमसे निर्मित नहीं हुई हैं।

२ उपलब्ध २१ द्वात्रिंशिकाएं एक ही सिद्धसेनके द्वारा निर्मित हुई मालूम नहीं होतीं।

३ न्यायावतारकी गणना प्रबन्धोल्लिखित द्वात्रिंशिकाओंमें नहीं की जा सकती।

४ द्वात्रिंशिकाओंकी संख्यामें जो घट-बढ़ पाई जाती है वह रचनाके बाद हुई है और उसमें कुछ ऐसी घट-बढ़ भी शामिल है जो कि किसीके द्वारा जान-बूझकर अपने किसी प्रयोजनके लिये की गई हो। ऐसी द्वात्रिंशिकाओंका पूर्ण रूप अभी अनिश्चित है।

५ उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंका प्रबन्धोंमें वर्णित द्वात्रिंशिकाओंके साथ, जो सब स्तुत्यात्मक हैं और प्रायः एक ही स्तुतिग्रंथ 'द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका' की अंग जान पड़ती हैं, सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता। दोनों एक दूसरेसे भिन्न तथा भिन्नकर्तृक प्रतीत होती हैं।

ऐसी हालतमें किसी द्वात्रिंशिकाका कोई वाक्य यदि कहीं उद्धृत मिलता है तो उसे उसी द्वात्रिंशिका तथा उसके कर्ता तक ही सीमित समझना चाहिये, शेष द्वात्रिंशिकाओंमेंसे किसी दूसरी द्वात्रिंशिकाके विषयके साथ उसे जोड़कर उसपरसे कोई दूसरी बात उस वक्त तक फलित नहीं की जानी चाहिये जब तक कि यह साबित न कर दिया जाय कि वह दूसरी द्वात्रिंशिका भी उसी द्वात्रिंशिकाकारकी कृति है। अस्तु।

अब देखना यह है कि इन द्वात्रिंशिकाओं और न्यायावतारमेंसे कौन-सी रचना सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन आचार्यकी कृति है अथवा हो सकती है? इस विषयमें पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने अपनी प्रस्तावनामें यह प्रतिपादन किया है कि २१वीं द्वात्रिंशिकाको छोड़कर शेष २० द्वात्रिंशिकाएं, न्यायावतार और सन्मति ये सब एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ हैं और ये सिद्धसेन वे हैं जो उक्त श्वेताम्बरीय प्रबन्धोंके अनुसार वृद्धवादीके शिष्य थे और 'दिवाकर' नामके साथ प्रसिद्धिको प्राप्त हैं। दूसरे श्वेताम्बर विद्वानोंका बिना किसी जाँच-पड़तालके अनुसरण करनेवाले कितने ही जैनेतर विद्वानों की भी ऐसी ही मान्यता है और यह मान्यता ही उस सारी भूल-भ्रान्तिका मूल है जिसके कारण सिद्धसेन-विषयक जो भी परिचय-लेख अब तक लिखे गये वे सब प्रायः खिचड़ी बने हुए हैं, कितनी ही गलतफहमियोंको फैला रहे हैं और उनके द्वारा सिद्धसेनके समयादिकका ठीक निर्णय नहीं हो पाता। इसी मान्यताको लेकर विद्वद्वर पं० सुखलाल जीकी स्थिति सिद्धसेनके समय-सम्बन्धमें बराबर डॉवाडोल चली जाती है। आप प्रस्तुत सिद्धसेनका समय कभी विक्रमकी छठी शताब्दीसे पूर्व ५वीं शताब्दी[1] बतलाते हैं, कभी छठी शताब्दीका भी उत्तरवर्ती समय[2] कह डालते हैं, कभी सन्दिग्धरूपमें छठी या सातवीं शताब्दी[3] निर्दिष्ट करते हैं और कभी ५वीं तथा ६ठी शताब्दीका मध्यवर्ती काल[4] प्रतिपादन करते हैं। और बड़ी मजेकी बात यह है कि जिन प्रबन्धोंके आधारपर सिद्धसेन दिवाकर का परिचय दिया जाता है उनमें 'न्यायावतार' का नाम तो किसी तरह एक प्रबन्धमें पाया भी जाता है परन्तु सिद्धसेनकी कृतिरूपमें सन्मतिसूत्रका कोई उल्लेख कहीं भी उप-

---

१ सन्मतिप्रकरण-प्रस्तावना पृ० ३६, ४३, ६४, ६४। २ ज्ञानबिन्दु-परिचय पृ० ६।

३ सन्मतिप्रकरणके अंग्रेजी संस्करणका फोरवर्ड (Forword) और भारतीयविद्यामें प्रकाशित 'श्रीसिद्ध-सेन दिवाकरना समयनो प्रश्न' नामक लेख—भा० वि० तृतीय भाग पृ० १५२।

४ 'प्रतिभामूर्ति सिद्धसेन दिवाकर' नामक लेख—भारतीयविद्या तृतीय भाग पृ० ११।

लब्ध नहीं होता। इतनेपर भी प्रबन्ध-वर्णित सिद्धसेनकी कृतियोंमे उसे भी शामिल किया जाता है। यह कितने आश्चर्यकी बात है इसे विज्ञ पाठक स्वय समझ सकते हैं।

ग्रन्थकी प्रस्तावनामे प० सुखलालजी आदिने, यह प्रतिपादन करते हुए कि 'उक्त प्रबन्धोंमें वे द्वात्रिंशिकाएँ भी जिनमे किसीकी स्तुति नहीं है और जो अन्य दर्शनों तथा स्वदर्शनके मन्तव्योंके निरूपण तथा समालोचनको लिये हुए हैं स्तुतिरूपमें परिगणित हैं और उन्हे दिवाकर(सिद्धसेन)के जीवनमे उनकी कृतिरूपसे स्थान मिला है,' इसे एक 'पहेली' ही बतलाया है जो स्वदर्शनका निरूपण करनेवाले और द्वात्रिंशिकाओंसे न उतरनेवाले (नीचा दर्जा न रखनेवाले) 'सन्मतिप्रकरण'को दिवाकरके जीवनवृत्तान्त और उनकी कृतियोमे स्थान क्यो नहीं मिला। परन्तु इस पहेलीका कोई समुचित हल प्रस्तुत नही किया गया, प्रायः इतना कहकर ही सन्तोष धारण किया गया है कि 'सन्मतिप्रकरण यदि बत्तीस श्लोकपरिमाण होता तो वह प्राकृतभाषामे होते हुए भी दिवाकरके जीवनवृत्तान्तमे स्थान पाई हुई सस्कृत बत्तीसियो-के साथमें परिगणित हुए विना शायद ही रहता।' पहेलीका यह हल कुछ भी महत्व नहीं रखता। प्रबन्धोंसे इसका कोई समर्थन नही होता और न इस बातका कोई पता ही चलता है कि उपलब्ध जा द्वात्रिंशिकाएँ स्तुत्यात्मक नहीं हैं वे सब दिवाकर सिद्धसेनके जीवनवृत्तान्तमे दाखिल हो गई हैं और उन्हें भी उन्हीं सिद्धसेनकी कृतिरूपसे उनमें स्थान मिला है, जिससे उक्त प्रतिपादनका ही समर्थन होता—प्रबन्धवर्णित जीवनवृत्तान्तमे उनका कहीं कोई उल्लेख ही नहीं हैं। एकमात्र प्रभावकचरितमे 'न्यायावतार'का जो असम्बद्ध, असमर्थित और असमञ्जस उल्लेख मिलता है उसपरसे उसकी गणना उस द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाके अङ्गरूपमें नहीं की जा सकती जो सब जिन-स्तुतिपरक थी, वह एक जुदा ही स्वतन्त्र ग्रन्थ है जैसा कि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है। और सन्मतिप्रकरणका बत्तीस श्लोकपरिमाण न होना भी सिद्धसेनके जीवनवृत्तान्तसे सम्बद्ध कृतियोंमें उसके परिगणित होनेके लिये कोई बाधक नहीं कहा जा सकता—खासकर उस हालतमें जब कि चवालीस पद्यसख्यावाले कल्याणमन्दिरस्तोत्र-को उनकी कृतियोंमें परिगणित किया गया है और प्रभावकचरितमे इस पद्यसख्याका स्पष्ट उल्लेख भी साथमें मौजूद है[1]। वास्तवमें प्रबन्धोंपरसे यह ग्रन्थ उन सिद्धसेनदिवाकरकी कृति मालूम ही नहीं होता, जो वृद्धवादीके शिष्य थे और जिन्हें आगमग्रन्थोंको सस्कृतमे अनुवादित करनेका अभिप्रायमात्र व्यक्त करनेपर पाराञ्चिकप्रायश्चित्तके रूपमे बारह वर्ष तक श्वताम्बर सघसे बाहर रहनेका कठोर दण्ड दिया जाना बतलाया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थको उन्हीं सिद्धसेनकी कृति बतलाना, यह सब बादको कल्पना और योजना ही जान पड़ती है।

प० सुखलालजीने प्रस्तावनामे तथा अन्यत्र भी द्वात्रिंशिकाओं, न्यायावतार और सन्मतिसूत्रका एककर्तृत्व प्रतिपादन करनेके लिये कोई खास हेतु प्रस्तुत नहीं किया, जिससे इन सब कृतियोंको एक ही आचार्यकृत माना जा सके, प्रस्तावनामे केवल इतना ही लिख दिया है कि 'इन सबके पीछे रहा हुआ प्रतिभाका समान तत्त्व ऐसा माननेके लिये ललचाता है कि ये सब कृतियाँ किसी एक ही प्रतिभाके फल हैं।' यह सब कोई समर्थ युक्तिवाद न होकर एक प्रकारसे अपनी मान्यताका प्रकाशनमात्र हैं, क्योंकि इन सभी ग्रन्थोपरसे प्रतिभाका ऐसा कोई असाधारण समान तत्त्व उपलब्ध नहीं होता जिसका अन्यत्र कहीं भी दर्शन न होता हो। स्वामी समन्तभद्रके मात्र स्वयम्भूस्तोत्र और आप्तमीमासा ग्रन्थोंके साथ इन ग्रन्थों-की तुलना करते हुए स्वयं प्रस्तावनालेखकोंने दोनोंमें 'पुष्कल साम्य'का होना स्वीकार किया

१ ततश्चतुश्चत्वारिंशद्वृत्ता स्तुतिमसौ जगौ। कल्याणमन्दिरेत्यादिविख्याता जिनशासने ॥१४४॥
—वृद्धवादिप्रबन्ध पृ० १०१।

है और दोनों आचार्योंकी ग्रन्थनिर्माणादि-विषयक प्रतिभाका कितना ही चित्रण किया है। और भी अकलङ्क-विद्यानन्दादि कितने ही आचार्य ऐसे हैं जिनकी प्रतिभा इन ग्रन्थोके पीछे रहनेवाली प्रतिभासे कम नहीं है, तब प्रतिभाकी समानता ऐसी कोई बात नहीं रह जाती जिसकी अन्यत्र उपलब्धि न हो सके और इसलिये एकमात्र उसके आधारपर इन सब ग्रन्थों-को, जिनके प्रतिपादनमें परस्पर कितनी ही विभिन्नताएँ पाई जाती हैं, एक ही आचार्यकृत नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है समानप्रतिभाके उक्त लालचमे पड़कर ही विना किसी गहरी जाँच-पड़तालके इन सब ग्रन्थोंको एक ही आचार्यकृत मान लिया गया है, अथवा किसी साम्प्रदायिक मान्यताको प्रश्रय दिया गया है जबकि वस्तुस्थिति वैसी मालूम नहीं होती। गम्भीर गवेषणा और इन ग्रन्थोंकी अन्तःपरीक्षादिपरसे मुझे इस बातका पता चला है कि सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन अनेक द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनसे भिन्न हैं। यदि २१वीं द्वात्रिंशिकाको छोड़कर शेष २० द्वात्रिंशिकाएँ एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ हों तो वे उनमेंसे किसी भी द्वात्रिंशिकाके कर्ता नही हैं, अन्यथा कुछ द्वात्रिंशिकाओके कर्ता हो सकते हैं। न्याया-वतारके कर्ता सिद्धसेनकी भी ऐसी ही स्थिति है वे सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेनसे जहाँ भिन्न हैं वहाँ कुछ द्वात्रिंशिकाओके कर्ता सिद्धसेनसे भी भिन्न हैं और उक्त २० द्वात्रिंशिकाएँ यदि एकसे अधिक सिद्धसेनोंकी कृतियाँ हों तो वे उनमेसे कुछके कर्ता हो सकते हैं, अन्यथा किसीके भी कर्ता नही बन सकते। इस तरह सन्मतिमूत्रके कर्ता, न्यायावतारके कर्ता और कतिपय द्वात्रिं-शिकाओंके कर्ता तीन सिद्धसेन अलग अलग हैं—शेष द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता इन्हींमेसे कोई एक या दो अथवा तीनो हो सकते हैं और यह भी हो सकता है कि किसी द्वात्रिंशिकाके कर्ता इन तीनोसे भिन्न कोई अन्य ही हो। इन तीनो सिद्धसेनोका अस्तित्वकाल एक दूसरेसे भिन्न अथवा कुछ अन्तरालको लिये हुए है और उनमें प्रथम सिद्धसेन कतिपय द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता, द्वितीय सिद्धसेन सन्मतिसूत्रके कर्ता और तृतीय सिद्धसेन न्यायावतारके कर्ता हैं। नीचे अपने अनुसन्धान-विषयक इन्हीं सब बातोंको संक्षेपमें स्पष्ट करके बतलाया जाता है:—

(१) सन्मतिसूत्रके द्वितीय काण्डमें केवलीके ज्ञान-दर्शन-उपयोगोकी क्रमवादिता और युगपद्वादितामे दोष दिखाते हुए अभेदवादिता अथवा एकोपयोगवादिताका स्थापन किया है। साथ ही ज्ञानावरण और दर्शनावरणका युगपत् क्षय मानते हुए भी यह बतलाया है कि दो उपयोग एक साथ कहीं नहीं होने और केवलीमे वे क्रमशः भी नहीं होते। इन ज्ञान और दर्शन उपयोगोका भेद मनःपर्ययज्ञान पर्यन्त अथवा छद्मस्थावस्था तक ही चलता है, केवल-ज्ञान होजानेपर दोनोंमे कोई भेद नही रहता—तब ज्ञान कहो अथवा दर्शन एक ही बात है, दोनोमे कोई विषय-भेद चरितार्थ नहीं होता। इसके लिये अथवा आगमग्रन्थोसे अपने इस कथनकी सङ्गति बिठलानेके लिये दर्शनकी 'अर्थविशेषरहित निराकार सामान्यग्रहणरूप' जो परिभाषा है उसे भी बदल कर रक्खा है अर्थात् यह प्रतिपादन किया है कि अस्पृष्ट तथा अविषयरूप पदार्थमे अनुमानज्ञानको छोड़कर जो ज्ञान होता है वह दर्शन है। इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ गाथाएँ नमूनेके तौरपर इस प्रकार हैं:—

मणपज्जवणाणंतो णाणस्स दरिसणस्स य विसेसो ।
केवलणाणं पुण दंसणं ति णाणं ति य समाणं ॥ ३ ॥
केई भणंति 'जइया जाणइ तइया ण पासइ जिणो' त्ति ।
सुत्तमवलंबमाणा तित्थयरासायणाभीरू ॥ ४ ॥

केवलणाणावरणक्खयजायं केवलं जहा णाणं ।
तह दंसणं पि जुज्जइ णियआवरणक्खयस्संते ॥ ५ ॥
सुत्तम्मि चेव 'साई अपज्जवसियं' ति केवलं वुत्तं ।
सुत्तासायणभीरूहि तं च दट्ठव्वयं होइ ॥ ७ ॥
संतम्मि केवले दसणम्मि णाणस्स संभवो णत्थि ।
केवलणाणम्मि य दसणस्स तम्हा सणिहणाइ ॥ ८ ॥
दंसणणाणावरणक्खए समाणम्मि कस्स पुव्वअरं ।
होज्ज समं उप्पाओ हंदि दुवे णत्थि उवओगा ॥ ९ ॥
अण्णायं पासंतो अद्दिट्ठं च अरहा वियाणंतो ।
किं जाणइ किं पासइ कह सव्वण्णू त्ति वा होइ ॥१३॥
णाणं अप्पुट्ठे अविसए य अत्थम्मि दंसणं होइ ।
मोत्तूण लिंगओ जं अणागयाईयविसएसु ॥२५॥
ज अप्पुट्ठे भावे जाणइ पासइ य केवली णियमा ।
तम्हा तं णाणं दसण च अविसेसओ सिद्धं ॥३०॥

इसीसे सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन अभेदवादके पुरस्कर्ता माने जाते हैं। टीकाकार अभयदेवसूरि और ज्ञानविन्दुके कर्ता उपाध्याय यशोविजयने भी ऐसा ही प्रतिपादन किया है। ज्ञानविन्दुमें तो एतद्विषयक सन्मति-गाथाओंकी व्याख्या करते हुए उनके इस वादको "श्रीसिद्धसेनोपज्ञनव्यमतं" (सिद्धसेनकी अपनी ही सूझ-बूझ अथवा उपजरूप नया मत) तक लिखा है। ज्ञानविन्दुकी परिचयात्मक प्रस्तावनाके आदिमें पं० सुखलालजीने भी ऐसी ही घोषणा की है।

(२) पहली, दूसरी और पाँचवीं द्वात्रिंशिकाएँ युगपद्वादकी मान्यताको लिये हुए हैं, जैसा कि उनके निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

क—"जगन्नैकावस्थं युगपदखिलाऽनन्तविषयं
यदेतत्प्रत्यक्षं तव न च भवान् कस्यचिदपि ।
अनेनैवाऽचिन्त्य-प्रकृति-रस-सिद्धेस्तु विदुषां
समीक्ष्यैतद्द्वारं तव गुण-कथोत्का वयमपि ॥१-३२॥"

ख—"नाऽर्थान् विवित्ससि न वेत्स्यसि नाऽप्यवेत्सी-
र्न ज्ञातवानसि न तेऽच्युत ! वेद्यमस्ति ।
त्रैकाल्य-नित्य-विषम युगपच्च विश्व
पश्यस्यचिन्त्य-चरिताय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥२-३०॥"

ग—"अनन्तमेकं युगपत् त्रिकालं शब्दादिभिर्निप्रतिघातवृत्ति ॥५-२१॥"
दुरापमाप्त यदचिन्त्य-भूति-ज्ञानं त्वया जन्म-जराऽन्तकर्तृ
तेनाऽसि लोकानभिभूय सर्वान्सर्वज्ञ ! लोकोत्तमतामुपेतः ॥५-२२॥"

इन पद्योंमें ज्ञान और दर्शनके जो भी त्रिकालवर्ती अनन्त विषय हैं उन सबको युगपत् जानने-देखनेकी बात कही गई है अर्थात् त्रिकालगत विश्वके सभी साकार-निराकार, व्यक्त-अव्यक्त, सूक्ष्म-स्थूल, दृष्ट-अदृष्ट, ज्ञात-अज्ञात, व्यवहित-अव्यवहित आदि पदार्थ अपनी-अपनी अनेक-अनन्त अवस्थाओं अथवा पर्यायों-सहित वीरभगवान्के युगपत् प्रत्यक्ष हैं, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। यहाँ प्रयुक्त हुआ 'युगपत्' शब्द अपनी खास विशेषता रखता है और वह ज्ञान-दर्शनके यौगपद्यका उसी प्रकार द्योतक है जिसप्रकार स्वामी समन्तभद्रप्रणीत आप्तमीमांसा (देवागम)के "तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम्" (का० १०१) इस वाक्यमें प्रयुक्त हुआ 'युगपत्' शब्द, जिसे ध्यानमें लेकर और पादटिप्पणीमें पूरी कारिकाको उद्धृत करते हुए प० सुखलालजीने ज्ञानबिन्दुके परिचयमें लिखा है—"दिगम्बराचार्य समन्तभद्रने भी अपनी 'आप्तमीमांसा'मे एकमात्र यौगपद्यपक्षका उल्लेख किया है।" साथ ही, यह भी बतलाया है कि 'भट्ट अकलङ्क'ने इस कारिकागत अपनी 'अष्टशती' व्याख्यामें यौगपद्य पक्षका स्थापन करते हुए क्रमिक पक्षका, सक्षेपमे पर स्पष्टरूपमें, खण्डन किया है, जिसे पादटिप्पणीमें निम्न प्रकारसे उद्धृत किया है:—

"तज्ज्ञान-दर्शनयोः क्रमवृत्तौ हि सर्वज्ञत्वं कादाचित्कं स्यात् । कुतस्तत्सिद्धिरिति चेत् सामान्य-विशेष-विषययोर्विगतावरणयोरयुगपत्प्रतिभासायोगात् प्रतिबन्धकान्तराऽभावात् ।"

ऐसी हालतमें इन तीन द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता वे सिद्धसेन प्रतात नहीं होते जो सन्मतिसूत्रके कर्ता और अभेदवादके प्रस्थापक अथवा पुरस्कर्ता हैं, बल्कि वे सिद्धसेन जान पड़ते हैं जो केवलीके ज्ञान और दर्शनका युगपत् होना मानते थे। ऐसे एक युगपद्वादी सिद्धसेनका उल्लेख विक्रमकी ८वीं-९वीं शताब्दीके विद्वान् आचार्य हरिभद्रने अपनी 'नन्दीवृत्ति'में किया है। नन्दीवृत्तिमे 'केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली नियमा' इत्यादि दो गाथाओंको उद्धृत करके, जो कि जिनभद्रक्षमाश्रमणके 'विशेषणवती' ग्रन्थकी हैं, उनकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

"केचन सिद्धसेनाचार्यादयः भणंति, किं ? 'युगपद्' एकस्मिन्नेव काले जानाति पश्यति च, कः ? केवली, न त्वन्यः, नियमात् नियमेन ।"

नन्दीसूत्रके ऊपर मलयगिरिसूरिने जो टीका लिखी है उसमें उन्होने भी युगपद्वादका पुरस्कर्ता सिद्धसेनाचार्यको बतलाया है। परन्तु उपाध्याय यशोविजयने, जिन्होंने सिद्धसेनको अभेदवादका पुरस्कर्ता बतलाया है, ज्ञानबिन्दुमे यह प्रकट किया है कि 'नन्दीवृत्तिमें सिद्धसेनाचार्यका जो युगपत् उपयोगवादित्व कहा गया है वह अभ्युपगमवादके अभिप्रायसे है, न कि स्वतन्त्रसिद्धान्तके अभिप्रायसे, क्योंकि क्रमोपयोग और अक्रम (युगपत्) उपयोगके पर्यनुयोगाऽनन्तर ही उन्होंने सन्मतिमे अपने पक्षका उद्भावन किया है'[१], जो कि ठीक नहीं है। मालूम होता है उपाध्यायजीकी दृष्टिमें सन्मतिके कर्ता सिद्धसेन ही एकमात्र सिद्धसेनाचार्यके रूपमें रहे हैं और इसीसे उन्होंने सिद्धसेन-विषयक दो विभिन्न वादोंके कथनोसे उत्पन्न हुई असङ्गतिको दूर करनेका यह प्रयत्न किया है, जो ठीक नहीं है। चुनाँचे प० सुखलालजीने उपाध्यायजीके इस कथनको कोई महत्व न देते हुए और हरिभद्र जैसे बहुश्रुत आचार्यके इस प्राचीनतम उल्लेखकी महत्ताका अनुभव करते हुए ज्ञानबिन्दुके परिचय (पृ० ६०)में अन्तको यह लिखा है कि "समान नामवाले अनेक आचार्य होते आए हैं। इसलिये असम्भव नहीं कि

१ "यत्तु युगपदुपयोगवादित्वं सिद्धसेनाचार्याणां नन्दिवृत्तावुक्तं तदभ्युपगमवादाभिप्रायेण, न तु स्वतन्त्रसिद्धान्ताभिप्रायेण, क्रमाऽक्रमोपयोगद्वयपर्यनुयोगानन्तरमेव स्वपक्षस्य सम्मतौ उद्भावितत्वादिति द्रष्टव्यम् ।" —ज्ञानबिन्दु पृ० ३३ ।

सिद्धसेनदिवाकरसे भिन्न कोई दूसरे भी सिद्धसेन हुए हों जो कि युगपद्वादके समर्थक हुए हो या माने जाते हो।" वे दूसरे सिद्धसेन अन्य कोई नहीं, उक्त तीनों द्वात्रिंशिकाओंमेसे किसीके भी कर्ता होने चाहियें। अतः इन तीनों द्वात्रिंशिकाओंको सन्मतिसूत्रके कर्ता आचार्य सिद्धसेनकी जो कृति माना जाता है वह ठीक और सङ्गत प्रतीत नहीं होता। इनके कर्ता दूसरे ही सिद्धसेन है जो केवलीके विषयमें युगपद्-उपयोगवादी थे और जिनकी युगपद्-उपयोग-वादिताका समर्थन हरिभद्राचार्यके उक्त प्राचीन उल्लेखसे भी होता है।

(३) १९वीं निश्चयद्वात्रिंशिकामें "सर्वोपयोग-द्वैविध्यमनेनोक्तमनत्तरम्" इस वाक्यके द्वारा यह सूचित किया गया है कि 'सब जीवोंके उपयोगका द्वैविध्य अविनश्वर है।' अर्थात् कोई भी जीव संसारी हो अथवा मुक्त, छद्मस्थज्ञानी हो या केवली सभीके ज्ञान और दर्शन दोनो प्रकारके उपयोगोंका सत्व होता है—यह दूसरी बात है कि एकमें वे क्रमसे प्रवृत्त (चरितार्थ) होते हैं और दूसरेमे आवरणाभावके कारण युगपत्। इससे उस एकोपयोगवादका विरोध आता है जिसका प्रतिपादन सन्मतिसूत्रमें केवलीको लक्ष्यमे लेकर किया गया है और जिसे अभेदवाद भी कहा जाता है। ऐसी स्थितिमे यह १९वीं द्वात्रिंशिका भी सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेनकी कृति मालूम नहीं होती।

(४) उक्त निश्चयद्वात्रिंशिका १९मे श्रुतज्ञानको मतिज्ञानसे अलग नहीं माना है—लिखा है कि 'मतिज्ञानसे अधिक अथवा भिन्न श्रुतज्ञान कुछ नहीं है श्रुतज्ञानको अलग मानना व्यर्थ तथा अतिप्रसङ्ग दोषको लिये हुए है।' और इस तरह मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानका अभेद प्रतिपादन किया है। इसी तरह अवधिज्ञानसे भिन्न मनःपर्ययज्ञानकी मान्यताका भी निषेध किया है—लिखा है कि 'या तो द्वीन्द्रियादिक जीवोंके भी, जो कि प्रार्थना और प्रतिघातके कारण चेष्टा करते हुए देखे जाते हैं, मनःपर्यायविज्ञानका मानना युक्त होगा अन्यथा मनःपर्ययज्ञान कोई जुदी वस्तु नहीं है। इन दानो मन्तव्योंके प्रतिपादक वाक्य इस प्रकार हैं:—

"वैयर्थ्योऽतिप्रसगाभ्या न मत्यधिकं श्रुतम्। सर्वेभ्यः केवल चक्षुस्तमः-क्रम विवेककृत् ॥१३॥"
"प्रार्थना-प्रतिघाताभ्या चेष्टन्ते द्वीन्द्रियादयः। मनःपर्यायविज्ञानं युक्तं तेषु न वाऽन्यथा ॥१७॥"

यह सब कथन सन्मतिसूत्रके विरुद्ध है, क्योंकि उसमें श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान दोनोको अलग ज्ञानोंके रूपमें स्पष्टरूपसे स्वीकार किया गया है—जैसा कि उसके द्वितीय[1] काण्डगत निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

"मणपज्जवणाणंतो णाणस्स य दरिसणस्स य विसेसो ॥३॥"
"जेण मणोविसयगयाण दमणं णत्थि दव्वजायाण।
तो मणपज्जवणाण णियमा णाण तु णिद्दिट्ठं ॥१९॥"
"मणपज्जवणाण दमणं ति तेणेह होइ ण य जुत्तं।
भण्णइ णाणं णोइंदियम्मि ण घडादयो जम्हा ॥२६॥"
"मइ-सुय-णाणणिमित्तो छडमत्थे होइ अत्थउवलभो।
एगयरम्मि वि तेसिं ण दंसणं दंसणं कत्तो ? ॥२७॥
जं पच्चक्खग्गहणं णं इंति सुयणाण-सम्मिया अत्था।
तम्हा दंसणसद्दो ण होइ सयले वि सुयणाणे ॥२८॥"

---

[1] तृतीयकाण्डमें भी आगमश्रुतज्ञानको प्रमाणरूपमें स्वीकार किया है।

ऐसी हालतमे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि निश्चयद्वात्रिंशिका (१९) उन्हीं सिद्धसेनाचार्यकी कृति नहीं है जो कि सन्मतिसूत्रके कर्ता हैं— दोनोंके कर्ता सिद्धसेननामकी समानताको धारण करते हुए भी एक दूसरेसे एकदम भिन्न हैं। साथ ही, यह कहनेमें भी कोई सङ्कोच नहीं होता कि न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेन भी निश्चयद्वात्रिंशिकाके कर्तासे भिन्न हैं, क्योंकि उन्होंने श्रुतज्ञानके भेदको स्पष्टरूपसे माना है और उसे अपने ग्रन्थमें शब्दप्रमाण अथवा आगम(श्रुत-शास्त्र)प्रमाणके रूपमें रक्खा है, जैसा कि न्यायावतारके निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

"दृष्टेष्टाऽव्याहताद्वाक्यात्परमार्थाऽभिधायिनः। तत्त्व-ग्राहितयोत्पन्नं मानं शाब्दं प्रकीर्तितम् ॥८॥
"आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट-विरोधकम्। तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथ-घट्टनम् ॥९॥"
"नयानामेकनिष्ठाना प्रवृत्तेः श्रुतवर्त्मनि। सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वादश्रुतमुच्यते ॥३०॥"

इस सम्बन्धमें पं० सुखलालजीने, ज्ञानबिन्दुकी परिचयात्मक प्रस्तावनामें, यह बतलाते हुए कि 'निश्चयद्वात्रिंशिकाके कर्ता सिद्धसेनने मति और श्रुतमें ही नहीं किन्तु अवधि और मनःपर्यायमें भी आगमसिद्ध भेद-रेखाके विरुद्ध तर्क करके उसे अमान्य किया है' एक फुटनोट-द्वारा जो कुछ कहा है वह इस प्रकार है:—

"यद्यपि दिवाकरश्री(सिद्धसेन)ने अपनी बत्तीसी (निश्चय० १९)मे मति और श्रुतके अभेदको स्थापित किया है फिर भी उन्होंने चिरप्रचलित मति-श्रुतके भेदकी सर्वथा अवगणना नहीं की है। उन्होंने न्यायावतारमे आगमप्रमाणको स्वतन्त्ररूपसे निर्दिष्ट किया है। जान पडता है इस जगह दिवाकरश्रीने प्राचीन परम्पराका अनुसरण किया और उक्त बत्तीसीमें अपना स्वतन्त्र मत व्यक्त किया। इस तरह दिवाकरश्रीके ग्रन्थोंमे आगमप्रमाणको स्वतन्त्र अतिरिक्त मानने और न माननेवाली दोनों दर्शनान्तरीय धाराएँ देखी जाती हैं जिनका स्वीकार ज्ञानबिन्दुमे उपाध्यायजीने भी किया है।" (पृ० २४)

इस फुटनोटमे जो बात निश्चयद्वात्रिंशिका और न्यायावतारके मति-श्रुत-विषयक विरोधके समन्वयमें कही गई है वही उनकी तरफसे निश्चयद्वात्रिंशिका और सन्मतिके अवधि-मनःपर्यय-विषयक विरोधके समन्वयमें भी कही जा सकती है और समझनी चाहिये। परन्तु यह सब कथन एकमात्र तीनों ग्रन्थोंकी एककर्तृत्व-मान्यतापर अवलम्बित है, जिसका साम्प्रदायिक मान्यताको छोड़कर दूसरा कोई भी प्रबल आधार नहीं है और इसलिये जब तक द्वात्रिंशिका, न्यायावतार और सन्मतिसूत्र तीनोंको एक ही सिद्धसेनकृत सिद्ध न कर दिया जाय तब तक इस कथनका कुछ भी मूल्य नहीं है। तीनो ग्रन्थोंका एक-कर्तृत्व अभी तक सिद्ध नहीं है; प्रत्युत इसके द्वात्रिंशिका और अन्य ग्रन्थोंके परस्पर विरोधी कथनोंके कारण उनका विभिन्नकर्तृक होना पाया जाता है। जान पड़ता है पं० सुखलालजीके हृदयमें यहाँ विभिन्न सिद्धसेनोंकी कल्पना ही उत्पन्न नहीं हुई और इसी लिये वे उक्त समन्वयकी कल्पना करनेमे प्रवृत्त हुए हैं, जो ठीक नहीं है, क्योंकि सन्मतिके कर्ता सिद्धसेन-जैसे स्वतन्त्र विचारक यदि निश्चयद्वात्रिंशिकाके कर्ता होते तो उनके लिये कोई वजह नहीं थी कि वे एक ग्रन्थमें प्रदर्शित अपने स्वतन्त्र विचारोंको दबाकर दूसरे ग्रन्थमे अपने विरुद्ध परम्पराके विचारोंका अनुसरण करते, खासकर उस हालतमें जब कि वे सन्मतिमे उपयोग-सम्बन्धी युगपद्वादादिकी प्राचीन परम्पराका खण्डन करके अपने अभेदवाद-विषयक नये स्वतन्त्र विचारोंको प्रकट करते हुए देखे जाते हैं—वहींपर वे श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान-विषयक अपने उन स्वतन्त्र

---

१ यह पद्य मूलमें स्वामी समन्तभद्रकृत रत्नकरण्डकका है, वहींसे उद्धृत किया गया है।

विचारोको भी प्रकट कर सकते थे, जिनके लिये ज्ञानोपयोगका प्रकरण होनेके कारण वह स्थल (सन्मतिका द्वितीय काण्ड) उपयुक्त भी था, परन्तु वैसा न करके उन्होंने वहाँ उक्त द्वात्रिंशिकाके विरुद्ध अपने विचारोंको रक्खा है और इसलिये उसपरसे यही फलित होता है कि वे उक्त द्वात्रिंशिकाके कर्ता नहीं है—उसके कर्ता कोई दूसरे ही सिद्धसेन होने चाहियें। उपाध्याय यशोविजयजीने द्वात्रिंशिकाका न्यायावतार और सन्मतिके साथ जो उक्त विरोध बैठता है उसके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा।

यहाँ इतना और भी जान लेना चाहिये कि श्रुतकी अमान्यतारूप इस द्वात्रिंशिकाके कथनका विरोध न्यायावतार और सन्मतिके साथ ही नही है बल्कि प्रथम द्वात्रिंशिकाके साथ भी है, जिसके 'सुनिश्चितं नः' इत्यादि ३०वें पद्यमें 'जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः' जैसे शब्दों-द्वारा अर्हत्प्रवचनरूप श्रुतको प्रमाण माना गया है।

(५) निश्चयद्वात्रिंशिकाकी दो बातें और भी यहाँ प्रकट कर देनेकी हैं, जो सन्मतिके साथ स्पष्ट विरोध रखती हैं और वे निम्न प्रकार हैं:—

"ज्ञान दर्शन-चारित्राण्युपायाः शिवहेतवः। अन्योऽन्य-प्रतिपक्षत्वाच्छुद्धावगम-शक्तयः ॥१॥"

इस पद्यमे ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रको मोक्ष-हेतुओंके रूपमे तीन उपाय(मार्ग) बतलाया है—तीनोंको मिलाकर मोक्षका एक उपाय निर्दिष्ट नहीं किया, जैसा कि तत्त्वार्थ-सूत्रके प्रथमसूत्रमें मोक्षमार्गः' इस एकवचनात्मक पदके प्रयोग-द्वारा किया गया है। अतः ये तीनों यहाँ समस्तरूपमें नहीं किन्तु व्यस्त (अलग अलग) रूपमें मोक्षके मार्ग निर्दिष्ट हुए हैं और उन्हें एक दूसरेके प्रतिपक्षी लिखा है। साथ ही तीनों सम्यक् विशेषणसे शून्य हैं और दर्शनको ज्ञानके पूर्व न रखकर उसके अनन्तर रक्खा गया है जो कि समूची द्वात्रिंशिकापरसे श्रद्धान अर्थका वाचक भी प्रतीत नहीं होता। यह सब कथन सन्मतिसूत्रके निम्न वाक्योंके विरुद्ध जाता है जिनमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी प्रतिपत्तिसे सम्पन्न भव्यजीवको ससारके दुःखोंका अन्तकर्तारूपमें उल्लेखित किया है और कथनको हेतुवाद सम्मत बतलाया है (३-४४) तथा दर्शन शब्दका अर्थ जिनप्रणीत पदार्थोंका श्रद्धान ग्रहण किया है। साथ ही सम्यग्दर्शनके उत्तरवर्ती सम्यग्ज्ञानको सम्यग्दर्शनसे युक्त बतलाते हुए वह इस तरह सम्यग्दर्शनरूप भी है, ऐसा प्रतिपादन किया है (२-३२, ३३):—

'एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावओ भावे।
पुरिसस्साभिणिबोहे दंसणसद्दो हवइ जुत्तो ॥२-३२॥
सम्मण्णाणे णियमेण दंसणं दंसणे उ भयणिज्जं।
सम्मण्णाणं च इमं ति अत्थओ होइ उववण्णं ॥२-३३॥
भविओ सम्मद्दंसण-णाण-चरित्त-पडिवत्ति-संपण्णो।
णियमा दुक्खंतकडो त्ति लक्खणं हेउवायस्स ॥३-४४॥

निश्चयद्वात्रिंशिकाका यह कथन दूसरी कुछ द्वात्रिंशिकाओंके भी विरुद्ध पड़ता है, जिसके दो नमूने इस प्रकार है:—

"क्रिया च सज्ञान-वियोग-निष्फला क्रिया विहीना च विबोधसपदम्।
निरस्यता क्लेश समूह शान्तये त्वया शिवायालिखितेव पद्धतिः ॥१-२९॥"

"यथाऽगद-परिज्ञानं नालमाऽऽमय-शान्तये।
अचारित्र तथा ज्ञान न बुद्धयध्य(व्य)वसायतः ॥१७-२७॥"

इनमेंसे पहली द्वात्रिंशिकाके उद्धरणमे यह सूचित किया है कि 'वीरजिनेन्द्रने सम्यग्ज्ञानसे रहित क्रिया (चारित्र)को और क्रियासे विहीन सम्यग्ज्ञानकी सम्पदाको क्लेश-समूहकी शान्ति अथवा शिवप्राप्तिके लिये निष्फल एवं असमर्थ बतलाया है और इसलिये ऐसी क्रिया तथा ज्ञानसम्पदाका निषेध करते हुए ही उन्होंने मोक्षपद्धतिका निर्माण किया है।' और १७वीं द्वात्रिंशिकाके उद्धरणमे बतलाया है कि 'जिस प्रकार रोगनाशक औषधका परिज्ञान-मात्र रोगकी शान्तिके लिये समर्थ नहीं होता उसी प्रकार चारित्ररहित ज्ञानको समझना चाहिए—वह भी अकेला भवरोगको शान्त करनेमें समर्थ नहीं है।' ऐसी हालतमे ज्ञान दर्शन और चारित्रको अलग-अलग मोक्षकी प्राप्तिका उपाय बतलाना इन द्वात्रिंशिकाओंके भी विरुद्ध ठहरता है।

"प्रयोग-विस्रसाकर्म तदभावस्थितिस्तथा। लोकानुभाववृत्तान्तः किं धर्माऽधर्मयोः फलम् ॥१९-२४॥
आकाशमवगाहाय तदनन्या दिगन्यथा। तावप्येवमनुच्छेदात्ताभ्यां वाऽन्यमुदाहृतम् ॥१९-२५॥
प्रकाशवदनिष्टं स्यात्साध्ये नार्थस्तु न श्रमः। जीव पुद्गलयोरेव परिशुद्धः परिग्रहः ॥१९-२६॥"

इन पद्योमे द्रव्योकी चर्चा करते हुए धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्योंकी मान्यताको निरर्थक ठहराया है तथा जीव और पुद्गलका ही परिशुद्ध परिग्रह करना चाहिए अर्थात् इन्हीं दो द्रव्योको मानना चाहिए, ऐसी प्रेरणा की है। यह सब कथन भी सन्मतिसूत्रके विरुद्ध है, क्योंकि उसके तृतीय काण्डमे द्रव्यगत उत्पाद तथा व्यय (नाश)के प्रकारोंको बतलाते हुए उत्पादके जो प्रयोगजनित (प्रयत्नजन्य) तथा वैस्रसिक (स्वाभाविक) ऐसे दो भेद किये हैं उनमे वैस्रसिक उत्पादके भी समुदायकृत तथा ऐकत्विक ऐसे दो भेद निर्दिष्ट किये है और फिर यह बतलाया है कि ऐकत्विक उत्पाद आकाशादिक तीन द्रव्यो (आकाश, धर्म, अधर्म)में परनिमित्त से होता है और इसलिये अनियमित होता है। नाशकी भी ऐसी ही विधि बतलाई है। इससे सन्मतिकार सिद्धसेनकी इन तीन अमूर्तिक द्रव्योंके, जो कि एक एक है, अस्तित्व-विषयमें मान्यता स्पष्ट है। यथाः—

"उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ य विस्ससा चेव।
तत्थ उ पओगजणिओ समुदयवायो अपरिसुद्धो ॥३२॥
साभाविओ वि समुदयकओ व्व एगत्तिओ व्व होज्जाहि।
आगासाईआणं तिण्ह परप्पच्चओऽणियमा ॥३३॥
विगमस्स वि एस विही समुदयजणियम्मि सो उ दुवियप्पो।
समुदयविभागमेत्तं अत्थंतरभावगमणं च ॥३४॥"

इस तरह यह निश्चयद्वात्रिंशिका कतिपय द्वात्रिंशिकाओ, न्यायावतार और सन्मतिके विरुद्ध प्रतिपादनोको लिये हुए है। सन्मतिके विरुद्ध तो वह सबसे अधिक जान पड़ती है और इसलिये किसी तरह भी सन्मतिकार सिद्धसेनकी कृति नहीं कही जा सकती। यही एक द्वात्रिंशिका ऐसी है जिसके अन्तमें उसके कर्ता सिद्धसेनाचार्यको अनेक प्रतियोंमें श्वेतपट (श्वेताम्बर) विशेषणके साथ 'द्वेष्य' विशेषणसे भी उल्लेखित किया गया है जिसका अर्थ द्वेषयोग्य, विरोधी अथवा शत्रुका होता है और यह विशेषण सम्भवतः प्रसिद्ध जैन सैद्धान्तिक मान्यताओंके विरोधके कारण ही उन्हें अपनी ही सम्प्रदायके किसी असहिष्णु विद्वान्-द्वारा दिया गया जान पड़ता है। जिस पुष्पिकावाक्यके साथ इस विशेषण पदका प्रयोग किया गया है वह भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट पूना और एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल (कलकत्ता)की प्रतियोमे निम्न प्रकारसे पाया जाता है—

"द्वेष्य-श्वेतपटसिद्धसेनाचार्यस्य कृतिः निश्चयद्वात्रिंशिकैकोनविंशतिः ।"

दूसरी किसी द्वात्रिंशिकाके अन्तमें ऐसा कोई पुष्पिकावाक्य नहीं है। पूर्वकी १८ और उत्तरवर्ती १ ऐसे १९ द्वात्रिंशिकाओंके अन्तमें तो कर्ताका नाम तक भी नहीं दिया है—द्वात्रिंशिकाकी संख्यासूचक एक पंक्ति 'इति' शब्दसे युक्त अथवा वियुक्त और कहीं कही द्वात्रिंशिकाके नामके साथ भी दी हुई है।

(६) द्वात्रिंशिकाओंकी उपर्युक्त स्थितिमें यह कहना किसी तरह भी ठीक प्रतीत नहीं होता कि उपलब्ध सभी द्वात्रिंशिकाएँ अथवा २१वींको छोड़कर बीस द्वात्रिंशिकाएँ सन्मतिकार सिद्धसेनकी ही कृतियाँ हैं, क्योंकि पहली, दूसरी, पाँचवीं और उन्नीसवीं ऐसी चार द्वात्रिंशिकाओंकी बाबत हम ऊपर देख चुके हैं कि वे सन्मतिके विरुद्ध जानेके कारण सन्मतिकारकी कृतियाँ नहीं बनतीं। शेष द्वात्रिंशिकाएँ यदि इन्हीं चार द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनोंमेंसे किसी एक या एकसे अधिक सिद्धसेनोंकी रचनाएँ हैं तो भिन्न व्यक्तित्वके कारण उनमेसे कोई भी सन्मतिकार सिद्धसेनकी कृति नहीं हो सकती। और यदि ऐसा नही है तो उनमेंसे अनेक द्वात्रिंशिकाएँ सन्मतिकार सिद्धसेनकी भी कृति हो सकती हैं, परन्तु हैं और अमुक अमुक हैं यह निश्चितरूपमे उस वक्त तक नहीं कहा जा सकता जब तक इस विषयका कोई स्पष्ट प्रमाण सामने न आजाए।

(७) अब रही न्यायावतारकी बात, यह ग्रन्थ सन्मतिसूत्रसे कोई एक शताब्दीसे भी अधिक बादका बना हुआ है, क्योंकि इसपर समन्तभद्रस्वामीके उत्तरकालीन पात्रस्वामी (पात्रकेसरी) जैसे जैनाचार्योंका ही नहीं किन्तु धर्मकीर्ति और धर्मोत्तर जैसे बौद्धाचार्योंका भी स्पष्ट प्रभाव है। डा० हर्मन जैकोबीके मतानुसार[1] धर्मकीर्तिने दिग्नागके प्रत्यक्षलक्षण[2]में 'कल्पनापोढ' विशेषणके साथ 'अभ्रान्त' विशेषणकी वृद्धिकर उसे अपने अनुरूप सुधारा था अथवा प्रशस्तरूप दिया था और इसलिये "प्रत्यक्ष कल्पनापोढमभ्रान्तम्" यह प्रत्यक्षका धमकीर्ति-प्रतिपादित प्रसिद्ध लक्षण है जो उनके न्यायबिन्दु ग्रन्थमे पाया जाता है और जिसमें 'अभ्रान्त' पद अपनी खास विशेषता रखता है। न्यायावतारके चौथे पद्यमें प्रत्यक्षका लक्षण, अकलङ्कदेवकी तरह 'प्रत्यक्ष विशद ज्ञानं' न देकर, जो "अपरोक्षतयार्थस्य ग्राहक ज्ञानमीदृश प्रत्यक्षम्" दिया है और अगले पद्यमें, अनुमानका लक्षण देते हुए, 'तदभ्रान्त प्रमाणत्वात्समक्षवत्" वाक्यके द्वारा उसे (प्रत्यक्षको) 'अभ्रान्त' विशेषणसे विशेषित भी सूचित किया है उससे यह साफ ध्वनित होता है कि सिद्धसेनके सामने—उनके लक्ष्यमें—धर्मकीर्तिका उक्त लक्षण भी स्थित था और उन्होंने अपने लक्षणमें 'ग्राहक' पदके प्रयोग-द्वारा जहाँ प्रत्यक्षको व्यवसायात्मक ज्ञान बतलाकर धर्मकीर्तिके 'कल्पनापोढ' विशेषणका निरसन अथवा वेधन किया है वहाँ उनके 'अभ्रान्त' विशेषणको प्रकारान्तरसे स्वीकार भी किया है। न्यायावतारके टीकाकार सिद्धर्षि भी 'ग्राहक' पदके द्वारा बौद्धो (धर्मकीर्ति)के उक्त लक्षणका निरसन होना बतलाते हैं। यथा—

"ग्राहकमिति च निर्णायकं दृष्टव्यं, निर्णयाभावेऽर्थग्रहणायोगात्। तेन यत् ताथागतैः प्रत्यपादि 'प्रत्यक्ष कल्पनापोढमभ्रान्तम्' [न्या बि ४] इति, तदपास्तं भवति। तस्य युक्तिरिक्तत्वात्।"

इसी तरह 'त्रिरूपाल्लिङ्गाद्यदनुमेये ज्ञानं तदनुमानं' यह धर्मकीर्तिके अनुमानका लक्षण है। इसमें 'त्रिरूपात्' पदके द्वारा लिङ्गको त्रिरूपात्मक बतलाकर अनुमानके साधारण

---

[1] देखो, 'समराइच्चकहा'की जैकोबीकृत प्रस्तावना तथा न्यायावतारकी डा. पी एल. वैद्यकृत प्रस्तावना।

[2] "प्रत्यक्षं कल्पनापोढ नामजात्याद्यसंयुतम्।" (प्रमाणसमुच्चय)।

"प्रत्यक्ष कल्पनापोढ यज्ज्ञान नामजात्यादिकल्पनारहितम्।" (न्यायप्रवेश)।

लक्षणको एक विशेषरूप दिया गया है। यहाँ इस अनुमानज्ञानको अभ्रान्त या भ्रान्त ऐसा कोई विशेषण नहीं दिया गया, परन्तु न्यायबिन्दुकी टीकामें धर्मोत्तरने प्रत्यक्ष-लक्षणकी व्याख्या करते और उसमें प्रयुक्त हुए 'अभ्रान्त' विशेषणकी उपयोगिता बतलाते हुए *"भ्रान्तं ह्यनुमानम्"* इस वाक्यके द्वारा अनुमानको भ्रान्त प्रतिपादित किया है। जान पड़ता है इस सबको भी लक्ष्यमें रखते हुए ही सिद्धसेनने अनुमानके "साध्याविनाभुनो(वो) लिङ्गात्साध्यनिश्चायकमनुमानं" इस लक्षणका विधान किया है और इसमें लिङ्गका 'साध्याविनाभावी' ऐसा एकरूप देकर धर्मकीर्तिके 'त्रिरूप'का—पक्षधर्मत्व, सपक्षेसत्व तथा विपक्षासत्वरूपका निरसन किया है। साथ ही, 'तदभ्रान्तं समक्षवत्' इस वाक्यकी योजनाद्वारा अनुमानको प्रत्यक्षकी तरह अभ्रान्त बतलाकर बौद्धोंकी उसे भ्रान्त प्रतिपादन करनेवाली उक्त मान्यताका खण्डन भी किया है। इसी तरह "न प्रत्यक्षमपि भ्रान्तं प्रमाणत्वविनिश्चयात्" इत्यादि छठे पद्यमें उन दूसरे बौद्धोंकी मान्यताका खण्डन किया है जो प्रत्यक्षको अभ्रान्त नहीं मानते। यहाँ लिङ्गके इस एकरूपका और फलतः अनुमानके उक्त लक्षणका आभारी पात्रस्वामीका वह हेतुलक्षण है जिसे न्यायावतारकी २२वीं कारिकामें *"अन्यथानुपपन्नत्वं हेतोर्लक्षणमीरितम्"* इस वाक्यके द्वारा उद्धृत भी किया गया है और जिसके आधारपर पात्रस्वामीने बौद्धोंके त्रिलक्षणहेतुका कदर्थन किया था तथा 'त्रिलक्षणकदर्थन'[1] नामका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही रच डाला था, जो आज अनुपलब्ध है परन्तु उसके प्राचीन उल्लेख मिल रहे हैं। विक्रमकी ८वीं-९वीं शताब्दीके बौद्ध विद्वान् शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रहमें त्रिलक्षणकदर्थन सम्बन्धी कुछ श्लोकोंको उद्धृत किया है और उनके शिष्य कमलशीलने टीकामें उन्हें "अन्यथेत्यादिना पात्रस्वामिमतमाशङ्कते" इत्यादि वाक्योंके साथ दिया है। उनमेंसे तीन श्लोक नमूनेके तौरपर इस प्रकार हैं—

अन्यथानुपपन्नत्वे ननु दृष्टा सुहेतुता। नाऽसति त्र्यंशकस्याऽपि तस्मात् क्लीबास्त्रिलक्षणाः॥ १३६४॥
अन्यथानुपपन्नत्वं यस्य तस्यैव हेतुता। दृष्टान्तौ द्वावपि स्तां वा मा वा तौ हि न कारणम्॥१३६८॥
अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्? नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रियेण किम्?॥ १३६९॥

इनमेंसे तीसरे पद्यको विक्रमकी ७वीं-८वीं शताब्दीके[2] विद्वान् अकलङ्कदेवने अपने 'न्यायविनिश्चय' (कारिका ३२३)में अपनाया है और सिद्धिविनिश्चय (प्र० ६)में इसे स्वामीका 'अमलालीढ पद' प्रकट किया है तथा वादिराजने न्यायविनिश्चय-विवरणमें इस पद्यको पात्रकेसरीसे सम्बद्ध 'अन्यथानुपपत्तिवार्तिक' बतलाया है।

धर्मकीर्तिका समय ई० सन् ६२५से ६५० अर्थात् विक्रमकी ७वीं शताब्दीका प्रायः चतुर्थ चरण, धर्मोत्तरका समय ई० सन् ७२५से ७५० अर्थात् विक्रमकी ८वीं शताब्दीका प्रायः चतुर्थ चरण और पात्रस्वामीका समय विक्रमकी ७वीं शताब्दीका प्रायः तृतीय चरण पाया जाता है, क्योंकि वे अकलङ्कदेवसे कुछ पहले हुए हैं। तब सन्मतिकार सिद्धसेनका समय वि० संवत् ६६६से पूर्वका सुनिश्चित है जैसा कि अगले प्रकरणमें स्पष्ट करके बतलाया

---

१ महिमा स पात्रकेसरिगुरोः परं भवति यस्य भक्त्यासीत्। पद्मावती सहाया त्रिलक्षणकदर्थनं कर्तुम्॥
—मल्लिषेणप्रशस्ति (श्र० शि० ५४)

२ विक्रमसंवत् ७०० में अकलङ्कदेवका बौद्धोंके साथ महान् वाद हुआ है, जैसा कि अकलङ्कचरितके निम्न पद्यसे प्रकट है—
विक्रमार्क-शकाब्दीय शतसप्त-प्रमाजुषि। कालेऽकलङ्क-यतिनो बौद्धैर्वादो महानभूत्॥

जायगा। ऐसी हालतमे जो सिद्धसेन सन्मतिके कर्ता हैं वे ही न्यायावतारके कर्ता नही हो सकते—समयकी दृष्टिसे दोनों ग्रन्थोंके कर्ता एक-दूसरेसे भिन्न होने चाहियें।

इस विषयमे पं० सुखलालजी आदिका यह कहना है[1] कि 'प्रो० टुची (Tousi) ने दिग्नागसे पूर्ववर्ती बौद्धन्यायके ऊपर जो एक निबन्ध रॉयल एशियाटिक सोसाइटीके जुलाई सन् १९२९के जर्नलमे प्रकाशित कराया है उसमे बौद्ध-सस्कृत-ग्रन्थोके चीनी तथा तिब्बती अनुवादके आधारपर यह प्रकट किया है कि 'योगाचार्य भूमिशास्त्र और प्रकरणार्यवाचा नामके ग्रन्थोमे प्रत्यक्षकी जो व्याख्या दी है उसके अनुसार प्रत्यक्षको अपरोक्ष, कल्पनापोढ, निर्विकल्प और भूल-विनाका अभ्रान्त अथवा अव्यभिचारी होना चाहिये। साथ ही अभ्रान्त तथा अव्यभिचारी शब्दोंपर नोट देते हुए बतलाया है कि ये दोनों पर्यायशब्द हैं, और चीनी तथा तिब्बती भाषाके जो शब्द अनुवादोंमें प्रयुक्त हैं उनका अनुवाद अभ्रान्त तथा अव्यभिचारी दोनों प्रकारसे हो सकता है। और फिर स्वयं 'अभ्रान्त' शब्दको ही स्वीकार करते हुए यह अनुमान लगाया है कि धर्मकीर्तिने प्रत्यक्षकी व्याख्यामे 'अभ्रान्त' शब्दकी जो वृद्धि की है वह उनके द्वारा की गई कोई नई वृद्धि नही है बल्कि सौत्रान्तिकोंकी पुरानी व्याख्याको स्वीकार करके उन्होने दिग्नागकी व्याख्यामे इस प्रकारसे सुधार किया है। योगाचार्य-भूमिशास्त्र असङ्गके गुरु मैत्रेयकी कृति है, असङ्ग (मैत्रेय ?)का समय ईसाकी चौथी शताब्दीका मध्यकाल है, इससे प्रत्यक्षके लक्षणमें 'अभ्रान्त' शब्दका प्रयोग तथा अभ्रान्तपनाका विचार विक्रमकी पॉचवीं शताब्दीके पहले भले प्रकार ज्ञात था अर्थात् यह (अभ्रान्त) शब्द सुप्रसिद्ध था। अतः सिद्धसेनदिवाकरके न्यायावतारमें प्रयुक्त हुए मात्र 'अभ्रान्त' पदपरसे उसे धमकीर्तिके बादका बतलाना जरूरी नहीं। उसके कर्ता सिद्धसेनको असङ्गके बाद और धर्मकीतिके पहले माननेमे कोई प्रकारका अन्तराय (विघ्न-बाधा) नही है।'

इस कथनमें प्रो० टुचीके कथनको लेकर जो कुछ फलित किया गया है वह ठीक नही है, क्योंकि प्रथम तो प्रोफेसर महाशय अपने कथनमें स्वय भ्रान्त हैं—वे निश्चयपूर्वक यह नहीं कह रहे हैं कि उक्त दोनों मूल सस्कृत ग्रन्थोंमें प्रत्यक्षकी जो व्याख्या दी अथवा उसके लक्षणका जो निर्देश किया है उसमें 'अभ्रान्त' पदका प्रयोग पाया ही जाता है बल्कि साफ तौरपर यह सूचित कर रहे हैं कि मूलग्रन्थ उनके सामने नहीं, चीनी तथा तिब्बती अनुवाद ही सामने है और उनमें जिन शब्दोका प्रयोग हुआ है उनका अर्थ अभ्रान्त तथा अव्यभिचारि दोनों रूपसे हो सकता है। तीसरा भी कोई अर्थ अथवा सस्कृत शब्द उनका वाच्य हो सकता हो तो उसका निषेध भी नहीं किया। दूसरे, उक्त स्थितिमें उन्होने अपने प्रयोजनके लिये जो अभ्रान्त पद स्वीकार किया है वह उनकी रुचिकी बात है न कि मूलमे अभ्रान्त-पदके प्रयोगकी कोई गारटी है और इसलिये उसपरसे निश्चितरूपमे यह फलित कर लेना कि 'विक्रमकी पॉचवी शताब्दीके पहले प्रत्यक्षके लक्षणमे अभ्रान्त' पदका प्रयोग भले प्रकार ज्ञात तथा सुप्रसिद्ध था' फलितार्थ तथा कथनका अतिरेक है और किसी तरह भी समुचित नहीं कहा जा सकता। तीसरे, उन मूल सस्कृत ग्रन्थोंमें यदि 'अव्यभिचारि' पदका ही प्रयोग हो तब भी उसके स्थानपर धर्मकीर्तिने 'अभ्रान्त' पदकी जो नई योजना की है वह उसीकी योजना कहलाएगी और न्यायावतारमें उसका अनुसरण होनेसे उसके कर्ता सिद्धसेन धर्मकीतिके बादके ही विद्वान् ठहरेंगे। चौथे, (पात्रकेसरीस्वामीके हेतु लक्षणका जो उद्धरण न्यायावतारमें पाया जाता है और जिसका परिहार नहीं किया जा सकता उससे सिद्धसेनका धर्मकीर्तिके

[1] देखो, सन्मतिके गुजराती सस्करणकी प्रस्तावना पृ० ४१, ४२, और अंग्रेजी सस्करणकी प्रस्तावना पृ० १२-१४।

बाद होना और भी पुष्ट होता है। ऐसी हालतमे न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेनको असङ्गके बादका और धर्मकीर्तिके पूर्वका बतलाना निरापद् नहीं है—उसमें अनेक विघ्न-बाधाऍ उपस्थित होती हैं। फलतः न्यायावतार धर्मकीर्ति और पात्रस्वामीके बादकी रचना होनेसे उन सिद्धसेनाचार्यकी कृति नहीं हो सकता जो सन्मतिसूत्रके कर्ता हैं। जिन अन्य विद्वानोंने उसे अधिक प्राचीनरूपमे उल्लेखित किया है वह मात्र द्वात्रिंशिकाओ, सन्मति और न्यायावतार-को एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ मानकर चलनेका फल है।

इस तरह यहाँ तकके इस सब विवेचनपरसे स्पष्ट है कि सिद्धसेनके नामपर जो भी ग्रन्थ चढ़े हुए हैं उनमेसे सन्मतिसूत्रको छोड़कर दूसरा कोई भी ग्रन्थ सुनिश्चितरूपमे सन्मतिकारकी कृति नहीं कहा जा सकता—अकेला सन्मतिसूत्र ही असपत्नभावसे अभीतक उनकी कृतिरूपमें स्थित है। कलको अविरोधिनी द्वात्रिंशिकाओंमेसे यदि किसी द्वात्रिंशिकाका उनकी कृतिरूपमे सुनिश्चय हो गया तो वह भी सन्मतिके साथ शामिल हो सकेगी।

(ख) सिद्धसेनका समयादिक—

अब देखना यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थ 'सन्मति'के कर्ता सिद्धसेनाचार्य कब हुए हैं और किस समय अथवा समयके लगभग उन्होने इस ग्रन्थकी रचना की है। ग्रन्थमे निर्माणकालका कोई उल्लेख और किसी प्रशस्तिका आयोजन न होनेके कारण दूसरे साधनोपरसे ही इस विषय-को जाना जा सकता है और वे दूसरे साधन हैं ग्रन्थका अन्तःपरीक्षण—उसके सन्दर्भ-साहित्य-की जांच-द्वारा बाह्य प्रभाव एव उल्लेखादिका विश्लेषण—, उसके वाक्यो तथा उसमे चर्चित खास विषयोका अन्यत्र उल्लेख, आलोचन-प्रत्यालोचन, स्वीकार-अस्वीकार अथवा खण्डन-मण्डनादिक और साथ ही सिद्धसेनके व्यक्तित्व-विषयक महत्वके प्राचीन उद्गार। इन्हीं सब साधनो तथा दूसरे विद्वानोंके इस दिशामे किये गये प्रयत्नोंको लेकर मैंने इस विषयमे जो कुछ अनुसंधान एवं निर्णय किया है उसे ही यहाँपर प्रकट किया जाता है:—

(१) सन्मतिके कर्ता सिद्धसेन केवलीके ज्ञान दर्शनोपयोग-विषयमें अभेदवादके पुरस्कर्ता हैं यह बात पहले (पिछले प्रकरणमे) बतलाई जा चुकी है। उनके इस अभेदवादका खण्डन इधर दिगम्बर सम्प्रदायमे सर्वप्रथम अकलंकदेवके राजवार्त्तिकभाष्यमें[1] और उधर श्वेताम्बर सम्प्रदायमे सर्वप्रथम जिनभद्रक्षमाश्रमणके विशेषावश्यकभाष्य तथा विशेषणवती नामके ग्रन्थोमें[2] मिलता है। साथ ही तृतीय काण्डकी 'णत्थि पुढवीविसिट्टो' और 'दोहि वि णएहिं णीयं' नामकी दो गाथाएँ (५२,४९) विशेषावश्यकभाष्यमें क्रमशः गा० न० २१०४ २१९५ पर उद्धृत पाई जाती हैं[3]। इसके सिवाय, विशेषावश्यकभाष्यकी स्वोपज्ञटीकामें[4] 'णामाइतियं दव्वट्ठियस्स' इत्यादि गाथा ७५की व्याख्या करते हुए ग्रन्थकारने स्वय "द्रव्यास्तिकनयावलम्बिनौ संग्रह-व्यवहारौ ऋजुसूत्रादयस्तु पर्यायनयमतानुसारिणः आचार्यसिद्धसेनाऽभिप्रायात्" इस वाक्यके द्वारा सिद्धसेनाचार्यका नामोल्लेखपूर्वक उनके सन्मतिसूत्र-गत मतका उल्लेख किया है, ऐसा मुनि पुण्यविजयजीके मगसिर सुदि १०मी सं० २००५के एक पत्रसे मालूम हुआ है। दोनों

---

१ राजव १०भ० अ० ६ सू० १० वा० १४-१६।

२ विशेषा० भा० गा० ३०८९ से (कोटयाचार्यकी वृत्तिमें गा० ३७२९से) तथा विशेषणवती गा० १८४ से २८०, सन्मति-प्रस्तावना पृ० ७५।

३ उद्धरण-विषयक विशेष ऊहापोहके लिये देखो, सन्मति-प्रस्तावना पृ० ६८, ६९।

४ इस टीकाके अस्तित्वका पता हालमें मुनि पुण्यविजयजीको चला है। देखो, श्री आत्मानन्दप्रकाश पुस्तक ४५ अक ८ पृ० १४२ पर उनका तद्विषयक लेख।

ग्रन्थकार विक्रमकी ७वीं शताब्दीके प्रायः उत्तरार्धके विद्वान् हैं। अकलंकदेवका विक्रम स० ७०० मे बौद्धोके साथ महान वाद हुआ है जिसका उल्लेख पिछले एक फुटनोटमें अकलंकचरितके आधारपर किया जा चुका है, और जिनभद्रक्षमाश्रमणने अपना विशेषावश्यकभाष्य शक सं० ५३१ अर्थात् वि० सं० ६६६ मे बनाकर समाप्त किया है। ग्रन्थका यह रचनाकाल उन्होंने स्वय ही ग्रन्थके अन्तमे दिया है, जिसका पता श्री जिनविजयजीको जैसलमेर भण्डारकी एक अतिप्राचीन प्रतिको देखते हुए चला है। ऐसी हालतमें सन्मतिकार सिद्धसेनका समय विक्रम स० ६६६से पूर्वका सुनिश्चित है परन्तु वह पूर्वका समय कौन-सा है?—कहाँ तक उसकी कमसे कम सीमा है?—यही आगे विचारणीय है।

(२) सन्मतिसूत्रमे उपयोग-द्वयके क्रमवादका जोरोंके साथ खण्डन किया गया है, यह बात भी पहले बतलाई जा चुकी तथा मूल ग्रन्थके कुछ वाक्योंको उद्धृत करके दर्शाई जा-चुकी है। उस क्रमवादका पुरस्कर्ता कौन है और उसका समय क्या है? यह बात यहाँ खास तौरसे जान लेनेकी है। हरिभद्रसूरिने नन्दिवृत्तिमे तथा अभयदेवसूरिने सन्मतिकी टीकामें यद्यपि जिन-भद्रक्षमाश्रमणको क्रमवादके पुरस्कर्तारूपमे उल्लेखित किया है परन्तु वह ठीक नहीं है, क्योंकि वे तो सन्मतिकारके उत्तरवर्ती हैं, जबकि होना चाहिये कोई पूर्ववर्ती। यह दूसरी बात है कि उन्होंने क्रमवादका जोरोके साथ समर्थन और व्यवस्थित रूपसे स्थापन किया है, संभवतः इसीसे उनको उस वादका पुरस्कर्ता समझ लिया गया जान पड़ता है। अन्यथा, क्षमाश्रमणजी स्वयं अपने निम्न वाक्यों द्वारा यह सूचित कर रहे हैं कि उनसे पहले युगपद्वाद, क्रमवाद तथा अभेदवादके पुरस्कर्ता हो चुके हैं:—

"केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली णियमा।
अण्णे एगतरियं इच्छंति सुओवएसेणं ॥ १८४ ॥
अण्णे ण चेव वीसुं दंसणमिच्छंति जिणवरिंदस्स।
जं चिय केवलणाणं तं चिय से दरिसणं विंति ॥ १८५ ॥ —विशेषणवती

पं० सुखलालजी आदिने भी कथन-विरोधको महसूस करते हुए प्रस्तावनामें यह स्वीकार किया है कि जिनभद्र और सिद्धसेनसे पहले क्रमवादके पुरस्कर्तारूपमे कोई विद्वान् होने ही चाहियें जिनके पक्षका सन्मतिमें खण्डन किया गया है, परन्तु उनका कोई नाम उपस्थित नहीं किया। जहाँ तक मुझे मालूम है वे विद्वान् निर्युक्तिकार भद्रबाहु होने चाहियें, जिन्होंने आवश्यकनिर्युक्तिके निम्न वाक्य-द्वारा क्रमवादकी प्रतिष्ठा की है—

णाणमि दंसणमि अ इत्तो एगयरयंमि उवजुत्ता।
सव्वस्स केवलिस्सा(स्स वि) जुगवं दो णत्थि उवओगा ॥ ९७८ ॥

ये निर्युक्तिकार भद्रबाहु श्रुतकेवली न होकर द्वितीय भद्रबाहु हैं जो अष्टाङ्गनिमित्त तथा मन्त्र-विद्याके पारगामी होनेके कारण 'नैमित्तिक'[1] कहे जाते हैं, जिनकी कृतियोंमें

---

[1] पावयणी१ धम्मकही२ वाई३ णेमित्तिओ४ तवस्सी५ य।
विज्जा६ सिद्धो७ य कई८ अट्ठेव पभावगा भणिया ॥ १ ॥
अजरक्ख१ नंदिसेणो२ सिरिगुत्तविणेय३ भद्दबाहू४ य।
खवग५ऽज्जखवुड६ समिया७ दिवायरो८ वा इहाऽऽहरणा ॥२॥
—'छेदसूत्रकार अने निर्युक्तिकार' लेखमे उद्धृत।

भद्रबाहुसंहिता और उपसर्गहरस्तोत्रके भी नाम लिये जाते हैं और जो ज्योतिर्विद् वराहमिहरके सगे भाई माने जाते हैं। इन्होंने दशाश्रुतस्कन्ध-निर्युक्तिमें स्वयं अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुको 'प्राचीन' विशेषणके साथ नमस्कार किया है[1], उत्तराध्ययननिर्युक्तिमे मरणविभक्तिके सभी द्वारोंका क्रमशः वर्णन करनेके अनन्तर लिखा है कि 'पदार्थोंको सम्पूर्ण तथा विशद-रीतिसे जिन (केवलज्ञानी) और चतुर्दशपूर्वी[2] (श्रुतकेवली ही) कहते हैं—कह सकते हैं', और आवश्यक आदि ग्रन्थोंपर लिखी गई अनेक निर्युक्तियोंमें आर्यवज्र, आर्यरक्षित, पादलिप्ताचार्य, कालिकाचार्य और शिवभूति आदि कितने ही ऐसे आचार्योंके नामों, प्रसङ्गों, मन्तव्यों अथवा तत्सम्बन्धी अन्य घटनाओंका उल्लेख किया गया है जो भद्रबाहु श्रुतकेवलीके बहुत कुछ बाद हुए हैं—किसी-किसी घटनाका समय तक भी साथमे दिया है, जैसे निह्नवोंको क्रमशः उत्पत्तिका समय वीरनिर्वाणसे ६०९ वर्ष बाद तकका बतलाया है। ये सब बातें और इसी प्रकारकी दूसरी बातें भी नियुक्तिकार भद्रबाहुको श्रुतकेवली बतलानेके विरुद्ध पड़ती हैं—भद्रबाहुश्रुतकेवलीद्वारा उनका उस प्रकारसे उल्लेख तथा निरूपण किसी तरह भी नहीं बनता। इस विषयका सप्रमाण विशद एवं विस्तृत विवेचन मुनि पुण्यविजयजीने आजसे कोई सात वर्ष पहले अपने 'छेदसूत्रकार और निर्युक्तिकार' नामके उस गुजराती लेखमें किया है जो 'महावीर जैनविद्यालय-रजत-महोत्सव-ग्रन्थ'मे मुद्रित है[3]। साथ ही यह भी बतलाया है कि 'तित्थोगालिप्रकीर्णक, आवश्यकचूर्णि, आवश्यक-हारिभद्रीया टीका, परिशिष्ट-पर्व आदि प्राचीन मान्य ग्रन्थोंमें जहाँ चतुर्दशपूर्वधर भद्रबाहु (श्रुतकेवली)का चरित्र वर्णन किया गया है वहाँ द्वादशवर्षीय दुष्काल ·· छेदसूत्रोंकी रचना आदिका वर्णन तो है परन्तु वराहमिहरका भाई होना, नियुक्तिग्रन्थों, उपसर्गहरस्तोत्र, भद्रबाहुसहितादि ग्रन्थोंकी रचनासे तथा नैमित्तिक होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई उल्लेख नहीं है। इससे छेदसूत्रकार भद्रबाहु और नियुक्ति आदिके प्रणेता भद्रबाहु एक दूसरेसे भिन्न व्यक्तियाँ हैं।

इन निर्युक्तिकार भद्रबाहुका समय विक्रमकी छठी शताब्दीका प्रायः मध्यकाल है, क्योंकि इनके समकालीन सहोदर भ्राता वराहमिहरका यही समय सुनिश्चित है—उन्होंने अपनी 'पञ्चसिद्धान्तिका'के अन्तमे, जो कि उनके उपलब्ध ग्रन्थोंमें अन्तकी कृति मानी जाती है, अपना समय स्वयं निर्दिष्ट किया है और वह है शक संवत् ४२७ अर्थात् विक्रम सवत् ५६२। यथा—

"सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ। अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्ये ॥८"

(जब निर्युक्तिकार भद्रबाहुका उक्त समय सुनिश्चित हो जाता है तब यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं रहती कि सन्मतिकार सिद्धसेनके समयकी पूर्व सीमा विक्रमकी छठी शताब्दीका तृतीय चरण है और उन्होंने क्रमवादके पुरस्कर्ता उक्त भद्रबाहु अथवा उनके अनुसर्ता किसी शिष्यादिके क्रमवाद-विषयक कथनको लेकर ही सन्मतिमें उसका खण्डन किया है।)

---

१ वदामि भद्दबाहु पाईण चरिमसगलसुयणाणि। सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे ॥१॥

२ सव्वे एए दारा मरणविभत्तीइ वणिणया कमसो। सगलणिउणे पयत्थे जिणचउदसपुव्वि भासते ॥२३३॥

३ इससे भी कई वर्ष पहले आपके गुरु मुनि श्रीचतुरविजयजीने श्रीविजयानन्दसूरीश्वरजन्मशताब्दि-स्मारकग्रन्थमें मुद्रित अपने 'श्रीभद्रबाहुस्वामी' नामक लेखमें इस विषयको प्रदर्शित किया था और यह सिद्ध किया था कि निर्युक्तिकार भद्रबाहु श्रुतकेवली भद्रबाहुसे भिन्न द्वितीय भद्रबाहु हैं और वराहमिहरके सहोदर होनेसे उनके समकालीन हैं। उनके इस लेखका अनुवाद अनेकान्त वर्ष ३ किरण १२में प्रकाशित हो चुका है।

इस तरह सिद्धसेनके समयकी पूर्व सीमा विक्रमकी छठी शताब्दीका तृतीय चरण और उत्तरसीमा विक्रमकी सातवीं शताब्दीका तृतीय चरण (वि० सं० ५६२से ६६६) निश्चित होती है। इन प्रायः सौ वर्षके भीतर ही किसी समय सिद्धसेनका ग्रन्थकाररूपमे अवतार हुआ और यह ग्रन्थ बना जान पड़ता है।

(३) सिद्धसेनके समय-सम्बन्धमे पं० सुखलालजी संघवीकी जो स्थिति रही है उसको ऊपर बतलाया जा चुका है। उन्होने अपने पिछले लेखमे, जो 'सिद्धसेनदिवाकरना समयनो प्रश्न' नामसे भारतीयविद्याके तृतीय भाग (श्रीबहादुरसिंहजी सिघी स्मृतिग्रन्थ)मे प्रकाशित हुआ है. अपनी उस गुजराती प्रस्तावना-कालीन मान्यताको जो सन्मतिके अग्रेजी संस्करणके अवसरपर फोरवर्ड (foreword)[१] लिखे जानेके पूव कुछ नये बौद्ध ग्रन्थोके सामने आनेके कारण बदल गई थी और जिसकी फोरवर्डमे सूचना की गई है फिरसे निश्चित-रूप दिया है अर्थात् विक्रमको पॉचवी शताब्दीको ही सिद्धसेनका समय निर्धारित किया है और उसीको अधिक सङ्गत बतलाया है। अपनी इस मान्यताके समर्थनमे उन्होने जिन दो प्रमाणोंका उल्लेख किया है उनका सार इस प्रकार है, जिसे प्रायः उन्हींके शब्दोके अनुवादरूपमें सङ्कलित किया गया है:—

(प्रथम) जिनभद्रक्षमाश्रमणने अपने महान् ग्रन्थ विशेषावश्यक भाष्यमे, जो विक्रम सवत् ६६६में बनकर समाप्त हुआ है, और लघुग्रन्थ विशेषणवतीमे सिद्धसेनदिवाकरके उपयोगाऽभेदवादकी तथैव दिवाकरकी कृति सन्मतितर्कके टीकाकार मल्लवादीके उपयोग-यौग-पद्यवादकी विस्तृत समालोचना की है। इससे तथा मल्लवादीके द्वादशारनयचक्रके उपलब्ध प्रतीकोमें दिवाकरका सूचन मिलने और जिनभद्रगणिका सूचन न मिलनेसे मल्लवादी जिनभद्रसे पूर्ववर्ती और सिद्धसेन मल्लवादीसे भी पूर्ववर्ती सिद्ध होते है। मल्लवादीको यदि विक्रमकी छठी शताब्दीके पूर्वार्धमें मान लिया जाय तो सिद्धसेन दिवाकरका समय जो पॉचवी शताब्दी निर्धारित किया गया है वह अधिक सङ्गत लगता है।

(द्वितीय) पूज्यपाद देवनन्दीने अपने जैनेन्द्रव्याकरणके 'वेत्तेः सिद्धसेनस्य' इस सूत्रमें सिद्धसेनके मतविशेषका उल्लेख किया है और वह यह है कि सिद्धसेनके मतानुसार 'विद्' धातुके 'र्' का आगम होता है, चाहे वह धातु सकर्मक ही क्यों न हो। देवनन्दीका यह उल्लेख बिल्कुल सच्चा है, क्योंकि दिवाकरकी जो कुछ थोड़ीसी सस्कृत कृतियॉ बची है उनमेसे उनकी नवमी द्वात्रिंशिकाके २२वें पद्यमे 'विद्रतेः' ऐसा 'र्' आगम वाला प्रयोग मिलता है। अन्य वैयाकरण जब 'सम्' उपसर्ग पूर्वक और अकर्मक 'विद्' धातुके 'र्' आगम स्वीकार करते हैं तब सिद्धसेनने अनुपसर्ग और सकर्मक 'विद्' धातुका 'र्' आगमवाला प्रयोग किया है। इसके सिवाय, देवनन्दी पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धि नामकी तत्त्वार्थ-टीकाके सप्तम अध्यायगत १३वें सूत्रकी टीकामे सिद्धसेनदिवाकरके एक पद्यका अश 'उक्तं च' शब्दके साथ उद्धृत पाया जाता है और वह है "वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते।" यह पद्यांश उनकी तीसरी द्वात्रिंशिकाके १६वें पद्यका प्रथम चरण है। पूज्यपाद देवनन्दीका समय वर्तमान मान्यतानुसार विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध है अर्थात् पॉचवीं शताब्दीके अमुक भागसे छठी शताब्दीके अमुक भाग तक लम्बा है। इससे सिद्धसेनदिवाकरकी पॉचवी शताब्दीमे होनेकी बात जो अधिक सङ्गत कही गई है उसका खुलासा हो जाता है। दिवाकरको देवनन्दीसे

---

१ फोरवर्डके लेखकरूपमें यद्यपि नाम 'दलसुख मालवणिया'का दिया हुआ है परन्तु उसमे दी हुई उक्त सूचनाको पण्डित सुखलालजीने उक्त लेखमें अपनी ही सूचना और अपना ही विचार परिवर्तन स्वीकार किया है।

पूर्ववर्ती या देवनन्दीके वृद्ध समकालीनरूपमे मानिये तो भी उनका जीवनसमय पाँचवीं शताब्दीसे अर्वाचीन नहीं ठहरता।

इनमेंसे प्रथम प्रमाण तो वास्तवमे कोई प्रमाण ही नहीं है, क्योंकि वह 'मल्लवादीको यदि विक्रमकी छठी शताब्दीके पूर्वार्धमे मान लिया जाय तो' इस भ्रान्त कल्पनापर अपना आधार रखता है। परन्तु क्यो मान लिया जाय अथवा क्यों मान लेना चाहिये, इसका कोई स्पष्टीकरण साथमें नहीं है। मल्लवादीका जिनभद्रसे पूर्ववर्ती होना प्रथम तो सिद्ध नहीं है, सिद्ध होता भी तो उन्हे जिनभद्रके समकालीन वृद्ध मानकर अथवा २५ या ५० वर्ष पहले मानकर भी उस पूर्ववर्तित्वको चरितार्थ किया जा सकता है, उसके लिये १०० वर्षसे भी अधिक समय पूर्वकी बात मान लेनेकी कोई जरूरत नहीं रहती। परन्तु वह सिद्ध ही नहीं है, क्योंकि उनके जिस उपयोग-यौगपद्यवादकी विस्तृत समालोचना जिनभद्रके दो ग्रन्थोंमें बतलाई जाती है उनमे कहीं भी मल्लवादी अथवा उनके किसी ग्रन्थका नामोल्लेख नहीं है, होता तो पण्डितजी उस उल्लेखवाले अंशको उद्धृत करके ही सन्तोष धारण करते, उन्हें यह तर्क करनेकी जरूरत ही न रहती और न रहनी चाहिये थी कि 'मल्लवादीके द्वादशारनयचक्रके उपलब्ध प्रतीकोंमें दिवाकरका सूचन मिलने और जिनभद्रका सूचन न मिलनेसे मल्लवादी जिनभद्रसे पूर्ववर्ती हैं'। यह तर्क भी उनका अभीष्ट-सिद्धिमे कोई सहायक नहीं होता, क्योंकि एक तो किसी विद्वान्के लिये यह लाजिमी नहीं कि वह अपने ग्रन्थमें पूर्ववर्ती अमुक अमुक विद्वानोका उल्लेख करे ही करे। दूसरे, मूल द्वादशारनयचक्रके जब कुछ प्रतीक ही उपलब्ध हैं वह पूरा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है तब उसके अनुपलब्ध अंशोंमे भी जिनभद्रका अथवा उनके किसी ग्रन्थादिकका उल्लेख नहीं इसकी क्या गारण्टी? गारण्टीके न होने और उल्लेखोपलब्धिकी सम्भावना बनी रहनेसे मल्लवादीको जिनभद्रके पूर्ववर्ती बतलाना तर्कदृष्टिसे कुछ भी अर्थ नहीं रखता। तीसरे, ज्ञानबिन्दुकी परिचयात्मक प्रस्तावनामें पण्डित सुखलालजी स्वय यह स्वीकार करते हैं कि "अभी हमने उस सारे सटीक नयचक्रका अवलोकन करके देखा तो उसमें कही भी केवलज्ञान और केवलदर्शन (उपयोगद्वय)के सम्बन्धमे प्रचलित उपर्युक्त वादो (क्रम, युगपत्, और अभेद) पर थोडी भी चर्चा नही मिली। यद्यपि सन्मतितर्ककी मल्लवादि-कृत-टीका उपलब्ध नहीं है पर जब मल्लवादि अभेदसमर्थक दिवाकरके ग्रन्थपर टीका लिखें तब यह कैसे माना जा सकता है कि उन्होने दिवाकरके ग्रन्थकी व्याख्या करते समय उसीमें उनके विरुद्ध अपना युगपत् पक्ष किसी तरह स्थापित किया हो। इस तरह जब हम सोचते है तब यह नहीं कह सकते हैं कि अभयदेवके युगपद्वादके पुरस्कर्तारूपसे मल्लवादीके उल्लेखका आधार नयचक्र या उनकी सन्मतिटीकामेंसे रहा होगा।" साथ ही, अभयदेवने सन्मतिटीकामें विशेषणवतीकी "केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली णियमा" इत्यादि गाथाओंको उद्धृत करके उनका अर्थ देते हुए 'केई' पदके वाच्यरूपमें मल्लवादीका जो नामोल्लेख किया है और उन्हें युगपद्वादका पुरस्कर्ता बतलाया है उनके उस उल्लेखकी अभ्रान्ततापर सन्देह व्यक्त करते हुए, पण्डित सुखलालजी लिखते हैं—"अगर अभयदेवका उक्त उल्लेखांश अभ्रान्त एव साधार है तो अधिकसे अधिक हम यही कल्पना कर सकते है कि मल्लवादीका कोई अन्य युगपत् पक्षसमर्थक छोटा बड़ा ग्रन्थ अभयदेवके सामने रहा होगा अथवा ऐसे मन्तव्यवाला कोई उल्लेख उन्हें मिला होगा।" और यह बात ऊपर बतलाई ही जा चुकी है कि अभयदेवसे कई शताब्दी पूर्वके प्राचीन आचार्य हरिभद्रसूरिने उक्त 'केई' पदके वाच्यरूपमें सिद्धसेनाचार्यका नाम उल्लेखित किया है, प० सुखलालजीने उनके उस उल्लेखको महत्व दिया है तथा सन्मतिकारसे भिन्न दूसरे सिद्धसेनकी सम्भावना व्यक्त की है, और वे दूसरे सिद्धसेन उन द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता हो सकते हैं जिनमे युगपद्वादका समर्थन पाया जाता है, इसे भी ऊपर

दर्शाया जा चुका है। इस तरह जब मल्लवादीका जिनभद्रसे पूर्ववर्ती होना सुनिश्चित ही नहीं है तब उक्त प्रमाण और भी निःसार एव बेकार हो जाता है। साथ ही, अभयदेवका मल्लवादी-को युगपद्वादका पुरस्कर्ता बतलाना भी भ्रान्त ठहरता है।

यहाँपर एक बात और भी जान लेनेकी है और वह यह कि हालमे मुनि श्रीजम्बू-विजयजीने मल्लवादीके सटीक नयचक्रका पारायण करके उसका विशेष परिचय 'श्री आत्मा-नन्दप्रकाश' (वर्ष ४५ अङ्क ७)में प्रकट किया है, उसपरसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि मल्लवादीने अपने नयचक्रमें पद-पदपर 'वाक्यपदीय' ग्रन्थका उपयोग ही नहीं किया बल्कि उसके कर्ता भर्तृहरिका नामोल्लेख और भर्तृहरिके मतका खण्डन भी किया है। इन भर्तृहरिका समय इतिहासमे चीनी यात्री इत्सिङ्गके यात्राविवरणादिके अनुसार ई० सन ६००से ६५० (वि० स० ६५७से ७०७) तक माना जाता है, क्योंकि इत्सिङ्गने जब सन ६९१मे अपना यात्रा-वृत्तान्त लिखा तब भर्तृहरिका देहावसान हुए ४० वर्ष बीत चुके थे। और वह उस समयका प्रसिद्ध वैयाकरण था। ऐसी हालतमें भी मल्लवादी जिनभद्रसे पूर्ववर्ती नहीं कहे जा सकते। उक्त समयादिककी दृष्टिसे वे विक्रमकी प्रायः आठवीं-नवमी शताब्दीके विद्वान् हो सकते हैं और तब उनका व्यक्तित्व न्यायबिन्दुकी धर्मोत्तर[1]-टीकापर टिप्पण लिखनेवाले मल्लवादीके साथ एक भी हो सकता है। इस टिप्पणमे मल्लवादीने अनेक स्थानोपर न्यायबिन्दुकी विनीतदेव-कृत-टीकाका उल्लेख किया है और इस विनीतदेवका समय राहुलसाकृत्यायनने, वादन्यायकी प्रस्तावनामें, धर्मकीर्तिके उत्तराधिकारियोंकी एक तिब्बती सूचापरसे ई० सन् ७७५से ८०० (वि० सं० ८५७) तक निश्चित किया है।

इस सारी वस्तुस्थितिको ध्यानमे रखते हुए ऐसा जान पडता है कि विक्रमकी १४वीं शताब्दीके विद्वान् प्रभाचन्द्रने अपने प्रभावकचरितके विजयसिंहसूरि-प्रबन्धमे बौद्धो और उनके व्यन्तरोंको वादमें जीतनेका जो समय मल्लवादीका वीरवत्सरसे ८८४ वर्ष बादका अर्थात् विक्रम सवत् ४१४ दिया है[2] और जिसके कारण ही उन्हे श्वेताम्बर समाजमे इतना प्राचीन माना जाता है तथा मुनि जिनविजयने भी जिसका एकवार पक्ष लिया है[3] उसके उल्लेखमें जरूर कुछ भूल हुई है। पं० सुखलालजीने भी उस भूलको महसूस किया है, तभी उसमें प्रायः १०० वर्षकी वृद्धि करके उसे विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध (वि० सं० ५५०) तक मान लेनेकी बात अपने इस प्रथम प्रमाणमे कही है। डा० पी० एल० वैद्य एम० ए०ने न्यायावतारकी प्रस्तावनामे, इस भूल अथवा गलतीका कारण 'श्रीवीरविक्रमात्'के स्थानपर श्रीवीरवत्सरात्' पाठान्तरका हो जाना सुझाया है। इस प्रकारके पाठान्तरका हो जाना कोई अस्वाभाविक अथवा असंभाव्य नहीं है किन्तु सहजसाध्य जान पड़ता है। इस सुझावके अनुसार यदि शुद्ध पाठ 'वीरविक्रमात्' हो तो मल्लवादीका समय वि० स० ८८४ तक पहुँच जाता है और यह समय मल्लवादीके जीवनका प्रायः अन्तिम समय हो सकता है और तब मल्लवादीको हरिभद्रके प्रायः समकालीन कहना होगा, क्योंकि हरिभद्रने 'उक्तं च वादिमुख्येन मल्लवादिना' जैसे शब्दोंके द्वारा अनेकान्तजयपताकाकी टीकामे मल्लवादीका स्पष्ट उल्लेख किया है। हरिभद्रका समय भी विक्रमकी ९वीं शताब्दीके तृतीय-

---

१ बौद्धाचार्य धर्मोत्तरका समय प० राहुलसाकृत्यायनने वादन्यायकी प्रस्तावनामें ई० स० ७२५से ७५०, (वि० स० ७८२से ८०७) तक व्यक्त किया है।

२ श्रीवीरवत्सरादथ शताष्टके चतुरशीति-सयुक्ते। जिग्ये स मल्लवादी बौद्धास्तद्व्यन्तराश्चाऽपि ॥८३॥

३ देखो, जैनसाहित्यसशोधक भाग २।

चतुर्थ चरण तक पहुँचता है,[1] क्योंकि वि० सं० ८५७के लगभग बनी हुई भट्टजयन्तकी न्यायमञ्जरीका 'गम्भीरगर्जितारम्भ' नामका एक पद्य हरिभद्रके षड्दर्शनसमुच्चयमें उद्धृत मिलता है, ऐसा न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमारजीने न्यायकुमुदचन्द्रके द्वितीय भागकी प्रस्तावनामें उद्घोषित किया है। इसके सिवाय, हरिभद्रने स्वयं शास्त्रवार्तासमुच्चयके चतुर्थस्तवनमें 'एतेनैव प्रतिक्षिप्तं यदुक्तं सूक्ष्मबुद्धिना' इत्यादि वाक्यके द्वारा बौद्धाचार्य शान्तरक्षितके मतका उल्लेख किया है और स्वोपज्ञटीकामें 'सूक्ष्मबुद्धिना'का 'शान्तरक्षितेन' अर्थ देकर उसे स्पष्ट किया है। शान्तरक्षित धर्मोत्तर तथा विनीतदेवके भी प्रायः उत्तरवर्ती हैं और उनका समय राहुलसांकृत्यायनने वादन्यायके परिशिष्टमें ई० सन् ८४० (वि० सं० ८९७) तक बतलाया है। हरिभद्रको उनके समकालीन समझना चाहिये। इससे हरिभद्रका कथन उक्त समयमें बाधक नहीं रहता और सब कथनोंकी सङ्गति ठीक बैठ जाती है।

नयचक्रके उक्त विशेष परिचयसे यह भी मालूम होता है कि उस ग्रन्थमें सिद्धसेन नामके साथ जो भी उल्लेख मिलते हैं उनमें सिद्धसेनको 'आचार्य' और 'सूरि' जैसे पदोंके साथ तो उल्लेखित किया है परन्तु 'दिवाकर' पदके साथ कहीं भी उल्लेखित नहीं किया है, तभी मुनि श्रीजम्बूविजयजीकी यह लिखनेमें प्रवृत्ति हुई है कि "आ सिद्धसेनसूरि सिद्धसेन-दिवाकरज सभवतः होवा जोइये" अर्थात् यह सिद्धसेनसूरि सम्भवतः सिद्धसेनदिवाकर ही होने चाहियें—भले ही दिवाकर नामके साथ वे उल्लेखित नहीं मिलते। उनका यह लिखना उनकी धारणा और भावनाका ही प्रतीक कहा जा सकता है; क्योंकि 'होना चाहिये'का कोई कारण साथमें व्यक्त नहीं किया गया। पं० सुखलालजीने अपने उक्त प्रमाणमें इन सिद्धसेनको 'दिवाकर' नामसे ही उल्लेखित किया है, जो कि वस्तुस्थितिका बड़ा ही गलत निरूपण है और अनेक भूल-भ्रान्तियोंको जन्म देने वाला है—किसी विषयको विचारके लिये प्रस्तुत करनेवाले निष्पक्ष विद्वानोंके द्वारा अपनी प्रयोजनादि-सिद्धिके लिये वस्तुस्थितिका ऐसा गलत चित्रण नहीं होना चाहिये। हाँ, उक्त परिचयसे यह भी मालूम होता है कि सिद्धसेन नामके साथ जो उल्लेख मिल रहे हैं उनमेंसे कोई भी उल्लेख सिद्धसेनदिवाकरके नामपर चढे हुए उपलब्ध ग्रन्थोंमेंसे किसीमें भी नहीं मिलता है। नमूनेके तौरपर जो दो उल्लेख[2] परिचयमें उद्धृत किये गये हैं उनका विषय प्रायः शब्दशास्त्र (व्याकरण) तथा शब्दनयादिसे सम्बन्ध रखता हुआ जान पड़ता है। इससे भी सिद्धसेनके उन उल्लेखोंको दिवाकरके उल्लेख बतलाना व्यर्थ ठहरता है।

रही द्वितीय प्रमाणकी बात उससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि तीसरी और नवमी द्वात्रिंशिकाके कर्ता जो सिद्धसेन हैं वे पूज्यपाद देवनन्दीसे पहले हुए हैं—उनका समय विक्रमकी पाँचवीं शताब्दी भी हो सकता है। इससे अधिक यह सिद्ध नहीं होता कि सन्मति-सूत्रके कर्ता सिद्धसेन भी पूज्यपाद देवनन्दीसे पहले अथवा विक्रमकी ५वीं शताब्दीमें हुए हैं।

---

१. ९वीं शताब्दीके द्वितीय चरण तकका समय तो मुनि जिनविजयजीने भी अपने हरिभद्रके समय-निर्णयवाले लेखमें बतलाया है। क्योंकि विक्रमसंवत् ८३५ (शक सं० ७००)में बनी हुई कुवलय-मालामें उद्योतनसूरिने हरिभद्रको न्यायविद्यामें अपना गुरु लिखा है। हरिभद्रके समय, संयतजीवन और उनके साहित्यिक कार्योंकी विशालताको देखते हुए उनकी आयुका अनुमान सौ वर्षके लगभग लगाया जा सकता है और वे मल्लवादीके समकालीन होनेके साथ-साथ कुवलयमालाकी रचनाके कितने ही वर्ष बाद तक जीवित रह सकते हैं।

२ "तथा च आचार्यसिद्धसेन आह—
"यत्र ह्यर्थो वाचं व्यभिचरति न (ना) भिधानं तत् ॥" [वि० २७७]
"अस्ति-भवति-विद्यति-वर्ततयः सन्निपातषष्ठाः सत्तार्था इत्यविशेषणोक्तत्वात् सिद्धसेनसूरिणा।"[वि. १६६

इसको सिद्ध करनेके लिये पहले यह सिद्ध करना होगा कि सन्मतिसूत्र और तीसरी तथा नवमी द्वात्रिंशिकाएँ तीनों एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ है। और यह सिद्ध नहीं है। पूज्यपादसे पहले उपयोगद्वयके क्रमवाद तथा अभेदवादके कोई पुरस्कर्ता नहीं हुए हैं, होते तो पूज्यपाद अपनी सर्वार्थसिद्धिमें सनातनसे चले आये युगपद्वादका प्रतिपादनमात्र करके ही न रह जाते बल्कि उसके विरोधी वाद अथवा वादोंका खण्डन जरूर करते परन्तु ऐसा नहीं है[1], और इससे यह मालूम होता है कि पूज्यपादके समयमें केवलीके उपयोग-विषयक क्रमवाद तथा अभेदवाद प्रचलित नहीं हुए थे—वे उनके बाद ही सविशेषरूपसे घोषित तथा प्रचारको प्राप्त हुए हैं, और इसीसे पूज्यपादके बाद अकलङ्कादिकके साहित्यमें उनका उल्लेख तथा खण्डन पाया जाता है। क्रमवादका प्रस्थापन निर्युक्तिकार भद्रबाहुके द्वारा और अभेदवादका प्रस्थापन सन्मतिकार सिद्धसेनके द्वारा हुआ है। उन वादोंके इस विकासक्रमका समर्थन जिनभद्रकी विशेषणवती-गत उन दो गाथाओं ('केई भणंति जुगवं' इत्यादि नम्बर १८४, १८५)से भी होता है जिनमें युगपत्, क्रम और अभेद इन तीनों वादोंके पुरस्कर्ताओंका इसी क्रमसे उल्लेख किया गया है और जिन्हें ऊपर (नं० २में) उद्धृत किया जा चुका है।

पं० सुखलालजीने निर्युक्तिकार भद्रबाहुको प्रथम भद्रबाहु और उनका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दी मान लिया है[2] इसीसे इन वादोंके क्रम-विकासको समझनेमें उन्हे भ्रान्ति हुई है। और वे यह प्रतिपादन करनेमें प्रवृत्त हुए है कि पहले क्रमवाद था, युगपत्वाद वादको सबसे पहले वाचक उमास्वाति[3] द्वारा जैन वाङ्मयमें प्रविष्ट हुआ और फिर उसके बाद अभेदवादका प्रवेश मुख्यतः सिद्धसेनाचार्यके द्वारा हुआ है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि प्रथम तो युगपत्वादका प्रतिवाद भद्रबाहुकी आवश्यकनियुक्तिके "सव्वस्स केवलिस्स वि जुगव दो णत्थि उवओगा" इस वाक्यमें पाया जाता है जो भद्रबाहुको दूसरी शताब्दीका विद्वान् माननेके कारण उमास्वातिके पूर्वका[4] ठहरता है और इसलिये उनके विरुद्ध जाता है। दूसरे, श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके नियमसार-जैसे ग्रन्थों और आचार्य भूतबलिके षट्खण्डागममें भी युगपत्वादका स्पष्ट विधान पाया जाता है। ये दोनों आचार्य उमास्वातिके पूर्ववर्ती[5] हैं और इनके युगपद्वाद-विधायक वाक्य नमूनेके तौरपर इस प्रकार हैं:—

"जुगवं वट्टइ णाणं केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयर-पयास-तावं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं॥" (णियम० १५९)।

"सयं भयवं उप्पण्ण-णाण-दरिसी सदेवाऽसुर-माणुसस्स लोगस्स आगदिं गदिं चयणोववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं मणोमाणसियं भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणदि पस्सदि विहरदित्ति।"—(षट्खण्डा० ४ पयडि अ० सू० ७८)।

---

१ "स उपयोगो द्विविधः। ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति। साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति। तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते। निरावरणेषु युगपत्।"

२ ज्ञानबिन्दु परिचय पृ० ५, पादटिप्पण।

३ "मतिज्ञानादिचतुर्षु पर्यायेणोपयोगो भवति, न युगपत्। संभिन्नज्ञानदर्शनस्य तु भगवतः केवलिनो युगपत्सर्वभावग्राहके निरपेक्षे केवलज्ञाने केवलदर्शने चानुसमयमुपयोगो भवति।"
—तत्त्वार्थभाष्य १-३१।

४ उमास्वातिवाचकको पं० सुखलालजीने विक्रमकी तीसरीसे पाँचवीं शताब्दीके मध्यका विद्वान् बतलाया है। (ज्ञा० बि० परि० पृ० ५४)।

५ इस पूर्ववर्तित्वका उल्लेख श्रवणबेल्गोलादिके शिलालेखों तथा अनेक ग्रन्थप्रशस्तियोंमें पाया जाता है।

ऐसी हालतमे युगपत्वादकी सर्वप्रथम उत्पत्ति उमास्वातिसे बतलाना किसी तरह भी युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता, जैनवाङ्मयमें इसकी अविकल धारा अतिप्राचीन कालसे चली आई है। यह दूसरी बात है कि क्रम तथा अभेदकी धाराएँ भी उसमें कुछ वादको शामिल होगई हैं, परन्तु विकास-क्रम युगपत्वादसे ही प्रारम्भ होता है जिसकी सूचना विशेषणवतीकी उक्त गाथाओं ('केई भणंति जुगवं' इत्यादि)से भी मिलती है। दिगम्बराचार्य श्रीकुन्दकुन्द, समन्तभद्र और पूज्यपादके ग्रन्थोंमे क्रमवाद तथा अभेदवादका कोई ऊहापोह अथवा खण्डन न होना पं० सुखलालजीको कुछ अखरा है, परन्तु इसमें अखरनेकी कोई बात नहीं है। जब इन आचार्योंके सामने ये दोनों वाद आए ही नहीं तब वे इन वादोंका ऊहापोह अथवा खण्डनादिक कैसे कर सकते थे? अकलङ्कके सामने जब ये वाद आए तब उन्होंने उनका खण्डन किया ही है; चुनाँचे पं० सुखलालजी स्वयं ज्ञानबिन्दुके परिचयमें यह स्वीकार करते हैं कि "ऐसा खण्डन हम सबसे पहले अकलङ्ककी कृतियोंमें पाते हैं।" और इसलिये उनसे पूर्वकी—कुन्दकुन्द, समन्तभद्र तथा पूज्यपादकी—कृतियोंमे उन वादोंकी कोई चर्चाका न होना इस बातको और भी साफ तौरपर सूचित करता है कि इन दोनों वादोंकी प्रादुर्भूति उनके समयके बाद हुई है। सिद्धसेनके सामने ये दोनो वाद थे—दोनोंकी चर्चा सन्मतिमे की गई है—अतः ये सिद्धसेन पूज्यपादके पूर्ववर्ती नहीं हो सकते। पूज्यपादने जिन सिद्धसेनका अपने व्याकरणमे नामोल्लेख किया है वे कोई दूसरे ही सिद्धसेन होने चाहियें।

यहाँपर एक खास बात नोट किये जानेके योग्य है और वह यह कि प० सुखलालजी सिद्धसेनको पूज्यपादसे पूर्ववर्ती सिद्ध करनेके लिये पूज्यपादीय जैनेन्द्र व्याकरणका उक्त सूत्र तो उपस्थित करते हैं परन्तु उसी व्याकरणके दूसरे समकक्ष सूत्र "चतुष्टयं समन्तभद्रस्य" को देखते हुए भी अनदेखा कर जाते हैं—उसके प्रति गजनिमीलन-जैसा व्यवहार करते हैं—और ज्ञानबिन्दुकी परिचयात्मक प्रस्तावना (पृ० ५५)मे बिना किसी हेतुके ही यहाँ तक लिखनेका साहस करते हैं कि "पूज्यपादके उत्तरवर्ती दिगम्बराचार्य समन्तभद्र"ने अमुक उल्लेख किया! साथ ही, इस बातको भी भुला जाते हैं कि सन्मतिकी प्रस्तावनामे वे स्वय पूज्यपादको समन्तभद्रका उत्तरवर्ती बतला आए है और यह लिख आए हैं कि 'स्तुतिकाररूपसे प्रसिद्ध इन दोनों जैनाचार्योंका उल्लेख पूज्यपादने अपने व्याकरणके उक्त सूत्रोंमे किया है, उनका कोई भी प्रकारका प्रभाव पूज्यपादकी कृतियोंपर होना चाहिये।' मालूम नहीं फिर उनके इस साहसिक कृत्यका क्या रहस्य है! और किस अभिनिवेशके वशवर्ती होकर उन्होने अब यों ही चलती कलमसे समन्तभद्रको पूज्यपादके उत्तरवर्ती कह डाला है!! इसे अथवा इसके औचित्यको वे ही स्वय समझ सकते हैं। दूसरे विद्वान् तो इसमें कोई औचित्य एवं न्याय नहीं देखते कि एक ही व्याकरण ग्रन्थमे उल्लेखित दो विद्वानोंमेंसे एकको उस ग्रन्थकारके पूर्ववर्ती और दूसरेको उत्तरवर्ती बतलाया जाय और वह भी बिना किसी युक्तिके। इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित सुखलालजीकी बहुत पहलेसे यह धारणा बनी हुई है कि सिद्धसेन समन्तभद्रके पूर्ववर्ती हैं और वे जैसे तैसे उसे प्रकट करनेके लिये कोई भी अवसर चूकते नहीं है। हो सकता है कि उसीकी धुनमे उनसे यह कार्य बन गया हो, जो उस प्रकटीकरणका ही एक प्रकार है, अन्यथा वैसा कहनेके लिये कोई भी युक्तियुक्त कारण नहीं है।

पूज्यपाद समन्तभद्रके पूर्ववर्ती नहीं किन्तु उत्तरवर्ती हैं, यह बात जैनेन्द्रव्याकरणके उक्त "चतुष्टय समन्तभद्रस्य" सूत्रसे ही नहीं किन्तु श्रवणबेलगोलके शिलालेखों आदिसे भी भले प्रकार जानी जाती है[1]। पूज्यपादकी 'सर्वार्थसिद्धि'पर समन्तभद्रका स्पष्ट प्रभाव है, इसे

१ देखो, श्रवणबेल्गोल-शिलालेख न० ४० (६४), १०८ (२५८), 'स्वामी समन्तभद्र' (इतिहास) पृ० १४१-१४३; तथा 'जैनजगत' वर्ष ६ अङ्क १५-१६मे प्रकाशित 'समन्तभद्रका समय और डा० के० बी०

'सर्वार्थसिद्धिपर समन्तभद्रका प्रभाव' नामक लेखमें स्पष्ट करके बतलाया जा चुका है[1]। समन्तभद्रके 'रत्नकरण्ड'का 'आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यम्' नामका शास्त्रलक्षणवाला पूरा पद्य न्यायावतारमें उद्धृत है, जिसकी रत्नकरण्डमें स्वाभाविकी और न्यायावतारमे उद्धरण-जैसी स्थितिको खूब खोलकर अनेक युक्तियोके साथ अन्यत्र दर्शाया जा चुका है[2]—उसके प्रक्षिप्त होनेकी कल्पना-जैसी बात भी अब नहीं रही, क्योंकि एक तो न्यायावतारका समय अधिक दूरका न रहकर टीकाकार सिद्धर्षिके निकट पहुँच गया है दूसरे उसमे अन्य कुछ वाक्य भी समर्थनादिके रूपमें उद्धृत पाये जाते हैं। जैसे 'साध्याविनाभुवो हेतोः" जैसे वाक्यमें हेतुका लक्षण आजानेपर भी "अन्यथानुपपन्नत्व हेतोर्लक्षणमीरितम्" इस वाक्यमें उन पात्रस्वामीके हेतुलक्षणको उद्धृत किया गया है जो समन्तभद्रके देवागमसे प्रभावित होकर जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे। इसी तरह "दृष्टेष्टाव्याहताद्वाक्यात्" इत्यादि आठवें पद्यमें शाब्द (आगम) प्रमाणका लक्षण आजानेपर भी अगले पद्यमे समन्तभद्रका "आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्" इत्यादि शास्त्रका लक्षण समर्थनादिके रूपमे उद्धृत हुआ समझना चाहिये। इसके सिवाय, न्यायावतारपर समन्तभद्रके देवागम (आप्तमीमांसा)का भी स्पष्ट प्रभाव है, जैसा कि दोनों ग्रन्थोंमें प्रमाणके अनन्तर पाये जानेवाले निम्न वाक्योंकी तुलनापरसे जाना जाता है:—

"उपेक्षा फलमाऽऽद्यस्य शेषस्याऽऽदान-हान-धीः ।
पूर्वा(र्वं) वाऽज्ञान नाशो वा सर्वस्याऽस्य स्वगोचरे ॥१०२॥" (देवागम)

"प्रमाणस्य फल साक्षादज्ञान विनिवर्तनम् ।
केवलस्य सुखोपेक्षे[3] शेषस्याऽऽदान-हान धीः ॥२८॥" (न्यायावतार)

ऐसी स्थितिमें व्याकरणादिके कर्ता पूज्यपाद और न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेन दोनों ही स्वामी समन्तभद्रके उत्तरवर्ती हैं, इसमें सदेहके लिये कोई स्थान नहीं है। सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन चूँकि निर्युक्तिकार एव नैमित्तिक भद्रबाहुके बाद हुए हैं—उन्होंने भद्रबाहुके द्वारा पुरस्कृत उपयोग-क्रमवादका खण्डन किया है—और इन भद्रबाहुका समय विक्रमकी छठी शताब्दीका प्रायः तृतीय चरण पाया जाता है, यही समय सन्मतिकार सिद्धसेनके समयकी पूर्वसीमा है, जैसा कि ऊपर सिद्ध किया जा चुका है। पूज्यपाद इस समयसे पहले गङ्गवंशी राजा अविनीत (ई० सन् ४३०-४८२) तथा उसके उत्तराधिकारी दुर्विनीतके समयमें हुए हैं और उनके एक शिष्य वज्रनन्दीने विक्रम सवत् ५२६में द्राविडसघकी स्थापना की है जिसका उल्लेख देवसेनसूरिके दर्शनसार (वि० सं० ९९०) ग्रन्थमें मिलता है[4]। अतः सन्मतिकार सिद्धसेन पूज्यपादके उत्तरवर्ती हैं, पूज्यपादके उत्तरवर्ती होनेसे समन्तभद्रके भी उत्तरवर्ती हैं, ऐसा सिद्ध होता है। और इसलिये समन्तभद्रके स्वयम्भूस्तोत्र तथा आप्तमीमासा (देवागम) नामक दो

पाठक' शीर्षक लेख पृ० १८-२३, अथवा 'दि एन्नल्स ऑफ दि भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिटयूट पूना वाल्यूम १५ पार्ट १-२में प्रकाशित Samantabhadra's date and Dr K B Pathak पृ० ८१-८८।

१ देखो, अनेकान्त वर्ष ५, किरण १०-११ पृ० ३४६-३५२।

२ देखो, 'स्वामी समन्तभद्र' (इतिहास) पृ० १२६-१३१ तथा अनेकान्त वर्ष ६ कि० १से ४में प्रकाशित 'रत्नकरण्डके कर्तृत्वविषयमें मेरा विचार और निर्णय' नामक लेख पृ० १०२–१०४।

३ यहाँ 'उपेक्षा'के साथ सुखकी वृद्धि की गई है, जिसका अज्ञाननिवृत्ति तथा उपेक्षा(रागादिककी निवृत्तिरूप अनासक्ति)के साथ अविनाभावी सम्बन्ध है।

४ "सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसघस्स कारगो दुट्ठो। णामेण वज्जणदी पाहुडवेदी ९ ॥
पचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स। दक्खिणमहुराजादो दाविडसघो

ग्रन्थोकी सिद्धसेनीय सन्मतिसूत्रके साथ तुलना करके प० सुखलालजीने दोनो आचार्योंके इन ग्रन्थोमे जिस 'वस्तुगत पुष्कल साम्य'की सूचना सन्मतिकी प्रस्तावना (पृ० ६६)मे की है उसके लिये सन्मतिसूत्रको अधिकांशमे सामन्तभद्रीय ग्रन्थोके प्रभावादिका आभारी समझना चाहिये। अनेकान्त-शासनके जिस स्वरूप-प्रदर्शन एवं गौरव-ख्यापनकी ओर समन्तभद्रका प्रधान लक्ष्य रहा है उसीको सिद्धसेनने भी अपने ढङ्गसे अपनाया है। साथ ही सामान्य-विशेष-मातृक नयोके सर्वथा-असर्वथा, सापेक्ष-निरपेक्ष और सम्यक्-मिथ्यादि-स्वरूपविषयक समन्तभद्रके मौलिक निर्देशोंको भी आत्मसात् किया है। सन्मतिका कोई कोई कथन समन्तभद्रके कथनसे कुछ मतभेद अथवा उसमे कुछ वृद्धि या विशेष आयोजनको भी साथमे लिये हुए जान पडता है, जिसका एक नमूना इस प्रकार है:—

> दव्वं खित्तं कालं भावं पज्जाय-देस-संजोगे ।
> भेदं च पडुच्च समा भावाण पण्णवणपज्जा ॥३-६०॥

इस गाथामे बतलाया है कि 'पदार्थोंकी प्ररूपणा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पर्याय, देश, सयोग और भेदको आश्रित करके ठीक होती है,' जब कि समन्तभद्रने "सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्" जैसे वाक्योके द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इस चतुष्टयको ही पदार्थप्ररूपणाका मुख्य साधन बतलाया है। इससे यह साफ जाना जाता है कि समन्तभद्रके उक्त चतुष्टयमे सिद्धसेनने बादको एक दूसरे चतुष्टयकी और वृद्धि की है, जिसका पहलेसे पूर्वके चतुष्टयमें ही अन्तर्भाव था।

रही द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनकी बात, पहली द्वात्रिंशिकामें एक उल्लेख-वाक्य निम्न प्रकारसे पाया जाता है, जो इस विषयमें अपना खास महत्व रखता है:—

> *य एष षड्जीव-निकाय-विस्तरः परैरनालीढपथस्त्वयोदितः ।*
> *अनेन सर्वज्ञ-परीक्षण-क्षमास्त्वयि प्रसादोदयसोत्सवाः स्थिताः ॥१३॥*

इसमे बतलाया है कि 'हे वीरजिन! यह जो षट् प्रकारके जीवोंके निकायों (समूहों) का विस्तार है और जिसका मार्ग दूसरोके अनुभवमे नही आया वह आपके द्वारा उदित हुआ —बतलाया गया अथवा प्रकाशमें लाया गया है। इसीसे जो सर्वज्ञकी परीक्षा करनेमे समर्थ है वे (आपको सर्वज्ञ जानकर) प्रसन्नताके उदयरूप उत्सवके साथ आपमे स्थित हुए हैं—बडे प्रसन्नचित्तसे आपके आश्रयमें प्राप्त हुए और आपके भक्त बने है।' वे समर्थ-सर्वज्ञ-परीक्षक कौन है जिनका यहाँ उल्लेख है और जो आप्तप्रभु वीरजिनेन्द्रकी सर्वज्ञरूपमें परीक्षा करनेके अनन्तर उनके सुदृढ भक्त बने है? वे हैं स्वामी समन्तभद्र, जिन्होंने आप्तमीमांसा-द्वारा सबसे पहले सर्वज्ञकी परीक्षा[1] की है, जो परीक्षाके अनन्तर वीरकी स्तुतिरूपमे 'युक्त्यनुशासन' स्तोत्रके रचनेमें प्रवृत्त हुए है[2] और जो स्वयम्भू स्तोत्रके निम्न पद्योमें सर्वज्ञका उल्लेख करते हुए उसमें अपनी स्थिति एवं भक्तिको 'त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम्" इस वाक्यके द्वारा स्वयं व्यक्त

---

१ अकलङ्कदेवने भी 'अष्टशती' भाष्यमें आप्तमीमांसाको "सर्वज्ञविशेषपरीक्षा" लिखा है और वादिराजसूरिने पार्श्वनाथचरितमें यह प्रतिपादित किया है कि 'उसी देवागम(आप्तमीमासा)के द्वारा स्वामी (समन्तभद्र)ने आज भी सर्वज्ञको प्रदर्शित कर रक्खा है':—

> "स्वामिनश्चरितं तस्य कस्य न विस्मयावहम् । देवागमेन सर्वज्ञो येनाऽद्यापि प्रदर्श्यते ॥"

२ युक्त्यनुशासनकी प्रथमकारिकामें प्रयुक्त हुए 'अद्य' पदका अर्थ श्रीविद्यानन्दने टीकामें "अस्मिन् काले परीक्षाऽवसानसमये" दिया है और उसके द्वारा आप्तमीमासाके बाद युक्त्यनुशासनकी रचनाको सूचित किया है।

करते हैं, जो कि "त्वयि प्रसादोदयसोत्सवाः स्थिताः" इस वाक्यका स्पष्ट मूलाधार जान पडता है :—

बहिरन्तरप्युभयथा च, करणमविघाति नाऽर्थकृत् ।
नाथ ! युगपदखिलं च सदा, त्वमिदं तलाऽऽमलकवद्विवेदिथ ॥१२९॥

अत एव ते बुध-नुतस्य, चरित-गुणमद्भुतोदयम् ।
न्याय-विहितमवधार्य जिने, त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम् ॥१३०॥

इन्हीं स्वामी समन्तभद्रको मुख्यतः लक्ष्य करके उक्त द्वात्रिंशिकाके अगले दो पद्य[1] कहे गये जान पडते हैं, जिनमेंसे एकमें उनके द्वारा अर्हन्तमें प्रतिपादित उन दो दो बातोंका उल्लेख है जो सर्वज्ञ-विनिश्चयकी सूचक हैं और दूसरेमें उनके प्रथित यशकी मात्राका बड़े गौरवके साथ कीर्तन किया गया है। अतः इस द्वात्रिंशिकाके कर्ता सिद्धसेन भी समन्तभद्रके उत्तरवर्ती हैं। (समन्तभद्रके स्वयम्भूस्तोत्रका शैलीगत, शब्दगत और अर्थगत कितना ही साम्य भी इसमें पाया जाता है, जिसे अनुसरण कह सकते है. और जिसके कारण इस द्वात्रिंशिकाको पढ़ते हुए कितनी ही वार इसके पदविन्यासादिपरसे ऐसा भान होता है मानो हम स्वयम्भूस्तोत्र पढ़ रहे हैं।) उदाहरणके तौरपर स्वयम्भूस्तोत्रका प्रारम्भ जैसे उपजाति-छन्दमें 'स्वयम्भुवा भूत' शब्दोंसे होता है वैसे ही इस द्वात्रिंशिकाका प्रारम्भ भी उपजाति-छन्दमें 'स्वयम्भुव भूत' शब्दोंसे होता है। स्वयम्भूस्तोत्रमें जिस प्रकार समन्त, सहृत, गत, उदित, समीक्ष्य, प्रवादिन्, अनन्त, अनेकान्त-जैसे कुछ विशेष शब्दोंका, मुने, नाथ, जिन, वीर-जैसे सम्बोधन-पदोंका और १ जितक्षुल्लकवादिशासनः, २ स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ताः, ३ नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः, ४ शेरते प्रजाः, ५ अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि, ६ नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयः, ७ अचिन्त्यमीहितम्, आर्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं, ८ सहस्राक्षः, ९ त्वद्द्विषः, १० शशिरुचिशुचिशुक्ललोहित वपुः, ११ स्थिता वय-जैसे विशिष्ट पद-वाक्योंका प्रयोग पाया जाता है उसी प्रकार पहली द्वात्रिंशिकामें भी उक्त शब्दों तथा सम्बोधन पदोंके साथ १ प्रपञ्चित-क्षुल्लकतर्कशासनैः, २ स्वपक्ष एव प्रतिबद्धमत्सराः, ३ परैरनालीढपथस्त्वयोदितः, ४ जगत् शेरते, ५ त्वदीयमाहात्म्यविशेषसम्भली भारती, ६ समीक्ष्यकारिणः, ७ अचिन्त्यमाहात्म्यं, ८ भूतसहस्रनेत्र, ९ त्वत्प्रतिघातनोन्मुखैः, १० वपुः स्वभावस्थमरक्तशोणितं, ११ स्थिता वय-जैसे विशिष्ट पद-वाक्योंका प्रयोग देखा जाता है, जो यथाक्रम स्वयम्भूस्तोत्रगत उक्त पदोंके प्रायः समकक्ष हैं। स्वयम्भूस्तोत्रमें जिस तरह जिनस्तवनके साथ जिनशासन-जिनप्रवचन तथा अनेकान्तका प्रशसन एव महत्त्व ख्यापन किया गया है और वीरजिनेन्द्रके शासन-माहात्म्यको 'तव जिनशासनविभवः जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः' जैसे शब्दोंद्वारा कलिकालमें भी जयवन्त बतलाया गया है उसी तरह इस द्वात्रिंशिकामें भी जिनस्तुतिके साथ जिनशासनादिका सक्षेपमें कीर्तन किया गया है और वीरभगवानको 'सच्छासनवर्द्धमान' लिखा है।

इस प्रथम द्वात्रिंशिकाके कर्ता सिद्धसेन ही यदि अगली चार द्वात्रिंशिकाओंके भी कर्ता हैं जैसा कि प० सुखलालजीका अनुमान है, तो ये पाँचों ही द्वात्रिंशिकाएँ, जो वीरस्तुति-से सम्बन्ध रखती हैं और जिन्हें मुख्यतया लक्ष्य करके ही आचार्य हेमचन्द्रने 'क्व सिद्धसेन-

---

१ "वपुः स्वभावस्थमरक्तशोणित पराऽनुकम्पा सफल च भाषितम् ।
न यस्य सर्वज्ञ विनिश्चयस्त्वयि द्वय करोत्येतदसौ न मानुषः ॥१४॥
अलब्धनिष्ठाः प्रसमिद्धचेतसस्तव प्रशिष्याः प्रथयन्ति यद्यशः ।
न तावदप्येकसमूहसहताः प्रकाशयेयुः परवादिपार्थिवाः ॥१५॥

स्तुतयो महार्थाः' जैसे वाक्यका उच्चारण किया जान पडता है, स्वामी समन्तभद्रके उत्तरकालीन रचनाएँ हैं। इन सभीपर समन्तभद्रके ग्रन्थोंकी छाया पडी हुई जान पडती है।

इस तरह स्वामी समन्तभद्र न्यायावतारके कर्ता, सन्मतिके कर्ता और उक्त द्वात्रिंशिका अथवा द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता तीनो ही सिद्धसेनोंसे पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। उनका समय विक्रमकी दूसरी-तीसरी शताब्दी है, जैसा कि दिगम्बर पट्टावली'मे शकसंवत् ६० (वि० सं० १९५)के उल्लेखानुसार दिगम्बर समाजमें आमतौरपर माना जाता है। श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें उन्हें 'सामन्तभद्र' नामसे उल्लेखित किया है और उनके समयका पट्टाचार्यरूपमें प्रारम्भ वीरनिर्वाणसंवत् ६४३ अर्थात् वि० सं० १७३से बतलाया है। साथ ही यह भी उल्लेखित किया है कि उनके पट्टशिष्यने वीर नि० स० ६९५ (वि० स० २२५)[2] में एक प्रतिष्ठा कराई है, जिससे उनके समयकी उत्तरावधि विक्रमकी तीसरी शताब्दीके प्रथम चरण तक पहुँच जाती है[3]। इससे समय-सम्बन्धी दोनो सम्प्रदायोंका कथन मिल जाता है और प्रायः एक ही ठहरता है।

ऐसी वस्तुस्थितिमें प० सुखलालजीका अपने एक दूसरे लेख 'प्रतिभामूर्ति सिद्धसेन दिवाकर'मे, जो कि 'भारतीयविद्या'के उसी अङ्क (तृतीय भाग)मे प्रकाशित हुआ है, इन तीनों ग्रन्थोंके कर्ता तीन सिद्धसेनोंका एक ही सिद्धसेन बतलाते हुए यह कहना कि 'यही सिद्धसेन दिवाकर "आदि जैनतार्किक"—"जैन परम्परामे तर्कविद्याका और तर्कप्रधान संस्कृत वाङ्मयका आदि प्रणेता", "आदि जैनकवि", "आदि जैनस्तुतिकार", "आद्य जैनवादी" और 'आद्य जैनदार्शनिक" हैं' क्या अर्थ रखता है और कैसे सङ्गत हो सकता है ? इसे विज्ञ पाठक स्वय समझ सकते हैं। सिद्धसेनके व्यक्तित्व और इन सब विषयोंमे उनकी विद्या-योग्यता एवं प्रतिभाके प्रति बहुमान रखते हुए भी स्वामी समन्तभद्रकी पूर्वस्थिति और उनके अद्वितीय-अपूर्व साहित्यकी पहलेसे मौजूदगीमें मुझे इन सब उद्गारोंका कुछ भी मूल्य मालूम नहीं होता और न प० सुखलालजीके इन कथनोंमे कोई सार ही जान पडता है कि—(क) 'सिद्धसेनका सन्मति प्रकरण जैनदृष्टि और जैन मन्तव्योंको तर्कशैलीसे स्पष्ट करने तथा स्थापित करनेवाला जैनवाङ्मयमें सर्वप्रथम ग्रन्थ है' तथा (ख) स्वामी समन्तभद्रका स्वयम्भूस्तोत्र और युक्त्यनुशासन नामक ये दो दार्शनिक स्तुतियाँ सिद्धसेनकी कृतियोंका अनुकरण हैं'। तर्कादि-विषयोंमें समन्तभद्रकी योग्यता और प्रतिभा किसीसे भी कम नहीं किन्तु सर्वोपरि रही है, इसीसे अकलङ्कदेव और विद्यानन्दादि-जैसे महान् तार्किकों-दार्शनिकों एवं वादविशारदों आदिने उनके यशका खुला गान किया है, भगवज्जिनसेनने आदिपुराणमे उनके यशको कवियों, गमकों, वादियों तथा वादियोंके मस्तकपर चूडामणिकी तरह सुशोभित बतलाया है (इसी यशका पहली द्वात्रिंशिकाके 'तव प्रशिष्याः प्रथयन्ति यद्यशः' जैसे शब्दोंमे उल्लेख है) और साथ ही उन्हे कविब्रह्मा—कवियोंको उत्पन्न करनेवाला विधाता—लिखा है तथा उनके वचन-रूपी वज्रपातसे कुमतरूपी पर्वत खण्ड-खण्ड हो गये, ऐसा उल्लेख भी किया है[4]। और इसलिये

१ देखो, हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थोंके अनुसन्धान-विषयक डा० भाण्डारकरकी सन् १८८३ ८४की रिपोर्ट पृ० ३२०, मिस्टर लेविस राइसकी 'इन्स्क्रिपशन्स ऐट् श्रवणबेल्गोल'की प्रस्तावना और कर्णाटक शब्दानुशासनकी भूमिका।

२ कुछ पट्टावलियोंमें यह समय वी० नि० स० ५९५ अथवा विक्रमसंवत् १२५ दिया है जो किसी गलतीका परिणाम है और मुनि कल्याणविजयने अपने द्वारा सम्पादित 'तपागच्छपट्टावली'में उसके सुधारकी सूचना की है।

३ देखो, मुनिश्री कल्याणविजयजी द्वारा सम्पादित 'तपागच्छपट्टावली' पृ० ७६-८१।

४ विशेषके लिये देखो, 'सत्साधुस्मरण-मंगलपाठ' पृ० २५से ५१।

उपलब्ध जैनवाङ्मयमें समयादिककी दृष्टिसे आद्य तार्किकादि होनेका यदि किसीको मान अथवा श्रेय प्राप्त है तो वह स्वामी समन्तभद्रको ही प्राप्त है। उनके देवागम (आप्तमीमांसा), युक्त्यनुशासन, स्वयम्भूस्तोत्र और स्तुतिविद्या (जिनशतक) जैसे ग्रन्थ आज भी जैनसमाजमें अपनी जोडका कोई ग्रन्थ नहीं रखते। इन्हीं ग्रन्थोंको मुनि कल्याणविजयजीने भी उन निर्ग्रन्थ-चूडामणि श्रीसमन्तभद्रकी कृतियाँ बतलाया है जिनका समय भी श्वेताम्बर मान्यतानुसार विक्रमकी दूसरी-तीसरी शताब्दी है।[1] तब सिद्धसेनको विक्रमकी ५वीं शताब्दीका मान लेनेपर भी समन्तभद्रकी किसी कृतिको सिद्धसेनकी कृतिका अनुकरण कैसे कहा जा सकता है? नहीं कहा जा सकता।

इस सब विवेचनपरसे स्पष्ट है कि पं० सुखलालजीने सन्मतिकार सिद्धसेनको विक्रमकी पाँचवी शताब्दीका विद्वान् सिद्ध करनेके लिये जो प्रमाण उपस्थित किये हैं वे उस विषयको सिद्ध करनेके लिये बिल्कुल असमर्थ हैं। उनके दूसरे प्रमाणसे जिन सिद्धसेनका पूज्यपादसे पूर्ववर्तित्व एवं विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीमें होना पाया जाता है वे कुछ द्वात्रिंशिकाओंके कर्त्ता हैं न कि सन्मतिसूत्रके, जिसका रचनाकाल निर्युक्तिकार भद्रबाहुके समयसे पूर्वका सिद्ध नहीं होता और इन भद्रबाहुका समय प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् मुनि श्रीचतुरविजयजी और मुनिश्री पुण्यविजयजीने भी अनेक प्रमाणोंके आधारपर विक्रमकी छठी शताब्दीके प्रायः तृतीय चरण तकका निश्चित किया है। पं० सुखलालजीका उसे विक्रमकी दूसरी शताब्दी बतलाना किसी तरह भी युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। अतः सन्मतिकार सिद्धसेनका जो समय विक्रमकी छठी शताब्दीके तृतीय चरण और सातवीं शताब्दीके तृतीय चरणका मध्यवर्ती काल निर्धारित किया गया है वही समुचित प्रतीत होता है, जब तक कि कोई प्रबल प्रमाण उसके विरोधमें सामने न लाया जावे। जिन दूसरे विद्वानोंने इस समयसे पूर्वकी अथवा उत्तरसमयकी कल्पना की है वह सब उक्त तीन सिद्धसेनोंको एक मानकर उनमेंसे किसी एकके ग्रन्थको मुख्य करके की गई है अर्थात् पूर्वका समय कतिपय द्वात्रिंशिकाओंके उल्लेखोंको लक्ष्य करके और उत्तरका समय न्यायावतारको लक्ष्य करके कल्पित किया गया है। इस तरह तीन सिद्धसेनोंकी एकत्वमान्यता ही सन्मतिसूत्रकारके ठीक समय-निर्णयमें प्रबल बाधक रही है, इसीके कारण एक सिद्धसेनके विषय अथवा तत्सम्बन्धी घटनाओंको दूसरे सिद्धसेनोंके साथ जोड दिया गया है, और यही वजह है कि प्रत्येक सिद्धसेनका-परिचय थोडा-बहुत खिचडी बना हुआ है।

(ग) सिद्धसेनका सम्प्रदाय और गुणकीर्तन—

अब विचारणीय यह है कि सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन किस सम्प्रदायके आचार्य थे अर्थात् दिगम्बर सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखते हैं या श्वेताम्बर सम्प्रदायसे और किस रूपमें उनका गुण-कीर्तन किया गया है। आचार्य उमास्वाति(मी) और स्वामी समन्तभद्रकी तरह सिद्धसेनाचार्यकी भी मान्यता दोनों सम्प्रदायोंमे पाई जाती है। यह मान्यता केवल विद्वत्ताके नाते आदर-सत्कारके रूपमें नहीं और न उनके किसी मन्तव्य अथवा उनके द्वारा प्रतिपादित किसी वस्तुतत्व या सिद्धान्त-विशेषका ग्रहण करनेके कारण ही है बल्कि उन्हे अपने अपने सम्प्रदायके गुरुरूपमे माना गया है; गुर्वावलियों तथा पट्टावलियोंमे उनका उल्लेख किया गया है और उसी गुरुदृष्टिसे उनके स्मरण, अपनी गुणज्ञताको साथमें व्यक्त करते हुए, लिखे गये हैं अथवा उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की गई है। दिगम्बर सम्प्रदायमें सिद्धसेनको सेनगण (संघ)का आचार्य माना जाता है और सेनगणकी पट्टावली[2]में उनका उल्लेख है। हरिवंश-

---

1 तपागच्छपट्टावली भाग पहला पृ० ८०। 2 जैनसिद्धान्तभास्कर किरण १ पृ० ३८।

पुराणको शकसम्वत् ७०५में बनाकर समाप्त करनेवाले श्रीजिनसेनाचार्यने पुराणके अन्तमे दी हुई अपनी गुर्वावलीमे सिद्धसेनके नामका भी उल्लेख किया है[1] और हरिवंशके प्रारम्भमें समन्तभद्रके स्मरणानन्तर सिद्धसेनका जो गौरवपूर्ण स्मरण किया है वह इस प्रकार है:—

जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः । बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥३०॥

(इसमे बतलाया है कि 'सिद्धसेनाचार्यकी निर्मल सूक्तियाँ (सुन्दर उक्तियाँ) जगत्-प्रसिद्ध-बोध (केवलज्ञान)के धारक (भगवान्) वृषभदेवकी निर्दोष सूक्तियोंकी तरह सत्पुरुषोंकी बुद्धिको बोधित करती हैं—विकसित करती हैं।')

यहाँ सूक्तियोंमे सन्मतिके साथ कुछ द्वात्रिंशिकाओंकी उक्तियाँ भी शामिल समझी जा सकती हैं।

उक्त जिनसेन-द्वारा प्रशंसित भगवज्जिनसेनने आदिपुराणमे सिद्धसेनको अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनका जो महत्वका कीर्तन एवं जयघोष किया है वह यहाँ खासतौरसे ध्यान देने योग्य है:—

"कवयः सिद्धसेनाद्या वयं तु कवयो मताः । मणयः पद्मरागाद्या ननु काचोऽपि मेचकः ।
प्रवादि-करियूथानां केशरी नयकेशरः । सिद्धसेन-कविर्जीयाद्विकल्प-नखराङ्कुरः ॥"

(इन पद्योंमेसे प्रथम पद्यमे भगवज्जिनसेन, जो स्वयं एक बहुत बड़े कवि हुए है लिखते हैं कि 'कवि तो (वास्तवमें) सिद्धसेनादिक हैं, हम तो कवि मान लिये गये है। (जैसे) मणि तो वास्तवमें पद्मरागादिक हैं किन्तु काच भी (कभी कभी किन्हींके द्वारा) मेचकमणि समझ लिया जाता है।' और दूसरे पद्यमे यह घोषणा करते है कि 'जो प्रवादिरूप हाथियोंके समूहके लिये विकल्परूप-नुकीले नखोंसे युक्त और नयरूप केशरोंको धारण किये हुए केशरी-सिंह हैं वे सिद्धसेन कवि जयवन्त हों—अपने प्रवचन-द्वारा मिथ्यावादियोंके मतोंका निरसन करते हुए सदा ही लोकहृदयोंमे अपना सिक्का जमाए रक्खें—अपने वचन-प्रभावको अङ्कित किये रहें।')

यहाँ सिद्धसेनका कविरूपमे स्मरण किया गया है और उसीमे उनके वादित्वगुणको भी समाविष्ट किया गया है। प्राचीन समयमे कवि साधारण कविता-शायरी करनेवालोंको नही कहते थे बल्कि उस प्रतिभाशाली विद्वान्को कहते थे जो नये-नये सन्दर्भ, नई-नई मौलिक रचनाएँ तय्यार करनेमें समर्थ हो अथवा प्रतिभा ही जिसका उज्जीवन हो, जो नाना वर्णनाओं-में निपुण हो, कृती हो, नाना अभ्यासोंमें कुशाग्रबुद्धि हो और व्युत्पत्तिमान (लौकिक व्यवहारोमे कुशल) हो[2]। दूसरे पद्यमे सिद्धसेनको केशरी-सिंहकी उपमा देते हुए उसके साथ जो 'नय-केशरः' और 'विकल्प-नखराङ्कुरः' जैसे विशेषण लगाये गये हैं उनके द्वारा खास तौरपर सन्मतिसूत्र लक्षित किया गया है, जिसमें नयोंका ही मुख्यतः विवेचन है और अनेक विकल्पोंद्वारा प्रवादियोंके मन्तव्यों—मान्यसिद्धान्तोंका विदारण (निरसन) किया गया है। इसी सन्मतिसूत्रका जिनसेनने जयधवला'में और उनके गुरु वीरसेनने धवलामे उल्लेख किया है और उसके साथ घटित किये जानेवाले विरोधका परिहार करते हुए उसे अपना एक मान्य ग्रन्थ प्रकट किया है, जैसा कि इन सिद्धान्त ग्रन्थोंके उन वाक्योंसे प्रकट है जो इस लेखके प्रारम्भिक फुटनोटमें उद्धृत किये जा चुके हैं।

---

१ ससिद्धसेनोऽभय-भीमसेनको गुरू परौ तौ जिन-शान्ति-सेनकौ ॥६६—२६॥

२ "कविर्नूतनसन्दर्भः"।

"प्रतिभोज्जीवनो नाना-वर्णना निपुणः कविः । नानाऽभ्यास-कुशाग्रीयमतिर्व्युत्पत्तिमान् कविः ॥"

—अलङ्कारचिन्तामणि ।

नियमसारकी टीकामें पद्मप्रभ मलधारिदेवने 'सिद्धान्तोद्धश्रीधव सिद्धसेनं · वन्दे' वाक्यके द्वारा सिद्धसेनकी वन्दना करते हुए उन्हें 'सिद्धान्तकी जानकारी एवं प्रतिपादनकौशल-रूप उच्चश्रीके स्वामी' सूचित किया है। प्रतापकीर्तिने आचार्यपूजाके प्रारम्भमें दी हुई गुर्वावलीमें "सिद्धान्तपाथोनिधिलब्धपारः श्रीसिद्धसेनोऽपि गणस्य सारः" इस वाक्यके द्वारा सिद्धसेनको 'सिद्धान्तसागरके पारगामी' और 'गणके सारभूत' वतलाया है। मुनिकनकामरने 'करकंडु-चरिउ'में, सिद्धसेनको समन्तभद्र तथा अकलङ्कदेवके समकक्ष 'श्रुतजलके समुद्र'[१] रूपमे उल्लेखित किया है। ये सब श्रद्धाजलि-मय दिगम्बर उल्लेख भी सन्मतिकार-सिद्धसेनसे सम्बन्ध रखते हैं, जो खास तौरपर सैद्धान्तिक थे और जिनके इस सैद्धान्तिकत्वका अच्छा आभास ग्रन्थके अन्तिम काण्डकी उन गाथाओं (६१ आदि)से भी मिलता है जो श्रुतधर-शब्दसन्तुष्टों, भक्तसिद्धान्तज्ञों और शिष्यगणपरिवृत-बहुश्रुतमन्योंकी आलोचनाको लिए हुए है।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें आचार्य सिद्धसेन प्रायः 'दिवाकर' विशेषण अथवा उपपद (उपनाम)के साथ प्रसिद्धिको प्राप्त हैं। उनके लिये इस विशेषण-पदके प्रयोगका उल्लेख श्वे-ताम्बर साहित्यमें सबसे पहले हरिभद्रसूरिके 'पञ्चवस्तु' ग्रन्थमें देखनेको मिलता है, जिसमें उन्हें दुःषमाकालरूप रात्रिके लिये दिवाकर (सूर्य)के समान होनेसे 'दिवाकर'की आख्याको प्राप्त हुए लिखा है[२]। इसके बादसे ही यह विशेषण उधर प्रचारमें आया जान पड़ता है, क्योंकि श्वेताम्बर चूर्णियों तथा मल्लवादीके नयचक्र-जैसे प्राचीन ग्रन्थोंमें जहाँ सिद्धसेनका नामोल्लेख है वहाँ उनके साथमें 'दिवाकर' विशेषणका प्रयोग नहीं पाया जाता है[३]। हरिभद्रके बाद विक्रमकी ११वीं शताब्दीके विद्वान् अभयदेवसूरिने सन्मतिटीकाके प्रारम्भमें उसे उसी दुःषमाकालरात्रिके अन्धकारको दूर करनेवालेके अर्थमें अपनाया है[४]।

श्वेताम्बर सम्प्रदायकी पट्टावलियोंमें विक्रमकी छठी शताब्दी आदिकी जो प्राचीन पट्टावलियाँ हैं—जैसे कल्पसूत्रस्थविरावली(थेरावली), नन्दीसूत्रपट्टावली, दुःषमाकाल-श्रमणसंघ-स्तव—उनमें तो सिद्धसेनका कहीं कोई नामोल्लेख ही नहीं है। दुःषमाकालश्रमणसंघकी अवचूरिमें, जो विक्रमकी ९वीं शताब्दीसे बादकी रचना है, सिद्धसेनका नाम जरूर है किन्तु उन्हें 'दिवाकर' न लिखकर 'प्रभावक' लिखा है और साथ ही धर्माचार्यका शिष्य सूचित किया है—वृद्धवादीका नहीं:—

"अत्रान्तरे धर्माचार्य-शिष्य-श्रीसिद्धसेन-प्रभावकः ॥"

दूसरा विक्रमकी १५वीं शताब्दी आदिकी बनी हुई पट्टावलियोंमें भी कितनी ही पट्टावलियाँ ऐसी हैं जिनमें सिद्धसेनका नाम नहीं है—जैसे कि गुरुपर्वक्रमवर्णन, तपागच्छ-पट्टावलीसूत्र, महावीरपट्टपरम्परा, युगप्रधानसम्बन्ध (लोकप्रकाश) और सूरिपरम्परा। हाँ, तपागच्छपट्टावलीसूत्रकी वृत्तिमें, जो विक्रमकी १७वीं शताब्दी (सं० १६४८)की रचना है, सिद्ध-सेनका 'दिवाकर' विशेषणके साथ उल्लेख जरूर पाया जाता है। यह उल्लेख मूल पट्टावलीकी

---

१ तो सिद्धसेण सुसमतभद्द अकलंकदेव सुअजलसमुद्द। क० २

२ आयरियसिद्धसेणेण सम्मइए पइट्ठिअजसेण। दूसमाणिसा-दिवागर कप्पन्तणओ तदक्खेण ॥१०४८

३ देखो, सन्मतिसूत्रकी गुजराती प्रस्तावना पृ० ३६, ३७ पर निशीथचूर्णि (उद्देश ४) और दशाचूर्णिके उल्लेख तथा पिछले समय सम्बन्धी प्रकरणमें उद्धृत नयचक्रके उल्लेख।

४ "इति मन्वान आचार्यो दुषमाऽरसमाश्यामासमयोद्भूतसमस्तजनाहार्दसन्तमसविध्वंसकत्वेनावाप्तयथार्था-भिधानः *सिद्धसेनदिवाकरः* तदुपायभूतसम्मत्याख्यप्रकरणकरणे प्रवर्तमानः · · स्तवाभि-धायिकां गाथामाह।"

५वी गाथाकी व्याख्या करते हुए पट्टाचार्य इन्द्रदिन्नसूरिके अनन्तर और दिन्नसूरिके पूर्वकी व्याख्यामें स्थित है[१]। इन्द्रदिन्नसूरिको सुस्थित और सुप्रतिबुद्धके पट्टपर दसवाँ पट्टाचार्य वतलानेके बाद "अत्रान्तरे" शब्दोंके साथ कालकसूरि आर्यखपुट्टाचार्य और आर्यमंगुका नामोल्लेख समयनिर्देशके साथ किया गया है और फिर लिखा है:—

"वृद्धवादी पादलिप्तश्चात्र। तथा सिद्धसेनदिवाकरो येनोज्जयिन्यां महाकाल-प्रासाद रुद्र-लिङ्गस्फोटनं विधाय कल्याणमन्दिरस्तवेन श्रीपार्श्वनाथविम्बं प्रकटीकृत, श्रीविक्रमादित्यश्च प्रतिवोधि-तस्तद्राज्यं तु श्रीवीरसप्ततिवर्षशतचतुष्टये ४७० संजातं।"

इसमे वृद्धवादी और पादलिप्तके वाद सिद्धसेनदिवाकरका नामोल्लेख करते हुए उन्हे उज्जयिनीमे महाकालमन्दिरके रुद्रलिङ्गका कल्याणमन्दिरस्तोत्रके द्वारा स्फोटन करके श्रीपार्श्वनाथकेविम्बको प्रकट करनेवाला और विक्रमादित्यराजाको प्रतिवोधित करनेवाला लिखा है। साथ ही विक्रमादित्यका राज्य वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष वाद हुआ निर्दिष्ट किया है, और इस तरह सिद्धसेन दिवाकरको विक्रमकी प्रथम शताब्दीका विद्वान् वतलाया है, जो कि उल्लेखित विक्रमादित्यको गलतरूपमे समझनेका परिणाम है। विक्रमादित्य नामके अनेक राजा हुए हैं। यह विक्रमादित्य वह विक्रमादित्य नहीं है जो प्रचलित सवत्का प्रवर्तक है, इस बात-को प० सुखलालजी आदिने भी स्वीकार किया है। अस्तु, तपागच्छ-पदावलीकी यह वृत्ति जिन आधारोपर निर्मित हुई है उनमें प्रधान पद तपागच्छकी मुनि सुन्दरसूरिकृत गुर्वावलीको दिया गया है, जिसका रचनाकाल विक्रम सवत् १४६६ है। परन्तु इस पट्टावलामें भी सिद्धसेनका नामोल्लेख नहीं है। उक्त वृत्तिसे कोई १०० वर्ष वादके (वि० स० १७३६ के वादके) वने हुए पट्टावलीसारोद्धार' ग्रन्थमे सिद्धसेनदिवाकरका उल्लेख प्रायः उन्हीं शब्दोमे दिया है जो उक्त वृत्तिमे 'तथा' से 'सजात' तक पाये जाते हैं[२] और यह उल्लेख इन्द्रदिन्नसूरिके वाद 'अत्रान्तरे" शब्दोके साथ मात्र कालकसूरिके उल्लेखानन्तर किया गया है—आर्यखपुट, आर्यमगु, वृद्धवादी और पादलिप्त नामके आचार्योंका कालकसूरिके अनन्तर और सिद्धसेनके पूर्वमे कोई उल्लेख ही नहीं किया है। वि० सं० १७८६ से भी वादकी वनी हुई 'श्रीगुरु-पट्टावली' मे भी सिद्धसेनदिवाकरका नाम उज्जयिनीकी लिङ्गस्फोटन-सम्वन्धी घटनाके साथ उल्लेखित है[३]।

इस तरह श्वे० पट्टावलियो-गुर्वावलियोमे सिद्धसेनका दिवाकररूपमें उल्लेख विक्रमकी १५वीं शताब्दीके उत्तरार्धसे पाया जाता है, कतिपय प्रवन्धोंमें उनके इस विशेषणका प्रयोग सौ-दो सौ वर्ष और पहलेसे हुआ जान पडता। रही स्मरणोंकी वात, उनकी भी प्रायः ऐसी ही हालत है—कुछ स्मरण दिवाकर-विशेषणके साथमे लिये हुए हैं और कुछ नहीं है। श्वेताम्बर साहित्यसे सिद्धसेनके श्रद्धाञ्जलिरूप जो भी स्मरण अभी तक प्रकाशमें आये हैं वे प्रायः इस प्रकार है:—

---

१ देखो, मुनि दर्शनविजय-द्वारा सम्पादित 'पट्टावलीसमुच्चय' प्रथम भाग।

२ "तथा श्रीसिद्धसेनदिवाकरोपि जातो येनोज्जयिन्या महाकालप्रासादे रुद्रलिगस्फोटन कृत्वा कल्याण-मन्दिर स्तवनेन श्रीपार्श्वनाथविम्व प्रकटीकृत्य श्रीविक्रमादित्यराजापि प्रतिवोधितः श्रीवीरनिर्वाणात् सप्ततिवर्षाधिक शतचतुष्टये ४७०ऽतिक्रमे श्रीविक्रमादित्यराज्य सजातं ॥१०॥-पट्टावलीसमुच्चय पृ० १५०

३ "तथा श्रीसिद्धसेनदिवाकरेणोज्जयिनीनगर्यां महाकाल प्रासादे लिंगस्फोटनं विधाय स्तुत्या ११ काव्ये श्रीपार्श्वनाथबिम्बं प्रकटीकृतं, कल्याणमन्दिरस्तोत्रं कृतं।"—पट्टा० स० पृ० १६६।

(क) *उदितोऽर्हन्मत व्योम्नि सिद्धसेनदिवाकरः ।*
चित्रं गोभिः क्षितौ जह्रे कविराज बुध-प्रभा ॥

(यह विक्रमकी १३वीं शताब्दी (वि० सं० १२५२) के ग्रन्थ अममचरित्रका पद्य है। इसमें रत्नसूरि अलङ्कार-भाषाको अपनाते हुए कहते हैं कि 'अर्हन्मतरूपी आकाशमें सिद्धसेन-दिवाकरका उदय हुआ है, आश्चर्य है कि उसकी वचनरूप-किरणोंसे पृथ्वीपर कविराजकी—वृहस्पतिरूप 'शेष' कविकी—और बुधकी—बुधग्रहरूप विद्वद्वर्गकी—प्रभा लज्जित होगई—फीकी पड़ गई है।')

(ख) *तमः स्तोमं स हन्तु श्रीसिद्धसेनदिवाकरः ।*
यस्योदये स्थितं मूकैरुलकैरिव वादिभिः ॥

(यह विक्रमकी १४वीं शताब्दी (सं० १३२४) के ग्रन्थ समरादित्यका वाक्य है, जिसमें प्रद्युम्नसूरिने लिखा है कि 'वे श्रीसिद्धसेन दिवाकर (अज्ञान) अन्धकारके समूहको नाश करें जिनके उदय होनेपर वादीजन उल्लुओंकी तरह मूक होरहे थे—उन्हें कुछ बोल नहीं आता था।')

(ग) *श्रीसिद्धसेन-हरिभद्रमुखाः प्रसिद्धास्ते सूरयो मयि भवन्तु कृतप्रसादाः ।*
येषा विमृश्य सततं विविधान्निबन्धान् शास्त्रं चिकीर्षति तनुप्रतिभोऽपि माहक् ॥

(यह 'स्याद्वादरत्नाकर' का पद्य है। इसमें १२वीं-१३वीं शताब्दीके विद्वान् वादिदेव-सूरि लिखते हैं कि 'श्रीसिद्धसेन और हरिभद्र जैसे प्रसिद्ध आचार्य मेरे ऊपर प्रसन्न होवे, जिनके विविध निबन्धोंपर बार-बार विचार करके मेरे जैसा अल्प-प्रतिभाका धारक भी प्रस्तुत शास्त्रके रचनेमें प्रवृत्त होता है।')

(घ) *क सिद्धसेन-स्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क चैषा ।*
तथाऽपि यूथाधिपतेः पथस्थः स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः ॥

(यह विक्रमकी १२वीं-१३वीं शताब्दीके विद्वान् आचार्य हेमचन्द्रकी एक द्वात्रिंशिका स्तुतिका पद्य है। इसमें हेमचन्द्रसूरि सिद्धसेनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए लिखते हैं कि 'कहाँ तो सिद्धसेनकी महान् अर्थवाली गम्भीर स्तुतियाँ और कहाँ अशिक्षित मनुष्योंके आलाप-जैसी मेरी यह रचना? फिर भी यूथके अधिपति गजराजके पथपर चलता हुआ उसका बच्चा (जिस प्रकार) स्खलितगति होता हुआ भी शोचनीय नहीं होता—उसी प्रकार मैं भी अपने यूथाधिपति आचार्यके पथका अनुसरण करता हुआ स्खलितगति होनेपर शोचनीय नहीं हूँ।')

यहाँ 'स्तुतयः' 'यूथाधिपतेः' और 'तस्य शिशुः' ये पद खास तौरसे ध्यान देने योग्य हैं। 'स्तुतयः' पदके द्वारा सिद्धसेनीय ग्रन्थोंकेरूपमें उन द्वात्रिंशिकाओंकी सूचना कीगई है जो स्तुत्यात्मक हैं और शेष पदोंके द्वारा सिद्धसेनको अपने सम्प्रदायका प्रमुख आचार्य और अपनेको उनका परम्परा शिष्य घोषित किया गया है। इस तरह श्वेताम्बर सम्प्रदायके आचार्यरूपमें यहाँ वे सिद्धसेन विवक्षित हैं जो कतिपय स्तुतिरूप द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता हैं, न कि वे सिद्धसेन जो कि स्तुत्येतर द्वात्रिंशिकाओंके अथवा खासकर सन्मतिसूत्रके रचयिता हैं। श्वेताम्बरीय प्रबन्धोंमें भी, जिनका कितना ही परिचय ऊपर आचुका है, उन्हीं सिद्धसेनका उल्लेख मिलता है जो प्रायः द्वात्रिंशिकाओ अथवा द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका-स्तुतियोंके कर्तारूपमें विवक्षित हैं। सन्मतिसूत्रका उन प्रबन्धोंमें कहीं कोई उल्लेख ही नहीं है। ऐसी स्थितिमें सन्मतिकार सिद्धसेनके लिये जिस 'दिवाकर' विशेषणका हरिभद्रसूरिने स्पष्टरूपसे उल्लेख किया है वह बादको नाम-साम्यादिके कारण द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेन एव न्यायावतारके

कर्ता सिद्धसेनके साथ भी जुड़ गया मालूम होता है और संभवतः इस विशेषणके जुड़ जानेके कारण ही तीनों सिद्धसेन एक ही समझ लिये गये जान पड़ते हैं। अन्यथा, पं० सुखलालजी आदिके शब्दों (प्र० पृ० १०३) में 'जिन द्वात्रिंशिकाओंका स्थान सिद्धसेनके ग्रन्थोंमें चढ़ता हुआ है' उन्हींके द्वारा सिद्धसेनको प्रतिष्ठितयश बतलाना चाहिये था, परन्तु हरिभद्रसूरिने वैसा न करके सन्मतिके द्वारा सिद्धसेनका प्रतिष्ठितयश होना प्रतिपादित किया है और इससे यह साफ ध्वनि निकलती है कि सन्मतिके द्वारा प्रतिष्ठितयश होने वाले सिद्धसेन उन सिद्धसेनसे प्रायः भिन्न हैं जो द्वात्रिंशिकाओंको रचकर यशस्वी हुए हैं।

हरिभद्रसूरिके कथनानुसार जब सन्मतिके कर्ता सिद्धसेन 'दिवाकर'की आख्याको प्राप्त थे तब वे प्राचीनसाहित्यमें सिद्धसेन नामके विना 'दिवाकर' नामसे भी उल्लेखित होने चाहियें, उसी प्रकार जिस प्रकार कि समन्तभद्र 'स्वामी' नामसे उल्लेखित मिलते हैं। खोज करनेपर श्वेताम्बरसाहित्यमे इसका एक उदाहरण 'अजरक्खनंदिसेणो' नामकी उस गाथामें मिलता है जिसे मुनि पुण्यविजयजीने अपने 'छेदसूत्रकार और निर्युक्तिकार' नामक लेखमें 'पावयणी धम्मकही' नामकी गाथाके साथ उद्धृत किया है और जिसमे आठ प्रभावक आचार्योंकी नामावली देते हुए दिवायरो' पदके द्वारा सिद्धसेनदिवाकरका नाम भी सूचित किया गया है। ये दोनो गाथाएँ पिछले समयादिसम्बन्धी प्रकरणके एक फुटनोटमें उक्त लेखकी चर्चा करते हुए उद्धृत की जा चुकी हैं। दिगम्बर साहित्यमें 'दिवाकर'का यतिरूपसे एक उल्लेख रविषेणाचार्यके पद्मचरितकी प्रशस्तिके निम्न वाक्यमे पाया जाता है, जिसमें उन्हें इन्द्र-गुरुका शिष्य, अर्हन्मुनिका गुरु और रविषेणके गुरु लक्ष्मणसेनका दादागुरु प्रकट किया है:—

आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकर-यतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनिः ।
तस्माल्लक्ष्मणसेन-सन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥१२३-१६७॥

इस पद्यमे उल्लेखित दिवाकरयतिका सिद्धसेनदिवाकर होना दो कारणोंसे अधिक सम्भव जान पड़ता है—एक तो समयकी दृष्टिसे और दूसरे गुरु-नामकी दृष्टिसे। पद्मचरित वीरनिर्वाणसे १२०३ वर्ष ६ महीने वीतनेपर अर्थात् विक्रमसंवत् ७३४मे बनकर समाप्त हुआ है[१], इससे रविषेणके पड़दादा (गुरुके दादा) गुरुका समय लगभग एक शताब्दी पूर्वका अर्थात् विक्रमकी ७वीं शताब्दीके द्वितीय चरण (६२६–६५०)के भीतर आता है जो सन्मतिकार सिद्धसेनके लिये ऊपर निश्चित किया गया है। दिवाकरके गुरुका नाम यहाँ इन्द्र दिया है, जो इन्द्रसेन या इन्द्रदत्त आदि किसी नामका संक्षिप्तरूप अथवा एक देश मालूम होता है। श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें जहाँ सिद्धसेनदिवाकरका नामोल्लेख किया है वहाँ इन्द्रदिन्न नामक पट्टाचार्यके बाद 'अत्रान्तरे' जैसे शब्दोंके साथ उस नामकी वृद्धि की गई है। हो सकता है कि सिद्धसेनदिवाकरके गुरुका नाम इन्द्र-जैसा होने और सिद्धसेनका सम्बन्ध आद्य विक्रमादित्य अथवा संवत्प्रवर्त्तक विक्रमादित्यके साथ समझ लेनेकी भूलके कारण ही सिद्धसेनदिवाकरका इन्द्रदिन्न आचार्यकी पट्टबाह्य-शिष्यपरम्परामें स्थान दिया गया हो। यदि यह कल्पना ठीक है और उक्त पद्यमें 'दिवाकरयतिः' पद सिद्धसेनाचार्यका वाचक है तो कहना होगा कि सिद्धसेन-दिवाकर रविषेणाचार्यके पड़दादागुरु होनेसे दिगम्बर सम्प्रदायके आचार्य थे। अन्यथा यह कहना अनुचित न होगा कि सिद्धसेन अपने जीवनमें 'दिवाकर'की आख्याको प्राप्त नहीं थे, उन्हें यह नाम अथवा विशेषण बादको हरिभद्रसूरि अथवा उनके निकटवर्ती किसी पूर्वाचार्यने

१ देखो, माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें प्रकाशित रत्नकरण्डश्रावकाचारकी प्रस्तावना पृ० ८।

२ द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्द्धचतुष्कवर्षयुक्ते ।
जिनभास्कर-वर्द्धमान-सिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥१२३-१८१ ॥

अलङ्कारकी भाषामें दिया है और इसीसे सिद्धसेनके लिये उसका स्वतन्त्र उल्लेख प्राचीन-साहित्यमें प्रायः देखनेको नहीं मिलता। श्वेताम्बरसाहित्यका जो एक उदाहरण ऊपर दिया गया है वह रत्नशेखरसूरिकृत गुरुगुणषट्त्रिंशत्षट्त्रिंशिकाकी स्वोपज्ञवृत्तिका एकवाक्य होनेके कारण ५०० वर्षसे अधिक पुराना मालूम नहीं होता और इसलिये वह सिद्धसेनकी दिवाकर-रूपमें बहुत बादकी प्रसिद्धिसे सम्बन्ध रखता है। आजकल तो सिद्धसेनके लिये 'दिवाकर' नामके प्रयोगकी बाढ़-सी आरही है परन्तु अतिप्राचीन कालमें वैसा कुछ भी मालूम नहीं होता।

यहाँपर एक बात और भी प्रकट कर देनेकी है और वह यह कि उक्त श्वेताम्बर प्रबन्धों तथा पट्टावलियोंमें सिद्धसेनके साथ उज्जयिनीके महाकालमन्दिरमें लिङ्गस्फोटनादि-सम्बन्धिनी जिस घटनाका उल्लेख मिलता है उसका वह उल्लेख दिगम्बर सम्प्रदायमें भी पाया जाता है, जैसा कि सेनगणकी पट्टावलीके निम्न वाक्यसे प्रकट है:—

"(स्वस्ति) *श्रीमदुज्जयिनीमहाकाल-संस्थापन-महाकाललिङ्गमहीधर-वाग्वज्रदण्डविष्ट्याविष्कृत-श्रीपार्श्वतीर्थेश्वर-प्रतिद्वन्द-श्रीसिद्धसेनभट्टारकाणाम् ॥१४॥*"

ऐसी स्थितिमें द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनके विषयमें भी सहज अथवा निश्चित-रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि वे एकान्ततः श्वेताम्बर सम्प्रदायके थे, सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेनकी तो बात ही जुदी है। परन्तु सन्मतिकी प्रस्तावनामें प० सुखलालजी और पण्डित बेचरदासजीने उन्हें एकान्ततः श्वेताम्बर सम्प्रदायका आचार्य प्रतिपादित किया है—लिखा है कि 'वे श्वेताम्बर थे, दिगम्बर नहीं' (पृ० १०४)। परन्तु इस बातको सिद्ध करनेवाला कोई समर्थ कारण नहीं बतलाया, कारणरूपमें केवल इतना ही निर्देश किया है कि 'महावीरके गृहस्थाश्रम तथा चमरेन्द्रके शरणागमनकी बात सिद्धसेनने वर्णन की है जो दिगम्बरपरम्परामें मान्य नहीं किन्तु श्वेताम्बर आगमोंके द्वारा निर्विवादरूपसे मान्य है' और इसके लिये फुट-नोटमें ५वीं द्वात्रिंशिकाके छठे और दूसरी द्वात्रिंशिकाके तीसरे पद्यको देखनेकी प्रेरणा की है, जो निम्न प्रकार हैं:—

"*अनेकजन्मान्तरभग्नमानः स्मरो यशोदाप्रिय यत्पुरस्ते ।*
चचार निर्हीकशरस्तमर्थं त्वमेव विद्यासु नयज्ञ कोऽन्यः ॥५-६॥"
"*कृत्वा नव सुरवधूभयरोमहर्षं दैत्याधिपः शतमुख-भ्रुकुटीवितानः ।*
त्वत्पादशान्तिगृहसंश्रयलब्धचेता लज्जातनुद्युति हरेः कुलिशं चकार ॥२-३॥"

इनमेंसे प्रथम पद्यमें लिखा है कि 'हे यशोदाप्रिय! दूसरे अनेक जन्मोंमें भग्नमान हुआ कामदेव निर्लज्जतारूपी बाणको लिये हुए जो आपके सामने कुछ चला है उसके अर्थको आप ही नयके ज्ञाता जानते हैं, दूसरा और कौन जान सकता है? अर्थात् यशोदाके साथ आपके वैवाहिक सम्बन्ध अथवा रहस्यको समझनेके लिये हम असमर्थ है।' दूसरे पद्यमें देवाऽसुर-संग्रामके रूपमें एक घटनाका उल्लेख है, 'जिसमें दैत्याधिप असुरेन्द्रने सुरवधुओंको भयभीतकर उनके रोंगटे खड़े कर दिये। इससे इन्द्रकी भ्रकुटी तन गई और उसने उसपर वज्र छोड़ा, असुरेन्द्रने भागकर वीरभगवानके चरणोंका आश्रय लिया जो कि शान्तिके धाम हैं और उनके प्रभावसे वह इन्द्रके वज्रको लज्जासे क्षीणद्युति करनेमें समर्थ हुआ।'

अलंकृत भाषामें लिखी गई इन दोनों पौराणिक घटनाओंका श्वेताम्बर सिद्धान्तोंके साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं है और इसलिये इनके इस रूपमें उल्लेख मात्रपरसे यह नहीं कहा जा सकता कि इन पद्योंके लेखक सिद्धसेन वास्तवमें यशोदाके साथ भ० महावीरका विवाह होना और असुरेन्द्र (चमरेन्द्र) का सेना सजाकर तथा अपना भयंकर रूप बनाकर युद्धके लिये स्वर्गमें जाना आदि मानते थे, और इसलिये श्वेताम्बर सम्प्रदायके आचार्य थे,

क्योंकि प्रथम तो श्वेताम्बरोंके आवश्यकनिर्युक्ति आदि कुछ प्राचीन आगमोंमें भी दिगम्बर आगमोंकी तरह भगवान् महावीरको कुमारश्रमणके रूपमे अविवाहित प्रतिपादित किया है[1] और असुरकुमार-जातिविशिष्ट-भवनवासी देवोंके अधिपति चमरेन्द्रका युद्धकी भावनाको लिये हुए सैन्य सजाकर स्वर्गमें जाना सैद्धान्तिक मान्यताओंके विरुद्ध जान पड़ता है। दूसरे, यह कथन परवक्तव्यके रूपमे भी हो सकता है और आगमसूत्रोंमें कितना ही कथन परवक्तव्यके रूपमें पाया जाता है इसकी स्पष्ट सूचना सिद्धसेनाचार्यने सन्मतिसूत्रमें की है और लिखा है कि ज्ञाता पुरुषको (युक्ति-प्रमाण-द्वारा) अर्थकी सङ्गतिके अनुसार ही उनकी व्याख्या करनी चाहिए[2]।

यदि किसी तरहपर यह मान लिया जाय कि उक्त दोनों पद्योंमें जिन घटनाओंका उल्लेख है वे परवक्तव्य या अलङ्कारादिके रूपमें न होकर शुद्ध श्वेताम्बरीय मान्यताएँ हैं तो इससे केवल इतना ही फलित हो सकता है कि इन दोनों द्वात्रिंशिकाओं (२, ५)के कर्ता जो सिद्धसेन हैं वे श्वेताम्बर थे। इससे अधिक यह फलित नही हो सकता कि दूसरी द्वात्रिंशिकाओ तथा सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन भी श्वेताम्बर थे, जबतक कि प्रबल युक्तियोंके बलपर इन सब ग्रन्थोका कर्त्ता एक ही सिद्धसेनको सिद्ध न कर दिया जाय, परन्तु वह सिद्ध नहीं है जैसा कि पिछले एक प्रकरणमें व्यक्त किया जा चुका है। और फिर इस फलित होनेमें भी एक बाधा और आती है और वह यह कि इन द्वात्रिंशिकाओंमें कोई कोई बात ऐसी भी पाई जाती है जो इनके शुद्ध श्वेताम्बर कृतियाँ होनेपर नहीं बनती, जिसका एक उदाहरण तो इन दोनोंमे उपयोगद्वयके युगपत्वादका प्रतिपादन है, जिसे पहले प्रदर्शित किया जा चुका है और जो दिगम्बर परम्पराका सर्वोपरि मान्य सिद्धान्त है तथा श्वेताम्बर आगमोंकी क्रमवाद-मान्यताके विरुद्ध जाता है। दूसरा उदाहरण पाँचवीं द्वात्रिंशिकाका निम्न वाक्य है:—

> *"नाथ त्वया देशितसत्पथस्थाः स्त्रीचेतसोऽप्याशु जयन्ति मोहम्।*
> *नैवाऽन्यथा शीघ्रगतिर्यथा गा प्राचीं यियासुर्विपरीतयायी ॥२५॥"*

इसके पूर्वार्धमें बतलाया है कि 'हे नाथ!—वीरजिन! आपके बतलाये हुए सन्मार्गपर स्थित वे पुरुष भी शीघ्र मोहको जीत लेते हैं—मोहनीयकर्मके सम्बन्धका अपने आत्मासे पूर्णतः विच्छेद कर देते हैं—जो 'स्त्रीचेतसः' होते हैं—स्त्रियों-जैसा चित्त (भाव) रखते हैं अर्थात् भावस्त्री होते हैं।' और इससे यह साफ ध्वनित है कि स्त्रियाँ मोहको पूर्णतः जीतनेमें समर्थ नहीं होतीं, तभी स्त्रीचित्तके लिये मोहको जीतनेकी बात गौरवको प्राप्त होती है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जब स्त्रियाँ भी पुरुषोंकी तरह मोहपर पूर्ण विजय प्राप्त करके उसी भवसे मुक्तिको प्राप्त कर सकती हैं तब एक श्वेताम्बर विद्वान्के इस कथनमें कोई महत्व मालूम नहीं होता कि 'स्त्रियों-जैसा चित्त रखनेवाले पुरुष भी शीघ्र मोहको जीत लेते हैं,' वह निरर्थक जान पड़ता है। इस कथनका महत्व दिगम्बर विद्वानोंके मुखसे उच्चरित होनेमें ही है जो स्त्रीको मुक्तिकी अधिकारिणी नहीं मानते फिर भी स्त्रीचित्तवाले भावस्त्री पुरुषोंके लिये मुक्तिका विधान करते हैं। अतः इस वाक्यके प्रणेता सिद्धसेन दिगम्बर होने चाहियें, न कि श्वेताम्बर, और यह समझना चाहिये कि उन्होंने इसी द्वात्रिंशिकाके छठे पद्यमें 'यशोदाप्रिय' पदके साथ जिस घटनाका उल्लेख किया है वह अलङ्कारकी प्रधानताको लिये हुए परवक्तव्यके रूपमें उसी प्रकारका कथन है

---

१ देखो, आवश्यकनिर्युक्तिगाथा २२१, २२२, २२६ तथा अनेकान्त वर्ष ४ कि० ११-१२ पृ० ५७६ पर प्रकाशित 'श्वेताम्बरोंमें भी भगवान् महावीरके अविवाहित होनेकी मान्यता' नामक लेख।

२ परवत्तव्वयपक्खा अविसिट्ठा तेसु तेसु सुत्तेसु। अत्थगईअ उ तेसिं वियजण जाणओ कुणइ ॥२-१८॥

जिस प्रकार कि ईश्वरको कर्ता-हर्ता न माननेवाला एक जैनकवि ईश्वरको उलहना अथवा उसकी रचनामें दोष देता हुआ लिखता है—

"हे विधि ! भूल भई तुमतैं, समुझे न कहाँ कस्तूरि बनाई !
दीन कुरङ्गनके तनमें, तृन दन्त धरैं करुना नहिं आई !!
क्यों न रची तिन जीभनि जे रस काव्य करैं परको दुखदाई !
साधु-अनुग्रह दुर्जन-दण्ड, दुहूँ सधते विसरी चतुराई !!"

इस तरह सन्मतिके कर्ता सिद्धसेनको श्वेताम्बर सिद्ध करनेके लिये जो द्वात्रिंशिकाओंके उक्त दो पद्य उपस्थित किये गये है उनसे सन्मतिकार सिद्धसेनका श्वेताम्बर सिद्ध होना तो दूर रहा, उन द्वात्रिंशिकाओके कर्ता सिद्धसेनका भी श्वेताम्बर होना प्रमाणित नहीं होता जिनके उक्त दोनो पद्य अङ्गरूप हैं । श्वेताम्बरत्वकी सिद्धिके लिये दूसरा और कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया और इससे यह भी साफ मालूम होता है कि स्वय सन्मतिसूत्रमें ऐसी कोई बात नहीं है जिससे उसे दिगम्बरकृति न कहकर श्वेताम्बरकृति कहा जा सके, अन्यथा उसे जरूर उपस्थित किया जाता। सन्मतिमें ज्ञान-दर्शनोपयोगके अभेदवादकी जो खास बात है वह दिगम्बर मान्यताके अधिक निकट है, दिगम्बरोंके युगपद्वादपरसे ही फलित होती है—न कि श्वेताम्बरोंके क्रमवादपरसे, जिसके खण्डनमें युगपद्वादकी दलीलोंको सन्मतिमें अपनाया गया है। और श्रद्धात्मक दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानके अभेदवादकी जो बात सन्मति द्वितीयकाण्डकी गाथा ३२-३३में कही गई है उसके बीज श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके समयसार ग्रन्थमें पाये जाते हैं। इन बीजोकी बातको प० सुखलालजी आदिने भी सन्मतिकी प्रस्तावना (पृ० ६२)में स्वीकार किया है—लिखा है कि "सन्मतिना (का० २ गाथा ३२) श्रद्धा-दर्शन अने ज्ञानना ऐक्यवादनु बीज कुदकुदना समयसार गा० १-१३ मा[1] स्पष्ट छे।" इसके सिवाय, समयसारकी 'जो पस्सदि अप्पाण' नामकी १४वीं गाथामें शुद्धनयका स्वरूप बतलाते हुए जब यह कहा गया है कि वह नय आत्माको अविशेषरूपसे देखता है तब उसमें ज्ञान-दर्शनोपयोगकी भेद-कल्पना भी नहीं बनती और इस दृष्टिसे उपयोग-द्वयकी अभेदवादताके बीज भी समयसारमे सन्निहित है ऐसा कहना चाहिये।

हाँ, एक बात यहाँ और भी प्रकट कर देनेकी है और वह यह कि (प० सुखलालजीने 'सिद्धसेनदिवाकरना समयनो प्रश्न' नामक लेखमे[2] देवनन्दी पूज्यपादको "दिगम्बर परम्पराका पक्षपाती सुविद्वान्" बतलाते हुए सन्मतिके कर्ता सिद्धसेनदिवाकरको *"श्वेताम्बरपरम्पराका समर्थक आचार्य"* लिखा है, परन्तु यह नहीं बतलाया कि वे किस रूपमे श्वेताम्बरपरम्पराके समर्थक हैं।) दिगम्बर और श्वेताम्बरमें भेदकी रेखा खींचनेवाली मुख्यतः तीन बातें प्रसिद्ध हैं—१ स्त्रीमुक्ति, २ केवलिभुक्ति (कवलाहार) और ३ सवस्त्रमुक्ति, जिन्हें श्वेताम्बर सम्प्रदाय मान्य करता और दिगम्बर सम्प्रदाय अमान्य ठहराता है। इन तीनोंमेंसे एकका भी प्रतिपादन सिद्धसेनने अपने किसी ग्रन्थमे नहीं किया है और न इनके अलावा अलकृत अथवा शृङ्गारित जिनप्रतिमाओंके पूजनादिका ही कोई विधान किया है, जिसके मण्डनादिककी भी सन्मतिके टीकाकार अभयदेवसूरिको जरूरत पडी है और उन्होंने मूलमे वैसा कोई खास प्रसङ्ग न होते

---

१ यहाँ जिस गाथाकी सूचना की गई है वह 'दसणणाणचरित्ताणि' नामकी १६वीं गाथा है। इसके अतिरिक्त 'ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दसण णाण' (७), 'सम्मद्द सणणाण एसो लहदि त्ति णवरि ववदेस' (१४४), और 'णाण सम्मादिट्ठं दु सजमं सुत्तमंगपुव्वगयं' (४०४) नामकी गाथाओंमें भी अभेदवादके बीज संनिहित हैं।

२ भारतीयविद्या, तृतीय भाग पृ० १५४।

हुए भी उसे यों ही टीकामें लाकर घुसेड़ा है¹। ऐसी स्थितिमें सिद्धसेनदिवाकरको दिगम्बर-परम्परासे भिन्न एकमात्र श्वेताम्बरपरम्पराका समर्थक आचार्य कैसे कहा जा सकता है? नहीं कहा जा सकता। सिद्धसेनने तो श्वेताम्बरपरम्पराकी किसी विशिष्ट बातका कोई समर्थन न करके उल्टा उसके उपयोग-द्वय विषयक क्रमवादकी मान्यताका सन्मतिमें ज़ोरोंके साथ खण्डन किया है और इसके लिये उन्हें अनेक साम्प्रदायिक कट्टरताके शिकार श्वेताम्बर आचार्योंका कोपभाजन एवं तिरस्कारका पात्र तक बनना पड़ा है। मुनि जिनविजयजीने 'सिद्ध-सेनदिवाकर और स्वामी समन्तभद्र' नामक लेखमें² उनके इस विचारभेदका उल्लेख करते हुए लिखा है—

"सिद्धसेनजीके इस विचारभेदके कारण उस समयके सिद्धान्त-ग्रन्थ-पाठी और आगमप्रवण आचार्यगण उनको 'तर्कम्मन्य' जैसे तिरस्कार-व्यञ्जक विशेषणोंसे अलंकृत कर उनके प्रति अपना सामान्य अनादर-भाव प्रकट किया करते थे।"

"इस (विशेषावश्यक) भाष्यमें क्षमाश्रमण (जिनभद्र)जीने दिवाकरजीके उक्त विचार-भेदका खूब ही खण्डन किया है और उनको 'आगम-विरुद्ध-भाषी' बतलाकर उनके सिद्धान्तको अमान्य बतलाया है॥'

"सिद्धसेनगणीने 'एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः' (१-३१) इस सूत्रकी व्याख्यामें दिवाकरजीके विचारभेदके ऊपर अपने ठीक वाग्बाण चलाये हैं। गणीजीके कुछ वाक्य देखिये— 'यद्यपि केचित्पण्डितंमन्याः सूत्रान्यथाकारमर्थमाचक्षते तर्कबलानुविद्ध-बुद्धयो वारंवारेणोपयोगो नास्ति, तत्तु न प्रमाणयामः, यत आम्नाये भूयांसि सूत्राणि वारंवारे-णोपयोगं प्रतिपादयन्ति।"

दिगम्बर साहित्यमें ऐसा एक भी उल्लेख नहीं जिसमें सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेनके प्रति अनादर अथवा तिरस्कारका भाव व्यक्त किया गया हो—सर्वत्र उन्हें बड़े ही गौरवके साथ स्मरण किया गया है, जैसा कि ऊपर उद्धृत हरिवंशपुराणादिके कुछ वाक्योंसे प्रकट है। अकलङ्कदेवने उनके अभेदवादके प्रति अपना मतभेद व्यक्त करते हुए किसी भी कटु शब्दका प्रयोग नहीं किया, बल्कि बड़े ही आदरके साथ लिखा है कि "यथा हि असद्भूतमनुपदिष्टं च जानाति तथा पश्यति किमत्र भवतो हीयते"—अर्थात् केवली (सर्वज्ञ) जिस प्रकार असद्-भूत और अनुपदिष्टको जानता है उसी प्रकार उनको देखता भी है इसके माननेमें आपकी क्या हानि होती है?—वास्तविक बात तो प्रायः ज्योंकी त्यों एक ही रहती है। अकलङ्कदेवके प्रधान टीकाकार आचार्य श्रीअनन्तवीर्यजीने सिद्धिविनिश्चयकी टीकामें 'असिद्धः सिद्धसेनस्य विरुद्धो देवनन्दिनः। द्वेधा समन्तभद्रस्य हेतुरेकान्तसाधने।' इस कारिकाकी व्याख्या करते हुए सिद्धसेनको महान् आदर-सूचक 'भगवान्' शब्दके साथ उल्लेखित किया है और जब उनके किसी स्वयूथ्यने—स्वसम्प्रदायके विद्वान्ने—यह आपत्ति की कि 'सिद्धसेनने एकान्तके साधनमें प्रयुक्त हेतुको कहीं भी असिद्ध नहीं बतलाया है अतः एकान्तके साधनमें प्रयुक्त हेतु सिद्धसेन-की दृष्टिमें असिद्ध है' यह वचन सूक्त न होकर अयुक्त है, तब उन्होंने यह कहते हुए कि 'क्या उसने कभी यह वाक्य नहीं सुना है' सन्मतिसूत्रकी 'जे संतवायदोसे' इत्यादि कारिका (३-५०) को उद्धृत किया है और उसके द्वारा एकान्तसाधनमें प्रयुक्त हेतुको सिद्धसेनकी दृष्टिमें 'असिद्ध' प्रतिपादन करना सन्निहित बतलाकर उसका समाधान किया है। यथाः—

१ देखो, सन्मति-तृतीयकाण्डगत गाथा ६५की टीका (पृ० ७५४), जिसमें "भगवत्प्रतिमाया भूषणाद्या-रोपणं कर्मक्षयकारणं" इत्यादि रूपसे मण्डन किया गया है।

२ जैनसाहित्यसंशोधक, भाग १ अङ्क १ पृ० १०, ११।

"असिद्ध इत्यादि, स्वलक्षणैकान्तस्य साधने सिद्धावङ्गीक्रियमानाया सर्वो हेतुः सिद्धसेनस्य भगवतोऽसिद्धः । कथमिति चेदुच्यते । ततः सूक्ष्मेकान्तसाधने हेतुरसिद्धः सिद्धसेनस्येति । कश्चित्स्वयूथ्योऽत्राह—सिद्धसेनेन क्वचित्तस्याऽसिद्धस्याऽवचनादयुक्तमेतदिति । तेन कदाचिदेतत् श्रुत—'जे सतवायदोसे सक्कोल्लूया भणंति सखाणं । सखा य असव्वाए तेसिं सव्वे वि ते सच्चा' ॥"

इन्हीं सब बातोको लक्ष्यमे रखकर प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् स्वर्गीय श्रीमोहनलाल दलीचन्द देशाई बीए. ए, एल-एल. बी. एडवोकेट हाईकोर्ट बम्बईने, अपने 'जैन-साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास' नामक गुजराती ग्रन्थ (पृ. ११६)मे लिखा है कि "सिद्धसेनसूरि प्रत्येनो आदर दिगम्बरो विद्वानोमा रहेलो देखाय छे" अर्थात् (सन्मतिकार) सिद्धसेनाचार्यके प्रति आदर दिगम्बर विद्वानोंमे रहा दिखाई पड़ता है—श्वेताम्बरोंमें नहीं। साथ ही हरिवंशपुराण, राजवार्तिक, सिद्धिविनिश्चय-टीका, रत्नमाला, पार्श्वनाथचरित और एकान्तखण्डन-जैसे दिगम्बर ग्रन्थों तथा उनके रचयिता जिनसेन, अकलङ्क, अनन्तवीर्य, शिवकोटि, वादिराज और लक्ष्मीभद्र(धर) जैसे दिगम्बर विद्वानोंका नामोल्लेख करते हुए यह भी बतलाया है कि 'इन दिगम्बर विद्वानोने सिद्धसेनसूरि-सम्बन्धी और उनके सन्मतितर्क-सम्बन्धी उल्लेख भक्तिभावसे किये हैं. और उन उल्लेखोसे यह जाना जाता है कि दिगम्बर ग्रन्थकारोंमे घना समय तक सिद्धसेनके (उक्त) ग्रन्थका प्रचार था और वह प्रचार इतना अधिक था कि उसपर उन्होंने टीका भी रची है।

इस सारी परिस्थितिपरसे यह साफ समझा जाता और अनुभवमें आता है कि सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन एक महान् दिगम्बराचार्य थे, और इसलिये उन्हे श्वेताम्बर-परम्पराका अथवा श्वेताम्बरत्वका समर्थक आचार्य बतलाना कोरी कल्पनाके सिवाय और कुछ भी नहीं है। वे अपने प्रवचन-प्रभाव आदिके कारण श्वेताम्बरसम्प्रदायमे भी उसी प्रकारसे अपनाये गये हैं जिस प्रकार कि स्वामी समन्तभद्र, जिन्हे श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें पट्टाचार्य तकका पद प्रदान किया गया है और जिन्हे प० सुखलाल, पं० बेचरदास और मुनि जिनविजय आदि बड़े-बड़े श्वेताम्बर विद्वान् भी अब श्वेताम्बर न मानकर दिगम्बर मानने लगे हैं।

कतिपय द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेन इन सन्मतिकार सिद्धसेनसे भिन्न तथा पूर्ववर्ती दूसरे ही सिद्धसेन हैं, जैसा कि पहले व्यक्त किया जा चुका है, और सम्भवतः वे ही उज्जयिनीके महाकालमन्दिरवाली घटनाके नायक जान पडते हैं। हो सकता है कि वे शुरूसे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ही दीक्षित हुए हो, परन्तु श्वेताम्बर आगमोंको सस्कृतमें कर देनेका विचारमात्र प्रकट करनेपर जब उन्हे बारह वर्षके लिये सघबाह्य करने-जैसा कठोर दण्ड दिया गया हो तब वे सविशेषरूपसे दिगम्बर साधुओंके सम्पर्कमें आए हों, उनके प्रभावसे प्रभावित तथा उनके सस्कारों एवं विचारोंको ग्रहण करनेमें प्रवृत्त हुए हो—खासकर समन्तभद्रस्वामीके जीवनवृत्तान्तों और उनके साहित्यका उनपर सबसे अधिक प्रभाव पडा हो और इसी लिये वे उन्हीं-जैसे स्तुत्यादिक कार्योंके करनेमें दत्तचित्त हुए हों। उन्हींके सम्पर्क एव सस्कारोंमे रहते हुए ही सिद्धसेनसे उज्जयिनीकी वह महाकालमन्दिरवाली घटना बन पडी हो, जिससे उनका प्रभाव चारों ओर फैल गया हो और उन्हें भारी राजाश्रय प्राप्त हुआ हो। यह सब देखकर ही श्वेताम्बरसघको अपनी भूल मालूम पडी हो, उसने प्रायश्चित्तकी शेष अवधिको रद्द कर दिया हो और सिद्धसेनको अपना ही साधु तथा प्रभावक आचार्य घोषित किया हो। अन्यथा, द्वात्रिंशिकाओपरसे सिद्धसेन गम्भीर विचारक एव कठोर समालोचक होनेके साथ साथ जिस उदार स्वतन्त्र और निर्भय-प्रकृतिके समर्थ विद्वान् जान पड़ते हैं उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि उन्होंने ऐसे अनुचित एव अविवेकपूर्ण दण्डको यो ही चुपके-से गर्दन झुका कर मान लिया हो, उसका कोई प्रतिरोध न किया हो अथवा अपने लिये

कोई दूसरा मार्ग न चुना हो। सम्भवतः अपने साथ किये गये ऐसे किसी दुर्व्यवहारके कारण ही उन्होंने पुराणपन्थियो अथवा पुरातनप्रेमी एकान्तियोंकी (द्वा० ६में) कड़ी आलोचनाएँ की हैं।

यह भी हो सकता है कि एक सम्प्रदायने दूसरे सम्प्रद्रायकी इस उज्जयिनीवाली घटनाको अपने सिद्धसेनके लिये अपनाया हो अथवा यह घटना मूलतः कॉंची या काशीमें घटित होनेवाली समन्तभद्रकी घटनाकी ही एक प्रकारसे कापी हो और इसके द्वारा सिद्धसेनको भी उसप्रकारका प्रभावक ख्यापित करना अभीष्ट रहा हो। कुछ भी हो, उक्त द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेन अपने उदार विचार एव प्रभावादिके कारण दोनों सम्प्रदायोंमें समानरूपसे माने जाते हैं--चाहे वे किसी भी सम्प्रदायमे पहले अथवा पीछे दीक्षित क्यो न हुए हों।

परन्तु न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेनकी दिगम्बर सम्प्रदायमे वैसी कोई खास मान्यता मालूम नहीं होती और न उस ग्रन्थपर दिगम्बरोंकी किसी खास टीका-टिप्पणका ही पता चलता है, इसीसे वे प्रायः श्वेताम्बर जान पड़ते हैं। श्वेताम्बरोंके अनेक टीका-टिप्पण भी न्यायावतारपर उपलब्ध होते हैं—उसके 'प्रमाण स्वपराभासि' इत्यादि प्रथम श्लोकको लेकर तो विक्रमकी ११वीं शताब्दीके विद्वान् जिनेश्वरसूरिने उसपर 'प्रमालक्ष्म' नामका एक सटीक वार्तिक ही रच डाला है, जिसके अन्तमें उसके रचनेमें प्रवृत्त होनेका कारण उन दुर्जनवाक्योंको बतलाया है जिनमें यह कहा गया है कि इन 'श्वेताम्बरोंके शब्दलक्षण और प्रमाणलक्षण-विषयक कोई ग्रन्थ अपने नहीं हैं, ये परलक्षणोपजीवी है—बौद्ध तथा दिगम्बरादि ग्रन्थोंसे अपना निर्वाह करनेवाले है—अतः ये आदिसे नहीं—किसी निमित्तसे नये ही पैदा हुए अर्वाचीन है।' साथ ही यह भी बतलाया है कि 'हरिभद्र, मल्लवादी और अभयदेवसूरि-जैसे महान् आचार्योके द्वारा इन विषयोकी उपेक्षा किये जानेपर भी हमने उक्त कारणसे यह 'प्रमालक्ष्म' नामका ग्रन्थ वार्तिकरूपमे अपने पूर्वाचार्यका गौरव प्रदर्शित करनेके लिये (टीका-'पूर्वाचार्यगौरव-दर्शनार्थं") रचा है और (हमारे भाई) बुद्धिसागराचार्यने संस्कृत-प्राकृत शब्दोकी सिद्धिके लिये पद्योमे व्याकरण ग्रन्थकी रचना की है[1]।'

इस तरह सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन दिगम्बर और न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेन श्वेताम्बर जाने जाते हैं। द्वात्रिंशिकाओंमेंसे कुछके कर्ता सिद्धसेन दिगम्बर और कुछके कर्ता श्वेताम्बर जान पडते हैं और वे उक्त दोनों सिद्धसेनोसे भिन्न पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती अथवा उनसे अभिन्न भी हो सकते है। ऐसा मालूम होता है कि उज्जयिनीकी उस घटनाके साथ जिन सिद्धसेनका सम्बन्ध बतलाया जाता है उन्होने सबसे पहले कुछ द्वात्रिंशिकाओंकी रचना की है, उनके बाद दूसरे सिद्धसेनोने भी कुछ द्वात्रिंशिकाएँ रची हैं और वे सब रचयिताओंके नाम-साम्यके कारण परस्परमें मिलजुल गई हैं, अतः उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंमें यह निश्चय करना कि कौन-सी द्वात्रिंशिका किस सिद्धसेनकी कृति है विशेष अनुसन्धानसे सम्बन्ध रखता है। साधारणतौरपर उपयोग-द्वयके युगपद्वादादिकी दृष्टिसे, जिसे पीछे स्पष्ट किया जा चुका है, प्रथमादि पॉंच द्वात्रिंशिकाओंको दिगम्बर सिद्धसेनकी, १९वीं तथा २१वीं द्वात्रिंशिकाओंको श्वेताम्बर सिद्धसेनकी और शेष द्वात्रिंशिकाओको दोनोंमेंसे किसी भी सम्प्रदायके सिद्धसेनकी अथवा दोनो ही सम्प्रदायोंके सिद्धसेनोंकी अलग अलग कृति कहा जा सकता है। यही इन विभिन्न सिद्धसेनोंके सम्प्रदाय-विषयक विवेचनका सार है।

---

१ देखो, वार्तिक नं० ४०१से ४०५ और उनकी टीका अथवा जैनहितैषी भाग १३ अङ्क ९-१०में प्रकाशित मुनि जिनविजयजीका 'प्रमालक्षण' नामक लेख।

५. उपसंहार और आभार

इस प्रकार यह सब उन मूलग्रन्थों तथा उनके रचयिता आचार्यादि ग्रन्थकारोंका यथावश्यक और यथासाध्य संक्षेप-विस्तारसे परिचय है जिनके पद-वाक्योंको प्रस्तुत सूची (अनुक्रमणी) में शामिल अथवा सग्रहीत किया गया है।

अब मैं प्रस्तावनाको समाप्त करता हुआ उन सब सज्जनोका आभार प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनका इस ग्रन्थके निर्माणादि-कार्योंमें मुझे कुछ भी क्रियात्मक अथवा उल्लेखनीय सहयोग प्राप्त हुआ है। सबसे पहले मैं श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमारानीजीका हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थके निर्माण और प्रकाशन-कार्यमें अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। तत्पश्चात् अपने आश्रम वीरसेवा-मन्दिरके दो विद्वानो न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया और प० परमानन्दजी शास्त्रीके प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूं जो ग्रन्थके संशोधन-सम्पादन और प्रूफरीडिङ्ग आदि कार्योंमे बराबर सहयोगी रहे हैं। साथ ही आश्रमके उन भूतकालीन विद्वानो पडित ताराचन्दजी दर्शनशास्त्री, प० शकरलालजी न्यायतीर्थ और पं० दीपचन्दजी पाण्ड्याको भी मैं इस अवसर पर नहीं भुला सकता जिनका इस ग्रन्थमें पूर्व-सूचनानुससार प्रेसकापी आदिके रूपमें कुछ क्रियात्मक सहयोग रहा है, और इसलिये मैं उनका भी आभारी हूँ।

प्रोफेसर ए० एन० उपाध्येजी एम० ए०, डी० लिट० कोल्हापुरने इस ग्रन्थकी अंग्रेजी प्रस्तावना (Introduction) लिखकर और समय-समयपर अपने बहुमूल्य परामर्श देकर मुझे बहुत ही अनुग्रहीत किया है, और इसलिये उनका मैं यहांपर खासतौरसे आभार मानता हूँ।

भूतबलि-पुष्पदन्ताचार्यकृत षट्खण्डागमपरसे जिन गाथासूत्रोंको स्पष्ट करके परिशिष्ट न० २ मे दिया गया है उनमेसे दो एक तो पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकी खोजसे सम्बन्ध रखते हैं और शेषपर उनकी अनुमति प्राप्त हुई है। अतः इसके लिये वे भी आभारके पात्र हैं।

पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने स्याद्वादविद्यालय बनारससे, बाबू पन्नालालजी अग्रवाल देहलीने देहली-धर्मपुराके नये मन्दिरसे तथा बाबू कपूरचन्द (मालिक महावीर प्रेस) आगरा ने मोतीकटरा-जैनमन्दिरसे 'तिलोयपण्णत्ती' को हस्तलिखित प्रति भेजकर और ला० प्रद्युम्नकुमार जी जैन रईस सहारनपुरने अपने मन्दिरके शास्त्रभण्डारसे उसे तुलनाके लिये देकर, और इसी तरह, श्रीरामचन्द्रजी खिन्दुका जयपुरने आमेरके शास्त्रभण्डारसे प्राकृत 'पचसंग्रह' आदि की कुछ पुरानी प्रतियाँ भेज कर तथा 'जबूदीवपण्णत्ती की प्रतिको तुलनाके लिये देकर सूचीके कार्यमें जो सहायता पहुंचाई है उसके लिये ये सब सज्जन मेरे आभार एवं धन्यवादके पात्र हैं।

इसके सिवाय, प्रस्तुत प्रस्तावना के—खासकर उसके 'ग्रंथ और ग्रंथकार' नामक विभागके—लिखनेमे जिन विद्वानोके ग्रंथो, लेखों, प्रस्तावना-वाक्यों आदिपरसे मुझे कुछ भी सहायता प्राप्त हुई है अथवा जिनके अनुकूल-प्रतिकूल विचारोको पाकर मुझे उस विषयमें विशेषरूपसे कुछ विचार करने तथा लिखनेकी प्रेरणा मिली है उन सब विद्वानोका भी मै हृदयसे आभारी हूं—उनकी कृतियों तथा विचारोंके सम्पर्कमें आए विना प्रस्तावनाको वर्तमान रूप प्राप्त होता, इसमे सन्देह ही है।

अन्तमें मैं बाबू त्रिलोकचन्दजी जैन सरसावाका भी हृदयसे आभार व्यक्त करता हूं जो सहारनपुर-प्रेससे अधिकांश प्रूफोको कृपया लाते और करेक्शन हो जानेपर उन्हें प्रेसको पहुँचाते रहे हैं।

वीरसेवामन्दिर, सरसावा
जि० सहारनपुर

जुगलकिशोर मुख्तार

प्रस्तावनाका संशोधन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	८	उपस्थित करके	उपस्थित न करके
५०, ५१	×	(५० वें पृष्ठका मैटर ५१ वें पृष्ठपर और ५१ वेंका मैटर ५० वें पृष्ठ पर छप गया है अतः पृष्ठ ५० को ५१ तथा ५१ को ५० बना ले और तदनुसार ही पढ़नेकी कृपा करें।)	
९१	३६	धवला	जयधवला
९२	३७	निम्नकरण	निम्न कारण
११६	५	आकिकी	आदिकी
१२०	२१	जाता है	जाता है २
१२१	३८	णिदिट्ठा	निर्दिट्ठा
१२२	२५	वत्तव्य	वत्तव्वं
१२७	१०	हैं	है
”	३६	विषोग्रह	विषोग्रग्रह
”	३८	प्रासादस्थितात्	प्रासादस्थितात्
१३१	१७, २६	विविध तीर्थकल्प	विविधतीर्थकल्प
”	२०, ३०, ३३	द्वात्रिशकाओं	द्वात्रिंशिकाओं
”	२७	बतलाया	बतलाता
”	३३	जीवन वृत्तान्त	जीवनवृत्तान्त
१४२	२३	त्रियेण	त्रयेण
१६०	३	आर्यरवपुट्टाचार्य	आर्यखपुट्टाचार्य
१६१	९	रुलकैरिव	रुलूकैरिव
”	२३	सिरूसेन	सिद्धसेन
१६६	७	उल्लेख	उल्लेख करते हुए लिखा है-
”	३९	करते हुए लिखा है—	×

प्रस्तावनाकी नाम-सूची ।

पुरातन-जैनवाक्य-सूची

प्रथमो विभागः

अर्थात्

दिगम्बर जैन प्राकृतपद्यानुक्रमणी

अ

अइउएक्कगपहुदिसु	आय० ति० १५–१२	अइरूवो हि जुवाणो	रिट्ठस० ८६
अइउज्जलरूवाओ	जंबू० प० ४–१४०	अइलंघेय(इ) विचिट्ठो	वसु० सा० ७१
अइउट्ठिअणाउट्ठी	तिलो० प० ४–१६२१	अइलालिओ वि देहो	कत्ति० अणु० ९
अइउत्तमसहूणणो	भावसं० ९९	अइवट्टेहिं तेहिं	तिलो० प० १–१२०
अइएउक्कगपहुदिसु	आय० ति० ६–१४	अइविट्ठि अणाविट्ठी	जंबू प० २–१९९
अइएओसरजुत्ता	आय० ति० १०–१७	अइवुड्ढबालमूयं	वसु० सा० २३५
अइकव्वुरब्भुसुहयं	आय० ति० १६–६	अइसयअसेसणिवहं	जंबू प० ३–२४४
अइ कुणउ तवं पाले-	आरा० सा० १११	अइसयमव्वाबाहं	सिद्धभ० ९
अइणिट्ठुरफरसाई	वसु० सा० १३५	अइसयमादसमुत्थं	पवयणसा० १–१३
अइतित्तकडुवकच्छरि	तिलो० प० २–३४३	अइसरसमइसुगंधं	वसु० सा० २५२
अइतिव्वदाहसंता	वसु० सा० १६१	अइसुरहिकुसुमकुंकुम	आय० ति० २५–४
अइतिव्ववेयणाए	आरा० सा० ४३	अइसोहणजोएणं	मोक्खपा० २४
अइथूलथूल-थूलं	वसु० सा० १८	अउदइओ परिणामिओ	भावस० ८
अइथूलथूल-थूलं	णियम० २१	अउदुम्बरफलसरिसा	तिलो० प० ४–२२५०
अइबलिओ वि रउद्दो	कत्ति० अणु० २६	अउपत्तिकीभवंतर-	तिलो० प० ४–१०१८
अइबालवुड्ढदासे	छेदपिं० २१९	अकइयणियाणसम्मो	भावसं० ४०५
अइबालवुड्ढरोगा	वसु० सा० ३३७	अकचटतपजसवग्गा	रिट्ठस० २२७
अइभीमदंसणेण य	गो० जी० १३५	अकचटतपयसवग्गी	रिट्ठस० १६३
अइभीमदसणेण य	पंचसं० १–५३	अकडुगमतित्तयमणं-	भ० आरा० १४९०
अइमुत्तयाणभवणा	तिलो० प० ४–३२६	अकदम्मि वि अवराधे	भ० आरा ९४७
अइमेच्छा ते पुरिसा	तिलो० प० ४–१५७३	अकदीमाउअआदी	तिलो० सा० ६३

अकसाय-कसायाण	लद्धिसा० ४६२
अकसायत्तमवेदत्त-	भ० आरा० २१४७
अकसायं तु चरित्तं	मूला० ९८२
अकिट्टिमा अणिहणा	णयच० २७
अकिट्टिमा अणिहणा	दव्वस० णय० १६६
अक्खयवराडओ वा	वसु० सा० ३८४
अक्खर-अणक्खरमए	तिलो० प० ४-६६३
अक्खर-अणक्खरमए	तिलो० प० ४-९८४
अक्खर-आलेक्खेसुं	तिलो० प० ४-३८४
अक्खरचडिया मसि मिलिया	पाहु० दो० १७३
अक्खरडेहिँ जि गव्विया	पाहु० दो० ८६
अक्खरपिंडं विउणं	रिट्ठस० १६१
अक्खरमत्ताहीण	सुदखं० ६३
अक्खलियणाणदसण-	तिलो० प० ७-१
अक्खाणं अणुभवण	गो० क० १४
अक्खाणं अणुभवणं	कम्मप० १४
अक्खाणि बाहिरप्पा	मोक्ख पा० ५
अक्खा मणवचिकाया	तिलो० प० ४-४१२
अक्खीणमहाणसिया	तिलो० प० ४-८५५
अक्खेहि णरो रहिओ	वसु० सा० ६६
अक्खोमक्खणमेत्तं	मूला० ८१५
अखइ णिरामइ परमगइ	पाहु० दो० १६६
अखइ णिरामइ परमगइ	पाहु० दो० १७१
अखलिदममिडिदमव्वा-	भ० आरा० ६५२
अगणित्ता गुरुवयणं	वसु० सा० १६४
अगहिदमिस्सं गहिदं	गो० जी० ५५६-क्षे० २
अगिहत्थमिस्सणिलए	मूला० १६१
अगुरुगलहुगुवघादं	पंचसं० ४-२६२
अगुरुगलहुगुवघायं	पंचसं० ५-८५
अगुरुगलहुगेहिं सया	पंचत्थि० ८४
अगुरुयतुरुक्कचंदण-	जंबू० प० ५-८०
अगुरुयतुरुक्कचंदण-	जंबू० प० ११-२५०
अगुरुयलहुगुवघाया	पंचस० ४-४८५
अगुरुयलहुतसवायर-	पंचसं० ५-१२३
अगुरुयलहुपंचिंदिय-	पंचसं० ५-१६६
अगुरुयलहुयचउक्कं	पंचसं० ३-६२
अगुरुयलहुयचउक्क	पचस० ४-२६१, २७०
अगुरुयलहुयचउक्कं	पंचसं० ४-३६५
अगुरुयलहुयचउक्कं	पंचसं० ५-५५ ७६३
अगुरुयलहुयं तसवा-	पंचसं० ५-१३७
अगुरुयलहुयं तसवा-	पचसं० ५-१५८
अगुरुलहुगउवघादं	कम्मप० ६५
अगुरुलहुगा अणंता	दव्वस० णय० २१
अगुरुलहुगा अणंता	पंचत्थि ३१
अग्गइँ पच्छइँ दहदिहहिँ	पाहु० दो० १७५
अग्गमअंगि सुभद्दो	अंगप० ३-४७
अग्गमहिसिओ अट्ठ य	तिलो०प० ८-३८०
अग्गमहिसिओ अट्ठं	तिलो० प० ८-३७६
अग्गमहिसीण समं	तिलो० प० ३-६१
अग्गलदेवं वंदमि	णिव्वा० भ० २४
अग्गस्स वत्थुणो पि	अंगप० २-३६
अग्गायणीयणामं	सुदखं० ८२
अग्गिकुमारा सव्वे	तिलो० प० ३-१२१
अग्गितिकोणे रत्तो	णाणसा० ४७
अग्गितियंगुलमाणो	णाणसा० ५५
अग्गिदिसाए सादी-	तिलो० प० ४-२७७७
अग्गिदिसादिसु सक्कुलि-	तिलो० सा० ६१८
अग्गिदिसादो चउ चउ	तिलो० सा० ६२८
अग्गि पयावदि सोमो	तिलो० सा० ४३४
अग्गिपरिक्खित्तादो	भ० आरा० १३२२
अग्गिभया धावंता	तिलो० सा० १८८
अग्गिल्लं मग्गिल्लं	रिट्ठस० २०५
अग्गिविसकिण्हसप्पा	भ० आरा० ७२६
अग्गिविसचोरसप्पा	वसु० सा० ६५
अग्गिविसमसत्तुसप्पा	भ० आरा० १५६६
अग्गीवाहणणामो	तिलो० प० ३-१६
अग्गी वि य उहिदुजे	भ० आरा० ६८८
अग्गी वि य होदि हिमं	कत्ति० अणु० ४३१
अग्गीसाणक्कूडे	तिलो० सा० ६४१
अग्घविसेसे लद्धं	आय० ति० १७-२०
अघसे समे असुसिरे	भ० आरा० ६४१
अचक्खुस्स ओघभंगो	पंचसं० ५-२०१
अचतयवग्गा चउरो	आय० ति० १-२२
अचब्भुदइड्ढिजुदा	जंबू० प० ११-३०८
अचलपुरवरणयरे	णिव्वा० भ० १६
अचित्तदेवमाणुस-	मूला० २६२
अचित्ता खलु जोणी	मूला० ११००
अच्ची अच्चिदमालिणि	जंबू० प० ११-३३८
अच्ची य अच्चिमालिणि	तिलो० सा० ४५६
अच्चुदणामे पडले	तिलो० प० ८-५०५

अच्चेयण पि चेदा	मोक्खपा० ५८
अच्चेलकमण्हाणं	मूला० ३
अच्छइ जित्तिउ कालु मुणि	परम० प० २, ३८
अच्छउ जीवियमरणं	रिट्ठस० १०६
अच्छउ भोयणु ताहँ घरि	पाहु० दो० २१५
अच्छउ भोयणु ताहँ घरि	सावय० दो० ३०
अच्छदि णवदसमासे	तिलो० प० ४, ६२४
अच्छरतिलोत्तमाए	भावसं० २१०
अच्छरसयमज्झगया	वसु० सा० २६६
अच्छरसरिच्छरूवा	तिलो० प० ४, १२७
अच्छराणम्मिय पडियं	जंबू० प० ७, ११८
अच्छादणं महग्घं	छेदपिं० ६३
अच्छाहि ताव सुविहिद-	भ० आरा० ५१४
अच्छिणिमीलणमेत्तं	तिलो० सा० २०७
अच्छिणिमेसण मे(मि)त्तो	भ० आरा० १६६२
अच्छिण्णोवच्छिण्णो	कल्लाणा० ४४
अच्छीणि संघसिरिणो	भ० आरा० ७३२
अच्छीहिं पिच्छमाणो	कत्ति० अणु० २५०
अच्छीहिं य पेच्छंता	मूला० ८५४
अच्छोडेविणु अप्पणो	जंबू० प० ११, १७३
अजखरकरहसरिच्छा	तिलो० प० २, ३०६
अजगजमहिसतुरगम-	तिलो० प० २, ३४४
अजगजमहिसतुरंगम-	तिलो० प० २, ३०८
अजगजमहिसतुरंगम-	तिलो० प० २, ३४
अजधाचारविजुत्तो	पवयणसा० ३७२
अजदाई खीणंता	पंचसं० ४, ६४
अजरु अमरु गुणगणणिलउ	जोगसा० ६१
अजसमणत्थं दुक्खं	भ० आरा० ६०७
अजहण्णट्ठिदिबंधो	गो० क० १५२
अजहण्णमणुक्कस्स-	लद्धिसा० ३०
अजहण्णमणुक्कस्सं	लद्धिसा० ३२
अजिअं अजियमहप्पं	जंबू० प० २, २०६
अजियजिणपुप्फदंता	तिलो० प० ४, ६०७
अजियजिण जियमयणं	तिलो० प० २, १
अज्जजिणाणंदिगणिसव्व-	भ० आरा० २१६५
अज्जज्जसेणगुणगण-	गो० जी० ७३३
अज्जवम्लेच्छखंडे	कत्ति० अणु० १३२
अज्जवम्लेच्छमणुए	गो० जी० ८०
अज्जवसप्पिणि भरहे, दुस्समया	रयण० ५६
अज्जवसप्पिणि भरहे, धम्मज्झाणं	रयण० ६०
अज्जवसप्पिणि भरहे, पउरा	रयण० ५८
अज्ज वि तिरयणवंता	तच्चसा० १५
अज्ज वि तिरयणसुद्धा	मोक्खपा० ७७
अज्ज वि सा वलिपूया	भावस० १५६
अज्जसकित्ती य तहा	पचसं० ३, २१
अज्जसकित्ती य तहा	पंचस० ४, २६२
अज्जसकित्ती य तहा	पंचसं० ४, ३१३
अज्जसकित्ती य तहा	पचस० ५, ५६
अज्जाखंडम्मि ठिदा	तिलो० प० ४, २२८०
अज्जागमणे काले	मूला० १७७
अज्जाण चेलधुवणे	छेदस० ७४
अज्जीव-पुण्णपावे	दव्वस० णय० १६२
अज्जीवा वि य दुविहा	मूला० १८६
अज्जीवेसु य रूवी	गो० जी० ५६३
अज्जीवो पुण णेओ	दव्वसं० १५
अज्जु जि णिज्जइ करहुलउ	पा० दो० १११
अज्जुणि अरुणी कइला-	तिलो० प० ४, ११८
अज्झयणमेव झाणं	रयण० ६५
अज्झयणे परियट्टे	मूला० १८६
अज्झवसाणट्ठाणं	भ० आरा० १७८१
अज्झवसाणणिमित्तं	समय० २६७
अज्झवसाणविसुद्धी	भ० आरा० २५७
अज्झवसाणविसुद्धी	भ० आरा० २५६
अज्झवसिदेण बंधो	समय० २६२
अज्झवसिदो य बद्धो	भ० आरा० (वे०) ८०४
अज्झावयगुणजुत्तो	भावसं० ३७८
अट्टज्झाणपउत्तो	भावस० ३६०
अट्टरउद्दं झाणं	भावसं० ३५७
अट्टरउद्द झाणं	णाणसा० १४
अट्टरउद्दं झायइ	भावस० २०१
अट्टरउद्दारूढो	भावस० १६८
अट्टं रुद्दं च दुवे	मूला० ६७५, ६७७
अट्टे चउप्पयारे	भ० आरा० १७०१
अट्ठ अणुद्दिसणामे	तिलो० प० ४, १६७
अट्ठ अपुण्णपदेसु वि	लद्धिसा० १२
अट्ठाईं पालइ मूलगुण	सावय० दो० २६
अट्ठकसाये च तओ	वसु० सा० ५२१
अट्ठ-ख-ति-अट्ठ-पंचा	तिलो० प० ७, ३८८
अट्ठगुणमहड्ढीओ	जंबू० प० ११ २५५
अट्ठगुणाणं लद्धी	भावसं० ६३८

अट्ठ गुणिज्जा वामे	गो० क० ८४६
अट्ठगुणिड्ढिविसिट्ठा	तिलो० सा० २१६
अट्ठगुणिदेगसेढी	तिलो० प० १-१६४
अट्ठचउएक्कअडणभ	तिलो० प० ४-२८८१
अट्ठचउछक्कएक्का	तिलो० प० ७-२४१
अट्ठचउदुतिनिमित्ता	तिलो० प० ७-१२
अट्ठचउरट्ठवीसे	पंचसं० ५-२२२
अट्ठचउरेयवीसं	पचसं० ५-३६२
अट्ठचउसत्तपणचउ-	तिलो० प० ४-२८३२
अट्ठ चदु णाणदंसण-	दव्वस० णय० १४
अट्ठ चदु णाणदंसण-	दव्वसं० ६
अट्ठचदुदुगसहस्सा	तिलो० प० ८-३०६
अट्ठच्चिय जोयणया	तिलो० प० ४-१६४१
अट्ठच्चिय लक्खाणि	तिलो० प० ८-७०
अट्ठच्चिय लक्खाणि	तिलो० प० ८-७१
अट्ठच्चिय लक्खाणिं	तिलो० प० ७-६०१
अट्ठ छ अट्ठ य छद्दो	तिलो० प० ४-२६६४
अट्ठछचउदुगदेयं	तिलो० प० १-२७६
अट्ठछणवणवतियचउ-	तिलो० प० ४-२८८६
अट्ठ छदु अट्ठ तिय पण	तिलो० प० ४-२६३८
अट्ठट्ठकम्मरहियं	जंबू० प० १०-१०२
अट्ठट्ठकम्मरहियं	जंबू० प० १२-११३
अट्ठट्ठरेहछिण्णो	रिट्ठस० २०४
अट्ठट्ठसहस्साणिं	तिलो० प० ४-१८८६
अट्ठट्ठसिहरसहिओ	जंबू० प० ६-१७४
अट्ठट्ठा कोडीओ	जंबू० प० ४-८७
अट्ठट्ठा कोडीओ	जंबू० प० ११-३०१
अट्ठट्ठी बत्तीसं	पचसं० ५-३१४
अट्ठट्ठी सत्तरस य	तिलो० सा० ४०२
अट्ठट्ठी सत्तसया	पंचसं ५-३१६
अट्ठड तिय णभ छद्दो	तिलो० प० ४-२६८१
अट्ठणवणभचउक्का	तिलो० प० ४-२६१४
अट्ठण्णव उवमाणा	तिलो० प० ८-४६८
अट्ठण्हमणुक्कस्सो	पंचसं० ४-४३८
अट्ठण्हं आदिल्लो	छेदपिं० २३७
अट्ठण्हं कम्माण	गो० जी० ४५२
अट्ठण्हं जमगाणं	जंबू० प० ११-७६
अट्ठण्हं जमगाणं	जंबू० प० ११-३०
अट्ठण्हं देवीणं	तिलो० सा० ५१२
अट्ठण्हं पि य एवं	गो० क० १६१
अट्ठत्तरि अधियाए	तिलो० प० ४-५७६
अट्ठत्तरि संजुत्ता	तिलो० प० ४-२३८२
अट्ठत्तरिं सहस्सा	तिलो० प० ४-२६१६
अट्ठत्तरीहिं सहियो	गो० क० ५०६
अट्ठत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७-३६६
अट्ठत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७-३५१
अट्ठत्तालसहस्सा	तिलो० प० ४-६३
अट्ठत्तालं दुसयं	तिलो० प० २-१६१
अट्ठत्तालं लक्खा	तिलो० प० ७-६०३
अट्ठत्ताला दीवा	तिलो० प० ४-२७१७
अट्ठत्तिय दोण्णि अंबर	तिलो० प० ४-२६५६
अट्ठत्तीसद्धलवा	गो० जी० ५७४
अट्ठत्तीसद्धलवा	जंबू० प० १३-६
अट्ठत्तीससदाइ	जंबू० प० ११-२६
अट्ठत्तीससहस्सा	गो० क० ५०५
अट्ठत्तीससहस्सा	पंचसं० ५-३८१
अट्ठत्तीससहस्सा	तिलो० प० ७-५८२
अट्ठत्तीससहस्सा	तिलो० प० ४-१६६८
अट्ठत्तीसं लक्खा	तिलो० प० ८-२४५
अट्ठत्तीसं लक्खा	तिलो० प० २-११५
अट्ठत्थाणं सुण्णं	तिलो० प० ४-१०
अट्ठदलकमलमज्झे	णाणसा० २६
अट्ठदलकमलमज्झे	वसु० सा० ४७०
अट्ठ दस पंच पच य	धम्मर० १८३
अट्ठदसं अहियाणं	सुदख० ७८
अट्ठदसहत्थमत्तं	वसु० सा० ३६३
अट्ठदुगतिगचदुक्के	कसायपा० ३७
अट्ठ दुगेक्क दो पण	तिलो० प० ४-२८४६
अट्ठदुणवेक्कअट्ठा	तिलो० प० ७-३१६
अट्ठ पण तिदय सत्ता	तिलो० प० ८-३३४
अट्ठपदेसे मुत्तूण	भ० आरा० १७७६
अट्ठब्भहियसहस्सं	तिलो० प० ४-१८७२
अट्ठमए अट्ठविहा	तिलो० प० ४-८५६
अट्ठमए इगितिसया	तिलो० प० ४-१४३०
अट्ठमए णक्कगदे	तिलो० प० ४-४६४
अट्ठमखिदीए उवरिं	तिलो० प० ६-३
अट्ठमछट्ठचउत्थे	तिलो० सा० ७८५
अट्ठमठाणम्मि ससी	रिट्ठस० २४२
अट्ठमवग्गचउत्थं	णाणसा० २१
अट्ठमं भरहकूडा	जंबू० प० २-५१

अट्ठारस जोयणिया	जंबू० प० ११-६२
अट्ठारस जोयणिया	मूला० १०८२
अट्ठारस तेरस अड-	तिलो० सा० ७६५
अट्ठारस पयडीणं	पंचस० ४-४१५
अट्ठारस भागसया	तिलो० प० ७ ४०७
अट्ठार सयसहस्सा	जंबू० प० ११-१७
अट्ठार सयसहस्सा	जंबू० १२-३०
अट्ठारसलक्खाणि	तिलो० प० २-१३७
अट्ठारसलक्खाणि	तिलो० प० ८-४७
अट्ठारसवरिसाधिय-	तिलो० प० ४-६४४
अट्ठारस विवसाया (चेत्र सया)	तिलो०प०७-४२१
अट्ठारस वीसदिमा	छेदपिं० २३५
अट्ठारसहस्साणि	तिलो० प० ४-१४०३
अट्ठारसा सहस्सा	तिलो० प० ४, २५७०
अट्ठारसुत्तरसदं	तिलो० प० ७-४५७
अट्ठारसुत्तरसयं	तिलो० प० ७-१६६
अट्ठारसेहि जुत्ता	पंचस० १-४१
अट्ठारहकोडीणं	जंबू० प० ७-६६
अट्ठारह चउ अट्ठं	गो० क० ३६३
अट्ठावण्णसयाणि	तिलो० प० ४-२६०७
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ७-३०६
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ४-१७७५
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ७-४००
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ७-३७२
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ७-३५४
अट्ठावण्णं दंडा	तिलो० प० २-२५८
अट्ठावण्णा दुसया	तिलो० प० ८-५८
अट्ठावयम्मि उसहो	णिव्वा० भ० १
अट्ठावीस दुवीसं	तिलो० प० ४-१२६१
अट्ठावीसविहत्ता	तिलो० प० १-२४१
अट्ठावीसविहत्ता	तिलो० प० १-२४०
अट्ठावीससदाइं	जंबू० प० ११-२७
अट्ठावीससयाणि	तिलो० प० ४-११४५
अट्ठावीससहस्सं	तिलो० सा० २८२
अट्ठावीससहस्सं	तिलो० प० ४-२३७८
अट्ठावीससहस्सा	जंबू० प० ११-२८
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४-२२३८
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४-१६६१
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४, १७१४
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४-२२३०
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४-१२२५
अट्ठावीसं चउवी-	कसायपा० २७
अट्ठावीसं च सदं	जंबू० प० ३-२३
अट्ठावीसं णिरए	पंचसं० ४-२५८
अट्ठावीसं णिरए	पंचस० ५-५२
अट्ठावीसं रिक्खा	जंबू० प० १२-१०८
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० ७-६०२
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० ८-४३
अट्ठावीस लक्खा	तिलो० प० ४-२५६२
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० २-१२६
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० ४-१४५५
अट्ठावीसाहिं तहा	जंबू० प० ६-१२५
अट्ठावीसाहिं तहा	जंबू० प० ६-१०८
अट्ठावीसाहिं तहा	जंबू० प० ८-४८
अट्ठावीसाहिं तहा	जंबू०प० ६-६२
अट्ठावीसुणतीसा	पंचसं० ५-४६१
अट्ठावीसुत्तरसय-	तिलो० प० ४-३६६
अट्ठावीसेहिं तहा	जंबू० प० ८-१६२
अट्ठावीसेहिं तहा	जंबू० प० ६-३१
अट्ठासट्ठिसहस्सं	तिलो० प० ४-२३८१
अट्ठासट्ठिसहस्सा	तिलो० प० ७-३००
अट्ठासट्ठिसहस्सा	तिलो० प० ७-४०२
अट्ठासट्ठिं तिसया	तिलो० प० ७-५६१
अट्ठासट्ठीहीणं	तिलो० प० २-६३
अट्ठासीदिगहाणं	तिलो० प० ७-४५८
अट्ठासीदिसयाणि	तिलो० प० ४-१२१५
अट्ठासीदिसहस्सा	तिलो० प० ८-२२५
अट्ठासीदी अधिया	तिलो० प० ७-१६१
अट्ठासीदी लक्खा	तिलो० प० ८-२४१
अट्ठासीदी लक्खा	तिलो० प० ७-६०६
अट्ठिगिदुगतिगछण्णभ-	तिलो०प०४-२८६६
अट्ठिणिछण्णं णालिणि-	मूला० ८४६
अट्ठिदलिया छिरावक्क-	भ० आरा० १८१६
अट्ठि य अणेयभुत्ते	छेदस० ५३
अट्ठिसिरारुहिरवसा-	तिलो० प० ३-२०८
अट्ठिं च चम्मं च तहेव मंसं	मूला० ८४८
अट्ठीणि होंति तिण्णि हु	भ० आरा० १०२७
अट्ठीहिं पडिबद्धं	बा० अणु० ४३
अट्ठुत्तरमेक्कसयं	तिलो० प० ८-१६६
अट्ठुत्तरसयकोडी	सुदख० ५२

अडवीस पुव्वअंगा — तिलो० प० ४-१२४६
अडवीसमिवुणतीसे — गो० क० ७८१
अडवीसमयणदीणं — जंबू० प० ११-३७
अडवीसं उणहत्तरि — तिलो० प० १-२४६
अडवीसं छव्वीसं — तिलो० प० ३-७४
अडवीसाइं तिण्णि य — पंचपं० ५-४६०
अडवीसाई बधा — पंचसं० ५-४५४
अडवीसा उणतीसा — पचसं० ५-४४५
अडवीसा उणतीसा — पंचसं० ५-४४८
अडवीसा उणतीसा — पंचसं० ५-४५८
अडवीसे तिगि णउदे — गो० क० ७८०
अडसगणवचउअडदुग- — तिलो० प० ४-२६७१
अडसट्ठि कुमुदसण्णिभ- — जंबू० ११-३३
अडसट्ठिगदे तदिए — तिलो० सा० ४२४
अडसट्ठिसयसहस्सा — जंबू० प० ४-१५८
अडसट्ठिसया णेया — जंबू० पं० ४-१६३
अडसट्ठी एक्कसयं — गो० क० ८७१
अडसट्ठी छच्चसया — जंबू० प० ४-१६६
अडसट्ठी सेढिगया — तिलो० प० ८-१६५
अडसय एक्कसहस्सब्भ- — तिलो० प० ४-१२७०
अडसीदट्ठावीसा — तिलो० सा० ३६२
अडसीदि दोसएहिं — तिलो० प० ४-७४७
अडसीदिं पुण संता — पंचसं० ५-२२८
अडसीदिं पुण संता — पंचसं० ५-२३०
अडसीदी लक्खपयं — अंगप० २ १५
अडसीदी लक्खपयं — सुदख० २६
अडसीदी सगसीदी — तिलो० प० ४-६६०
अडसोलस वत्तीसा — जंबू० प० ३-१६४
अड्ढस्स य अणलस्स य — गो० जी० ५७३-क्षे० १
अड्ढस्स णिद्धणस्स य — आय० ति० ६-१
अड्ढाइज्जतिपल्लं — तिलो० सा० २४३
अड्ढाइज्जसयाणि — तिलो० प० ३-१०२
अड्ढाइज्जं तिसयं — तिलो० सा० २३७
अड्ढाइज्जं पल्लं — तिलो० प० ३ १७०
अड्ढाइज्जं पल्ला — तिलो० प० ८-५१२
अड्ढाइज्जा दोण्णि य — तिलो० प० ३-१५०
अड्ढादिज्जा दीवा — जंबू० प० १३-१५२
अणउदयादो छण्हं — कत्ति० अणु० ३०६
अण-एइंदियजाई — पचसं० ३-३३
अणगारकेवलिमुणी — तिलो० प० ४-२२८३
अणणुण्णादग्गहणं — भ० आरा० १२०८
अणणोकम्मं मिच्छत्ता- — गो० क० ७५
अणथीणतियं मिच्छं — गो० क० १७१
अणमप्पच्चक्खाणं — आस० ति० ५
अणमिच्छविदियतसवह- — पंचस० ४-६२
अणमिच्छमिस्ससम्मं — पंचसं० ५-४८३
अणमिच्छमिस्ससम्मं — पंचसं० ३-५१
अणमिच्छाहारदुगू- — पंचसं० ४-६४
अणमित्तं जलबिंदू — रिट्ठस० ३४
अणयारअंतकेवलि- — सुदखं० ६८
अणयारपरमधम्मं — धम्मर० १८६
अणयारमहरिसीणं — मूला० ७६८
अणयाराणां वेज्जा- — रयण० २५
अणयारा भयवंता — मूला० ८८७
अणरहिओ पढमिल्लो — पंचसं० ५-३६
अणरहिदसहिदकूडे — गो० क० ७१६
अणलदिसाए लंघिय — तिलो० प० ७-२१०
अणवट्टसगाउस्से — तिलो० सा० १६६
अणवरदसमं पत्तो — तिलो० प० ८-६४६
अणवरयं जो संचदि — कत्ति० अणु० १५
अणसण-अवमोदरियं — भ० आरा० २०८
अणसण-अवमोदरियं — मूला० ३४६
अणसंजोगे मिच्छे — गो० क० ३२८-क्षे० २
अणसंजोजिदमिच्छे — गो० क० ५६१
अणसंजोजिदसम्मे — गो० क० ४७८
अणं अपच्चक्खाणं — कम्मप० ५६
अणंतणाणादिचउक्कहेदुं — तिलो० प० ३-२१६
अणागदमदिक्कंतं — मूला० ६३७
अणागदमदिक्कंतं — अंगप० २-६८
अणादिट्ठं च थद्धं च — मूला० ६०३
अणादेज्जं णिमिणं च — पंचसं० ३-६३
अणाभोगकिदं कम्मं — मूला० ६२०
अणिगूहिदबलविरिओ — भ० आरा० ३०७
अणिगूहियबलविरिओ — मूला० ४१३
अणिदाणगदा सव्वे — तिलो० प० ४-१४३४
अणिदाणो य मुणिवरो — भ० आरा० १२८३
अणिमं महिमं लहिमं — धम्मर० १७७
अणिमा महिमा गरिमा — तिलो० प० ४-१०२२
अणिमा महिमा लघिमा — वसु० सा० ५१३
अणिमा महिमा लहिमा — भावसं० ४१०

अणियट्टिस्स य पढमे	लद्धिसा० ४०८
अणियट्टिकरणणाम	भ० आरा० २०६४
अणियट्टिकरण-पढमा	गो० क० ४८३
अणियट्टिकरण-पढमे	लद्धिसा० ११८
अणियट्टिगुणट्ठाणे	गो० क० ३६२
अणियट्टिचरिमठाणा	गो० क० ३८६
अणियट्टि-दुग-दु-भागे	भावति० ३८
अणियट्टिवायरे थी-	पंचस० ५-४८६
अणियट्टिम्मि वियप्पा	पचस० ५-३६५
अणियट्टि य सत्तरसं	पचसं० ५-३७३
अणियट्टिय-संखगुणे	लद्धिसा० ६५
अणियट्टिसुदयभंगा	पचस० ५-३५८
अणियट्टिस्स दु बंधं	पचसं० ५-४०६
अणियट्टिस्स य पढमे	लद्धिसा० २२४
अणियट्टिं मिच्छाई-	पचसं० ४-३६५
अणियट्टी अद्धाए	लद्धिसा० ११३
अणियट्टी बंध तयं	गो० क० ६५४
अणियट्टी संखेज्जा	लद्धिसा० ११५
अणियाण य सत्तण्ह य	जबू० प० ११-२४०
अणियाण य सत्तण्ह य	जबू० प० ११-२४२
अणिलदिसासु सूकर-	तिलो० प० ४-२७२५
अणिसट्ठं पुण दुविहं	मूला० ४४४
अणिहुदपरगदहिदया	भ० आरा० ६६०
अणिहुदमणसा इंदिय-	भ० आरा० १८३८
अणिहुदमणसा एदे	मूला० ७३२
अणुकट्टिपदेण हदे	गो० क० ६०६
अणुकंपा कहणेण य	छेदस० ६१
अणुकंपा कहणेण य	छेदपिं० ३४७
अणुकंपा सुद्धवओ-	भ० आरा० १८३४
अणुकूल परियणायं	भावसं० ४१३
अणुकूला पडिकूला	आय० ति० २-३३
अणुकूलो समरजय	आय० ति० २-३१
अणुखधवियप्पेण दु	णियम० २०
अणुगामी देसादिसु	अगप० २-७३
अणुगुरुचावविसेसं	जबू० प० २-३०
अणुगुरुदेहपमाणो	णयच० ४८
अणुगुरुदेहपमाणो	दव्वस० १०
अणुगो य अणणुगामी	पंचसं० १-१२४
अणु जइ जगह वि अहियरु	परम० प० २-६
अणणासिएसु उत्तर-	आय० ति० १६-११
अणुणासिया उऊअं	आय० ति० १६-६
अणुणासिआण य पुणो	आय० ति० १८-६
अणुनणुकरण अणिमा	तिलो० प० ४-१०२४
अणुदयतदियं णीचम-	गो० क० ३४१
अणुदयसव्वे भगा	पचसं० ५-३४०
अणुदिस-अणुत्तरेसु हि	भावति० ७७
अणुदिसणुत्तरदेवा	मूला० १२१८
अणु दु अणुएहिं दव्वे	सम्मइ० ३-३६
अणुपण्णा अपमाण य	तिलो० प० ६-८१
अणुपरिमाणं तच्चं	कत्ति० अणु० २३५
अणुपालिऊण एवं	वसु० सा० ४६४
अणुपालिदा य आणा	भ० आरा० ३२६
अणुपालिदो य दीहो	भ० आरा० १५४
अणुपुव्वमणणुपुव्व	कसाय० ३६
अणुपुव्वीसंकमण	लद्धिसा० २४७
अणुपुव्वेण य ठविदो	भ० आरा० ६६६
अणुपुव्वेणाहारं	भ० आरा० २४७
अणुपेहा बारह वि जिय	पाहु० दो० २११
अणुबद्धतवोकम्मा	मूला० ८२६
अणुबधरोसविग्गह-	भ० आरा० १८३
अणुभयगाणंतरऊ	लद्धिसा० २४५
अणुभयवचि वियलजुदा	गो० क० ३११
अणुभयवयणेण जुआ	सिद्धत० २३
अणुभागपदेमाइ	तिलो० प० १-१२
अणुभागाणं बधज्झ-	गो० क० २६०
अणुभागो पयडीणं	अगप० २-६२
अणुभासदि गुरुवयण	मूला० ६४१
अणुमइ देइ ण पुच्छियउ	सावय० दो० १६
अणुमाणेदूण गुरुं	भ० आरा० ५७२
अणुराहाए पुस्से	तिलो० प० ४-६५१
अणुराहाए पुस्से	तिलो० प० ४-६५०
अणुलोमा वा सत्तू	भ० आरा० ७२
अणुलोहं वेदंतो	गो० जी० ६०
अणुलोहं वेदंतो	गो० जी० ४७३
अणुलोहं वेयंतो	वसु० सा० ५२३
अणुलोहं वेयंतो	पचस० १-१३२
अणुवत्तणाए गुणवत्त-	भ० आरा० ६६८
अणुवदमहव्वदेहिं	गो० क० ८०७
अणुवदमहव्वदेहिं	कम्मप० १५२
अणुवममममेयमक्खय-	भ० आरा० २१५३

अणुवमेम्ववत्तं णव-	तिलो० प० ४-८६५
अणुवय-गुण-सिक्खावयइँ	सावय० दो० ५६
अणुवय-महव्वएहि य	पचस० ४-२०७
अणुवय-महव्वया जे	कल्लाणा० १३
अणुवेक्खाहिं एव	मूला० ७६४
अणुसज्जमाणए पुण	भ० आरा० ६६८
अणुसमओवट्टणयं	लद्धिसा० १४८
अणु-सखा-सखज्जा-	गो० जी० ५६३
अणुसिट्ठि दादूण य	भ० आरा० २०३४
अणुसूरी पडिसूरी	भ० आरा० २२२
अणुहवभावो चेयण-	दव्वस० णय० ६३
अण्णइ रूवं दव्व	कत्ति० अणु० २४०
अण्णकए गुणदासे	भावस० ३६
अण्णाणिमित्तपडिजिद-	छेदपि० १६६
अण्णणिरावेक्खो जा	णियम० २८
अण्णण्णा एदस्सिं	तिलो० प० ४-२३६५
अण्णत्थ ठियस्सुदये	गो० क० ४३६
अण्णदरआउसहिया	गो० क० ३७८
अण्णदविएण अण्णद-	समयं० ३७२
अण्णदिसा-विदिसासु	तिलो० प० ८-१२४
अण्णभवे जा सुयणा	कत्ति० अणु० ३६
अण्णम्मि चावि एदा-	भ० आरा० ७४
अण्णम्मि भुज्जमाणे	भावसं० ३२
अण्णयरवेयणीय	पचसं० ३-४१
अण्णयरवेयणीयं	पचस० ३-४४
अण्णयरवेयणीय	पचस० ३-६४
अण्णयरवेयणीयं	पचस० ५-४६६
अण्णयरवेयणीय	पचस० ५-४६७
अण्णरिसीण च दु (दुणो ?)	छेदपि० २६४
अण्णस्स अप्पणो वा	भ० आरा० ८३६
अण्णस्स अप्पणो वा	भ० आरा० १०२३
अण्ण अपेच्छसिद्धं	मूला० ३११
अण्णं अवरज्झतस्स	भ० आरा० ८६४
अण्णं इमं सरीरं	भ० आरा० १६७०
अण्ण इम सरीरा—	मूला० ७०२
अण्णं इमं सरीरा-	बा० अणु० २३
अण्ण इय णिसुणिज्जइ	भावस० ४६
अण्ण गिण्हदि देहं	भ० आरा० १७०३
अण्ण च एवमाई	दसणसा० १५
अण्णा च एवमादिय-	भ० आरा० ५५६

अण्णं च जम्मपुव्वं	रिट्ठस० १०
अण्ण च वसिट्ठमुणी	भावपा० ४६
अण्णं ज इय उत्तं	भावस० ११६
अण्णं देहं गिण्हदि	कत्ति० अणु० ८०
अण्णं पि एवमाई	कत्ति० अणु० २०६
अण्णं पि तहा वत्थु	भ० आरा० ३३८
अण्णं बहुउवदेसं	तिलो० प० ४-५००
अण्ण व एवमादी	भ० आरा० ५५७
अण्ण वि य मूलुत्तर-	छेदपिं० २२६
अण्णाएं आवंति जि य	सावय० दो० १४५
अण्णाएं दालिद्दियहँ	सावय० दो० १४८
अण्णाए दालिद्दियहँ	सावय० दो० १४६
अण्णाएं वलियहँ वि खउ	सावय० दो० १४७
अण्णाण-अहंकारे-	छेदपिं० १५३
अण्णाणघोरतिमिरं	तिलो० प० १-४
अण्णाणतिए ताणि य	सिद्धत० ३७
अण्णाणतिए होति य	पंचस० ४-३०
अण्णाणतिमिरदलणे	जबू० प० १-७४
अण्णाणतियं दोसु	पचस० ४-६६
अण्णाणतियं होदि हु	गो० जी० ३००
अण्णाणदुगे बंधो	गो० क० ७२३
अण्णाणणेहगारव-	भ० आरा० ६१३
अण्णाणधम्मगारव-	छेदपिं० १५४
अण्णाणधम्मलग्गो	भावस० १८६
अण्णाणमओ भावो	समय० १२७
अण्णाणमया भावा	समय० १२६
अण्णाणमया भावा	समय० १३१
अण्णाणमोहिएहिं	धम्मर० १२८
अण्णाणमोहिदमदी	समय० २३
अण्णाणवाडभेया	अगप० २-२७
अण्णाणवाहिदप्पे	छेदस० ३८
अण्णाणवाहिदप्पेहिं	छेदपिं० ६१
अण्णाणस्स स उदओ	समय० १३२
अण्णाणं मिच्छत्तं	चारि० पा० १४
अण्णाणाओ मोक्खं	भावस० १६४
अण्णाणाणविणासो	धम्मर० १२७
अण्णाणादो णाणी	पचत्थि० १६५
अण्णाणादो मोक्खो	दसणसा० २१
अण्णाणि एवमाई-	वसु० सा० १८६
अण्णाणिणो वि जम्हा	वसु० सा० २३६

अद्धं खु विदेहादो	तिलो० प० ४–१०३
अद्धं चउत्थभागो	तिलो० सा० ११७
अद्धाखए पडंतो	लद्धिसा० ३०७
अद्धाणगदं णवमं	मूला० ६३८
अद्धाणतेणसावद-	मूला० ३६२
अद्धाणतेणसावय-	भ० आरा० ३०६
अद्धाणरोहणे जण-	भ० आरा० ६११
अद्धाणसणं मव्वा-	भ० आरा० २०६
अद्धाबारस जोयण-	जबू० प० ३–४६
अद्धारपल्लछेदो	तिलो० प० १–१३१
अद्धारपल्लसायर-	तिलो० प० ४–३१४
अद्धियविदेहरुंदं	तिलो० प० ४–२०१६
अद्धिदुणिहा सव्वे	तिलो० सा० ६३५
अद्धुम्मीलियलोयणिहि	परम० प० २–१६६
अद्धुवअसरणपहुदि	तिलो० प० ८–६४२
अद्धुव असरण भणिया	कत्ति० अणु० २
अद्धुवमसरणमेगत्त-	मूला० ६६२
अद्धुवमसरणमेगत्त-	मूला० ४०३
अद्धुवमसरणमेगत्त-	भ० आरा० १७१५
अद्धुवमसरणमेगत्त-	बा० अणु० २
अद्धेण पमाणाणं	तिलो० प० ४–२१७०
अद्धेव जोयणेसु य	जंबू० प० ५–५०
अधउड्ढतिरियपसर	तिलो० प० ४–१०४०
अध उड्ढतिरियपसरे	तिलो० प० ४–१०४४
अधखवयसेढिमधिगम्म-	भ० आरा० २०६३
अध तेउपउमसुक्क	भ० आरा० १६२३
अधलोहसुहुमकिट्टिं	भ० आरा० २०६८
अध सो खवेदि भिक्खू	भ० आरा० २०६४
अध हेट्ठिमगेवेज्जे	तिलो० प० ८–१७६
अधिगगुणा सामण्णे	पवयणसा० ३–६७
अधिगेसु बहुसु सतसु	भ० आरा० १४२८
अधियप्पमाणमंसा	तिलो० प० ७–४८०
अधियरणे वग्हारे	तिलो० सा० ४४३
अधियसहस्सं बारस	तिलो० सा० ३२५
अधिरेक्कस्स पमाणं	तिलो० प० ४–२७५६
अधिरेयस्स पमाणं	तिलो० प० ७–१२६
अधिरेयस्स पमाण	तिलो० प० ७–१८५
अधिवासे व विवासे	पवयणसा० ३–१३
अपचक्खाणुदयादो	भावति० १६
अपडिक्कमणं अप्पडि-	समय० ३०७
अपडिक्कमण दुविहं	समय० २८३
अपडिक्कमण दुविह	समय० २८४
अपदिट्ठिदपत्तेय	गो० जी० ६८
अपदिट्ठिदपत्तेया	गो० जी० २०४
अपदेस सपदेसं	पवयणसा० १–४१
अपदेसो परमाणू	पवयणसा० २–७१
अपमत्ते य अपुव्वे	गो० क० ७०१
अपमत्ते सम्मत्त	गो० क० २६८
अपयक्खरेसु छल्ली	आय० ति० १८–१०
अपयत्ता वा चरिया	पवयणसा० ३–१६
अपरविदेहमणुब्भव-	तिलो० प० ४–२०७०
अपराजियाभिधाणा	तिलो प० ४–५२२
अपरिग्गहसमणुण्णे-	चारि० पा० ३५
अपरिग्गहस्स मुणिणो	भ० आरा० १२११
अपरिग्गहस्स मुणिणो	मूला० ३४१
अपरिग्गहा अणिच्छा	मूला० ७८३
अपरिग्गहो अणिच्छो	समय० २१०
अपरिग्गहो अणिच्छो	समय० २११
अपरिग्गहो अणिच्छो	समय० २१२
अपरिग्गहो अणिच्छो	समय० २१३
अपरिच्चत्तसहावे	पवयणसा० २–३
अपरिणमंतम्हि सयं	समय० १२२
अपरिस्साई णिव्वा-	भ० आरा० ४१८
अपरिस्सावी सम्म	भ० आरा० २६४
अपहट्टु अट्टरुद्दे	मूला० ३६७
अपि य वधो जीवाण	तिलो० प० ४–६३४
अपुव्वम्मि संतठाणा	पचस० ५–३६१
अपुव्वादिवग्गणाणं	लद्धिसा० ६३२
अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ	जोगसा० ६२
अप्पउ मण्णइ जो जि मुणि	परम०प० २–६३
अप्पच्चओ अकित्ती	भ० आरा ८४८
अप्पडिकुट्ठं उवधिं	पवयणसा० ३–२३
अप्पडिकुट्ठ पिंडं	पवयणसा० ३–२० (क्षे०)
अप्पडिलेहं दुप्पडि-	मूला० ४१७
अप्पदरा पुण तीसं	गो० क० ४७३
अप्पवएसा मुत्ता	दव्वस० णय० १५३
अप्पपरियम्म उवधिं	भ० आरा० १६२
अप्पपरोभयठाणे	गो० क० ५५५
अप्पपरोभयबाधण-	गो० जी० २८८
अप्पपरोभयवाहण-	पंचसं० १–११६

अब्भुट्ठेया समणा — पवयणसा० ३–६३
अब्भुदयकुसुमपउरं — जंबू० प० १३–१७२
अभयदाणु भयभीरुयहँ — सावय० दो० १४६
अभयपयाणं पढमं — भावस० ४८६
अभयं च वाहियावय- — श्राय० ति० २–१४
अभव्वसिद्धे णत्थि हु — गो० क० ३५५
अभिचंदे तिदिवगदे — तिलो० प० ४–४७४
अभिजादितिसीदिसयं — तिलो० सा० ४०७
अभिजिणव सादिपुव्वुत्त- — तिलो० सा० ४३७
अभिजिस्स गगणखंडा — तिलो० सा० ३९८
अभिजिस्स चंदतारो — तिलो० प० ७–५२२
अभिजिस्स छस्सयाणि — तिलो० प० ७–४७३
अभिजी छच्चमुहुत्ते — तिलो० प० ७–५१७
अभिजी सवणधणिट्ठा — तिलो० प० ७–२८
अभिजुजइ बहुभावे- — मूला० ६५
अभिजोगभावणाए — भ० आरा० १९६०
अभिणंदणादिया पच- — भ० आरा० १५५५
अभिधाणेण असोगा — तिलो० प० ४–७८४
अभिभूददुव्विगंधं — भ० आरा० १०४७
अभिमुहणियमियबोहण- — जंबू० प० १३–५६
अभियोगपुराहिंतो — तिलो० प० ४–१४४
अभियोगाणं अहिवइ- — तिलो० प० ८–२७७
अभिवंदिऊण सिरसा — पचत्थि० १०५
अभिसुआ असुसिरा अघ- — भ० आरा० १९६९
अभिसेयसभासंगी- — तिलो० प० ८–५५३
अमणसरिसपविहंगम- — तिलो० सा० २०५
अमणं ठिदिसत्तादो — लद्धिसा० ११६
अमणु अणिंदिउ णाणमउ — परम० प० १–३१
अमणुण्णजोगइट्ठवि- — मूला० ३९५
अमणुण्णसंपओगे — भ० आरा० १७०२
अमणुण्णो य मणुण्णो — चारि० पा० २८
अममं चउसीदिगुणं — तिलो० प० ४–३०२
अमयक्खरं णिवेसउ — भावसं० ४३०
अमयजलखीरसोमा- — श्राय० ति० १६–१५
अमयमहुखीरसप्पि- — जोग० भ० १७
अमयम्मि गए चंदे — श्राय० ति० १६–२०
अमरकओ उवसग्गो — आरा० सा० ५१
अमरणरणमिदचलणा — तिलो० प० ४–२२८२
अमराण वंदियाणं — दंसणपा० २५
अमरावदिपुरमज्झे — तिलो० सा० ५१५
अमरिंदणमियचलणं — जंबू० प० ८–१९७
अमरिंदणमियचलणो — जंबू० प० १३–१३६
अमरेहिं परिग्गहिदा — जंबू० प० १३–१२१
अमलियकोरंटणिभा — जंबू० प० २–७०
अमवस्साए उवही — तिलो० प० ४–२४४१
अमवस्से उत्तरिमदो — तिलो० प० ४–२४३७
अमिदमदी तद्देवी — तिलो० प० ४–४६०
अमुगम्मि इदो काले — भ० आरा० ५३२
अमुणियकज्जाकज्जे — तिलो० प० २–३००
अमुणियकाले पायं — श्राय० ति० १–२६
अमुणियतच्चेण इमं — आरा० सा० ११५
अमुयंतो सम्मत्तं — भ० आरा० १८४४
अम्मा-पिदु-सरिसो मे — भ० आरा० ७१३
अम्मिए जो परु सो जि परु — पाहु० दो० ५१
अम्मिय इहु मणु हत्थिया — पाहु० दो० १५५
अम्हहिं जाणिउ एक्कु जिणु — पाहु० दो० ५८
अम्हाणं के अवसा — तिलो० सा० ८५२
अम्हे वि खमा वेमो- — भ० आरा० ३७८
अयउवयरणे णट्ठे — छेदस० ६६
अयणाणि य रविससिणो — तिलो०प० ४–४६६
अय तंब तउस सस्सय — तिलो०प० २–१२
अयदत्तगब्भवणा — जंबू० २–८५
अयदंडपासविक्कय — वसु० सा० २१५
अयदाचीरो समणो — पवयण० सा० ३–१८
अयदादिसु सम्मत्तति- — भावति० ३२
अयदापुण्णे ण हि थी — गो० क० २८७
अयदुवसमगचउक्के — गो० क० ८४५
अयदे विदियकसाया — गो० क० ६७
अयदे विदियकसाया — गो० क० २६६
अयदो त्ति छ लेस्साओ — गो० जी० ५३१
अयदो त्ति हु अविरमण — गो० जी० ६८८
अयसमणत्थं दुःखं — भ० आरा० ६०७
अयसाण भायणेण य — भावपा० ६६
अरई सोएणूणा — पंचसं० ४-२४६
अरई सोएणूणा — पचसं० ५–२६
अर-कुंथु-संति-णामा — तिलो० प० ४–६०५
अरजिणवरिंदतित्थे — तिलो० प० ४–११७२
अरदी सोगे संढे — गो० क० १३०
अरदी सोगे सढे — कम्मप० १२६
अर-मल्लि-अंतराले — तिलो० प० ४–१४१३

अवगहईहावाओ	सुदखं० ८
अवगाहिदत्थस्स पुणो	जंबू० प० १२-४८
अवगाढो पुण णेयो	जंबू० प० १०-२३
अवगासदाणजोग्गं	दव्वस० १६
अवगाहा सेलाणं	जंबू० प० ६-८६
अवगुण-गहणाइँ महुत्तणाइँ	परम० प० २-१८६
अवणयदि तवेण तम	मूला० ५८८
अवणिदतिप्पयडीण	गो० क० २८०
अवणियकुंडायामं	जंबू० प० ८-१५८
अवधउ अक्खरु जं उप्पज्जइ	पाहु० दो० १४४
अवधिट्ठाण णिरयं	भ० आरा० १६४६
अवधिदुगेण विहीणं	गो० क० ८२७
अवरट्ठिदिबंधज्झवसा-	गो० क० ६४६
अवरण्हरुक्खछाही	भ० आरा० १७२४
अवरदव्वादुवरिम-	गो० जी० ३८३
अवरद्धे अवरुवरिं	गो० जी० १०६
अवरपरित्तस्सुवरिं	तिलो० सा० ३६
अवरपरित्तं विरलिय	तिलो० सा० ४६
अवरपरित्ता संखे-	गो० जी० १०६
अवरमपुण्णं पढमं	गो० जी० ६६
अवरवरदेसलद्धी	लद्धिसा० १८२
अवरविदेहस्संते	तिलो० प० ४-२२०१
अवरविदेहाण तहा	जंबू० प० ४-१४६
अवरं च पिट्ठणामं	जंबू० प० ११-२१०
अवरं जुत्तमसंखं	तिलो० सा० ३७
अवरं तु ओहिखेत्तं	गो० जी० ३८०
अवरं दव्वमुरालिय-	गो० जी० ४५०
अवरं देसोहिस्स य	अंगप० २-७१
अवरं मज्झिम उत्तम-	तिलो० प० १-१२२
अवरंसमुदा सोहम्मी-	गो० जी० ५२२
अवरंसमुदा होंति	गो० जी० ५१६
अवरं होदि अणंतं	गो० जी० ३८६
अवराओ जेट्ठद्धा (द्दा)	तिलो० प० ७-४७१
अवरा ओहिधरित्ती	तिलो० प० ६-६०
अवरा खाइयलद्धी	तिलो० सा० ७१
अवराजिदकामादी	तिलो० सा० ६६६
अवराजिदणगरादो	जंबू० प० ८-१२७
अवराजिददारस्स य	तिलो० प० ४-२४७३
अवराजिदा य रम्मा	तिलो० सा० ६७०
अवराजेट्ठावाहा	लद्धिसा० ३७६
अवराणंताणंतं	तिलो० सा० ४८
अवराणि च अण्णाणि य	जंबू० प० १०-१०
अवरादीणं ठाणं	गो० क० ७६१
अवरादो चरिमो त्ति य	लद्धिसा० २८७
अवरादो वरमहियं	लद्धिसा० ३६२
अवरा पज्जायठिदी	गो० जी० ५७२
अवरा मिच्छतियद्धा	लद्धिसा० १७८
अवराहिमुहे गच्छिय	तिलो० प० ४-१३२७
अवरुक्कस्स ठिदीणं	गो० क० ६६०
अवरुक्कस्सं मज्झिम-	तिलो० प० ६-१६
अवरुक्कस्सेण हवे	गो० क० २४२
अवरुवरिं इगिपदेसे	गो० जी० १०२
अवरुवरिम्मि अणंतम-	गो० जी० ३२२
अवरु वि जं जहिं उवयरइ	सावय० दो० ११६
अवरे अज्झवसाणे-	समय० ४०
अवरे अणोवमगुणा	जंबू० प० ६-१०५
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-१६४
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-१०६
अवरेण तदो गंतु	जंबू० प० ८-११६
अवरेण तदो गंतु	जंबू० प० ८-११२
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-१३१
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-१४६
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-१६८
अवरेण तदो गतु	जंबू० प० ८-१७४
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-२
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-२१
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-२४
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-२६
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-३२
अवरेण तदो गंतु	जंबू० प० ९-३६
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-३९
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-४४
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-४६
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-५२
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-६०
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-६४
अवरेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-७२
अवरे देसट्ठाणे	लद्धिसा० १८३
अवरे परमविरोहे-	णयच० ३६
अवरे परमविरोहे	दव्वस० णय० २०८

*इसका पूर्वार्ध उपलब्ध न होनेसे उत्तरार्ध दिया है।

अह गुणपज्जयवंतं	दव्वस० णय० २७८	अहमिक्को खलु सुद्धो	समय० ३८
अह घर करि दाणेण सहुँ	सुप्प० दो० ४	अहमिक्को खलु सुद्धो	समय० ७३
अह चुलसीदी पल्लट्ठ-	तिलो० प० ६–८६	अहमिंदा जह देवा	गो० जी० १६३
अह छुहिऊण सूअरं (?)	भावस० २२५	अहमिंदा जह देवा	पचसं० १–६५
अह जइ सत्तिविहीणो	छेदपि १७६	अहमिंदा जे देवा	तिलो० प० ४–७०७
अह जाणओ उ भावो	समय० ३४४	अहमिंदा वि य देवा	जबू० प० ४–२७१
अह जीए संधीए	रिट्ठस० १	अहमीसजुत्तदिट्ठे	आय० ति० १८–२१
अह जीवो पयडी तह	समय० ३३०	अहमेक्को खलु परमो	दव्वस० णय० ३६३
अह जो जस्स य भत्तो	रिट्ठस० ११६	अहमेक्को खलु सुद्धो	तिलो० प० ६–२८
अह ढिंकुलियाभाणं	भावस० ३८६	अहमेदं एदमहं	समय० २०
अह ण पयडीण जीवो	समय० ३३१	अहरण्हा तह दसणा	रिट्ठस० २७
अह णियणियणयरेसु	तिलो० प० ४–१३६८	अह राजइ उत्तर सर-	आय० ति० १४३
अह णीराओ देहो	कत्ति० अणु० ५२	अह लहइ अज्जवंतं	कत्ति० अणु० २६१
अह णोराओ होदि हु	कत्ति० अणु० २६३	अहव फुइ(ड) फुलिंगेहिं	रिट्ठस० ६०
अह तिरियउड्ढलोए	भ० आरा० १७१४	अहव मयंकविहीणं	रिट्ठस० ६६
अह तिरियउड्ढलोए	जबू० प० १३–१५३	अहव मुणतो छंडइ	भावसं० ६०७
अह तिव्ववेयणाए	आरा० सा० ४२	अहव सुदिपाणय से	भ० आरा० ४४५
अह तीसकोडिलक्खे	तिलो० प० ४–५५४	अहवा अप्पं आसा-	भ० आरा० १२६०
अह तेउपउमसुक्कं	भ० आरा० १६२३	अहवा आगम-णोआ-	वसु० सा० ४५१
अह तेव वट्ट तत्तं	वसु० सा० १३६	अहवा आगम-णोआ-	वसु० सा० ४७७
अह थीणगिद्धि-णिद्दा-	कम्मप० ४८	अहवा आणदजुगले	तिलो० प० ८–१८५
अह दक्खिणभाएणं	तिलो० प० ४–१३४८	अहवा आदिममज्झिम-	तिलो० प० ५–२४३
अह दक्खिणभाएणं	तिलो० प० ४–१३५४	अहवा आयामे पुण	जबू० प० ५–६
अह दे अण्णो कोहो	समय० ११५	अहवा इच्छागुणिद	तिलो० प० ४–२०३३
अह देसो सब्भावे	सम्मइ० १–३७	अहवा एय वयणं	भावस० ६६
अह धणसहिओ होदि	कत्ति० अणु० २६२	अहवा एसो जीवो	समय० ३२६
अह पउमचक्कवट्टी	तिलो० प० ४–१२८३	अहवा एसो धम्मो	भावस० ४१
अह पडिकमणं ण सुयं	छेदपिं ११३	अहवा कारणभूदा	दव्वस० णय० १६१
अह पंचमवेदीओ	तिलो० प० ४–८६२	अहवा किं कुणइ पुरा-	वसु० सा० १६६
अह पिच्छइ णियछायं	रिट्ठस० ७६	अहवा खिप्पउ सेहा	भावस० ४३५
अह पुण अप्पा ण वि मुणहि	जोगसा० १५	अहवा गिरिवरिसाणं	तिलो० प० ४–१७४६
अह पुण अप्पा णिच्छदि	भावपा० ८४	अहवा चारित्तारा-	भ० आरा० ८
अह पुण आपा णिच्छदि	सुत्तपा० १५	अहवा जत्ताजत्ते	छेदस० १४
अह पुण पुव्वपयुत्तो	सम्मइ० २–३६	अहवा जइ असमत्थो	भावस० ४६२
अह भरहप्पमुहाणं	तिलो० प० ४–१३०१	अहवा जइ कलसहिओ	भावस० २३६
अह भुजइ परमहिलं	वसु० सा० ११८	अहवा जइ भणइ इयं	भावसं० २४६
अह मज्झिमम्मि आए	आय० ति० १८–२५	अहवा जह कहव पुणो	भावसं० १६६
अह महमहंति णिज्जइ	जंबू० प० ६–११०	अहवा जं उब्भावेदि	भ० आरा० ८२७
अह माणिपुण्णसेलम-	तिलो० प० ६–४२	अहवा जिणागमं पुत्थ-	वसु० सा० ३६२
अह माणिपुण्णसेलम-	तिलो० सा० २६५	अहवा णादाराणं	अगप० १–४४

अंकायारा विजया	तिलो० प० ४–२५५२
अंकायारा विजया	तिलो० प० ४–२७६४
अंगइँ सुहुमइँ वादरइँ	परम० प० २–१०३
अंगदछुरियाखग्गा	तिलो० प० ४–३६३
अंगसुदे य बहुविधे	भ० आरा० ४९९
अंगाइं दस य दुण्णि य	भावपा० ५२
अंगारय सिय ससिसुय-	आय० ति० ४–११
अंगुल असंखगुणिदा	गो० क० ३८६
अंगुल असंखभागप्प-	गो० क० २३०
अंगुलअसंखभागं	गो० क० ४३४
अंगुलअसंखभागं	मूला० १०८७
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० ३६०
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० ४००
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० ४०८
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० १७१
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० ३९८
अंगुलअसंखभागे	गो० जी० ३२५
अंगुलअसंखभागो	कत्ति अणु० १६६
अंगुलअसंखभागो	गो० जी० ६६६
अंगुलमावलियाए	गो० जी० ४०३
अंगुलिणहावलेहणि-	मूला० ३३
अंगुलि तह आलत्तय	रिट्ठस० १४८
अंगे पासं किच्चा	भावसं० ४३६
अंगोवंगट्ठीण	तिलो० प० २–३३६
अंगोवंगुदयादो	गो० जी० २२८
अंजणकवल्लधाउक-	तिलो० सा० २८३
अंजणगिरिसरिसाणं	जंबू० प० ७–६५
अंजणदहिकणयणिहा	तिलो० सा० ९६८
अंजणदहिमुहरइयर-	जंबू० प० ३–३७
अंजणपहुदी सत्त य-	तिलो० प० ८–१३६
अंजणमूलं अंकं	तिलो० प० २–१७
अंजणमूलंकणिहो	तिलो० प० ४–२७६४
अंजणमूलिय अंका	तिलो० सा० १४८
अंजलिपुडेण ठिच्चा	मूला० ३४
अंडजपोतजजरजा	पंचसं० १–७३
अंडेसु पवड्ढंता	पचत्थि० ११३
अंतज्झोई कमलं	णाणसा० ५०
अंतयडं वरमंगं	अगप० १–४८
अंतरकडपढमादो	लद्धिसा० ८७
अंतरकदपढमादो	लद्धिसा० २५०
अंतरकदपढमादो	लद्धिसा० ४५७
अंतरकदा दु छण्णो	लद्धिसा० २६२
अंतरगा तदसंखेज्ज-	गो० क० २५५
अंतरतच्चं जीवो	कत्ति० अणु० २०५
अंतरदीवमणुस्सा	तिलो० प० ४–२१२८
अंतरदीवे मणुया	मूला० १२१२
अंतरपढमं पत्ते	लद्धिसा० ८९
अंतरपढमठिदि त्ति य	लद्धिसा० ५८२
अंतरपढमठिदि त्ति य	लद्धिसा० ५८३
अंतरपढमठिदि त्ति य	लद्धिसा० ५८५
अंतरपढमठिदि त्ति य	लद्धिसा० ५८६
अंतरपढमा दु कमे	लद्धिसा० २४८
अंतरपढमे अण्णो	लद्धिसा० २४२
अंतरबाहिरजप्पे	णियमसा० १५०
अंतरभावप्पबहु-	गो० जी० ४६१
अंतरमवरुक्कस्सं	गो० जी० ५५२
अंतरमुवरी वि पुणो	गो० क० २३६
अंतरमुहुत्तकालो	भावस० ६७८
अंतरमुहुत्तमज्झे	भावस० ४०६
अंतररहियं वरिसइ	जंबू० प० ७–१३८
अंतरहेदुक्कीरिद-	लद्धिसा० २४३
अंतरायस्स कोहाई	पंचसं० ४–२११
अंतरिए अंतरियं	आय० ति० २–२९
अंताइसुइजोग्गं	तिलो० सा० ३१५
अंतादिमज्झहीणं	जंबू० प० १३–१६
अंतादिमज्झहीणं	तिलो० प० १–९८
अंतिमए छद्दंसण-	पंचसं० ४–४६५
अंतिमखंधंताइं	तिलो० प० ४–६७०
अंतिमजिणणिव्वाणे	णादी० पट्टा० १
अंतिमजिणणिव्वाणे	णादी० पट्टा० १०
अंतिमठाणं सुहुमे	गो० क० ५४८
अंतिमतियसंहडण-	गो० क० ३२
अंतिमतियसंहडण-	कम्मप० ६०
अंतिमरसखंडुक्की-	लद्धिसा० ९३
अंतिमरसखंडुक्की-	लद्धिसा० १७६
अंतिमरुंदपमाणं	तिलो० प० ५–२५३
अंतिमविक्खंभद्धं	तिलो० प० ५–२६३
अंतु वि गंतुवि तिहुवणहँ	परम०प०२–२०३(बा०)
अंते अंकसुहा खलु	जंबू० प० ११–५
अंते टंकच्छिण्णो	तिलो० सा० ६३७

आ

वाक्य	स्रोत
आउ-कुल-जोणि-मग्गण-	वसु० सा० १५
आउक्कस्स पदेसं	गो० क० २११
आउक्कस्स पदेसं	पंचसं० ४-४६६
आउक्खए वि पत्ते	कल्लाणा० ६
आउक्खयेण मरणं	समय० २४८
आउक्खयेण मरणं	समय० २४६
आउक्खयेण मरणं	कत्ति० अणु० २८
आउगबंधणभावं	तिलो० प० ७-४
आउगबंधाबंधण-	गो० क० ३५६
आउगभागो थोवो	गो० क० १६२
आउगभागो थोवो	पचसं० ४-४६०
आउ गलइ ण वि मणु गलइ	जोगसा० ४६
आउगवज्जाणं ठिदि-	लद्धिसा० ७८
आउगवज्जाणं ठिदि-	लद्धिसा० ४०३
आउट्टिरिक्खमस्सिणि-	तिलो० सा० ४३०
आउट्टि-लद्ध-रिक्खं	तिलो० सा० ४२६
आउट्ठकोडिताहिं	तिलो० प० ४-१८३८
आउट्ठकोडिसंखा	तिलो० प० ४-१८४४
आउट्ठं रज्जुघणं	तिलो० प० १-१८६
आउट्ठिदिबंधज्झव-	गो० क० ६४७
आउट्ठिदी विमाणं	जबू० प० ११-३५०
आउड्ढरज्जुसेढी	तिलो० सा० १३६
आउड्ढरासिवारं	गो० जी० २०३
आउदुगहारतित्थ	गो० क० ३६७
आउधवासस्स उरं	भ० आरा० ११३६
आउबलेण अवट्ठिदि	गो० क० १८
आउबलेण अवट्ठिदि	कम्मप० १६
आउब्बंधणकालो	तिलो० प० ५-२६०
आउब्भवम्मि णाणे	आय० ति० २५-१
आउव्वेदसमत्ती	भ० आरा० ६२७
आउसबंधणभावं	तिलो० प० ६-१०१
आउ संति सग्गहु चइवि	सावय० दो० ७३
आउस्स खयेण पुणो	णियमसा० १७५
आउस्स जहण्णट्ठिदि-	गो० क० ६५३
आउस्स बंधसमये	तिलो० प० २-२६३
आउस्स य संखेज्जा	गो० क० ६३६
आऊ-कुमार-मंडलि-	तिलो० प० ४-१२६२
आऊ चउप्पयारं	भावसं० ३३५
आऊ चउप्पयारं	कम्मप० ३२
आऊणि पुव्वकोडी	जबू० प० २-१७५

वाक्य	स्रोत
आऊणि भवविवाई	गो० क० ४८
आऊणि भवविवाई	कम्मप० ११६
आऊणि भवविवागी	पचसं० ४-४८६
आऊणि आहारो	तिलो० प० ६-३
आऊ तेजो बुद्धी	तिलो० प० ४-१५६३
आऊदयेण जीवदि	समय० २५१
आऊदयेण जीवदि	समय० २५२
आऊ पडि णिरयदुगे	लद्धिसा० ११
आऊपरिवारिड्ढी-	तिलो० सा० २४२
आऊ पल्लदसंसो	तिलो० सा० ७६६
आऊ बंधणभावं	तिलो० प० ३-४
आऊ बंधणभावं	तिलो० प० ७-६१८
आऊ बंधणभावो	तिलो० प० ६-४
आएण य पाएण य	आय० ति० ३-१
आए णायम्मि वि जो	आय० ति० २-१
आएसस्स तिरत्तं	मूला० १६२
आएसस्स तिरत्तं	भ० आरा० ४१३
आएसं एज्जंतं	भ० आरा० ४१०
आएसं एज्जंतं	मूला० १६०
आकंपिय अणुमाणिय	भ० आरा० ५६२
आकंपिय अणुमाणिय	मूला० १०३०
आकंसिकमदिघोरं	तिलो० प० ४-४२३
आक्खेवणी कहाए	अंगप० १-५६
आक्खेवणी कहा सा	भ० आरा० ६५६
आक्खेवणी य संवे-	भ० आरा० ६५५
आगच्छिय णंदीसर-	तिलो० प० ५-६६
आगच्छिय हरिकूडे	तिलो० प० ४-१७६६
आगमकदविण्णाणा	मूला० ८३१
आगमचक्खू साहू	पवयणसा० ३-३४
आगम-णोआगमदो	दव्वस० णय० २७६
आगमदो जो बालो	भ० आरा० ५६८
आगमपुव्वा दिट्ठी	पवयणसा० ३-३६
आगममाहप्पगओ	भ० आरा० ६५६
आगमसत्थाइं लिहा-	वसु० सा० २३७
आगमसुदआणाधा-	भ० आरा० ४४६
आगमहीणो समणो	पवयणसा० ३-३३
आगरसुद्धिं च करेज्ज	वसु० सा० ४४५
आगंतुकणामकुलं	मूला० १६६
आगंतुक माणसियं	भावपा० ११
आगंतुगवत्थव्वा	भ० आरा ४११

आगंतुघरादीसु वि	भ० आरा० ६३६
आगंतुयवत्थव्वा	मूला० १६३
आगतूण णियंतो	तिलो० प० ४–२४४
आगतूण तदो सा	तिलो० प० ४–२०६५
आगाढावच्चपयत्त-	छेदपिं० २२७
आगाढे उवसग्गे	भ० आरा० २०७२
आगासकालजीवा	पचत्थि० ६७
आगासकालपुग्गल-	पचत्थि० १२४
आगासभूमिउदधी	भ० आरा० ६६३
आगासमणुणिविट्ठं	पवयणसा० २–४८
आगासमेव खित्तं	वसु० सा० ३२
आगासम्मि वि पक्खी	भ० आरा० १७८२
आगासस्सवगाहो	पवयणसा० २–४१
आगासं अवगासं	पचत्थि० ६२
आगासं वज्जित्ता	गो० जी० ५८२
आचक्खिदुं विभंजिदुं	मूला० ५३४
आचारंगधरादो	तिलो० प० ४–१५०८
आचेलक्कं लोचो	भ० आरा० ८०
आचेलक्कं लोचो	मूला० ९०८
आचेलक्कुद्देसिय-	भ० आरा० ४२१
आचेलक्कुद्देसिय	मूला० ९०९
आ-जोदिसि त्ति देवा	मूला० ११७६
आणक्खिवदा य लोचे	भ० आरा० ६२
आणद-आरण-णामा	तिलो० प० ८–१४६
आणदणामे पडले	तिलो० प० ८–५०२
आणदकप्पप्पहुदी	पचस० ४–३४६
आणदपहुदिचउक्कं	तिलो० प० ८–२०१
आणदपहुदी छक्कं	तिलो० प० ८–१४५
आणद-पाणद-आरण-	तिलो० प० ८–१३४
आणद-पाणद-आरण-	तिलो० प० ८–१६०
आणद-पाणद-आरण-	तिलो० प० ८–२०५
आणद-पाणद-आरण	तिलो० प० ८–३३८
आणद-पाणद-आरण-	तिलो० प० ८–३८४
आणद-पाणद-आरण-	तिलो० प० ८–६८५
आणद-पाणदइंदे	तिलो० प० ८–२२२
आणद-पाणदइंदे	तिलो० प० ८–४३६
आणद-पाणदकप्पे	तिलो० प० ८–१८४
आणद-पाणदकप्पे	मूला० १०६६
आणद-पाणदकप्पे	मूला० ११४२
आणद-पाणददेवा	जंबू० प० ११–३४६
आणद-पाणदपुप्फय	तिलो० सा० ४६८
आणद-पाणदवासी	गो० जी० ४३०
आणदतूरजयथुदि-	तिलो० सा० ५५१
आणा अणवत्था वि य	मूला० १५४
आणा अणवत्था वि य	मूला० ४६४
आणाए कक्किणिओ	तिलो० प० ४–१५२
आणाए चक्कीणं	तिलो० प० ४–१३४३
आणाए चक्कीणं	तिलो० प० ४–१३५५
आणाए चक्कीणं	तिलो० प० ४–१३६४
आणाए जाणणा वि	मूला० ६३४
आणाणिद्देसपमा-	मूला० ६८२
आणाभिकंखिणावज्ज-	भ० आरा० २१४
आणाभिकंखिणावज्ज-	मूला० ३५४
आणावहू-अहिगमदो	दव्वस० णय० ३२१
आणा संजमसाखिल्ल-	भ० आरा० ३१०
आणाहवत्तियादीहिं	भ० आरा० ७०३
आणिय गुणसंकलिदं	तिलो० सा० ३६१
आणीय गेहकमला	तिलो० सा० ५७४
आणुधरीयं कुंथु	कत्ति० अणु० १७५
आतंकरोगमरणुप्पत्ति-	तिलो० प० ६३१
आ-तुरिमखिदी चरमं-	तिलो० प० २–२६२
आदट्ठमेव चिंते-	भ० आरा० ४८३
आद-पर-समुद्धारो	भ० आरा० १११
आदम्हि दव्वभावे	समय० २०३
आदर-अणादरक्खा	तिलो० प० ५–३८
आदर-अणादराणं	तिलो० प० ४–२६०१
आदसहावादण्णं	मोक्खपा० १७
आदहिदपइण्णाभा-	भ० आरा० १००
आदहिदमयाणंतो	भ० आरा० १०२
आदंके उवसग्गे	मूला० ४८०
आदंके उवसग्गे	मूला० ६४२
आदाओ उज्जोओ	गो० क० १६५
आदाओ उज्जोवं	पंचस० ४-५५४
आदा कम्ममलिमसो	पवयणसा० २–२६
आदा कम्ममलिमसो	पवयणसा० २–५८
आदा कुल गणो पव-	भ० आरा० २४२
आदा खु मज्झणाणं	समय० २७७
आदा खु मज्झणाणे	भावपा० ५८
आदा खु मज्झणाणे	समय०१५से०३(ज०)
आदा खु मज्झणाणे	णियमसा० १००

आदा चेदा भणिओ	दव्वस० णय० ११६
आदा णाणपमाणं	पवयणसा० १-२३
आदा णाणपमाणं	दव्वस० णय० ३८५
आदाणे णिक्खेवे	मूला० ३१६
आदाणे णिक्खेवे	भ० आरा० ८१८
आदाणे णिक्खेवे	भ० आरा० ११६६
आदा तणुप्पमाणो	दव्वस० णय० ३८३
आदाय तं पि लिंगं	पवयणसा० ३-७
आदावणादि-गहणे	मूला० १३५
आदावणादिजोगग्ग-	छेदपिं० १७६
आदाव-तमचउक्कं	पंचसं० ४-४४६
आदावुज्जोदविहा-	मूला० १२३२
आदावुज्जोवाणं	पंचसं० ५-६७
आदा हु मज्झ णाणे	मूला० ४६
आदिअवसाणमज्झे	तिलो० प० ४-६७६
आदिअवसाणमज्झे	तिलो० प० ४-६८०
आदिजिणप्पडिमाओ	तिलो० प० ४-२३०
आदिणिहणेण हीणा	तिलो० प० ३-३७
आदिणिहणेण हीणो	तिलो० प० १-१३३
आदितियसुसंघडणो	भ० आरा० २०४४
आदिधणादो सव्वं	गो० क० ६०१
आदिप्पायारादो	तिलो० प० ८-४२०
आदिमकच्छं गुणिदो	जंबू० प० ४-१६६
आदिमकरणद्धाए	लद्धिसा० ४०
आदिमकरणद्धाए	लद्धिसा० ४२
आदिमकरणद्धाए	लद्धिसा० ३६३
आदिमकसायबारस-	भावति० ११
आदिमकूडे चेट्ठदि	तिलो० प० ४-१५१
आदिमकूडोवरिमे	तिलो० प० ४-२०३६
आदिमखिदीसु पुह पुह	तिलो० प० ४-७५४
आदिमचउकप्पेसुं	तिलो० प० ८-५६८
आदिमछट्ठाणम्हि य	गो० जी० ३२६
आदिमजिणउदयाऊ	तिलो० प० ४-१५८०
आदिमणिरए भोगज-	भावति० ४५
आदिमतिगसंघडणो	छेदपिं० २८४
आदिमदोजुगलेसु	तिलो० प० ८-३२४
आदिमपरिहि तिगुणिय	तिलो० प० ४-४३१
आदिमपरिहिप्पहुदी	तिलो० प० ४-२७६६
आदिमपहा दु बाहिर-	तिलो० प० ७-३६०
आदिमपचट्ठाणे	गो० क० ३७६
आदिमपासादस्स य	तिलो० प० ५-२१२
आदिमपासादादो	तिलो० प० ५-१६६
आदिमपीठुच्छेहो	तिलो० प० ४-७६७
आदिममज्झिमबाहिर-	तिलो० प० ४-२५६०
आदिममज्झिमबाहिर-	तिलो० प० ४-२५६४
आदिमरयणचउक्कं	तिलो० प० ४-१३७८
आदिमलद्धिभवो जो	लद्धिसा० ५
आदिमसत्तेव तदो	गो० क० ४४२
आदिमसम्मत्तद्धा	गो० जी० १६
आदिमसंठाणजुदा	तिलो० प० ४-२३३२
आदिमसंहडणजुदा	तिलो० प० ४-१३६६
आदिमसंहडणजुदो	तिलो० प० १-५७
आदिम्मि कमे वड्ढदि	गो० क० ६०७
आदिल्लदससु सरिसा	गो० क० ३८१
आदी अंतविसेसे	तिलो० सा० २००
आदी अंते सुद्धे	गो० क० २५४
आदी अंते सोहिय	तिलो० प० २-२१८
आदीए दुव्विसोधण-	मूला० ५३५
आदीओ णिद्दिट्ठा	तिलो० प० २-६१
आदी छ अट्ठ चोद्दस	तिलो० प० २-१५८
आदी जंबूदीओ	तिलो० प० ५-११
आदीदो खलु अट्ठम-	तिलो० सा० ६६६
आदीदो चउमज्झे	छेदस० ४
आदी लवणसमुद्दो	तिलो० प० ५-१२
आदी वि य चउठाणा	पचसं० ५-२४८
आदी वि य संघयणं	पंचसं० ३-४२
आदुरसल्ले मोसे	भ० आरा० ६१८
आदे तिदयसहावे	दव्वस० णय० ३२२
आदेसमत्तमुत्तो	पंचत्थि० ७८
आदेसमत्तमुत्तो	तिलो० प० १-१०१
आदे ससहरमंडल-	तिलो० प० ७-२०६
आदेसे वि य एवं	गो० क० ८७५
आदेसे संलीणा	गो० जी० ४
आदेहिं कम्मगंठी	सीलपा० २७
आदोलस्स य चरिमे	लद्धिसा० ४८०
आदोलस्स य पढमे	लद्धिसा० ४७६
आदोलस्स य पढमे	लद्धिसा० ४८१
आधाकम्मपरिणदो	मूला० ४८७
आधाकम्मपरिणदो	मूला० ६३४
आधाकम्मं उद्दे-	समय० २८५से० २५ (ज०)

आयार-जीदकप्पगु-	भ० आरा० ४०६
आयार-जीदकप्पगु-	भ० आरा० १३०
आयार-जीदकप्पगु-	मूला० ३८७
आयारत्थो पुण से	भ० आरा० ४२७
आयारवमादीया	भ० आरा० ४२६
आयारवं च आधा-	भ० आरा० ४१७
आयारं पढमग	अंगप० १-१५
आयारं पंचविहं	भ० आरा० ४१६
आयारं सुद्दयडं	सुदभ० २
आयाराई सत्थं	भावसं० ५२४
आयारादी अंगा	कल्याण० २८
आयारादी णाणं	समय० २७६
आयारे सुद्दयडे	गो० जी० ३५५
आयारो खाईणं	आय० ति० ६-१०
आयावुज्जोयाणं	पंचसं० ४-२७४
आयावुज्जोयाणं	पंचसं० ५-१०८
आयावुज्जोयाणं	पंचसं० ५-१०६
आयावुज्जोवुदयं	पंचसं० ५-११६
आयावुज्जोवुदये	पंचसं० ५-११७
आयासगया पुण गयगो	अंगप० ३-६
आयास णभ णवं पण	तिलो० प० ४-१६२
आयासतंतुजलसे-	जोगिभ० २०
आयास-दुक्खवेरभ-	मूला० ७२१
आयास- फलिह-सरिणह-	वसु० सा० ४७२
आयासवेरभयदुक्ख-	भ० आरा० ३७०
आयासं पि ण णाणं	समय० ४०१
आयासं सपदेसं	मूला० ५४६
आरणइंदयदक्खिण-	तिलो० प० ८-३४६
आरणदुगपरियंतं	तिलो० प० ८-५३१
आरण्णओ(गो)वि मत्तो	भ० आरा० ७६३
आरत्तिउ दिण्णउ जिणहँ	सावय० दो० १६६
आरंभं च कसायं	मूला० ६७७
आरंभे उवसग्गो	आय० ति० ३-१३
आरंभे जीववहो	भ० आरा० ८२०
आरंभे धणधण्णे	रयणसा० १०७
आरंभे पाणिवहो	मूला० ६२१
आराए दु णिसिट्ठा	तिलो० सा० १६१
आराधणपत्तीयं	भ० आरा० ७०६
आराधणपत्तीयं	भ० आरा० १६६४
आराधणं असेसं	भ० आरा० २१६४
आराधणाए तत्थ दु	भ० आरा० २०२६
आराधणापदायं	भ० आरा० ७५८
आराधणापुरस्सर-	भ० आरा० ७५३
आराधणाविधी जो	भ० आरा० २०२४
आराधयित्तु धीरा	भ० आरा० २१६१
आराधयित्तु धीरा	भ० आरा० २१६२
आरामाण वि एवं	आय० ति० १०-२३
आराहणउवजुत्तो	मूला० ६०
आराहणणिजुत्ती	मूला० २७६
आराहणसाराहं	आरा० सा० ११
आराहणाइ वट्टइ	णियमसा० ८४
आराहणाइसारं	आरा० सा० ११३
आराहणाइसारो	आरा० सा० २
आराहणाए कज्जे	भ० आरा० १६
आराहणापडागं	रिट्ठस० १५
आराहणा भगवदी	भ० आरा० २१६८
आराहिऊण केई	आरा० सा० १०८
आराहिज्जइ देउ	पाहु० दो० ५०
आरिदंण णिसिट्ठो	तिलो० प० २-५०
आरुह वि अंतरप्पा	मोक्खपा० ७
आरुहिऊणं गंगा	तिलो० प० ४-१२०८
आरुहिदूणं तेसुं	तिलो० प० ४-८७१
आरूढो वरतुरयं	तिलो० प० ५-८७
आरूढो वरमोरं	तिलो० प० ५-६७
आरोग्गबोहिलाहं	मूला० ५६६
आरो मारो तारो	तिलो० प० २-४४
आरो मारो तारो	जम्बू० प० ११-१४३
आरोविऊण सीसे	वसु० सा० ४१७
आरोहियाभियोग्गग-	तिलो० सा० ५०१
आलसड्ढो णिरुच्छाहो	गो० क० ८६०
आल जणेदि पुरुसस्स	भ० आरा० ६८१
आलंबणं च वायण-	भ० आरा० १७१०
आलंबणं च वायण-	भ० आरा० १८७५
आलंबणेहिं भरिदो	भ० आरा० १८७६
आलिहउ सिद्धचक्कं	भावसं० ४४३
आलिंगिए य संते	आय० ति० १०-३
आलिंगिएसु णेहो	आय० ति० १२-३
आलिंगिएसु दिवसा	आय० ति० १४-४
आलिंगिएसु पुरिसो	आय० ति० ११-३
आलिंगिए सुवण्णं	आय० ति० १८-२१

आवासयपरिहीणो	छेदपिं० १२३
आवासयपरिहीणो	छेदस० ४८
आवासयं च कुणदे	भ० आरा० २०४५
आवासयं तु आवा-	मूला० ६८५
आवासयाइं कम्मं	भावसं० ६१०
आवासया पि मोणेण	छेदस० ७६
आवासया हु भवअद्धा-	गो० जी० २५०
आवासं जइ इच्छसि	णियमसा० १४७
आवाहिऊण देवे	भावसं० ४६६
आवाहिऊण संघं	भावसं० १४६
आवेसणा सरीरे	मूला० ५०८
आसणठाणं किच्चा	भावसं ४२८
आसणे आसणत्थं	मूला० ५६८
आसण्णभव्वजीवो	दव्वस० णय० ३१६
आसत्तयमेक्कसयं	तिलो० प० ४-१२१२
आसयवसेण एवं	भ० आरा० ३५६
आसवइ जं तु कम्मं	भावसं० ३२१
आसवइ सुहेण सुहं	भावसं० ३२०
आसवदि जं तु कम्मं	मूला० २४०
आसवदि जेण कम्मं	दव्वस० २६
आसवदि जेण पुण्णं	पंचत्थि० १४७
आसव-बंधण-संवर-	दव्वसं० २८
आसव-संवर-णिज्जर-	भ० आरा० ३८
आसव-संवर-दव्वं	गो० जी० ६४३
आसवहेदू जीवो	बा० अणु० ५८
आसवहेदू य तहा	मोक्खपा० ५५
आसाए विप्पमुक्कस्स	मूला० ६८८
आसागिरिदुग्गाणि य	भ० आरा० १३०४
आसाढ कत्तिए फग्गु-	वसु० सा० ३५३
आसाढ कत्तिए फग्गु-	वसु० सा० ५०७
आसाढपुण्णमीए	तिलो० प० ७-५३१
आसाढपुण्णमीए	तिलो० सा० ४११
आसाढबहुलदसमी-	तिलो० प० ४-६६३
आसाढे दुपदा छाया	मूला० २७२
आसाढे संवच्छर-	छेदपिं० ११५
आसादित्ता कोई	भ० आरा० ६६२
आसादिदा तदो होति	भ० आरा० १६३४
आसादे चउभंगा	पंचसं० ५-३२५
आसायछिन्नपयडी	पंचसं० ४-३२७
आसायछिन्नपयडी	पंचसं० ४-३४३
आसायछिन्नपयडी	पंचसं० ४-३४८
आसायछिन्नपयडी	पंचस० ४-३५६
आसायपुण्ण ताओ	पचसं० ४-३७६
आसि उज्जेणिणयरे	भावसं० १३८
आसि मम पुव्वमेदं	समय० २१
आसी अणंतखुत्तो	भ० आरा० १६०६
आसी कुमारसेणो	दंसणसा० ३३
आसीदि होइ संता	पंचसं० ५-२११
आसीय महाजुद्धाइं	भ० आरा० ६४२
आसीवादादिं ससि-	तिलो० सा० ८००
आसीविसेण अवरुद्धस्स	भ० आरा० ८६२
आसीविसोव्व कुविदो	भ० आरा० ६४६
आसी ससमय-परसमय-	वसु०सा० ५४२
आसुक्कारे मरणे	भ० आरा० २०८३
आ-सोधम्मादाव	पंचसं० ४-४७०
आहट्टिदूण चिरमवि	भ० आरा० ६२५
आहरइ अणेण मुणी	पंचसं० १-६७
आहरइ सरीराणं	पंचसं० १-१७६
आहरणगिहम्मि तओ	वसु० सा० ५०२
आहरणवासियाहिं	वसु० सा० ५०४
आहरणहेमरयणं	णयच० ७४
आहरणहेमरयणा	दव्वस० णय० २४४
आहदि अणेण मुणी	गो० जी० २३८
आहदि सरीराणं	गो० जी० ६६४
आहार-अभयदाणं	जंबू० प० २-१४६
आहारकायजोगा	गो० जी० २६६
आहारगा दु देवे	गो० क० ५४२
आहार-गिद्धि-रहिओ	कत्ति० अणु० ४४१
आहारजुयलजोगं	पंचसं० ४-१६२
आहारणिमित्तं किर	मूला० ८२
आहारत्थं काऊण	भ० आरा० १६५१
आहारत्थं पुरिसो	भ० आरा० १६४६
आहारत्थं मज्जा-	भ० आरा० १६४७
आहारत्थं हिंसइ	भ० आरा० १६४२
आहारदंसणेण य	गो० जी० १३४
अहारदंसणेण य	पचसं० १-५२
आहारदाणणिरदा	तिलो० प० ४-३६७
आहारदाणणिरदा	जंबू० प० २-१४४
आहारदायगाणं	मूला० ४५६
आहारदुगविहीणा	पंचसं० ५-७८

इ

इगतिदुतिपंच कमसो	तिलो० प० ७-३१३
इगतीस-उवहि-उवमा	तिलो० प० २-२१०
इगतीसलक्खजोयण-	तिलो० प० ८-३६
इगतीस सत्त चउ दुग	तिलो० प० ८-१५६
इगतीस च सयाइं	जंबू० प० ४-३०
इगतीसं च सहस्सा	जंबू० प० ४-३५
इगतीसं च सहस्सा	जंबू० प० ४-३६
इगतीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-१६१
इगदालुत्तरसगसय-	तिलो० प० ८-७३
इग दुग चउ अड छत्तिय	तिलो० प० ४-२६१२
इग पण दो इगि छच्चउ	तिलो० प० ४-२८८३
इगपणसगअडपणपण-	तिलो० प० ४-२६४८
इगपल्लपमाणाऊ	तिलो० प० ४-१०६१
इगपुव्वलक्खसमधिय-	तिलो० प० ४-५६१
इगलक्खं चालीसं	तिलो० प० ४-११०४
इगविगतिगचउरिंदिय-	भ० आरा० २०६६
इगविगतियचउपंचिं-	भ० आरा० १७७२
इगविगलिंदियजणिदे	आस० ति० ३७
इगविजयं मज्झत्थं	तिलो० प० ४-२३००
इगवीस चदुर सदिया	मूला० १०२२
इगवीसपुव्वलक्खा	तिलो० प० ४-५६३
इगवीसमोहखवणुव-	गो० जी० ४७
इगवीसलक्खवच्छर-	तिलो० प० ४-१२६०
इगवीसवस्सलक्खा	तिलो० प० ४-६४५
इगवीससहस्साइं	तिलो० प० ४-१४०६
इगवीससहस्साइं	तिलो० प० ४-६०१
इगवीससहस्साणि	तिलो० प० ४-३१८
इगवीसं चिय रिक्खे	रिट्ठस० २५०
इगवीस तु सहावा	दव्वस० णय० ६६
इगवीसं तु सहावा	दव्वस० णय० ६८
इगवीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-५२
इगसट्ठियभागकदे	तिलो० प० ७-६८
इगसट्ठी अहिएण	तिलो० प० ८-७
इगसट्ठीए गुणिदा	तिलो० प० ७-११२
इगसयअठारवासे	णंदी० पट्टा० १७
इगसयजुदं सहस्सं	तिलो० प० ४-११५५
इगसयरहिदसहस्सं	तिलो० प० ४-११५६
इगहत्तरिजुत्ताइं	तिलो० प० ४-१६६६
इगि अड अट्ठिगि अट्ठिगि-	गो० क० ५७७
इगिअडपहुदि केवल-	तिलो० सा० ६०
इगिकोसोदयरुंदा	तिलो० प० ४-२५६
इगिगयणं पणणउदि	तिलो० सा० ६१५
इगि चउ पण छस्सत्त य	पंचसं० ५-११०
इगिचादि केवलंतं	तिलो० सा० ५८
इगिछक्कदुगावत्तासत्ती	गो० क० ७०८
इगिछक्कडगवीसं	गो० क० ७१६
इगिछव्वीसं च तहा	पंचसं० ५-४२६
इगिजाइथावरादा-	पंचसं० ४-३६१
इगिठाणफड्डयाओ	गो० क० २२८
इगिठाणफड्डयाओ	गो० क० २४०
इगिणउदीए तीसं	गो० क० ७७१
इगिणभपणचउअट्ठदुग-	तिलो० प० ४-२६७२
इगि णव णव सगिगिगिदुग-	तिलो० सा० २८
इगिणवतियछक्कदुग-	तिलो० प० ४-२६६५
इगिणवदीए तहा	गो० क० ७५६
इगितीसबंधगेसु य	पंचसं० ५-२४७
इगितीसबंधठाणे	गो० क० ७७४
इगितीस सत्त चत्ता-	बा० अणु० ४१
इगितीस सत्त चत्ता-	तिलो० सा० ४६२
इगितीसंता बंधउ	पंचसं० ४-२५५
इगितीसा णवयसदा	जंबू० प० ३-१६
इगितीसे तीसुदओ	गो० क० ७४४
इगिदालसयसहस्सा	जंबू० प० ११-१२
इगिदाल च सयाइ	गो० क० ८७०
इगिदालीससहस्सा	जंबू० प० ११-७०
इगि-दुग-तिग-संजोए	पंचसं० ४-१७६
इगिदुगपंचेयारं	गो० जी० ३५८
इगिदुतिचउरक्खेसु य	सिद्धंतसा० ६६
इगिपणसत्तावीसं	पंचसं० ५-२४४
इगि पंच तिण्णि पंच य	पंचसं० ५-२५७
इगि पंच तिण्णि पंच य	पंचसं० ५-५१
इगिपंचेंदियथावर-	गो० क० १३१
इगिपंचेदियथावर-	कम्मप० १२७
इगिपतिगदु पुध पुध	गो० क० ६३५
इगिपुरिसे बत्तीसं	गो० जी० २७७
इगिबंधट्ठाणेण दु	गो० क० ७६८
इगिविगलथावरचऊ	गो० क० २८८
इगिविगलथावरादव-	पंचसं० ४-३७४
इगिविगलथावरादव-	पंचसं० ४-३७७
इगिविगलबंधठाणं	गो० क० ७१५

इट्ठाओ कमाओ	जवू० प० ११-२६३
इट्ठाणिट्ठवियोगजो-	गो० क० ७७
इट्ठाणि पियाणि तहा	जवू० प० ४-२४८
इट्ठिंदयप्पमाणं	तिलो० प० २-५८
इट्ठे इच्छाकारो	मूला० १२६
इट्ठेसु अणिट्ठेस य	भ० आरा० १६८८
इट्ठोवहिविक्खंभे	तिलो० प० ५-२४८
इडपिंगलाण पवर्ण	णाणसा० ५६
इड्ढिमतुलं विउव्विय	भावपा० १२८
इड्ढिमदुलं विउव्विय	भ० आरा० २०४६
इणमण्णं जीवादो	समय० २८
इणससितारासावद-	तिलो० सा० ७६६
इतिरियं जावजीवं	मूला० ३४७
इतिरिया जावकालिय	छेदस० ६२
इत्तिरिणं सव्वयणं	भ० आरा० १७७
इत्तो उवरिं सग सग	आस० ति० १४
इत्थिकहा अत्थकहा	मूला० ८५५
इत्थिणउंसयवेदे	पचसं० ४-८६
इत्थिणउंसयवेदे	सिद्धंतसा० ४६
इत्थिणउंसयवेयं	पचसं० ४-४७२
इत्थिपुरिसेसु णेया	पंचसं० ४-१३
इत्थिविसयाभिलासो	भ० आरा० ८७६
इत्थिसंसग्गविजुदे	मूला० १०३३
इत्थीगिहत्थवग्गे	भावसं० ८७
इत्थीणं पुण दिक्खा	दंसणसा० ३५
इत्थीपुरिसणउंसय-	पचसं० १-१०४
इत्थीपुरिसणउंसय-	मूला० १२२६
इत्थीपुंवेददुगं	आस० ति० २६
इत्थीपुंसादिगच्छंति	मूला० ३०६
इत्थी वि य जं लिंगं	भ० आरा० ८१
इत्थीवेदे वि तहा	भावति० ६१
इत्थी-संसग्ग-पणिद-	मूला० १०२८
इत्थु ण लेवउ पंडियहिं	परम० प० २-२११
इत्थेव तिण्णि भावा	भावसं० ६००
इदि अट्ठारससेढी	तिलो० सा० ६८४
इदि अब्भंतरतडदो	तिलो० सा० ३२६
इदि उसहेण वि भणियं	अगप० ४१
इदि एसो जिणधम्मो	कत्ति० अणु० ४०७
इदि गुणमग्गणठाणे	भावति० ११६
इदि चदुबंधक्खवगे	गो० क० ५१५
इदि जोयण एगारह-	तिलो० सा० ६१४
इदि णाणभूसपट्टे	अंगप० २-११७
इदि णामप्पयडीओ	कम्मप० १०२
इदि णिच्छयववहारं	बा० अणु० ६१
इदि णेमिचंदमुणिणा	तिलो० सा० १०१८
इदि त पमाणविसयं	दव्वस० णय० २४८
इदि पडिमहस्सवस्सं	तिलो० सा० ८४७
इदि पचहि पंचहदा	भ० आरा० १२५४
इदि पुव्वुत्ता धम्मा	दव्वस० णय० ७२
इदि बारहअंगाणं	अंगप० १-७४
इदि मग्गणासु जोगो	आस० ति० ६१
इदि मोहुदया मिस्से	पचस० ५-३०२
इदि वंदिय पचगुरू	भावति० २
इदि सज्जणपुज्जं रय-	रयणसा० १६७
इदि सल्लिहियसरीरो	रिट्ठस० १४
इदि संढं संकामिय	लद्धिसा० ४४०
इधइं परलोगे वा	भ० आरा० १२७२
इधइं परलोगे वा	भ० आरा० १८०४
इय अट्ठगुणो देओ	धम्मर० १७८
इय अट्ठगुणो वेदो	भ० आरा० ५०७
इय अट्ठभेयअचण	भावसं० ४७८
इय अण्णाणी पुरिसा	भावसं० १६०
इय अण्णोण्णा सत्ता	तिलो० प० ४-३५५
इय अप्पपरिस्समम्मग-	भ० आरा० ४५७
इय अवराइं बहुसो	वसु० सा० ७७
इय अव्वत्तं जइ सा-	भ० आरा० ५६१
इय आय-पायअक्खर-	आय० ति० २२-१
इय आलंवणमणुपेहा-	भ० आरा० १८७४
इय इदणंदि जोइद-	छेदपिं० ३६२
इय उजभावमुवगदो	भ० आरा० ५५३
इय उत्तरम्मि भरहे	तिलो० प० ४-१३५
इय उप्पत्ती कहिया	भावस० १६०
इय उवएसं सारं	मोक्खपा० ४०
इय एक्केक्ककलाओ	तिलो० प० ७-२१३
इय एदे पंचविधा	भ० आरा० १३१५
इय एयंतविणडिओ	भावसं० ७०
इय एयंतं कहियं	भावस० ७२
इय एरिसमाहारं	वसु० सा० ३१७
इय एरिसम्मि सुण्णे	आरा० सा० ८६
इय एवं जो वुज्झइ	तच्चसा० ३६

ई

उ

उडुपह-उडुमज्झिम-उडु-	तिलो० प० ८-८७
उडुपहुदिइंदयाणं	तिलो० प० ८-५०६
उडुपहुदिएक्कतीसं	तिलो० प० ८-१३७
उडुविमलचंदणामा	तिलो० प० ८-१२
उडुविमलचंदवग्गू-	तिलो० सा० ४६४
उडुसेढीबद्धदलं	तिलो० सा० ४७४
उडुसेढीबद्धद्धं	तिलो० प० ८-१०१
उड्डहणा अदिचवला	भ० आरा० १४०३
उड्डाहकरा थेरा	भ० आरा० ३८६
उड्ढ-अध-मज्झ-लोए	मोक्खपा० ८१
उड्ढगया आवासा	तिलो० सा० २९५
उड्ढजुगे खलु वड्ढी	तिलो० प० १-२८७
उड्ढ-तिरिच्छ-पदाणं	गो० क० ८६३
उड्ढमधो तिरियम्हि दु	मूला० ७५
उड्ढअहतिरियलोए	सिद्धभ० ३
उड्ढअहतिरियलोए	मूला ४०२
उड्ढम्मि उ णरलोए	वसु० सा० ४६१
उड्ढं कमहाणीए	तिलो० प० ४-१७८९
उड्ढं गंतूण पुणो	जंबू० प० ५-४८
उड्ढं वहदि य अग्गी	णायसा० ५४
उड्ढाउ दक्खिणाओ	तिलो० प० ७-४९२
उड्ढुड्ढं रज्जुघणं	तिलो० प० १-२६१
उ(वु)ड्ढे सअंकवड्ढिय-	भ० आरा० ३९३
उड्ढोधमज्झलोए	तिलो० प० ९-३७
उणइगिवीसं वीसं	भावति० ४३
उणणउदी तिण्णिसया	तिलो० प० २-५६
उणताललक्खजोयण-	तिलो० प० ८-२८
उणतीसजोयणसदा	जंबू० प० ७-१५
उ(ऊ)णत्तीससयाइं	गो० क० ८६६
उणतीससहस्साधिय-	तिलो० प० ४-५७१
उणतीसं तिण्णिसया	तिलो० प० ८-२०२
उणतीसं लक्खाणं	तिलो० प० २-८८
उणदालं पण्णत्तरि	तिलो० प० १-१९८
उणदालं लक्खाण	तिलो० प० २-११४
उणवण्णजुदेक्कसयं	तिलो० प० ७-१५३
उणवण्णदिवसविरहिद-	तिलो० प० ४-१५४२
उणवण्णभजिदसेढी	तिलो० प० १-१७८
उणवण्णसहस्सा अड-	तिलो० प० ८-१७४
उणवण्णसहस्सा णव	तिलो० प० ७-५५७
उणवण्णसहस्साणि	तिलो० प० ४-१२२३
उणवण्णा दुसयाणि	तिलो० प० २-१८२
उणवण्णा पंचसया	तिलो० प० ७-१६७
उणवीसगुणं किच्चा	जंबू० प० २-१९
उणवीसजोयणेसुं	तिलो० प० १-११८
उणवीसमो सयंभू	तिलो० प० ४-१५७९
उणवीससया वस्सा	तिलो० प० ४-१४०४
उणवीससहस्साइं	तिलो० प० ४-२५७२
उणवीससहस्साणि	तिलो० प० ८-६२८
उणवीससहस्साणि	तिलो० प० ४-२८२३
उणवीसा एयसयं	जंबू० प० ३-१३०
उणवीसेहि य जुत्ता	पंचसं० १-४२
उणसट्ठिजुदेक्कसयं	तिलो० प० ७-२६२
उणसट्ठिजोयणसदा	मूला० ११०५
उणसट्ठिसया इगतीस-	तिलो० प० ८-१७५
उणसीदिसहस्साणि	तिलो० प० ४-७२
उणसीदिसहस्साणि	तिलो० प० ४-१२२०
उण्णयपीणपओहर-	जंबू० प० ३-१९०
उण्हं छंडदि भूमी	तिलो० सा० ८९९
उण्हं वादं उण्हं	भ० आरा० १५४८
उत्तपइण्णयमज्झे	तिलो० प० २-१०२
उत्तमअंगम्हि हवे	गो० जी० २३६
उत्तमअट्ठं आदा	णियमसा० ९२
उत्तमकुले महंतो	भावस० ४२१
उत्तमखममद्दवज्जव-	बा० अणु० ७०
उत्तमखमा(म)ए पुढवी	आ० भ० ५
उत्तमगुणगहणरओ	कत्ति० अणु० ३१५
उत्तमगुणाण धम्मं	कत्ति० अणु० २०४
उत्तमखित्ते बीयं	भावसं० ५०१
उत्तमठाणगदाणं	अंगपं० ३-३१
उत्तमणाणपहाणो	कत्ति० अणु० ३९५
उत्तमदुमं हि पिच्छइ	रिट्ठस० ४९
उत्तमदेवमणुस्से	आरा० सा० ११०
उत्तमधम्मेण जुदो	कत्ति० अणु० ४३०
उत्तमपत्तविसेसे	कत्ति० अणु० ३६६
उत्तमपत्तं णिदिय	भावस० ५५४
उत्तमपत्तं भणियं	बा० अणु० १७
उत्तमपत्तु मुणिंदु जगि	सावय० दो० ७९
उत्तमपुरिसहँ कोडिसय	सुप्प० दो० ७३
उत्तमभोगखिदीए	तिलो० प० १-११९
उत्तम-मज्झ-जहण्णं	वसु० सा० २८०

उप्पज्जदि जो रागी	तिलो० सा० ७३
उप्पज्जदि मणुयाणं	बा० अणु० ८३
उप्पज्जमाणकालं	सम्मइ० ३-३७
उप्पज्जंति चयंति य	जंबू० प० ११-२४८
उप्पज्जंति तहिं बहु-	तिलो० सा० १८१
उप्पज्जंति मणुस्सा	भावसं० ४३५
उप्पज्जंति महप्पा	जंबू० प० १०-८४
उप्पज्जंति वियंति य	सम्मइ० १-११
उप्पज्जंते भवणे	तिलो० प० ३-२०८
उप्पज्जंतो कज्जं	दव्वस० णय० ३६३
उप्पडदि पडदि धावदि	लिंगपा० १५
उप्पण्णपढमसमयम्हि-	वसु० सा० १८३
उप्पण्णम्मि य वाही	मूला० ८३६
उप्पण्णसमयपहुदी	धम्मर० ७२
उप्पण्णसुरविमाणे	तिलो० प० ८-५६६
उप्पण्णं पि कसाए	छेदपिं० १०२
उप्पण्णे पि कसाए	छेदपि २१४
उप्पण्णाण सिसूणं	णाय० ति० १२-१
उप्पण्णो उप्पण्णा	मूला० ६२२
उप्पण्णो कण्णयमए	भावसं० ४१२
उप्पण्णोदयभोगो	समय० २१५
उप्पत्तिमंडिदाइं	तिलो० प० ४-२३१६
उप्पत्ती तिरियाणं	तिलो० प० ५-२६२
उप्पत्ती मणुयाणं	तिलो० प० ४-२६४५
उप्पत्ती व विणासो	पंचत्थि० ११
उप्पलकुमुदालणिभा	जंबू० प० ४-१०८
उप्पलगुम्मा णलिणा	तिलो० प० ४-१६४४
उप्पहउवएसयरा	तिलो० प० ३-२०५
उप्पाओ दुवियप्पो	सम्मइ० ३-३२
उप्पाडित्ता धीरा	भ० आरा० ४७१
उप्पादट्ठिदिभंगा	पवयणसा० २-६
उप्पादट्ठिदिभंगा	पवयणसा० २-३७
उप्पाद-वय-विमिस्सा	णयच० २२
उप्पाद-वय-विमिस्सा	दव्वस० णय० १६४
उप्पादवयं गउणं	दव्वस० णय० १६१
उप्पादवयं गोणं	णयच० १६
उप्पादा अइघोरा	तिलो० प० ४-४३२
उप्पादेदि करेदि य	समय० १०७
उप्पादो पद्धंसो	पवयणसा० २-५०
उप्पादो य विणासो	पवयणसा० १-१८

उप्पादो य विणासो	दव्वस० णय० ४०१
उप्पायपुव्वगाणिय-	गो० जी० ३४४
उप्पायपुव्वमग्गा-	सुदखं ५
उब्भामगादिगमणे	मूला० १०३
उब्भामेज्ज य गुणमे-	भ० आरा० १५०३
उब्भिण्णकमलपाटल-	जंबू० प० ४-२३५
उब्भियदलेक्कमुरवद्ध-	तिलो० सा० ६
उब्भियदिवड्ढमुरवद्ध-	तिलो० प० १-१४४३
उभयतडवेदिसहिदा	तिलो० प० ४-२६०
उभयतडेसु णदीणं	जंबू० प० ३-१६८
उभयधणे संमिलिदे	गो० क० ६०२
उभयविणट्ठे भावे	तच्चसा० ५८
उभयंतरा-वणवेदिय-	तिलो० सा० ६६५
उभयेसिं परिमाणं	तिलो० प० १-१८६
उम्मग्गचारि स-णिदा-	तिलो० सा० ४५०
उम्मग्ग-णिमग्ग-जला	जंबू० प० ७-१२७
उम्मग्ग-णिमग्ग-णदी	तिलो० सा० ५६३
उम्मग्गदेसओ मग्ग-	मूला ६७
उम्मग्गदेसओ सम-	पंचसं० ४-२०५
उम्मग्गदेसगोमग्ग-	गो० क० ८०५
उम्मग्गदेसगोमग्ग-	कम्मप० १५१
उम्मग्गदेसणो मग्ग-	भ० आरा० १८४
उम्मग्गसंठियाणं	तिलो० प० ६-१
उम्मग्गं गच्छंतं	समय० २३४
उम्मग्गं परिचत्ता	णियमसा० ८६
उम्मग्गि थक्का जासु मणु	पाहु० दो० १०४
उम्मत्तो होइ णरो	भ० आरा० ११५७
उम्मूलिवि ते मूलगुण	पाहु० दो० २१
उयसयपडिदावण्णं	भ० आरा० १६७८
उरपरिसप्पादीणं	छेदपिं० ३२०
उलुखलिसिलुहणं घरसा-?	छेदपिं० ८८
उल्लसिदविब्भमाओ	तिलो० प० ५-२२५
उल्लाव-समुल्लावहिं	भ० आरा० १०८८
उल्लीणोल्लीणेहिं	भ० आरा० २४६
उवएसो पुण आयरि-	भ० आरा० २०६०
उवओए उवओगो	समय० १८१
उवओगमओ जीवो	दव्वस० णय० ११८
उवओगमओ जीवो	पवयणसा० २-८३
उवओगविसुद्धो जो	पवयणसा० १-१५
उवओगस्स अणाई	समय० ८६

वाक्य	ग्रन्थ
उववण-पोक्खरणीहिं	तिलो० प० ७-५४
उववणं-वणसंजुत्ता	तिलो० प० ४-१२७
उववण-वावि-जलेणं	तिलो० प० ४-८०६
उववणवेदीजुत्ता	तिलो० प० ४-१६६१
उववणसंडा सव्वे	तिलो० प० ४-१७५५
उववणसंडेहिं जुदा	तिलो० प० ४-२०८१
उववादगब्भजेसु य	गो० जी० ६२
उववादघरा णेया	जंबू० प० ३-१५१
उववादजोगठाणा	गो० क० २१६
उववादमंदिराइं	तिलो० प० ७-५२
उववादमारणंतिय-	गो० जी० ११८
उववादमारणंतिय-	तिलो० प० २-८
उववादसभा विविहा	तिलो० प० ८-४५२
उववादा सुरणिरया	गो० जी० ९०
उववादोवट्टणमे	मूला० ११६२
उववादे अच्चित्तं	गो० जी० ८५
उववादे पढमपदं	गो० जी० ५८४
उववादे सीदुसणं	गो० जी० ८६
उववादो उववट्टण	मूला० १०४४
उववायाउ णिवडई	वसु० सा० १३७
उववासपंचए वा	छेदपिं० ६
उववासमोणजुत्तो	रिट्ठस० ११०
उववास-वाहि-परिसम-	वसु० सा० ३३६
उववास विसेस करिवि बहु	पाहु० दो० २०७
उववासविहिं तस्स वि	अंगप० २-६७
उववास-सोसिय-तणू	जंबू० प० २-१४८
उववासह होइ पलेवणा	पाहु० दो० २१४
उववासहु इक्कहु फलई	सावय० दो० १११
उववासं कुव्वंतो	कत्ति० अणु० ३७८
उववासं कुव्वाणो	कत्ति० अणु० ४४०
उववासं पुण पोसह	वसु० सा० ४०३
उववासा कायव्वा	वसु० सा० ३७१
उववासो कायव्वो	धम्मर० १५४
उववासो य अलाभे	भावसं० १७८
उवसग्गपरिसहसहा	बोधपा० ५६
उवसग्गवाहिकारण-	छेदस० ५१
उवसग्गदो अणारो-	छेदपिं० १२४
उवसग्गेण य साहरि-	भ० आरा० २०७०
उवसण्णा सण्णो वि य	तिलो० प० १-१०३
उवसप्पिणि अवसप्पिणि	कत्ति० अणु० ६६
उवसप्पिणि अवसप्पिणि	भ० आरा० १७७८ (श्वे०)
उवसमइ किण्हसप्पो	भ० आरा० ७६२
उवसमई सम्मत्तं	रयणसा० १५५
उवसम खइओ मिस्सो	गो० क० ८१३
उवसमखमदमजुत्ता	बोधपा० ५२
उवसम-खय-भावजुदो	रयणसा० ७१
उवसम-खय-मिस्सं वा	मूला० ७६०
उवसम-खय-मिस्साणं	दव्वस० णय० २६१
उवसम-खाइय-सम्मं	भावति० ६६
उवसमचरियाहिमुहो	लद्धिसा० २०३
उवसमणिरीहझाणज्झ-	रयणसा० १२४
उवसमणो अक्खाणं	कत्ति० अणु० ४३७
उवसमदयादमाउह-	भ० आरा १८३६
उवसम दया य खंती	मूला० ७५३
उवसमभावतवाणं	कत्ति० अणु० १०५
उवसमभावूणेदे	भावति० ११०
उवसमभावो उवसम-	गो० क० ८१६
उवसमवंतो जीवो	आरा० सा० ६५
उवसमसम्मत्तद्धा	लद्धिसा० १००
उवसमसम्मत्तुवरिं	लद्धिसा० १०३
उवसमसम्मं उवसमे-	भावति० २०
उवसमसुहमाहारे	गो० जी० १४२
उवसमसेढीदो पुण	लद्धिसा० ३४८
उवसंतखीणमोहे	पंचस० ३-२८
उवसंतखीणमोहे	गो० क० १०२
उवसंतखीणमोहे	भावसं० ११
उवसंतखीणमोहो	पंचत्थि० ७०
उवसंतखीणमोहो	पंचसं० १-५
उवसंतखीणमोहो	गो० जी० १०
उवसंतद्धा दुगुणा	लद्धिसा० ३७१
उवसंतपढमसमये	लद्धिसा० ३००
उवसंतवयणमगिहत्थ-	मूला० ३७८
उवसंतवयणमगिहत्थ-	भ० आरा० १२४
उवसंता दीणमणा	मूला० ८०४
उवसंते खीणे वा	पंचसं० १-१३३
उवसंते पडिवडिदे	लद्धिसा० ३०५
उवसंतो त्ति सुराऊ	गो० क० ४४६
उवसंतो दु पुहत्तं	मूला० ४०४
उवसंपया य णेया	मूला० १३९
उवसंपया य सुत्ते	मूला० १४४

ऊ

एइकलउ इंदियरहियउ	जोगसा० ८६
एक्कवरसेण उसहो	तिलो० प० ४-६७०
एक्कविहीणा जोयण-	तिलो० प० २-१६६
एक्कसमएण बद्धं *	भावसं० ३२८
एक्कसमएण बद्धं *	कम्मप० २५
एक्कसय उणदालं	तिलो० प० ७-६०५
एक्कसयं पणवण्णा	तिलो० प० ४-२४८०
एक्कसया तेसट्ठी	तिलो० प० ५-५३
एक्कसयेणब्भहियं	तिलो० प० ४-११३२
एक्कसहस्सट्ठसया	तिलो० प० ४-१६४
एक्कसहस्सपमाणं	तिलो० प० ८-२३३
एक्कसहस्सं अडसय-	तिलो० प० ४-४२१
एक्कसहस्सं गोउर-	तिलो० प० ४-२२७१
एक्कसहस्सं चउसय-	तिलो० प० ४-११२३
एक्कसहस्सं तिसयं	तिलो० प० ४-४३०
एक्कसहस्सं पणसय-	तिलो० प० ४-१७०४
एक्कसहस्सा सगसय-	तिलो० प० ४-११४६
एक्कस्सिं गिरि विड(ड्ढ ?)ढ़।	तिलो०प० १-२४६
एक्कहिं इंदियमोक्कलउ	सावय० दो० १२८
एक्कं एक्कम्मि खणे	भावसं० ६७३
एक्कं कोदंडसयं	तिलो० प० २-२६४
एक्कं कोदंडसयं	तिलो० प० २-२६३
एक्कं कोसं गाढो	तिलो० प० ४-१६४८
एक्कं खलु अट्ठक्कं	गो० जी० ३२८
एक्कं खलु तं भत्तं	पवयणसा० ३-२६
एक्कं खंडो भरहो	जंबू० प० २-६
एक्कं च ठिदिविसेसं ‡	कसायपा० १५५ (१०२)
एक्कं च ठिदिविसेसं ‡	कसायपा० १५६ (१०३)
एक्कं च ठिदिविसेसं	लद्धिसा० ४०१
एक्कं च तिण्णि तिण्णि य	जंबू० प० ११-४१
एक्कं च तिण्णि पंच य	गो० क० ७६३
एक्कं च तिण्णि सत्त य	जंबू० प० ११-१७७
एक्कं च दोण्णि तिण्णि य	समय० ६५
एक्कं च दो व चत्तारि	पंचसं० ५-२८
एक्कं च दो व चत्तारि	पंचसं० ५-२६६
एक्कं चयदि सरीरं	कत्ति० अणु० ३२
एक्क च सयसहस्सं	तिलो० प० ७-५०६
एक्कं चिय होदि सयं	तिलो० प० ४-२०४६
एक्कं चेव सहस्सा	तिलो० प० ४-११२६
एक्कं चेव सहस्सा	तिलो० प० ४-११२६
एक्कं चेव सहस्सा	तिलो० प० ४-११३५
एक्कं छच्चउअट्ठा	तिलो० प० ४-३८५
एक्कं छण्णवणभए-	तिलो० प० ४-२५६३
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ४-१७३७
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ४-१७५१
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ४-२५८६
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ४-२६०४
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ७-१५१
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ७-१५४
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ७-१५५
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ७-१५६
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ७-१८१
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ७-२४१
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ७-२६७
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ८-८१
एक्कं जोयणलक्खं	तिलो० प० ८-४४१
एक्कं जोयणलक्खा	तिलो० प० २-१५५
एक्कंततेरसादी	तिलो० प० २-३६
एक्कं तालं चउगुणि-	तिलो० प० ४-८६
एक्कं तालं लक्खा	तिलो० प० ४-२८२६
एक्कं तु उडुविमाणं	जंबू० प० ११-१६४
एक्कं पंडिदमरणं	मूला० ७७
एक्कं पि अक्खरं जो	भ० आरा० ६२
एक्क पि णिरारंभं	कत्ति० अणु० ३७७
एक्कं पि वयं विमलं	कत्ति० अणु० ३७०
एक्कं पि साहुदाणं	जंबू० प० ११-३५७
एक्क (एक) पुण संतिणामो	भावसं० १४१
एक्कं लक्खं चउसय-	तिलो० प० ७-१५७
एक्कं लक्खं णवजुद-	तिलो० प० ७-३७८
एक्कं लक्खं पण्णा-	तिलो० प० ७-२४०
एक्कं व दो व तिण्णि य	भ० आरा० ४०२
एक्कं व दो व तिण्णि व	गो० क० ५८४
एक्कं वाससहस्सं	तिलो० प० ४-१२६८
एक्कं समयजहण्णं	तिलो० प० ४-२६५४
एक्कं समयपबद्धं	गो० जी० २५३
एक्कंहि(म्हि)य अणुभागे	कसायपा० ६६ (१३)
एक्काई पणयंतं	पंचसं० ४-२४८
एक्काउस्स तिभंगा	गो० क० ६४५
एक्का कोडी एक्कं	तिलो० प० ८-२३६
एक्काणवदिसयाइं	तिलो० प० ४-१११७

एगवराडयकागिणि-	छेदपिं० ६१
एगविहो खलु लोओ	मूला० ७११
एगसमयप्पबद्धा	कसायपा० १६६ (१४६)
एगसमयप्पबद्धा	कसायपा० १६४ (१४१)
एगसमयम्मि एगद-	सम्मइ० ३–४१
एगसहस्सं अट्ठुत्त-	जवू० प० १०–१२
एगसहस्सं णवसद-	पचस० ५–३५२
एगं णिसण्णादी सदु	छेदपिं० १४८
एगंत णिव्विसेसं	सम्मइ० ३–२
एगतं मग्गंतं	मूला० ७८६
एगंता सालोगा	भ० आरा० १६६८
एगं तिण्णि य सत्तं	तिलो० प० २–२०३
एगते अचित्ते	मूला० १५
एगतेण हि देहो	पवयणसा० १–६६
एगंते सुहदेसे	रिट्ठस० १६४
एग पंडियमरणं	मूला० ११७
एग वा णउदिं च य	जवू० प० ७–६
एग सगय तच्चं	तच्चसा० ३
एगं सुहुमसरागो	पंचस० ५–३०६
एगादिगिहपमाण	कत्ति० अणु० ४४३
एगादि बिउत्तरिया	तिलो० सा० ५६
एगाहि वेहि तीहि य	जवू० प० १३–३७
एगुणतीसत्तिदयं	गो० क० ६६८
एगुत्तरणवयसया	जवू० प० ३-२६
एगुत्तरमेगादी-	पवयणसा० २–७२
एगुत्तरसेढीए	भ० आरा० २१२
एगुरुगा लंगलिगा	तिलो० सा० ६१६
एगुववासो छट्ठं	छेदपिं ६८
एगे इगिवीसपणं	गो० क० ५६५
एगेगअट्ठवीसा	जंवू० प० १२–८६
एगेगकमलकुसुमे	जवू० प० ४–२५६
एगेगकमलकुसुमे	जंवू० प० ४–२५७
एगेगकमलरुडे	जंवू० प० ४–२५४
एगेगमट्ठ एगे-	गो० क० ६६४
एगेगमट्ठ एगे-	पचसं० ५–३६५
एगेगम्मि य गच्छे	जवू० प० ४–२५५
एगेगसिलापट्टे	जवू० प० ४–१४१
एगेगं इगितीसे	गो० क० ७४१
एगेगं इगितीसे	पचस० ५–२४६
एगे वियले सयले	गो० क० ७११

एगो जइ णिज्जवओ	भ० आरा० ६७४
एगो मे सस्सदो अप्पा *	भावपा० ५६
एगो मे सस्सदो अप्पा *	मूला० ४८
एगो मे सासदो अप्पा *	णियमसा० १०२
एगो य मरदि जीवो	णियमसा० १०१
एगोरुगवेसाणिग-	जंवू० प० ११–५१
एगोरुगा गुहाए	तिलो० सा० ६२०
एगोरुगा गुहासुं	जवू० प० १०–५८
एगोरुगा य णंगो	जंवू० प० १०–५३
एगो वि अणंताणं	भावस० ६६३
एगो संथारगदो	भ० आरा० ५१६
ए ठाणई एयारसई	सावय० दो० १८
एण थोत्थेण जो पंचगुरु वंदए	पंचगु० भ० ६
एण विहाणेण फुडं	भावसं० ४८२
एण्हं पि जदि ममत्तिं	भ० आरा० १६६८
एत्तियपमाणकालं	वसु० सा० १७५
एत्तियमेत्तपमाणं	तिलो० प० ७–५७६
एत्तियमेत्तविसेसं	तिलो० प० ४–४००
एत्तियमेत्तविसेस	तिलो० प० ४–४०८
एत्तियमेत्ता दु परं	तिलो० प० ७–४४८
एत्तूणपेसणाइ	तिलो० प० ४–६६७
एत्तो अपुव्वकरणो	मूला० ११६६
एत्तो अवसेसासं-	कसायपा० ३४
एत्तो उवरिं विरदे	लद्धिसा० १८६
एत्तो करेदि किट्टिं	लद्धिसा० ६३१
एत्तो चउचउहीण	तिलो० प० १–२७६
एत्तो जाव अणंतं	तिलो० प० ४–५८५
एत्तो दलरज्जूण	तिलो० प० १–२१३
एत्तो दिवायराणं	तिलो० प० ७–४२२
एत्तो पदर कवाड	लद्धिसा० ६२३
एत्तो वासरपहुणो	तिलो० प० ७–२६२
एत्तो समऊणावलि-	लद्धिसा० ५७
एत्तो सलायपुरिसा	तिलो० प० ४–५०६
एत्तो सुहुमतो त्ति य	लद्धिसा० ५६२
एत्थ इमं पणुवीसं	पचसं० ५–८४
एत्थ पमत्तो आऊ-	पचसं० ४–२२७
एत्थ मुदा णिरयदुगं	तिलो० सा० ८६३
एत्थ विभंगवियप्पा	पचस० ५–१४७
एत्थं णिरयगईए	पचस० ४–२६३
एत्थ मिस्सं वज्जं	पंचस० ३–७

एदाणं विच्चाले	तिलो० प० ८-४२७
एदाणं वित्थारा	तिलो० प० ८-३७२
एदाणं सेढीओ	तिलो० प० ८-३५१
एदाणं मेलाणं	तिलो० प० ४-२५५६
एदाणि चेव सुहुमस्स	पंचसं० ५-४१०
एदाणि णत्थि जेसिं	समय० २७०
एदाणि पंच दव्वाणि	पवयणसा०२-४३से०२(ज.)
एदाणि पुव्वबद्धाणि	कसायपा० १६३(१४०)
एदाणि य पत्तेक्कं	तिलो० प० १-१६६
एदाणि रिक्खाणं	तिलो० प० ७-४६३
एदारिसम्मि थेरे	भ० आरा० ६२६
एदारिसे सरीरे	मूला० ८५०
एदासिं भासाणं	तिलो० प० १-६२
एदासु फलं कमसो	भ० आरा० १६७३
एदासुं भासासुं	तिलो० प० ४-६००
एदाहिं भावणाहिं दु *	मूला० ३४३
एदाहि भावणाहिं दु *	भ० आरा० १८५
एदाहि भावणाहिं हु *	भ० आरा० १२१३
एदाहिं सदा जुत्तो +	भ० आरा० १२००
एदाहिं सया जुत्तो +	मूला० ३२६
एदि मघा मज्झण्हे	तिलो० प० ७-४६४
एदे अचेदणा खलु	समय० १११
एदे अट्ठ सुरिंदा	तिलो० प० ३-१४२
एदे अण्णे बहुगा	मूला० ५००
एदे अत्थे सम्मं	भ० आरा० १०६६
एदे अवरविदेहे	तिलो० प० ४-२२१२
एदे इंदियतुरया	मूला० ८७६
एदे उक्कस्साऊ	तिलो० प० ५-२८३
एदे एक्कत्तीसा	जंबू० प० ११-२११
एदे कारणभूदा	वसु० सा० २२
एदे कालागासा	पंचत्थि० १०२
एदे कुलदेवाइ य	तिलो० प० ६-१७
एदे खलु मूलगुणा	पवयणसा० ३-६
एदे गणधरदेवा	तिलो० प० ४-६६५
एदे गयदंतगिरी	तिलो० प० ४-२०१०
एदे गुणा महल्ला	भ० आरा० ३२६
एदे गोउरदारा	तिलो० प० ४-७३४
एदे चउदस मणुवो	तिलो० प० ४-५०३
एदे छद्दव्वाणि य	णियमसा० ३४
एदे छप्पासादा	तिलो० प० ५-२०५
एदे जिणिंदे भरहम्मि खेत्ते	तिलो०प० ४-५५०
एदे जीवणिकाया	पंचत्थि० ११२
एदे जीवणिकाया	पंचत्थि० १२०
एदेण अंतरेण दु	कसायपा० २०३(१५०)
एदेण कारणेण दु	समय० १७६
एदे(ए) ण कारणेण दु	समय० ८२
एदेण कारणेण दु	गो० क० २७५
एदेण कारणेण य	जंबू० प० ३-१२६
एदेण गुणिदसंखेज्ज-	तिलो० प० ७-२४
एदेण चेव भणिदो	भ० आरा० २१५५
एदेण दु सो कत्ता	समय० ६७
एदेण पयारेणं	तिलो० प० १-१४८
एदेणप्पा बहुगवि-	लद्धिसा० ५८६
एदे णव पडिसत्तू	तिलो० प० ४-१४२१
एदेण सयलदोसा	दव्वस० णय० ४१२
एदेणं पल्लेणं	तिलो० प० १-१२८
एदेणेव पदिट्ठा-	भ० आरा० ११६६
एदे तिगुणियभजिदं	तिलो० प० ७-४१६
एदे तेसट्ठिणरा	तिलो० प० ४-१५६१
एदे दहप्पयारा	कत्ति० अणु० ४०८
एदे दोसा गणिणो	भ० आरा० ३६६
एदे पंच विमाणा	जंबू० प० ११-३३६
एदे पुण जहखादे	आस० ति० ५२
एदे बारस चक्की	तिलो० प० ४-१२८०
एदे भावा णियमा	गो० जी० १२
एदे महाणुभावा	वसु० सा० १३२
एदे मोहजभावा	कत्ति० अणु० ६४
एदे य अंतभासा-	सिद्धंत० ५२
एदे वि अट्ठकूडा	तिलो० प० ५-१५७
एदे विमाणपडला	जंबू० प० ११-३४१
एदे वेदगखइए	आस० ति० ५८
एदे सत्तट्ठाणा	गो० क० ३८६
एदे सत्ताणीया	तिलो० प० ८-२३६
एदे समचउरस्सा	तिलो० प० ४-७८६
एदे समयपबद्धा	कसायपा० १६८(१४५)
एदे सव्वे कूडा	तिलो० प० ४-१७३१
एदे सव्वे जीवा	कल्लाण० १५
एदे सव्वे देवा	तिलो० प० ३-१०६
एदे सव्वे देवा	तिलो० प० ४-२२२०

एयं वा पणकाये गो० क० ३०६
एयं सत्थ सव्वं तिलो० सा० ४४६
एयाइणा अविहला मूला० ७८७
एयाइं वयाइं णारो धम्मर० १४७
एयाए भावणाए भ० आरा० २०४
एयाओ देवाओ जंबू० प० ४-२६४
एयाणमवत्थाणं आय० ति० ३-१०
एयाण सम्मुहो जो आय० ति० ४-१४
एयाणं आयाणं आय० ति० १-३६
एयाण आयाणं आय० ति० १-३२
एयाणं पि हु मज्झे आय० ति० १६-२३
एयाणेयक्खेत्तट्ठि- गो० क० १८७
एयाणेयभवगदं * भ० आरा० १७१३
एया(आ)णेयभवगयं * मूला० ४०१
एयाणेयवियप्पप्प- कल्लाणा० ३८
एयादसेसु पढमं वसु० सा० ३१४
एयादीया गणणा तिलो० सा० १६
एया पडिवा बीया- वसु० सा० ३६८
एया य कोडिकोडी मूला० २२४
एया य कोडिकोडी गो० जी० ११६
एयार-जीवठाणे पंचसं० ५-२४५
एयारट्ठत्तीसा जंबू० प० ११-४०
एयारसट्ठ णव णव जंबू० प० ३-३६
एयारस-ठाण-ठिया वसु० सा० २२१
एयारस-ठाणाइं वसु० सा० ४
एयारस-दस-भेयं वा० अणु० ६८
एयारसम्मि ठाणे वसु० सा० ३०१
एयारसंगधारी भावस० १२२
एयारसंगधारी वसु० सा० ४७६
एयारसंगपयकय- अंगप० १-७७
एयारसंगसुदसा- जोगिभ० ८
एयारसुदसमुद्दे अंगप० ७५
एयारसेसु तिण्णि य पंचसं० ४-२०
एयारहविहु तं कहिउ सावय० दो० ६
एयारंगपयाणि य अंगप० १-७०
एयारंसोसरणे तिलो० सा० ६१६
एया वि सा समत्था भ० आरा० ७४६
एरावणमारूढो तिलो० प० ५-४८
एरावणो त्ति णामे- जंबू० प० ११-२८६
एरावदखिदिणिग्गद- तिलो० प० ४-२४७४

एरावदमणिकंचण- तिलो० सा० ७२६
एरावदम्मि उदआ तिलो० प० ७-४४२
एरावदविनओदद- तिलो० प० ४-२४७२
एरिस-उक्कट्ठिय परि- वसु० सा० ४७४
एरिसगुणअट्ठजुयं × भावसं० २८४
एरिसगुणअट्ठजुय × वसु० सा० ५६
एरिसगणेहिं सव्वं बोधपा० ३६
एरिसपत्तम्मि वरे भावस० ५१२
एरिसभेदब्भासे णियमसा० ८२
एरिसयभावणाए णियमसा० ७६
एला-तमाल-चंदण- जंबू० प० २-७८
एला-तमाल-वल्ली- तिलो० प० ४-१६४५
एला मरीचि-णिवहो जंबू० प० ४-४७
एलायरियस्स दिण्णए छेदपिं० २५१
एव मए सुदपवरा सुदभ० ११
एवमडसीदितिदए गो० क० ७०६
एवमणंतं ठाणं तिलो० सा० ८१
एवमणुद्धुददोसो भ० आरा० ५३७
एवमधक्खादविधि भ० आरा० १६२६
एवमधक्खादविधिं भ० आरा० २०६१
एवमबंधे बंधे गो० क० ६४४
एवमभिगम्म जीवं पंचत्थि० १२३
एवमलिये अदत्ते समय० २६३
एवमवलायमाणो भ० आरा० २३५
एवमवि दुल्लहपरं भ० आरा० ४३२
एवमसेसं खेत्तं तिलो० प० १-१४७
एवमिगवीसकक्की तिलो० प० ४-१५३२
एवमिह जो दु जीवो समय० ११४
एवमेव गओ कालो कल्लाणा० ५१
एव हिं लक्खण-लक्खियउ जोगसा० १०६
एवं अट्ठ वि जामे भ० आरा० २०५३
एवं अट्ठवियप्पा तिलो० प० १-२५०
एवं अणंतखुत्तो तिलो० प० ४-६१८
एवं अणाइकालं कत्ति० अणु० ७२
एवं अणाइकाले धम्मर० ६४
एवं अणेयभेयं तिलो० प० १-२६
एवं अधियासेंतो भ० आरा० १६८३
एवं अवसेसाणं तिलो० प० ४-८६
एवं अवसेसाणं जंबू० प० १-४५
एवं अवसेसाणं जंबू० प० ३-१४४

एवं रूववईओ	जंबू० प० ४-२६३
एवं लोयसहावं	कत्ति० अणु० २८३
एवं वट्टंताणं	भावस० १४९
एवं वरपंचगुरू	तिलो० प० १-६
एव ववहारणओ	समय० २७२
एवं ववहारस्स उ	समय० ३५३
एवं ववहारस्स दु	समय० ३६५
एवं वस्ससहस्से	तिलो० प० ४-१५१४
एवं वासारत्ते	भ० आरा० ६३१
एवं विउला बुद्धी	पंचस० १-१६२
एवं विचारयित्ता	भ० आरा० १५६
एवं विदिउगतीसं *	पंचसं० ४-२६६
एवं विदिउगतीसं *	पचस० ५-६२
एवं विदिदत्थो जो	पवयणसा० १-७८
एवंविधाणचरियं	मूला० १०१५
एवंविधिणुववण्णो	मूला० १६६
एवं विवाहकज्जे	आय० ति० १२-५
एवं विविहणएहिं	कत्ति० अणु० २७८
एवं विसग्गिभूदं	भ० आरा० ८८१
एवंविहपरिवारो	तिलो० प० ६-७७
एवंविहरूवाणि	तिलो० प० ६-२०
एवंविहरोगेहि य	रिट्ठस० ८
एवंविहसंकमणं	लद्धिसा० ७६
एवंविहं कहाणं	अंगप० ६७
एवंविहं तु भणिअं	रिट्ठस० ६७
एवंविहं पि देवं	कत्ति० अणु ८६
एवंविहं सहावे	पवयणसा० २-१६
एवंविहाणचरियं	मूला० १६६
एवंविहाणजुत्ते	मूला० ३६
एवंविहा बहुविहा	समय० ४३
एवंविहा य सद्दा	रिट्ठस० १८८
एवंविहिणा जुत्तं	भावस० ५२६
एवंविहु जो जिणु महइ	सावय० दो० १८०
एवं वेदड्ढेसु य	जंबू० प० २-७३
एवं सगसगविजया-	तिलो० प० ४-२८०५
एवं सच्छंददिट्ठीणं	अंगप० २-२६
एवं सत्तखिदीणं	तिलो० प० २-२१५
एवं सत्तट्ठाणं	गो० क० ३६५
एवं सत्त वि कच्छा	जंबू० प० ४-२३८
एवं सत्तवियप्पो	सम्मइ० १-४१
एवं सदि परिणामो	भ० आरा० १६१
एवं सदो विणासो	पंचत्थि० १९
एवं सदो विणासो	पंचत्थि० ५४
एवं सम्मं सद्दरस-	भ० आरा० १४१६
एवं सम्माइट्ठी	समय० २००
एवं सम्मादिट्ठी	समय० २४६
एवं सयंभुरमणं	तिलो० प० ५-३३
एवं सरीरसल्ले-	भ० आरा० २५६
एवं सलागभरणे	तिलो० सा० ३३
एवं सलागरासि	तिलो० सा० ४०
एवं सव्वत्थेसु वि	भ० आरा० १६६५
एवं सव्वपहेसुं	तिलो० प० ७-४१६
एवं सव्वपहेसुं	तिलो० प० ७-४५२
एवं सव्विंदाणं	तिलो० प० ८-२७२
एवं सव्वे देहम्मि	भ० आरा० १०३७
एवंमहिओ मुणिवर-	लिंगपा० १६
एवं संखुवएसं	समय० ३४०
एवं संखेज्जेसु ट्ठि-	लद्धिसा० २५५
एवं संखेवेण य	चारित्तपा० ४३
एवं संखेवेणं	तिलो० प० ४-१६३४
एवं संखेवेणं	तिलो० प० ४-१६८५
एवं संखेवेणं	तिलो० प० ४-१६६८
एवं संखेवेणं	तिलो० प० ४-२७१४
एव संजमरासिं	मूला० ८६०
एवं संथारगदस्स	भ० आरा० १४६३
एवं संथारगदो	भ० आरा० १६४६
एव सामरणेसुं	तिलो० प० ४-२६५०
एवं सामाचारो	मूला० १६७
एवं सारिज्जंतो	भ० आरा० १५०८
एवं सावयधम्मं	चारित्तपा० २६
एव सा वि य पुण्णा	तिलो० सा० ३४
एवं सिय परिणामी	दव्वस० णय० ६४
एवं सीलगुणाणं	मूला० १०४१
एवं सुट्ठ असारे	कत्ति० अणु० ६२
एवं सुभाविदप्पा	भ० आरा० १६२४
एवं सुभाविदप्पा	भ० आरा० १६६१
एवं सेसतिठाणे	तिलो० सा० ८६४
एवं सेसपहेसुं	तिलो० प० ७-३६५
एवं सेसिंदियदं-	सम्मइ० २-२४
एवं सोऊण तओ	वसु० सा० १४५

ओ

क

कंचणणिहस्स तस्स य	तिलो० प० ४–४८३
कंचणदंडुत्तुंगा	जंबू० प० ४–२३
कंचणपवालमरगय-	जंबू० प० १–३४
कंचणपायारजुदा	जंबू० प० ८–७२
कंचणपायारजुदा	जंबू० प० ६–१६२
कंचणपायारत्तय-	तिलो० प० ४–१४३
कंचणपायाराणं	तिलो० प० ५–१८३
कंचणपासादजुदा	जंबू० प० ८–१०८
कंचणपासादजुदा	जंबू० प० ८–१६७
कंचणमओ विमालो	जंबू० प० ६–२२
कंचणमओ सुतुंगो	जंबू० प० ८–१४७
कंचणमणिपरिणामो	जंबू० प० १३–११०
कंचण-मणि-पायारा	जंबू० प० २–६०
कंचणमणिरयणमया	जंबू० प० ५–३५
कंचणमणिरयणमया	जंबू० प० ६–१०४
कंचणमणिरयणमया	जंबू० प० ११–२४६
कंचणमयाणि खंडप्प-	तिलो० सा० ७३५
कंचणमरगयविद्दुम-	जंबू० प० ८–१५३
कंचण-रूप्प-दवाणं	पंचसं० ३–२
कंचणवेदीसहिदा	तिलो० प० ४–१४२
कंचणवेदीहिं जुदा	जंबू० प० ६–१२४
कंचणसमाणवण्णो	तिलो० प० ४–४०
कंचणसोवाणजुदा	जंबू० प० ८–१६
कंचणसोवाणाओ	तिलो० प० ४–२३११
कंटकसल्लेण जहा	भ० आरा० ४६५
कंटय कलिं च पासा-	छेदपिं० २१०
कंटयखण्णुयपडिणिय-	मूला० १५२
कंटयसक्करपहुदिं	तिलो० प० ४–६०६
कंठगदेहिं वि पाणे-	भ० आरा० १५१
कंठाणं वेदंतो	कसायपा० ८४(३१)
कंठुद्धेण हुसासो	णाणसा० २६
कंडणी पीसणी चुल्ली	मूला० ९२६
कंडयगुणचरिमठिदी	लद्धिसा० ५८४
कंतेहि कोमलेहि य	जंबू० प० ४–२६२
कंदप्पकिल्विसासुर-	वसु० सा० १६३
कंदप्पकुक्कुआइय-	भ० आरा० १८०
कंदप्पदप्पदलणो	णाणसा० ४
कंदप्पदेवकिब्बिस-	भ० आरा० १७६
कंदप्पभावणाए	भ० आरा० १६५६
कंदप्पमाइयाओ	भावपा० १३
कंदप्पमाभिजोग्गा	मूला० ११३३
कंदप्पमाभिजोग्गं	मूला० ६३
कंदप्प राजराजा	तिलो० प० ८–२६०
कंदप्पाइय वट्टइ	लिंगपा० १२
कंदफलमूलबीया	कल्लाणा० २०
कंदरपुलिणगुहादिसु	मूला० १३४
कंदरविवरदरीसु वि	जंबू० प० ११–१६५
कंदस्स व मूलस्स व	गो० जी० १८८
कंदं मूलं बीयं	भावपा० १०१
कंदा मूला छल्ली	मूला० २१४
कंदा य रिट्ठरयणं	तिलो० प० ४–१६६६
कंपिल्लपुरे विमलो	तिलो० प० ४–५३७
कंबलि वत्थं दुद्धिय	भावसं० ११७
कसकसरे वहुपयं	आय० ति० १८–८
काइयमादी सव्वं	भ० आरा० ६६५
काइय-वाइय-माणसि- ×	मूला० ३०२
काइय-वाइय माणसि- ×	भ० आरा० ११८
काइय-वाइय-माणसि-	भ० आरा० ५३१
काइदि (काकंदि) अभयघोसो	भ० आरा० १५५०
काइँ वहुत्तइँ जंपियइँ	सावय० दो० १०४
काइँ वहुत्तइँ संपयइँ	सावय० दो० ८६
काइँ वि खीराइँ जण	धम्मर० १०
काउस्सग्गणिजुत्ती	मूला० ६८३
काउस्सग्गम्हि ठिओ	वसु० सा० २७६
काउस्सग्गं मोक्खपह-	मूला० ६५२
काउस्सग्गुववासा	छेदपि १५
काउस्सग्गे सुज्झदि	छेदस० ३४
काउस्सग्गो आलो-	छेदपिं० ८४
काउस्सग्गो काउस्स	मूला० ६४६
काउस्सग्गो खमणं	छेदपिं० २६२
काउस्सग्गो दाणं	छेदपिं० ३३०
काऊ काऊ काऊ	गो० जी० ५२८
काऊ काऊ तह का-	मूला० ११३४
काऊ काऊ तह का-	पंचसं० १–१८५
काऊण अट्ठ एय	वसु० सा० ३७३
काऊण अंगसोही	रिट्ठस० १०६
काऊण करणलद्धी	दव्वस० णय० ३१४
काऊण णाणरूवं	परम० प० २–१११
काऊण णमुक्कारं	दसणपा० १
काऊण णमोक्कारं	मूला० ५०२

काऊण णमोक्कारं	मूला० १०४२
काऊण णमोक्कारं	लिंगपा० १
काऊण तवं घोरं	वसु० सा० ५११
काऊण दिव्वपूजं	तिलो० प० ३-२३०
काऊण पमत्तेयर-	वसु० सा० ५१७
काऊण य किदियम्मं	मूला० ६१८
काऊण य किरि (दि) यम्म	भ० आरा० ५६१
काऊण य जिणपूया	छेदस० ८८
काऊणाउसमाइ	भ० आरा० २११६
काऊणाणंतचउट्ठ-	वसु० सा० ४५६
काऊ णीलं किण्हं	गो० जी० ५०१
काऊणुज्जवणं पुण	वसु० सा० ३६४
काएसु णिरारंभे	भ० आरा० ८१६
काए हिंसा तुच्छा	ढाढसी० ५
काओसग्गम्हि कदे	मूला० ६६६
काओसग्गम्हि ठिदो	मूला० ६६४
काओसग्गं इरिया-	मूला० ६६२
कागादिअंतराए	छेदपिं० ६४
कागादिअंतराए	छेदस० ४०
कागा मेज्झा छद्दी	मूला० ४६५
काणणवणजुत्ताणि य	जंबू० प० ८-५३
काणि वा पुव्वबंधा-	कसायपा० १२१(६८)
कादूण चलह तुम्हो	तिलो० प० ४-४८६
कादूण दहे ण्हाणं	तिलो० प० ८-५७६
कादूण दाररक्खं	तिलो० प० ४-१३३३
कादूणमंतरायं	तिलो० प० ४-१५२६
का देवदुग्गईओ	मूला० ६२
कामकदा इत्थिकदा	भ० आरा० ८८२
कामकहइ परिचत्तियइँ	सावय० दो० ४५
कामग्गिणा धगधगं-	भ० आरा० ६३७
कामग्गितत्तचित्तो	धम्मर० १०४
कामग्घत्थो पुरिसो	भ० आरा० ६०४
कामदुहा वरधेणू	भ० आरा० १४६५
कामदुहिं कप्पतरुं	रयणसा० ५४
कामपिसायग्गहिदो	भ० आरा० ६००
कामप्पुण्णो पुरिसो	तिलो० प० ४-६२६
कामभुजगेण दट्ठा	भ० आरा० ८६१
कामंधो मयमत्तो	णाणसा० ४६
कामातुरस्स गच्छदि	तिलो० प० ४-६२७
कामादुरस्स गच्छदि	भ० आरा० ८८६
कामादुरो णरो पुण	भ० आरा० ८८६
कामा दुवे तऊ भो-	मूला० ११३८
कामी सुसंजदाण वि	भ० आरा० ६०२
कामुम्मत्तो पुरिसो	तिलो० प० ४-६२८
कामुम्मत्तो महिलं	भ० आरा० ६२३
कामुम्मत्तो संतो	भ० आरा० ८८८
कामो रागणिदाणं	कसायपा० ८६(३६)
कायकिरियाणियत्ती *	णियमसा० ७०
कायकिरियाणियत्ती *	भ० आरा० ११८८
कायकिरियाणियत्ती *	मूला० ३३३
कायकिलेसुववासं	रयणसा० ८६
कायकिलेसें परतणु भिज्जइ	प०प०२-३६क्षे०१(बा०)
कायगुरूवं मद्दण-	वसु० सा० ३२६
काय-मण-वयणकिरिया-	सम्मइ० ३-४२
कायमलमत्थुलिंग	मूला० ८४७
कायव्वमिणमकायव्व-	भ० आरा० ६
कायाई परदव्वे	णियमसा० १२१
कायेण च वाया वा	समय० २६७ क्षे० २२ (ज०)
कायेण दुक्खवेमिय	समय० २६७ क्षे० १८ (ज०)
कायेंदियगुणमग्गण-	मूला० ५
कारणकज्जविभाग	आरा० सा० १३
कारणकज्जविसेसा	कत्ति० अणु० २२३
कारणकज्जसहाव	दव्वस० णय० ३५८
कारणणिरवेक्खभवो	भावति० २३
कारणदो इह भव्वे	दव्वस० णय० १२६
कारण-विरहिउ सुद्ध-जिउ	परम० प० १-४४
कारणु कज्जे वियाणहु	ढाढसी० ११
कारावगिंदपडिमा-	वसु० सा० ३८६
कारी होइ अकारी	भ० आरा० १८०६
कारुगगिहण्णपाण	छेदपि० ३३८
कारुयकिरायचंडा-	वसु० सा० ८८
कारुयपत्तम्मि पुणो	छेदस० ८५
कारेवि खीरभुज्जं	रिट्ठस० १४६
कालगदा वि य सता	जंबू० प० ३-२३६
कालग्गिरुद्दणामा	तिलो० प० ४-३४३
कालत्तयसंभूदं	तिलो० प० ४-१०१०
कालप्पमुहा णाणा-	तिलो० प० ४-१२८३
कालमणंतमधम्मो-	भ० आरा० २१३६
कालमणंतं जीवो	आरा० सा० ८६
कालमणंतं जीवो	रयणसा०

कालमणंतं जीवो	भावपा० ३४
कालमणंतं णीचा-	भ० आरा० १२३०
कालमहकालपउमा	तिलो० सा० ६६२
कालमहकालमाणव-	तिलो० सा० ८२१
कालमहकालपङ्क-	तिलो० प० ४-७३७
कालमहकालपंडू-	तिलो० प० ४-१३८१
कालम्मि असंपहुत्ते	छेदपिं० २५६
कालम्मि सुसमणामे	तिलो० प० ४-४०१
कालम्मि सुसमसुसमे	तिलो० प० ४-३६३
कालयडो दहिवयणे	रिट्ठस० १७४
कालविकालो लोहिद-	तिलो० सा० २६२
कालविसेसा णट्टं	अंगप० ३-४८
कालविसेसेणवहिद-	गो० जी० ४०७
कालसमुद्दस्स तहा	जबू० प० ११-५६
कालसमुद्दप्पहुदी	जबू० प० ११-४४
कालसहावबलेणं	तिलो० प० ४-१६०१
कालस्स दो वियप्पा	तिलो० प० ४-२७६
कालस्स भिण्णभिण्णा	तिलो० प० ४-२८३
कालस्स य अणुरूवं	भावस० ५१३
कालस्स वट्टणा से	पवयणसा० २-४२
कालस्स विकारादो	तिलो० प० ४-४८५
कालस्स विकारादो	तिलो० प० ४-४७६
कालहिं पवणहिं रविससिहिं	पाहु० दो० २१६
कालं अस्सिय दव्वं	गो० जी० ५७०
कालं काउं कोई	भावस० ६५८
कालं संभाविचा	भ० आरा० २७३
कालाइलद्धिजुत्ता	कत्ति० अणु० २१६
कालाइलद्धिणियडा	तच्चसा० १२
कालाई लहिऊणं	आरा० सा० १०७
कालागुरुगंधड्ढा	जबू० प० ३-५४
कालागुरुगंधड्ढा	जबू० प० ११-६३
कालायरुणहचंदह-	वसु० सा० ४३८
काला सामलवण्णा	तिलो० प० ६-५६
कालु अणाइ अणाइ जिउ	परम० प० २-१४३
कालु अणाइ अणाइ जिउ	जोगसा० ४
कालु मुणिज्जहि दव्वु तुहुँ	परम० प० २-२१
कालु लहेविणु जोइया	परम० प० १-८५
कालुस्स-मोह-सण्णा-	णियमसा० ६६
काले चउण्ण उड्ढी	गो० जी० ४११
कालेण उवाएण य *	मूला० २४६
कालेण उवाएण य *	भ० आरा० १८४८
कालेण उवाएण य *	भावसं० ३४५
काले विणए उवधा- +	भ० आरा० ११३
काले विणए उवहा- +	मूला० ३६७
काले विणए उवहा- +	मूला० २६६
कालेसु जिणवराणं	तिलो० प० ४-१४७०
कालो छल्लेस्साणं	गो० जी० ५५०
कालो णाणं ण हवइ	समय० ४००
कालो त्ति य ववदेसो	पंचत्थि० १०१
कालोदगोवहीदो	तिलो० प० ५-२६६
कालोदयणगरीदो	तिलो० प० ४-२७४५
कालोवहिबहुमज्झे	तिलो० प० ४-२७३८
कालो परमणिरुद्धो	जंबू० प० १३-४
कालो परिणामभवो	पंचत्थि० १००
कालो रोरवणामो	तिलो० प० २-५३
कालो वि य ववएसो	गो० जी० ५७६
कालो सव्वं जणयदि	गो० क० ८७६
कालो सहावणियई	सम्मइ० ३-५३
कावलिय अण्णपाणे	छेदपिं० ३३६
का वि अपुव्वा दीसदि	कत्ति० अणु० २११
काविट्ठ उवरिमते	तिलो० प० १-२०५
काविट्ठो वि य इंदो	जंबू० प० ५-१००
कासु समाहि करउँ को अचउँ	पाहु० दो० १३६
कासु समाहि करउँ को अंचउँ	जोगसा० ३६
किकवाउगिद्धवायस-	वसु० सा० १६६
किच्चा अरहंताणं	पवयणसा० १-४
किच्चा काउस्सग्गं	सिद्धभ० १०
किच्चा काउस्सग्गं	भावस० ४७६
किच्चा देसपमाणं	कत्ति० अणु० ३५७
किच्चा परस्स णिंदं	भ० आरा० ३७१
किट्टिगजोगी झाणं	लद्धिसा० ६२६
किट्टिय-ठिदि आदि महा-	कसायपा० १७८(१२५)
किट्टिं सुहुमादीदो	लद्धिसा० २६६
किट्टी कदम्मि कम्मे	कसायपा० २०४(१५१)
किट्टी कदम्मि कम्मे	कसायपा० २०५(१५२)
किट्टी कदम्मि कम्मे	कसायपा० २०६(१५३)
किट्टी कदम्मि कम्मे	कसायपा० २०७(१५४)
किट्टी कदम्मि कम्मे	कसायपा० २१३(१६०)
किट्टी कयवीचारे	कसायपा० ६
किट्टीकरणद्धहिया	लद्धिसा० ३६६

कुंडं दीवा सेला	तिलो० प० ४–२६१
कुंडाण तह समीवे	जंबू० प० ७–२१
कुंडाणं णायव्वा	जंबू० प० ७–६०
कुंडाणं णिद्दिट्टा	जंबू० प० १–६४
कुंडादो दक्खिणदो	तिलो० सा० ५६१
कुंडेहि णिग्गदाओ	जंबू० प० ७–६५
कुंतेहिं कोमलेहि य	जंबू० प० ४–२६६
कुंथुचउक्के कमसो	तिलो० प० ४–१२२६
कुंथुजिणिंदं पणमिय	जंबू० प० १०–१
कुंथुपिपीलियमंकुण-	पचसं० १–७१
कुंथुं च जिणवरिंदं	थोस्सा० ५
कुंथुंभरिदलमेत्त	वसु० सा० ४८१
कुंदेंदुसंखधवला	तिलो० प० ४–८०
कुंदेंदुसखवण्णा	जंबू० प० ३–५६
कुंदेंदुसंखवण्णो	जंबू० प० ७–८०
कुंदेंदुसंखसण्णिह-	जंबू० प० ८–१६३
कुंदेंदुसंखहिमचय-	जंबू० प० ३–११६
कुंदेंदुसुंदरेहिं	तिलो० प० ५–१०६
कुंभंड-जक्ख-रक्खस- ×	तिलो० प० ६–४८
कुंभंड-रक्ख-जक्खा ×	तिलो० सा० २७१
कुंभीपाएसु तुमं	भ० आरा० १५७३
कुंभीपागेसु पुणो	धम्मर० ५६
कुंभो ण जीवदवियं	सम्मइ० ३–३७
कूडतुलामाणाइयहँ	सावय० दो० १६२
कूडम्मि य वेसमणो	तिलो० प० ४–१७०
कूडहिरण्णं जह णिच्छ-	भ० आरा० ६००
कूडागारा महरिह-	तिलो० प० ४–१६६६
कूडा जिणिंदभवणा	तिलो० प० ६–२०
कूडा जिणिंदभवणा	तिलो० प० ६–२४
कूडाण उवरिभागे	तिलो० प० ४–१६७१
कूडाण उवरिभागे	तिलो० प० ६–१२
कूडाण समंतादो	तिलो० प० ३–४६
कूडाणं उच्छेहो	तिलो० प० ४–१४६
कूडाणं ताइच्चिय	तिलो० प० ५–१३१
कूडा णंदावत्तो	तिलो० प० ५–१६६
कूडाणं मूलोवरि	तिलो० प० ४–१६७
कूडाणि गंधमादण-	तिलो० प० ४–२०५५
कूडा सामलिरुक्खा	तिलो० सा० १८७
कूडेसु होंति दिव्वा	जंबू० प० २–५६
कूडेसुं देवीओ	तिलो० प० ४–१६७४
कूडोवरि पत्तेक्कं	तिलो० प० ३–४३
कूडो सिद्धो णिसहं	तिलो० प० ४–१७५६
के अंसे झीयदे पुव्वं	कसायपा० १२२(६६)
केइ पडिवोहणेण य	तिलो० प० ५–२०७
केइ पडिवोहणेणं	तिलो० प० ४–२६५२
केई कुंकुमवण्णा	जंबू० प० २–८४
केई गय-सीह-मुहा	भावसं० ५३८
केई गहिदा इंदिय-	भ० आरा० १२६६
केई देवाहिंतो	तिलो० प० २–३६०
केई पुण आयरिया	छेदस० ७६
केई पुण गय-तुरया	भावसं० ५४४
केई पुण दिवलोए	भावसं० ५४५
केई भणंति जइया	सम्मइ० २–४
केई विमुत्तसंगा	भ० आरा० १५३७
केई समवसरणया	भावसं० ५६५
के कदमाए ठिदीए	कसायपा० ६०(७)
केचिय तु अणावण्णा	पंचत्थि० ३२
के चिरमुवसामिज्जदि	कसायपा० ११४ (६१)
केण वि अप्पउ वंचियउ	परम० प० २–६०
केदूखीरसघरसव-	तिलो० सा० ३७०
केदूण विसं पुरिसो	भ० आरा० ५६५
केलास वारुणीपुरि	तिलो० सा० ७०२
केव चिर उवजोगो	कसायपा० ६३ (१०)
केवडिया उवजुत्ता	कसायपा० ६७ (१४)
केवडिया किट्टीओ	कसायपा० १६२ (१०६)
केवलकप्पं लोगं	भ० आरा० १६२७
केवलजुयले मणवचि-	पचस० ४–४८
केवलणाणतिणेत्तं	तिलो० प० १–२८३
केवलणाणदिणेसं	तिलो० प० ६–६८
केवलणाणदिवायर-	तिलो० प० १–३३
केवलणाणदिवायर- ×	गो० जी० ६३
केवलणाणदिवायर- ×	पचसं० १–२७
केवलणाणमणंतं	सम्मइ० २–१८
केवलणाणम्मि तहा	पचस० ४–३१
केवलणाणवणप्फइ कंदं	तिलो० प० ४–५५१
केवलणाणसहाउ सो	जोगसा० ३६
केवलणाणसहावो +	णियमसा० ६६
केवलणाणसहावो +	तिलो० प० ६–४८
केवलणाणसहावो	कत्ति० अणु० ४८४
केवलणाणस्सट्ठं	तिलो० सा० ५७

खंधं सयलसमत्थं +	पंचत्थि० ७५
खंधा असंखलोगा	गो० जी० ६६३
खंधा जे पुव्वुत्ता	दव्वस० णय० १२७
खंधा बादरसुहुमा	दव्वस० णय० १०३
खंधा य खंधदेसा	पंचत्थि० ७४
खंधेण वहंति णरं	भावसं० ५७१
खंभियपाविलमंखा (?)	तिलो० प० ४-१५८३
खभेसु होंति दिव्वा	जंबू० प० ५-५४
खाइय-अविरदसम्मे	गो० क० ८३१
खाइयखेत्ताणि तदो	तिलो० प० ४-७६३
खाइय-दंसण-चरणं	भ० आरा० १६१६
खाइयमसंजयाइसु	पचस० १-१६७
खाइयसम्मत्तेदे	भावति० १११
खाइयसम्मो देसो	गो० क० ३२६
खाई कगाइ एते	आय० ति० ६-१३
खाई पूजा लाहं	रयणसा० १३१
खाओवसमियभावो	गो० क० ८१७
खाओवसमियभावो	भावति० ७
खामेदि तुम्ह खवओ	भ० आरा० ७०५
खायंति साणसीहा-	धम्मर० ६१
खारो तित्तो तित्तो	आय० ति० ६-११
खित्ताइबाहिराणं	आरा० सा० ३०
खिदिजलमरुग्गिगयणं	णायसा० ५३
खिव तसदुग्गदिदुस्सर-	गो० क० ३०८
खीणकसाए णाणच-	भावति० ३६
खीणकसायदुचरिमे ※	गो० क० २७०
खीणकसायदुचरिमे ※	पंचसं० ५-४६०
खीणंता मज्झिल्ले	पंचसं० ४-५८
खीणे घादिचउक्के	लद्धिसा० ६०६
खीणे दंसणमोहे ×	गो० जी० ६४५
खीणे दंसणमोहे ×	पचसं० १-१६०
खीणे पुव्वणिवद्धे	पंचत्थि० ११६
खीणे मणसंचारे	आरा० सा० ७३
खीणेसु कसाएसु य	कसायपा० २३२(१७६)
खीणे त्ति चारि उदया-	गो० क० ४६१
खीर-दधि-सप्पि-तेल्लं	भ० आरा० २१५
खीर-दहि-सप्पि-तेल-गु-	मूला० ३५२
खीरद्धिसलिलपूरिद-	तिलो० प० ८-५८३
खीरवरणामदीवे	जंबू० प० १२-३६
खीरवरदीवपहुदी-	तिलो० प० ५-२७४

खीरवरे आदीए	जंबू० प० १२-२७
खीरसघस्सवजलके-	तिलो० प० ७-२२
खीराई जहा लोए	धम्मर० ६
खीरुवहि-सलिल-धारा-	वसु० सा० ४७५
खीरोद-समुद्दम्मि दु	जंबू० प० १२-२८
खी(खा)रोदा सीतोदा	तिलो० प० ४-२२१४
खीला पुण विण्णेया	जंबू० प० १२-१०३
खुब्भइं णाराए	लद्धिसा० १४
खुज्जा वामणरूवा	जंबू० प० २-१६४
खुट्टइ भाउ ण तसु महइ	सावय० दो० १८६
खुड्डा य खुड्डियाओ	भ० आरा० ३६४
खुड्डे थेरे सहे	भ० आरा० ३८८
खुद्दो कोही माणी	मूला० ६८
खुद्दो रुद्दो रुट्ठो	रयणसा० ४४
खुल्लहिमवंतकूडो	तिलो० प० ४-१६५६
खुल्लहिमवंतसिहरे	तिलो० प० ४-१६२६
खुल्लहिमवंतसेले	तिलो० प० ४-१६२४
खुल्ला-वराड-संखा	पंचसं० १-७०
खुहजिंभियाहि(भणेहिं)मणुया	जंबू० प० २-१५६
खेडेहिं मंडियो सो	जंबू० प० ८-५६
खेत्तजणिदं असादं	तिलो० सा० ३६७
खेत्तविसेसे काले	रयणसा० १७
खेत्तस्स वई णयरस्स	मूला० ३३४
खेत्तं दिवड्ढसयधणु-	तिलो० प० ३-१६३
खेत्तं पएसणामं	दव्वस० णय० ६४
खेत्तं वत्थु [य] धण[गद]	मूला० ४०८
खेत्तादिकला दुगुणा	जंबू० प० २-१५
खेत्तादिवड्ढि(ड्ढि)माणं	तिलो० प० ४-२६२७
खेत्तादीणं अंतिम-	तिलो० प० ४-२६२६
खेत्तादो असुहतिया	गो० जी० ५३७
खेमक्खा पणिधीए	तिलो० प० ७-२६७
खेमपुररायधाणी	जंबू० प० ८-११
खेमपुरी पणिधीए	तिलो० प० ७-२६८
खेमंकर चंदाभा	तिलो० प० ४-११६
खेमंकर चंदाहं	तिलो० सा० ७००
खेमंकरणाम मणू	तिलो० प० ४-४४१
खेमा खेमपुरी चेव	तिलो० सा० ७१२
खेमा णामा णयरी	तिलो० प० ४-२२६६
खेमादिसुरवणत्तं (?)	तिलो० प० ७-४४३
खेमापुराहिवइया	जंबू० प० ७-११०

ग

गगा-महाणदीए	तिलो० प० ४–२४५
गगा य राहिदासा	जंवू० प० ३–१६१
गगा-रोहिद-हारश्रो	तिलो० प० ४–२३७०
गंगा-सिंधु-णईण	तिलो० प० ४–२६६
गगा-सिंधु णदीणं	तिलो० प० ४–१५४५
गंगा-सिंधू-णामा	तिलो० प० ४–२२६४
गंगा-सिंधू-तोरण-	जंवू० प० ३–१७८
गगा-सिंधू वि तहा	जवू० प० ८–१७८
गंगा-सिंधू सरिया	जवू० प० २–६२
गंगा-सिंधू[हि] तहा	जंवू० प० ६–४८
गगा-सिंधूहि जुदो	जंवू० प० ८–१३२
गंगा-सिंधूहि तहा	जवू० प० ८–१०४
गगा-सिंधूहि तहा	जवू० प० ८–११४
गंगा-सिंधूहि तहा	जंवू० प० ६–६६
गगा-सिंधूहि तहा	जंवू० प० ६–१८
गगो सुधम्मुणामो	सुदर्खं० ७४
गंड महिसव-राहा	तिलो० प० ४–६०४
गतुं पुव्वाहिमुहं	तिलो० प० ४–१३०५
गतूण अण्णदेसे	छेदपि० २८०
गंतूण गुरुसमीव	वसु० सा० ३१०
गंतूण णंदणवणं	भ० आरा० १८३२
गतूण णीलगिरिंदो	जंवू० प० ६–२६
गतूण तदो अवरे	जवू० प० ८–१०२
गंतूण तदो पुव्वे	जवू० प० ८–२५
गंतूण तदो पुव्वे	जवू० प० ८–३८
गतूण तदो पुव्वे	जवू० प० ८–६३
गतूण थोवभूमी	तिलो० प० ४–२४३
गतूण दक्खिणमुहो	तिलो० प० ४–१३३०
गतूण दीव णिवडइ	जंवू० प० ७–११५
गतूण पच्छिमदिसे	जवू० प० ८–११३
गंतूण य णियगेहं	वसु० सा० २८६
गंतूण सभागेहं	वसु० सा० ५०४
गंतूणं लीलाए	तिलो० प० ४–१३०६
गंतूणं सा मज्भ	तिलो० प० ४–२३३७
गतूण सीदिजुदं	तिलो० प० ७–३६
गंथच्चाएण पुणो	भ० आरा० ११७४
गथच्चाओ इंदिय-	भ० आरा० ११६८
गंथच्चाओ लाघव-	भ० आरा० ८३
गथ-णिमित्तमदीदिय-	भ० आरा० ११२८
गंथणिमित्तं घोर-	भ० आरा० ११४०
गथत्थवित्थारो-	आय० ति० २३–११
गंथपडियाए लुद्धो	भ० आरा० ११४६
गंथमिण जो ण दिट्ठइ	रयणसा० १६६
गंथस्स गहण-रक्खण-	भ० आरा० ११६४
गंथहँ उप्परि परममुणि	परम० प० २–४६
गंथाडवी चरत	भ० आरा० १४०१
गंथाणियत्ततण्हा	भ० आरा० ११५४
गंथेसु घडिद-हिदओ	भ० आरा० ११६५
गंथोभयं णराणं	भ० आरा० ११२८
गंधड्ढकुसुममाला-	जवू० प० ४–२७५
गंधरसफासरूवा	समय० ६०
गंधव्व-णट्ट-जट्टस्स	भ० आरा० ६३३
गंधव्वणयर-णासे	तिलो० प० ४–६१०
गंधव्व-गीय-वाइय-	जंवू० प० ५–८८
गंधव्वाण अणीया	जवू० प० ४–२२१
गंधोएण जि जिणवरहँ	सावय० दो० १८२
गंधो णाणं ण हवइ	समय० ३६४
गंभीरो दुद्धरिसो	मूला० १५६
गंभीरो दुद्धरिसो	मूला० १८४
गाउअ-तिण्णि वि जाणासु	जंवू० प० १–२२
गाउअ-सय तह चउरो	जवू० प० १३–६०
गाउद-चउत्थभागो	जवू० प० १२–६७
गाउय आयामेण य	जंवू० प० २–५६
गाउय-दल-विक्खंभा	जवू० प० ६–१३२
गाउय-पुधत्तमवरं	गो० जी० ४५४
गाढप्पहारविद्धो	भ० आरा० १५५३
गाढप्पहारसंता-	भ० आरा० १५२६
गाढो वित्थारो वि य	तिलो० सा० ४६१
गाम-णयरादि सव्वं	तिलो० प० ४–३४०
गामं णगरं रण्णं	मूला० २६३
गामाण छण्णउदी	तिलो० प० ४–२२३४
गामाणुगामणिचिदो	जवू० प० ८–६८
गामादिआसयाणं	छेदस० ५६
गामादिसु पडिढाइ	मूला० ७
गामे णगरे रण्णे	मूला० २६१
गामे णयरे रण्णे	धम्मर० १४५
गामेयरादिवासी	मूला० ७८५
गामे वा णयरे वा	णियमसा० ५८
गायदि णच्चदि धावदि	भ० आरा० ६१७
गायंति अच्छराओ	धम्मर० १६३

गुणजीवा पज्जत्ती	तिलो० प० २–२७२
गुणजीवा पज्जत्ती	तिलो० प० ४–४१०
गुणजीवा पज्जत्ती	तिलो० प० ८–६६२
गुणठाणएसु अट्ठसु	पंचसं० ५–२६६
गुणठाण-मग्गणेहि य	बोधपा० ३१
गुणठाणादिसरूवं	तिलो० प० ८–४
गुणणिण्णत्तियसण्णा	सम्मइ० ३–१०
गुणतीसजोयणसदा-	मूला १०६३
गुणदो अणंतगुणहीं-	कसायपा० १५०(९७)
गुणदाधिगस्स विणय	पवयणसा० ३–६६
गुणधरगुणेसु रत्ता	तिलो० प० ४–३६६
गुणपच्चइगो छद्धा	गो० जी० ३७१
गुणपज्जयदो दव्वं	दव्वस० णय० ४१
गुण-पज्जयाण लक्खण-	दव्वस० णय० २८२
गुण-पज्जयादभिण्णो	अंगप० १–३८
गुण-पज्जायसहावा	दव्वस० णय० ६७
गुण-पज्जाया दवियं	दव्वस० णय० ८
गुणपरिणादासणं परि-	तिलो० प० १–२१
गुणपरिणामादीहिं	भ० आरा० ३२५
गुणपरिणामादीहिं	भ० आरा० ३२८
गुणपरिणामो जायइ	वसु० सा० ३४३
गुणपरिणामो सड्ढा	भ० आरा० ३०६
गुणभरिदं जदि णाव	भ० आरा० १४६५
गुणयारद्धच्छेदा	तिलो० सा० १०५
गुण-वय-तव-सम-पडिमा-	रयणसा० १५६
गुणवंतहँ सह संगु करि	सावय० दो० १४१
गुणवीसउत्तराणि	तिलो० प० ८–१८३
गुणसण्णिदा दु एदे	समय० ११२
गुणसद्दमंतरेणा-	सम्मइ० ३–१४
गुणसंकरणसरूवं	तिलो० प० ५–१६८
गुणसंजादप्पयडिं	गो० क० ६१२
गुणसेढि अणंतगुणा-	कसायपा० १६५ (११२)
गुणसेढिअणंतगुणे- ∴	कसायपा० १४६ (९३)
गुणसेढिअणंतगुणे- ∴	लद्धिसा० ४५१
गुणसेढिअसंखेज्जा +	कसायपा० १४६ (९६)
गुणसेढिअसंखेज्जा +	लद्धिसा० ४३६
गुणसेढि अंतरट्ठिदि	लद्धिसा० ५७६
गुणसेढिसखभागा	लद्धिसा० १३३
गुणसेढीए सीस	लद्धिसा० ८६
गुणसेढी गुणसंकम ×	लद्धिसा० ३७
गुणसेढी गुणसंकम ×	लद्धिसा० ३६०
गुणसेढी गुणसंकम	लद्धिसा० ३६४
गुणसेढी-गुणसंकम-	लद्धिसा० ५३
गुणसेढीदीहत्तम-	लद्धिसा० ५५
गुणसेढीदीहत्तं	लद्धिसा० ३६५
गुणसेढी सत्थेदर-	लद्धिसा० ३११
गुणहाणिअणंतगुणं	गो० क० ४३५
गुणाधिए उवज्झाए	मूला० ३६०
गुणिदूण दसेहि तदो	तिलो० प० ४–२५२०
गुणिय चउरादिखंडे	लद्धिसा० ५८१
गुत्तित्तयजुत्तस्स य	भावस० १०४
गुत्तिपरिखाइ गुत्तं	भ० आरा० १८४०
गुत्ति-मयं लेस्साणं	सुदखं० ७६
गुत्ता जोगणिरोहो	कत्ति० अणु० ९७
गुत्ती समिदी धम्मो	कत्ति० अणु० ९६
गुरुआरंभहँ णरयगइ	सावय० दो० १६१
गुरुदत्त-पंडवेहिं य	आरा० सा० ५०
गुरु दिणयरु गुरु हिमकरणु	पाहु० दो० १
गुरुदेवतच्चकारणु	ढाढसी० २४
गुरुपरिवादो सुदवो-	मूला० १५१
गुरुपुरओ किदियम्मं	वसु० सा० २८३
गुरुभत्तिविहीणाणं	रयणसा० ८२
गुरु-लघु(हु)देहपमाणो	दव्वस० णय० १२१
गुरु-साहम्मिय-दव्वं	मूला० १३८
गुलगुलंतेहिं तिवलेहिं	वसु० सा० ४१२
गूढसिरसंधिपव्व ∴	मूला० २१६
गूढसिरसंधिपव्वं ∴	गो० जी० १८६
गेण्हइ दव्वसहावं	दव्वस० णय० १६८
गेण्हइ वत्थुसहाव	दव्वस० णय० १६६
गेण्हइ विधुणइ धोवइ	पवयणसा०३-२०क्षे०५(ज)
गेण्हदि णेव ण मुंचदि	पवयणसा० २–९३
गेण्हदि णेव ण मुंचदि	पवयणसा० १–३२
गेण्हदि व चेलखंडं	पवयणसा०३–२०क्षे०३(ज)
गेण्हंते सम्मत्तं	तिलो० प० ८–६७७
गेरुय चंदण वव्वग	मूला २०६
गेरुय हरिदालेण व	मूला० ४७४
गेविज्जमणुद्दिसयं	तिलो० प० ८–११७
गेवेज्ज कण्णपूरा	तिलो० प० ४–३६१
गेवेज्जयादिकाओ	जंबू० प० ११–३४२
गेहुच्छेहो दुसया	तिलो० प० ८–४५४

गेहे गेहे भिक्खं	भावसं० ६०
गेहे वट्टंतस्स य	भावसं० ३६१
गो-इत्थि-बाल-माणुस-	छेदपिं० ३०८
गोउरतिरीडरम्मा	तिलो० प० ४-६८
गोउरदारजुदाओ	तिलो० प० ३-३०
गोउरदारसहस्सा	जंबू० प० ६-१६१
गोउरदारेसु तहा	जंबू० प० १-७३
गोउरदुवारवोउल- (?)	तिलो० प० ४-७६१
गोउरदुवारमज्झे	तिलो० प० ४-७४१
गोउरवासो कमसो	तिलो० सा० ४६३
गोउरसहस्सपउरो	जंबू० प० ७-४१
गो-केसरि-करि-मयरा	तिलो० प० ४-३८८
गोखीर-कुंद-हिमचय-	जंबू० प० ४-२३६
गोखीरफेणमक्खो-	तिलो० सा० ७०७
गोघादवंदिगहणे	छेदस० ८३
गोट्ठे पाओवगदो	भ० आरा० १५५६
गोत्तिय-णत्तिय-पोत्तिय-	आय० ति० ८-११
गोदमणामो दीवो	जंबू० प० १०-४३
गोदं कुलालसरिसं ※	भावसं० ३३७
गोदं कुलालसरिसं ※	कम्मप० ३४
गोदेसु सत्तभंगा	पचस० ५-१३
गोधूम-कलम-तिल-जव-	तिलो० प० ४-२२४३
गो-बभण-महिलाणं	वसु० सा० ६७
गो-बंभणित्थिपावं	वसु० सा० ६८
गो-बंभणित्थिवधमे-	भ० आरा० ७६२
गोमज्झगे य रुजगे	मूला० २०८
गोमुत्त-मुग्ग-णाणा-	तिलो० सा० १२३
गोमुत्त-मुग्ग-वण्णा	तिलो० प० १-२६८
गोमुह-मेसमुहक्खा	तिलो० प० ४-२४६६
गोमेदमयक्खंधा	तिलो० प० ४-१६२७
गो-मेस-मेघ-वदणा	जंबू० प० ११-५३
गोम्मटजिणिंदचंदं	गो० क० ८११
गोम्मटदेवं वंदमि	णिव्वा० भ० २५
गोम्मटसंगहसुत्तं	गो० क० ९६५
गोम्मटसंगहसुत्तं	गो० क० ९६८
गोम्मटसुत्तल्लिहणे	गो० क० ९७२
गोयमथेरं पणमिय	गो० जी० ७०५
गोयरगयस्स लिंगुट्ठा-	छेदपिं० १८७
गोयरपमाण दायग-	मूला० ३५५
गोआर-कसणजीरय-	आय० ति० १०-८
गोवदण-महाजक्खो	तिलो० प० ४-९३२
गोवद्धणो य तत्तो	अंगप० २-४४
गोसिंगघादवंदी	छेदपिं० ३३७
गोसीस-मलय-चंदण-	तिलो० प० ३-२२४
गोसीस-मलय-चंदण-	तिलो० प० ४-७३६
गोसीस-मलय-चंदण-	तिलो० प० ४-८८६
गोसीस-मलय-चंदण-	जंबू० प० ३-२०४
गोसीस-मलय-चंदण-	जंबू० प० ५-११५
गोसीस-मलय-चंदण-	जंबू० प० ११-२३५
गो-हत्थि-तुरय-भत्थो(?)	तिलो० प० २-३०४

घ

घड-पड-जड-दव्वाणि हि	कत्ति० अणु० २४८
घणअंगुलपढमपदं	गो० जी० १६०
घणकुड्डे सकवाडे	भ० आरा० ६३८
घणघाइकम्ममहणं	तिलो० प० ६-७२
घणघाइकम्ममहणा	तिलो० प० १-२
घणघाइकम्ममहणो	णाणसा० २८
घणघाइकम्मरहिया	णियमसा० ७१
घणघादिकम्मदलणं	जंबू० प० १३-१७५
घणपडलकम्मणिवहव्व	वसु० सा० ४३७
घणफलमुवरिमहेट्ठिम-	तिलो० प० १-१७४
घणफलमेक्कम्मि जवे	तिलो० प० १-२१६
घणफलमेक्कम्मि जवे	तिलो० प० १-२३७
घणफलमेक्कम्मि जवे	तिलो० प० १-२५४
घणमाउगस्स सव्वग-	तिलो० सा० ६४
घणसमयजणियभासुर-	जंबू० प० ३-२३९
घणसमयघणविणिग्गय-	जंबू० प० ४-२६
घणसुसिरणिद्धलुक्खं	तिलो० प० ४-१००२
घणह(त)रकम्ममहासिल-	तिलो० प० ४-१७८५
घणहिमसमये गिंभे	छेदपिं० ७७
घद(य)तेल्लब्भंगादी	तिलो० प० ४-१०१२
घम्माए आहारो	तिलो० प० २-३४६
घम्माए णारइया	तिलो० प० २-१६५
घम्मादीखिदितिदए	तिलो० प० २-३५६
घम्मादीपुढवीणं	तिलो० प० २-४६
घम्मा वंसा मेघा	तिलो० प० १-१५३
घम्मा वंसा मेघा※	कम्मप० ८६
घम्मा वंसा मेघा※	तिलो० सा० १४५

घम्मा वंसा मेघा य	जंबू० प० ११-११२
घम्मे तित्थं बंधदि	गो० क० १०६
घयवरदीवादीणं	जंबू० प० १२-२६
घरवावारा केई	भावसं० ३८५
घरवासउ मा जाणि जिय +	पाहु० दो० १२
घरवासउ मा जाणि जिय +	परम०प० २-१४४
घरिणी घरेण सोहइ	आय० ति० १०-१
घरु पुरु परियणु धणियवणु	सावय० दो० १२०
घंटाए कप्पवासी	तिलो० प० ४-७०६
घंटाकिंकिणिगोच्छद-	जंबू० प० ५-८१
घंटाकिंकिणिणिवहा	जंबू० प० ४-१६५
घंटाकिंकिणिणिवहा	जंबू० प० ३-१७२
घंटापडायपउरा	जंबू० प० ६-१८३
घंटाहिं घंटसद्दा-	वसु० सा० ४८६
घाइ-चउक्कविणासे	भावसं० ६६५
घाइ-चउक्कहँ किउ विलउ	जोगसा० २
घाइ-चउक्क चत्ता	दव्वसं० णय० ४०७
घाइ-तियं खीणंता	पंचसं० ३-६
घाइ-चउक्के णट्टे	तच्चसा० ६६
घाईकम्मखयादो	दव्वसं० णय० १०७
घाईणं अजहण्णो	पंचसं० ४-४३६
घाडा घडा चउत्थे	तिलो० सा० १४८
घाणिंदिय वड वसि करहि	सावय० दो० १२५
घाणिंदियसुदणाणा	तिलो० प० ४-६८१
घाणुक्कस्सखिदीदो	तिलो० प० ४-६६०
घादयदव्वादो पुण	लद्धिसा० ५२३
घादंता जीवाण	जंबू० प० ११-१६७
घादि-कम्म-विघादत्थ	चारि० भ० २
घादिक्खएण जादा	तिलो० प० ४-६०४
घादिक्खयजादेहिं य	जंबू० प० १३-१०१
घादि-ति-मिच्छ-कसाया	गो० क० १२४
घादि-तियाणं णियमा	लद्धिसा० ३२५
घादि-तियाणं वधो	लद्धिसा० ४३६
घादि-तियाण वधो	लद्धिसा० ४४८
घादि-तियाण सगसग-	गो० क० २०१
घादि-तियाण सत्त	लद्धिसा० ५४६
घादि-तियाण संखं	लद्धिसा० ४०५
घादि-ति सादं मिच्छं	लद्धिसा० २०
घादिं व वेयणीयं -	गो० क० १९
घादिं व वेयणीयं -	कम्मप० २०
घादीण मुहुत्तंत	लद्धिसा० ५३७
घादीणं अजहण्णो	गो० क० १७८
घादीणं छदुमत्था +	पंचसं० ४-२१७
घादीणं छदुमट्ठा +	गो० क० ४५५
घादी णीचमसादं ×	गो० क० ४३
घादी णीचमसादं ×	कम्मप० ११४
घादी वि अघादिं वा -	गो० क० १७
घादी वि अघादिं वा -	कम्मप० १८
घादे एक्कावीसं	छेदपिं० ३१०
घित्तूण पडिमा	रिट्ठस० १८२
घिद(घय)भरिदघडसरित्थो	मूला० ९९१
घोडगलिंडसमाणस्स	भ० आरा० १३४७
घोडणजोगमसण्णी	पंचसं० ४-२०५
घोडणजोगोसण्णी	गो० क० २१६
घोडय लदा य खंभो	मूला० ६६८
घोडयलदिंमाणस्स	मूला० ६६४
घोरट्ठकम्मणियरे दलिदूण	तिलो०प० ४-१२०६
घोरसंसारभीमाडवीकाणणे	पंचगु० भ० ४
घोरु करतु वि तवचरणु	परम० प० २-१६१
घोरु ण चिण्णउ तवचरणु	परम० प० २-१६७
घोरे णिरयसरिच्छे	मूला० ८०६
घोसादकी य जह किमि	भ० आरा० १२५३

च

चइऊण महामोहं	कत्ति० अणु० २२
चइऊण सव्वसंगे	आरा० सा० ११२
चइऊण सव्वसंगे	धम्मर० १४६
चइदम्मि किण्हपक्खे	तिलो० प० ७-५३६
चइदूण चउगदीओ	तिलो० प० ४-६४१
चउअट्ठछक्कतितिपण-	तिलो० प० ४-२६३७
चउअट्ठपंचसत्तट्ठ-	तिलो० प० ४-२६२५
चउ अड खं दुग दो णभ	तिलो० प० ४-२८६०
चउइक्किक्कंदुगअड-	तिलो० प० ४-२८७१
चउ इग णव पण दो दो	तिलो० प० ४-२६६७
चउइगदुगपणसगदुग	तिलो०प० ४-२६७५
चउ-इयरगिगोएहि जु-	पंचसं० १-३८

चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ	जोगसा० ७६
चउ-कूड तुंगसिहरो	जंबू० प० ८-४०
चउ-कोसरुंदमज्झं	तिलो० प० ४-१६६७
चउ-कोसेहिं जोयण	तिलो० प० १-११६
चउ-गइ इह संसारो *	णयच० ६४
चउ-गइ इह संसारो *	दव्वस० णय० २३४
चउ-गइ-दुक्खहँ तत्ताहँ	परम० प० १-१०
चउ-गइ-पकविमुक्कं	तिलो० प० ८-७००
चउ-गइ-भवसंभमणं	णियमसा० ४२
चउ-गइ-सरूवरूवय-	गो० जी० ३३८
चउ-गइ-सरूवरूवय-	अगप० १-७
चउ-गइ-सकमणजुदो	अगप० १-२५
चउ-गइ-संसारगमण-	रयणसा० १४५
चउ-गदिभव्वो सण्णी	कत्ति० अणु० ३०७
चउगयणसत्तणवणह-	तिलो० प० ७-२४६
चउ-गोउरखेत्तेसुं	तिलो० प० ७-२७६
चउ-गोउरजुत्तेसु य	तिलो० प० ७-२०५
चउ-गोउरदारेसुं	तिलो० प० ४-७४३
चउ-गोउरमणिमाल-ति	तिलो० सा० ९८३
चउ-गोउरवं वेदी-	तिलो० सा० ६४२
चउ-गोउरसंजुत्ता	तिलो० सा० ८८५
चउ-गोउरसंजुत्ता	तिलो० प० ४-७८
चउ-गोउराणि सालत्ति-	तिलो० प० ४-१६४२
चउ-गोउरा ति-साला	तिलो० प० ३-४४
चउ चउ कूडा पडिदिस-	तिलो० सा० ६४४
चउ चउ सहस्स कमला-	जंबू० प० ६-३४
चउ चउ सहस्समेत्ता	तिलो० प० ७-६४
चउ चेत्तदुमा जबू-	तिलो० सा० ५०३
चउ छक्क अड दु अड पण	तिलो०प० ४-२६५७
चउ छक्कदि चउ अट्ठ	गो० क० ३६३
चउ छक्क पंच णभ छद	तिलो० प० ४-२८०४
चउ छक्कं वंधंतो	पंचसं० ४-२४०
चउछव्वीसिगितीस य	पंचसं० ५-२४५
चउ-जुत्तजोयणसय	तिलो० प० ४-२०३६
चउ-जोयण उच्छेहं	तिलो० प० ४-१८१६
चउ-जोयण उच्छेहो	तिलो० प० ४-१६१०
चउ-जोयण-लक्खाणि	तिलो० प० २-१५२
चउ-जोयण-लक्खाणि	तिलो० प० ४-२५६४
चउ-जोयण-लक्खाणि	तिलो० प० ४-२८१४
चउ-जोयण-विक्खंभं	जंबू० प० ६-१५१
चउ-ठाणेसुं सुण्णा	तिलो० प० ३-८४
चउ-ठाणेसुं सुण्णा	तिलो० प० ३-८८
चउ-ठाणेसुं सुण्णा	तिलो० प० ७-४१८
चउणउदि-जोयणाणि य-	जंबू० प० ७-६६
चउणउदिसयं णवसत्तह-	तिलो० सा० ७५४
चउणउदिसया ओही	तिलो० प० ४-११०१
चउणउदि-सहस्सा इगि-	तिलो० प० ७-३३८
चउणउदि-सहस्सा इगि-	तिलो० प० ७-३३९
चउणउदि-सहस्सा इगि-	तिलो० प० ७-३४०
चउणउदि-सहस्सा छस्स-	तिलो० प० ७-३४१
चउणउदि सहस्सा तिय-	तिलो० प० ७-३२२
चउणउदि-सहस्सा तिस-	तिलो० प० ७-३२३
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-३०५
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-३०६
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-३३६
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-४०७
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-४०८
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-४०९
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-४१०
चउणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१७५०
चउणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-२२२४
चउणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-२३८
चउणउदिं च सहस्सा	जंबू० प० ३-२७
चउणउदिं च सहस्सा	जंबू० प० ७-३०
चउणभअडपणपणदुग-	तिलो०प० ४-२६८२
चउणभ णव इगि अडणव	तिलो०प०४-२८५२
चउणवअंबरपणसग-	तिलो० प० ४-२६७६
चउणवगयणट्ठनिर्या	तिलो० प० ७-५६६
चउ णव णव इगि ख णभ	तिलो०प०४-२८५६
चउणवपणच्चउछक्का	तिलो० प० ४-२२२१
चउ-ति-दुग-कोडकोडी	तिलो० सा० ७८१
चउतियइगिपणतिदय	तिलो० प० ४-२६०८
चउतियतियपंचा तह	तिलो० प० ७-४६५
चउतियणवसगछक्का	तिलो० प० ७-३१६
चउतिसातिसयभेदे(जुत्ते?)	तिलो० प० ४-६२६
चउतीस-सहस्साणि	तिलो० प० ४-२२३६
चउतीसं चउदालं	तिलो० प० ३-२०
चउतीसं पयडीण	पंचसं० ३-७६
चउतीसं लक्खाणि	तिलो० प० ७-११६
चउतीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-३५

चउ-तोरण चउ-दारो	वसु० सा० ३६४
चउ-तोरण-वेदिजुदा	तिलो० प० ४-२१६१
चउतोरणवेदिजुदा	तिलो० प० ४-२२०
चउतोरणवेदीहिं	तिलो० प० ४-२०६५
चउतोरणाभिरामा	तिलो० प० ३-२६
चउतोरणेहिं जुत्ता	तिलो० प० ४-२०४
चउतोरणेहिं जुत्तो	तिलो० प० ४-२०२
चउत्थ-पंचमकाले	जंबू० प० २-१८८
चउत्थम्मि कालसमये	जंबू० प० २-१०४
चउत्थो य माणिभद्दो	जंबू० प० २-५०
चउत्थीए पुढवीए	मूला० १०५८
चउ दक्खिण-इंदाणं	तिलो० प० ८-२६१
चउदस अंगपइण्णा	सिद्धत० ६
चउदस चेव सहस्सा	जंबू० प० ३-७
चउदस-जुद-पचसया	तिलो० प० ७-१५८
चउदस-जोयण-लक्खं	तिलो० प० ८-६२
चउदस-णदीहिं सहिया	जंबू० प० ७-६८
चउदस पइण्णया खलु	अगप० ३-१०
चउदस पचक्ख-तसे	सिद्धत० १३
चउदस भव्वाभव्वे	सिद्धत० १०
चउदस-मल-परिसुद्ध	वसु० सा० २३१
चउदस-महाणदीणं	जंबू० प० १-६२
चउदस-रज्जुपमाणो	तिलो० प० १-१५०
चउदस-रयणवईणं	जंबू० प० ४-२१२
चउदस-रयणवईणं	तिलो० प० ८-२६३
चउदसहि सहस्सेहि य	जंबू० प० ६-१०३
चउदह-भेदा भणिदा	णियमसा० १७
चउ-दंडा इगि हत्थो	तिलो० प० २-२५२
चउदाल-पमाणाइं	तिलो० प० ४-५६०
चउदाल-लक्ख-जोयण	तिलो० प० ८-२१
चउदाल-सदा णेया	जंबू० प० १२-४३
चउदाल-सया वीरे	तिलो० प० ४-१२२७
चउदाल-सहस्सा अड-	तिलो० प० ७-१२८
चउदाल-सहस्सा अड-	तिलो० प० ७-१२६
चउदाल-सहस्सा अड-	तिलो० प० ७-२३०
चउदाल-सहस्सा अड-	तिलो० प० ७-२३१
चउदाल-सहस्सा णव-	तिलो० प० ७-१२१
चउदाल-सहस्सा णव-	तिलो० प० ७-१३०
चउदाल-सहस्साणि	तिलो० प० ७-१३१
चउदाल-सहस्साणि	तिलो० प० ७-२२६
चउदालं चावाणि	तिलो० प० २-२५५
चउदाल तु पमत्ते	पंचस० ५-३४६
चउ-दिसगोलसहस्स	तिलो० सा० ६४४
चउ-पच्चओ बंधो	पंचसं० ४-७६
चउपणदुगिगचउदुगिपण-	तिलो० प० ४-२६२६
चउपणचोद्दसचउरो	गो० जी० ६७७
चउ पण छप्पण भ अड तिय	तिलो० प० ४-२६००
चउपंचादिचउण्णवया	तिलो० प० ७-३२१
चउपासाणि तेसुं	तिलो० प० ३-६२
चउपुव्वंगजुदाइं	तिलो० प० ४-१२५०
चउपुव्वंगजुदाइं	तिलो० प० ४-१२५१
चउपुव्वंगजुदाओ	तिलो० प० ४-१२५४
चउपुव्वंगजुदाओ	तिलो० प० ४-१२५५
चउपुव्वंगब्भहिया	तिलो० प० ४-१२५२
चउपुव्वंगब्भहिया	तिलो० प० ४-१२५३
चउ-बंधयम्मि दुविहो	पंचस० ५-२८३
चउ-भजिद-इट्ठरुंदं	तिलो० प० ५-२५४
चउ-भंगा पुव्वस्स य	पंचस० ५-३३०
चउ-सण चउ-वयणाइं	तिलो० प० ३-१८८
चउरक्खथावरविरद-	गो० जी० ६६०
चउरक्खा पंचक्खा	कत्ति० अणु० १५५
चउरट्ठहँ दोसहँ रहिउ	सावय० दो० १२
चउरब्भहिया सीदी	तिलो० प० ४-१२६२
चउरसयाइं वीसुत्त-	छेदपिं० ३६०
चउरस्सो पुव्वाए	तिलो० प० १-६६
चउरंगुलमेत्तमही	तिलो० प० ४-१०३५
चउरं (चउ)गुलंतरपादो	मूला० ५७३
चउरंगुलंतराले	तिलो० प० ४-८६३
चउरादीअणुयोगे	अगप० १-८
चउरासीदि-सहस्सा	तिलो० प० ४-१२७१
चउरासी-लक्खहिं फिरिउ	जोगसा० २५
चउरिसुगारा हेमा	तिलो० सा० ६२५
चउरिंदियाणमाऊ	मूला० ११०६
चउरुदयुवसंतंसे	गो० क० ६८६
चउरूवाइं आदिं	तिलो० प० २-८०
चउरो चउरो य तहा	जंबू० प० ६-७२
चउरो हेट्ठा उवरिं	पंचस० ५-४५६
चउ-लक्खाणिं बम्हे	तिलो० प० ८-१५०
चउ-लक्खादो सोधसु	तिलो० प० ४-२६१२
चउ-लक्खाधियतेवी-	तिलो० प० ६-६६

चउवग्गं तेणवदी — सुदखं० १६
चउवच्छरसमधियअड- — तिलो० प० ४-६४६
चउ-वएणमसोयसत्तच्छ- — तिलो० सा० १०११
चउवएणा तिसयजोयणा — तिलो० प० ४-१२४६
चउवएणा तिसयजोयणा — तिलो० प० ८-६१
चउवएणा-तीस-एव-चउ- — तिलो० प० ४-१२४३
चउवएणा-तीस-एव-चउ- — तिलो० सा० ८०६
चउवएणब्भहियाए — तिलो० प० ४-२८३८
चउवएणा-लक्ख-वच्छर- — तिलो० प० ४-१२६१
चउवएणा-सहस्साणि — तिलो० प० ४-२२२७
चउवएणा-सहस्सा सग- — तिलो० प० ७-३७१
चउवएणा-सहस्सा सग- — तिलो० प० ७-३४३
चउवएणं च सहस्सा — तिलो० प० ७-४०५
चउवं(रं)कताडिदाइं — तिलो० प० ४-१११२
चउ-वावी मज्झपुरी — तिलो० प० ४-१६६१
चउविदिसासुं गेहा — तिलो० प० ४-२३१७
चउविसजिणाण णामट्ठ- — अंगप० ३-१४
चउविह-उवसग्गेहिं — तिलो० प० १-५६
चउविह-कसायमहणे — जोगिभ० ४
चउविह-दाणं उत्तं — भावसं० ५२२
चउविह-दाणं भणियं — जंबू० प० २-१४५
चउविहमरूविदव्वं — वसु० सा० २०
चउविहमेयविहं वा — छेदपिं० ६६
चउविह-विकहासत्तो — भावपा० १६
चउविह-सुरगण-सामियं — जंबू० प० ५-१२५
चउवीस-छट्ट-दियहे — रिट्ठस० २३४
चउवीस-जलहिखंडा — तिलो० प० ४-२५२४
चउवीस-जुदट्ठसया — तिलो० प० ८-२००
चउवीस-जुदेक्कसयं — तिलो० प० ७-२६०
चउवीसट्ठारसयं — गो० क० ७६७
चउवीस-चार-तिघण — तिलो० सा० ८०३
चउवीस-मुहुत्तं पुण — तिलो० सा० २०६
चउवीस-मुहुत्ताणि — तिलो० प० २-२८७
चउवीस य णिज्जुत्ता — मूला० ५७४
चउवीस वि ते दीवा — जंबू० प० १०-५२
चउवीस-विभंगाणं — जंबू० प० ११-३१
चउवीस-विभंगाणं — जंबू० प० ११-७८
चउवीस वीस बारस — तिलो० प० २-६८
चउवीस-सहस्साओ — जंबू० प० ५-१५
चउवीस-सहस्साणि — तिलो० प० ४-१३६२
चउवीस-सहस्साणि — तिलो० प० ४-१४०१
चउवीस-सहस्साणि — तिलो० प० ४-१५८२
चउवीस-सहस्साणि — तिलो० प० ४-१५८८
चउवीस-सहस्साधिय- — तिलो० प० ३-७३
चउवीसं चउवीसं — तिलो० सा० ६२१
चउवीसं चावाणि — तिलो० प० ४-३३
चउवीस-सहस्सेहिं य — जंबू० प० ६-१५४
चउवीसं चिय कोसा — तिलो० प० ४-७४६
चउवीसं तित्थयरा — अंगप० २-३६
चउवीसं दो उवरिं — पंचसं० ५-४४१
चउवीसं लक्खाणि — तिलो० प० २-८६
चउवीसं लक्खाणि — तिलो० प० २-१३०
चउवीसं लक्खाणि — तिलो० प० ८-४६
चउवीसं वज्जित्ता — पंचसं० ५-१६२
चउवीसं वज्जुदया — पंचसं० ५-४१६
चउवीसं वज्जुदया — पंचसं० ५-४२७
चउवीसं वज्जुदया — पंचसं० ५-४३०
चउवीसा चिय दंडा — तिलो० प० ४-१४४३
चउवीसेण य गुणिया — पंचसं० ५-३३१
चउवीसेण वि गुणिदे — पंचसं० ५-३४६
चउवीसेण वि गुणिया — पंचसं० ५-३११
चउव्विह तं हि विणय- — अंगप० २-१००
चउ सग सग णभ छक्कं — तिलो० प० ४-२८८५
चउसट्ठि-चमरसहिओ — दसणपा० २६
चउसट्ठि-चामरेहिं — तिलो० प० ४-६२५
चउसट्ठि छस्सयाणि — तिलो० प० २-१६२
चउसट्ठि-पदं विरलिय — गो० जी० ३४२
चउसट्ठि-सहस्साणि — तिलो० प० ३-७०
चउसट्ठि होंति भंगा — पंचसं० ५-३३२
चउसट्ठिं चुलसीदी — जंबू० प० ११-१२५
चउसट्ठिं व सहस्सं — जंबू० प० ७-२६
चउसट्ठी अट्ठसया — तिलो० प० ७-५६२
चउसट्ठी गुरुमासा — छेदपिं० २२४
चउसट्ठी चउसीदी — तिलो० प० ३-११
चउसट्ठी चालीसं — तिलो० प० ८-१५६
चउसट्ठी-परिवज्जिद- — तिलो० प० ५-२७
चउसट्ठी पुट्ठीए — तिलो० प० ४-४०४
चउ-सएणा णरतिरिया — तिलो० प० ४-४१३
चउ-सएणा ताओ भय- — तिलो० प० ३-१८७
चउ-सएणा णिरियगदी — तिलो० प० ५-३०४

चदुकोडिजोयणे अड- जबू० प० १२-८२
चदुगदिभव्वो सण्णी गो० जी० ६५१
चदुगदिमदिसुदबोहा गो० जी० ४६०
चदुगदिमिच्छे चउरो गो० क० ३५१
चदुगदिमिच्छो सण्णी लद्धिसा० २
चदुगदिया एइंदी गो० क० ५६३
चदुगुण-इसूहिं भजिदं जबू० प० २-२६
चदुगोउरसंजुत्ता जबू० प० १०-१०१
चदुतिगदुगछत्तीसं भावति० ४२
चदुतियइगितीसेहिं तिलो० प० १-२२०
चदुदाल-सयसहस्सा जबू० प० ६-८२
चदुदाल-सयं आदी जबू० प० १२-१६
चदुपच्चइगो बंधो गो० क० ७८७
चदुबंधे दो उदये गो० क० ६७८
चदुमुह-बहुमुह-अरजक्ख- तिलो० प० ४-११४
चदुरमलबुद्धिसहिदे जंबू० प० १-११
चदुर दुगंते वीसा कसायपा० ४३
चदुरंगाए सेणा भ० आरा० ७५७
चदुरंगुला च जिब्भा मूला० ६८६
चदुरुत्तरचदुरादी- जबू० प० १२-४६
चदुरेक्कदुपणपंच य गो० क० ५५६
चदुरो य महीसीणं जबू० प० ६-६५
चदुसट्ठि-लक्खभजिदं जबू० प० १२-६४
चदुसंजलण णवण्हं पंचस० ४-१६८
चदु सुण्णं एक्कत्ति य जबू० प० २-२०
चदुसु वि दिसाविभागे जबू० प० ६-६५
चदुसु वि दिसासु चउरो जबू० प० १०-५१
चदुसु वि दिमासु चत्तारि जबू० प० १०-११
चदुहिं समएहिं दंडं भ० आरा० २११५
चमरकर-णाग-जक्खग- तिलो० सा० ६८७
चमरग्गिम-महिसीणं तिलो० प० ३-६२
चमरतिये सामाणिय- तिलो० सा० २२७
चमरदुगे आहारो तिलो० प० ३-१११
चमरदुगे उस्सासं तिलो० प० ३-११४
चमरदुगे परिसाणं तिलो० सा० २४६
चमरंगरक्खसेणा तिलो० सा० २४४
चमरिंदो सोहम्मे तिलो० प० ३-१४१
चमरीबाल खग्गिवि- भ० आरा० १०५१
चमरो सोहम्मेण य तिलो० सा० २१२
चम्मच्छइँ पीयइँ जलइँ सावय० दो० ३०

चम्मट्ठिकीडउदुरु- वसु० सा० ३१५
चम्मट्ठिमंसलवलुद्धो रयणस० ११३
चम्मरयणो ण बुड्डइ जंबू० प० ७-१४१
चम्मं रुहिरं मस भावस० ४०७
चम्मार-वरुड-छिंपिय- छेदपिं० २२२
चयदलहदसंकलिदं तिलो० प० २-८५
चयधणहीणं दव्वं गो० क० ६०३
चयहदमिक्कूणपदं तिलो० प० २-६४
चयहदमिट्ठादियपद- तिलो० प० २-७०
चरणकरणप्पहाणा सम्मइ० ३-६७
चरणम्मि तम्मि जो उज्ज- भ० आरा० १०
चरणं हवइ सधम्मो मोक्खपा० ५०
चरदि णिबद्धो णिच्चं पवयणसा० ३-१४
चरविंबा मणुवाण तिलो० प० ७-११६
चरमधरा-साण हरा गो० जी० ६३७
चरमसमयम्मि तो सो भ० आरा० २१२५
चरमे खुद-जंभ-वसा तिलो० सा० ७६१
चरया परिवज्जधरा तिलो० प० ८-५६१
चरयाय परिव्वाजा तिलो० प० ५४७
चरिएहि कत्थमाणो भ० आरा० ३६८
चरिमअपुण्णभवत्थो गो० क० २१७
चरिमणवट्ठिदकुंडे तिलो० सा० ३५
चरिमणिसेउ(यु)क्कट्टे लद्धिसा० ६०
चरिमदुवीसूणुदयो गो० क० ७५७
चरिमपहादो बाहिं तिलो० प० ७-२८८
चरिमस्स दुचरिमस्स य तिलो० सा० ८२
चरिमं चरिमं खंड गो० क० ६५८
चरिमं दसमं विसुपं तिलो० सा० ४२६
चरिमं फालिं दिण्णे लद्धिसा० १४५
चरिमं फालिं देदि दु लद्धिसा० १४४
चरिमादिच्चउक्कस्स य तिलो० सा० ६०
चरिमाबाहा तत्तो लद्धिसा० १७३
चरिमुव्वकेणवहिद- गो० जी० ३३०
चरिमे खंडे पडिदे लद्धिसा० ५६६
चरिमे चदुतिदुगेक्कं गो० क० ६६८
चरिमे पढमं विग्घं लद्धिसा० ६०५
चरिमे सव्वे खंडा लद्धिसा० ४७
चरिमो बादररागो कसायपा० २०६(१५६)
चरिमो मउडधरीसो सुदख० ७०
चरिमो य सुहुमरागो कसायपा० २१० (१५७)

चरियट्टालयचारु तिलो० प० ४-१७२
चरियट्टालयचारू तिलो० प० ८-११३
चरियट्टालयपउरा तिलो० प० ४-२१२७
चरियट्टालयरुद्दा तिलो० प० ४-२१००
चरियट्टालयरम्मा तिलो० प० ४-७३२
चरियं चरदि सग सो पंचत्थि० १५६
चरिया छुहा य तण्हा भ० आरा० ११७
चरिया पमादबहुला पचत्थि० १३६
चरियावरिया वदसमि- मोक्खपा० ७३
चलचवलजीविदम्मिण मूला० ७७३
चलणट्ठसंविभाओ आय० ति० १८२६
चलणरहिओ मणुस्सो नयचसा० १२
चलणविहीणे दिट्ठे रिट्ठस० १०१
चलणं वलणं चिंता भावस० ६६७
चलतडियअवरबंधं लद्धिसा० ३७८
चलमलिणमगाढत्तवि- णियमसा० ५२
चलमलिणमगाढं च वा० अणु० ६१
चलवेरिणि पावजुए आय० ति० १०-१६
चलिओ चलणकिलेसं आय० ति० २-२५
चलियसरियम्मि पाए आय० ति० ६-७
चहुविह अणेयभेयं समय० १७०
चंकमणे य ट्ठाणे भ० आरा० ५८०
चंडाल-अण्णपाणे छेदपिं० ३३६
चंडाल-डोंब-धीवर- भावसं० २०६
चंडाल-भिल्ल-छिंपिग- भावस० ५४३
चंडाल-सवर-पाणा तिलो० प० ४-१६२०
चंडाल-सवर-पाणा छेदपिं० ४-१५१६
चंडालसंकरे सई छेदपिं० ६७
चंडालादिसुदाणहिं छेदपिं० ३४०
चंडालादिसु सोलस छेदपिं० २२३
चंडो चवलो मंदो मूला० ६५५
चंडो ण मुच(य)इ वेरं गो० जी० ५०८
चंडो ण मुयइ वेरं पचसं० १-१४४
चंदण-सुअंध-लेओ भावसं० ४७१
चंदणे वव्वगे चावि जंबू० प० ११-११६
चंदपहो चंदपुरे तिलो० प० ४-५३२
चंदपह-पुप्फदंतो तिलो० प० ४-५८७
चंद-पह-सूइवद्धी तिलो० प० ७-१६४
चंदपुरा सिग्घगदी तिलो० प० ७-१८०
चंदप्पह-मल्लिजिणा तिलो० प० ४-६०६
चंदरविगयणखंडे तिलो० प० ७-५०६
चंदरविजवुदीवय- गो० जी० ३६०
चंदसूराण पिच्छइ रिट्ठस० ५६
चंदस्स सदसहस्सं जंबू० प० १२-६५
चंदस्स सदसहस्सं मूला० ११२२
चंदस्स सदसहस्सं तिलो० प० ७-६१५
चंदस्साउ विमाणे अंगप० २-२
चंदाउपमुहवादी (?) सुदख० २३
चंदाणणि सुप्पहु भणइ सुप्प० दो० ३४
चंदा दिवायरा गह- तिलो० प० ७-७
चंदादो मत्तंडो तिलो० प० ७-४६८
चंदादो सिग्घगदी तिलो० प० ७-५११
चंदा पुण आइच्चा तिलो० सा० ३०३
चंदाभसुसीमाओ तिलो० प० ७-५८
चंदाभा य सुसीमा तिलो० सा० ४४७
चंदाभा सूराभा तिलो० प० ८-६२०
चंदाभे सग्गादे तिलो० प० ४-४८१
चंदिण बारसहस्सा तिलो० सा० ३४१
चंदेहिं णिम्मलयरा थोस्सा० ८
चंदो णियसोलसम तिलो० सा० ३४२
चंदो मंदो गमणे तिलो० सा० ४०३
चंदो य महाचंदो तिलो० प० ४-१५८७
चंदोवइँ दिण्णइँ जिणहँ सावय० दो० १६८
चंदो वसहो कमलो जंबू० प० १३-६२
चंदो हविज्ज उण्हो भ० आरा० ६६०
चंदो हीणो य पुणो भ० आरा० १७२२
चंपय-असोय-गहणं जंबू० प० ५-६६
चंपय-असोय-वण्णा जंबू० प० ३-२०१
चंपय-कयंब-पवरो जंबू० प० ५-५४३
चंपंति सव्वदेहं धम्मर० ४६
चंपाए मासखमण भ० आरा० १५४६
चंपाए वासुपुज्जो तिलो० प० ४-५३६
चाउम्मासिय-वरिसिय- छेदस० ५०
चाउव्वण्णपराध वि छेदपिं० ३५८
चाउव्वण्णपराधं छेदपिं० ६०
चाउव्वण्णे संघे जंबू० प० १०-७४
चाउव्वण्णो संघो जंबू० प० ८-१६६
चाओ य होइ दुविहो मूला० १००६
चागी(ई) भद्दो चोक्खो पंचसं० १-१५१
चागी भद्दो चोक्खो गो० जी० ५१५

चुरणीकयो वि देहो	धम्मर० ७१
चुलसादि छ तेत्तीसा	तिलो० सा० ६०४
चुलसीदि णउदि पणतिग-	तिलो० प० ४-६५६
चुलसीदि-लक्खकोडी	अगप० १-६८
चुलसीदि-लक्खगुणिदे	जंबू० प० ४-२४२
चुलसीदि-लक्खदेवा	जंबू० प० ४-२४३
चुलसीदि-लक्ख-भद्दिभ	तिलो० सा० ६८२
चुलसीदि-लक्खमसा-	तिलो० सा० ४५१
चुलसीदि-लक्खसखा	जंबू० प० ४-१६२
चुलसीदि-सयसहस्सा	जंबू० प० ४-१४७
चुलसीदि-सयसहस्सा	सुदखं० २०
चुलसीदि-सहस्साणि	तिलो० प० ६-७६
चुलसीदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१७३६
चुलसीदि-हद लक्खं	तिलो० प० ४-२६३
चुलसीदि च सहस्सा	जंबू० प० ११-३१२
चुलसीदीओ सीदी-	तिलो० प० ८-३५५
चुलसीदी बाहत्तरि-	तिलो० प० ४-१४१६
चुलसीदी य असीदी	तिलो० सा० ४८६
चुलसीदी-लक्खाणि	तिलो० प० २-२६
चुल्लहिमवंतरुंदे	तिलो० प० ४-२११
चूडामणि अहिगरुडा	तिलो० प० ३-१०
चूडामणि-फणि-गरुड	तिलो० सा० २१३
चूरेई हत्थपत्थर-	छेदपिं० २१८
चूलिय-दक्खिणभाग	तिलो० प० ४-१८३३
चेइय बंधं मोक्खं	बोधपा० ६
चेट्ठदि तेसु पुरेसुं	तिलो० प० ४-२१६३
चेट्ठदि देवारण्णं	तिलो० प० ४-२३१४
चेट्ठंति उ[ट्ट]कण्णा	तिलो० प० ४-२७२६
चेट्ठंति णिरुवमाणा	तिलो० प० ५-२१५
चेट्ठति तिण्णि तिण्णि य	तिलो० प० ४-२३०४
चेट्ठति माणुसुत्तर-	तिलो० प० ४-२७७१
चेट्ठंति माणुसुत्तर-	तिलो० प० ४-२६२०
चेट्ठंति सुरगणाइं	तिलो० प० ४-८५४
चेट्ठेदि कच्छणामो	तिलो० प० ४-२२३२
चेट्ठेदि कप्पजुगलं	तिलो० प० ८-१३२
चेट्ठेदि जम्मभूमी	तिलो० प० २-३०३
चेट्ठेदि दिव्ववेदी	तिलो० प० ४-२०६६
चेत्ततरूणं पुरदो	तिलो० प० ४-१६०८
चेत्ततरूण मूले	तिलो० सा० २१५
चेत्ततरूण मूले	तिलो० प० ३-३८
चेत्तदुमं तलरुंदं	तिलो० प० ३-३२
चेत्तदुमा मूलसु	तिलो० प० ३-१३७
चेत्तदुमीसाणभागे	तिलो० प० ४-२३२
चेत्तप्पासादखिदि	तिलो० प० ४-७१६
चेत्तस्स किण्हपच्छिम-	तिलो० प० ४-११९६
चेत्तस्स बहुलचरिमे-	तिलो० प० ४-१२००
चेत्तस्स य अमवासे	तिलो० प० ४-६८६
चेत्तस्स सुक्कछट्ठी-	तिलो० प० ४-११८५
चेत्तस्स सुक्कतइए	तिलो० प० ४-६६६
चेत्तस्स सुक्कतदिए	तिलो० प० ४-६६२
चेत्तस्स सुक्कदसमी-	तिलो० प० ४-११८७
चेत्तस्स सुक्कपंचमि-	तिलो० प० ४-११८४
चेत्तासिदणवमीए	तिलो० प० ४-६४३
चेत्तासु किण्हतेरसि-	तिलो० प० ४-६४८
चेत्तासु सुद्धछट्ठी-	तिलो० प० ४-६६४
चेदणपरिणामो जो	दव्वस० ३४
चेदणमचेदणं पि हु	दव्वस० णय० ५६
चेदणमचेदणा तह	दव्वस० णय० १६
चेयणरहिओ दीसइ	तच्चसा० ३६
चेयणरहियममुत्तं	दव्वस० णय० ६७
चेयंतो वि य कम्मो	भ० आरा० १५१०
चेया उ पयडीयट्टं	समय० ३१२
चेलादिसव्वसंगच्चा-	भ० आरा० ११२२
चेलादीया संगा	भ० आरा० ११५८
चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिं	परम० प० २-८८
चोतीस-तीस चोदाल-	जंबू० प० ११-१२६
चोत्तीस-भेदसंजुद-	तिलो० प० ५-३१३
चोत्तीस चउदालं	तिलो० सा० २१७
चोत्तीसं भोगधरा	अंगप० २-६
चोत्तीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-१२०
चोत्तीसाइसयाणि	तिलो० प० ८-२६६
चोत्तीसादिसएहिं	तिलो० प० ६-१
चोत्तीसाधिय सगसय	तिलो० प० ४-६५४
चोत्थीए सदभिसए	तिलो० प० ७-५३५
चोद्दस-इगि-रिण-रुंदं	तिलो० प० ४-२७०७
चोद्दसए जाणि तहा	तिलो० प० २-६०
चोद्दसग-णवगमादी	कसायपा० ५२
चोद्दसग-दसग-सत्तग-	कसायपा० ३२
चोद्दस-गुहाओ तस्सिं	तिलो० प० ४-२७५६
चोद्दस चेव सहस्सा	जंबू० प० ११-१२६

छ

छच्चसहस्सा तिसया	तिलो० प० ७–३६४
छ च्चिय कोदंडाणि	तिलो० प० २–२२६
छ च्चिय सयाणि पण्णा	तिलो० प० ४–२७२२
छच्चेव य इसुवग्गं	जंबू० प० २–२८
छच्चेव य कोडीओ	जंबू० प० ४–१६०
छच्चेव सया तीसं	तिलो० प० ७–५०२
छच्चेव सहस्साइं	जंबू० प० ११–१५
छच्चेव सहस्साणि	तिलो० प० ४–११३१
छच्चेव सहस्साणि	तिलो० प० ८–१५१
छच्छक्कगयणसत्ता	तिलो० प० ७–३२०
छच्छक्क छक्कदुगसग-	तिलो० प० ४–२८००
छज्जाए जह अंते	जंबू० प० ४–८
छज्जीव छडायदणं	भावपा० १३१
छज्जीवणिकाएहिं	मूला० ६५४
छज्जीवणिकायाणं	मूला० ४२४
छज्जीवदयावण्णे	जोगिभ० ५
छज्जुगलसेसएसुं	तिलो० प० ८–३५०
छज्जुगलसेसकप्पे	तिलो० सा० ४८०
छज्जुगलसेसकप्पे	तिलो० सा० ४८३
छज्जुगलसेसकप्पे	तिलो० सा० ४६०
छज्जुगलसेसकप्पे	तिलो० सा० ५०७
छज्जोयण अट्ठसया	तिलो० प० ८–७५
छज्जोयण-परिहीणो	जंबू० प० ४–१२६
छज्जोयण-लक्खाणि	तिलो० प० २–१५०
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ३–१४१
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ३–१६३
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ७–८७
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ८–१८०
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ८–१८२
छज्जोयणेक्ककोसा	तिलो० प० ४ १६७
छज्जोयणेक्ककोसा	तिलो० प० ४–२१४
छज्जोयणो य विडवी	जंबू० प० ६–६४
छट्ठ अणुव्वयघादे +	छेदपिं० ३०७
छट्ठ अणुव्वदघादे +	छेदपिं० ३४२
छट्ठट्ठमदसमदुवा-	भ० आरा० १०६
छट्ठट्ठमदसमदुवा-	भ० आरा० २५१
छट्ठट्ठमदसमदुवा-	मूला० ३४८
छट्ठट्ठमदसभेया	तिलो० प० ४३८
छट्ठट्ठमभत्तेहिं	मूला० ८१०
छट्ठमए-गुणठाणे	भावसं० ६०६
छट्ठम-कालवमाणे-	जंबू० प० ७–१८६
छट्ठम-कालस्संते	जंबू० प० ७–११८
छट्ठम-रिविव्विचरमिंदिय-	तिलो० प० ७–१०८
छट्ठम-चरिमे होंति [छ]	तिलो० सा० ८६६
छट्ठम्मि जिणवरमग-	तिलो० प० ४–८५८
छट्ट लहुमास मासिय	छेदपिं० २३
छट्ठाणाणं आदी	गो० जी० ३२०
छट्ठीए पुढवीए	मूला० १०६०
छट्ठीए वरणसंडो	तिलो० प० ४–२१७३
छट्ठीदो पुढवीदो	मूला० ११२०
छट्टं अथिरं असुहं	गो० क० १८
छट्ठो त्ति चारि भंगा	गो० क० ६३४
छट्ठो त्ति पढमसण्णा	गो० जी० ७०१
छट्टोवहि उवमाणा	तिलो० प० ८–४१६
छण्णउदिउत्तराणि	तिलो० प० ८–१८०
छण्णउदिकोडिगामा	तिलो० प० ४–१३९१
छण्णउदिगामकोडी-	जंबू० प० १–१५३
छण्णउदिचउसहस्सा	गो० क० १०१
छण्णउदिजोयणसया	तिलो० प० ४–२६०५
छण्णउदिसया ओही	तिलो० प० ४–११०४
छण्णउदिं च वियप्पा	पंचसं० ५–३७२
छण्णउदिं च सहस्सा	जंबू० प० ७–२८
छण्णवइगामकोडी-	जंबू० प० ७–५४
छण्णवइगामकोडी-	जंबू० प० ८–३४
छण्णउदी छच्चसया	जंबू० प० ७–८८
छण्णवएक्कतिछक्का	तिलो० प० ७–३६१
छण्णव चउक्क पणचउ	तिलो० प० ७–३८४
छण्णव छ त्तिय सग इगि-	गो० क० ६६३
छण्णव छ त्तिय सत्त य	पंचसं० ५–३६४
छण्णवदिकोडिएहिं	जंबू० प० ८–५५
छण्णवदि सहस्साणं	तिलो० प० ४–२५२२
छण्णव सग दुग छक्का	तिलो० प० ७–३१५
छण्णं आवलियाणं	कसायपा० १६५ (१४२)
छण्णाणा दो संजम	तिलो० प० ५–३०५
छण्णोकसाय णवमे	आस० ति० १७
छण्णोकसायणिद्दा-	गो० क० २१३
छण्णोकसायपयला-	पंचसं० ४–५०१
छण्हमसण्णी कुणई	पंचसं० ४–४२८
छण्हं कम्मखिदीणं	जंबू० प० ११–८०
छण्हं पि अणुक्कस्सो ×	गो० क० २०७

छप्पंचाधियवीसं	गो० जी० ११५
छप्पि य पज्जत्तीओ	मूला० १०४७
छव्वंधा तीसंता	पंचसं० ५–४६७
छव्वावीसे चउ इगि-	पंचसं० ४–२४७
छव्वावीसे चउ इगि-	पंचसं० ५–२७
छव्वावीसे चउ इगि-	पंचसं० ५–२६८
छव्वावीसे चदु इगि-	गो० क० ४६७
छव्भेदभागभिण्णो	जंवू० प० ८–१०५
छव्भेया रसरिद्धी	तिलो० प० ४–१०७५
छब्भेया वा सभूसिज्जा	चारि० भ० ६
छम्मासद्धगयाणं	तिलो० सा० ४२१
छम्मासाउगसेसे	धम्मर० ६०
छम्मासाउगसेसे	वसु० सा० ५३०
छम्मासाउगसेसे	पंचसं० १–२००
छम्मासाऊसेसे	वसु० सा० १६४
छम्मासे छम्मासे	जंवू० प० ८–१६२
छम्मासेणं वरगुह-	जंवू० प० ७–१२५
छम्मुहओ पादालो	तिलो० प० ४–६३२
छल्लक्खा छास(व)ट्ठी	तिलो० प० ८–२६७
छल्लक्खा छास(व)ट्ठी	तिलो० प० ४–१८३६
छल्लक्खा छास(व)ट्ठी	तिलो० प० ४–१८४०
छल्लक्खा छास(व)ट्ठी	तिलो० प० ४–१८४३
छल्लक्खा छास(व)ट्ठी	तिलो० प० ४–१८५१
छल्लक्खाणि विमाणा-	तिलो० प० ८–३२२
छल्लक्खा वासाणं	तिलो० प० ४–१४६०
छव्वीसजुदेक्कसयं	तिलो० प० ४–२६५१
छव्वीसब्भहियसयं	तिलो० प० १–२०६
छव्वीसमदो सोलं	तिलो० सा० ६७५
छव्वीस-सत्तवीसा	कसायपा० २६
छव्वीस-सत्तवीसा	कसायपा० ४६
छव्वीससया णेया	जंवू० प० ४–१६०
छव्वीससहस्साणि	तिलो० प० ४–२२३६
छव्वीससहस्साधिय	तिलो० प० ४–१२४०
छव्वीसं चिय लक्खा-	तिलो० प० ८–४६
छव्वीसं च सहस्सा	जंवू० प० ७–४८
छव्वीसं चात्ताणि	तिलो० प० २–२४८
छव्वीसं पणवीसं	मूला० २२४
छव्वीसं लक्खाणि	तिलो० प० २–१२८
छव्वीस-सत्तसुण्णं	सुदखं० ४८
छव्वीसाए उवरिं	पंचसं० ५–१३०
छव्वीसा कोडीओ	जंवू० प० ४–१६०
छव्वीसिगिवीसुदया	पंचसं० ५–२२३
छव्वीसे तिगिगुदे	गो० क० ७७८
छसहस्साइं ओही	तिलो० प० ४–११२७
छसु ठाणेसु [य] सत्तट्ट-	पंचसं० ४ २१३
छसु पुण्णेसु उरालं	पंचसं० ४–४१
छसु सगविहमट्ठविहं	गो० क० ४५३
छसु हेट्ठिमासु पुढविसु	पंचसं० १–१६३
छस्सग पण इग छण्णव	तिलो० प० ४–२८४७
छस्सम्मत्ता ताइं	तिलो० प० २–२८२
छस्सयजोयणकदिहिद-	गो० जी० १५५
छस्सयदडुच्छेहो	तिलो० प० ४–४७५
छस्सय पण्णासाइं	गो० जी० २६५
छस्सय पंचासयाणि	तिलो० प० ८–२३०
छस्सिदिएसुऽविरदी	आस० ति० ४
छह-अट्ठारह-वासे	णंदी० पट्टा० १४
छहगुणिदं इसुवग्गं	जंवू० प० २–२४
छह दव्वइँ जे जिणकहिय-	जोगसा० ३५
छहदंसणगंथि वहुल	पाहु० दो० १२५
छहदंसणधंधइ पडिय	पाहु० दो० ११६
छहिं अंगुलेहिं पादो	तिलो० प० १–११४
छहि अंगुलेहिं वादो	जंवू० प० १३–३२
छहसुण्णं अट्ठदसं	सुदखं० ४५
छहिं कारणेहिं असणं	मूला० ४७८
छंडियगिहवावारो	आरा० सा० २४
छंडिय णियवड्ढुत्तं (वुड्ढत्तं)	भावस० २११
छंडेविणु गुणरयणणिहि	पाहु० दो० १५१
छंदणगहिदे दव्वे	मूला० १२८
छंदपमाणपवद्धं	अगप० १–४
छागलमुत्तं दुद्धं	भ० आरा० १०४२
छाणवदी लक्खपयं	सुदखं० ३६
छादयदि सयं दोसे	गो० जी० २७३
छादयदि सयं दोसे	पंचसं० १–१०५
छादयदि सयं दोसे	कम्मप० ६३
छादालदोससुद्धं	मूला० १३
छादालसहस्साणि	तिलो० प० ४–१२२४
छादालसुण्णसत्तय-	तिलो० सा० २८६
छादाला तिण्णिसदा	जंवू० प० ३–२६
छायातवमादीया	णियमसा० २३
छायापुरिसं सुमिणं	रिट्ठस० ६१

छायाल-दोसदूसिय-	भावपा० ६६
छायाल-सेस मिस्सो	पचस० ५-४७३
छावट्ठि छस्सयाणि	तिलो० प० २-१०६
छावट्ठि-सहस्साइं	तिलो० प० ४-१४५१
छावट्ठि-सहस्साइं	तिलो० प० ४-१४५२
छावट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-५८०
छावट्ठिं अडदालं	जंबू० प० ११-४७
छावट्ठिं च सयाणि	तिलो० प० ४-२५६७
छावट्ठिं च सहस्सा	जंबू० प० १२-८७
छावट्ठिं च सहस्सा	जंबू० प० १२-१०८
छावट्ठी छच्चसया	जंबू० प० ७-८५
छावट्ठी सत्तसया	जंबू० प० २-१०१
छावत्तरि एयारह-	पचस० ५-१८८
छावत्तरि-जुदछस्सय-	तिलो० प० ५-६६८
छासट्ठि-कोडिलक्खा	तिलो० प० ८-४६०
छासट्ठी-अधियसयं	तिलो० प० २-२६६
छासट्ठी-लक्खाणि	तिलो० प० ८-४६१
छासीदी-अधियसयं	तिलो० प० ८-१५५
छाहत्तरिजुत्ताइं	तिलो० प० ७-५६८
छाहत्तरि विण्णिसदा	जंबू० प० ३-२२
छाहत्तरि-लक्खजुया	जंबू० प० ४-२४१
छाहत्तरि-लक्खाणि	तिलो० प० ३-८३
छाहत्तरि-लक्खाणि	तिलो० प० ८-२४२
छिक्केण मरदि पुंसो	तिलो० प० ४-३७६
छिज्जइ तिलतिलमित्तं	कत्ति० अणु० ३६
छिज्जइ पढमं बंधो	पचस० ३-६७
छिज्जइ भिज्जइ पयडी	भावस० १७८
छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ	परम० प० १-७२
छिज्जदु वा भिज्जदु वा	समय० २०६
छिण्णसिरा भिण्णकरा	तिलो० प० २-३३४
छिंददि भिंददि य तहा	समय० २३८
छिंददि भिंददि य तहा	समय० २४३
छिंदंति य करवत्ते-	जंबू० प० ११-१७४
छिंदति य भिंदति य	जंबू० प० ११-१७१
छुडु दंसणु गहायरउ	सावय० दो० ५८
छुडु सुविसुद्धिय होइ जिय	सावय० दो० १०७
छुडु हिंसा ण पयट्टइ-	ढाढसी० १०
छुहतण्हभीरुरोसो	णियमसा० ६
छुहतण्हवाहिवेयण-	धम्मर० ११७
छुहतण्हाभयदेसो	वसु० सा० ८
छुहतण्हाभयदेसो	धम्मर० ११८
छुहतण्हा सीउण्हा	मूला० २५४
छत्तस्स वदा णयरस्स	भ० आरा० ११८६
छेत्तूण भित्ति वधिदूण पीयं	तिलो० प० २-३६५
छेत्तूण य परियायं *	गो० जी० ४७०
छेत्तूण य परियायं *	पचस० १-१३०
छेत्तूणं तसणालिं +	तिलो० प० १-१६७
छेत्तूणं तसणालिं +	तिलो० प० १-१७२
छेदणबंधणवेढण-	भ० आरा० ११६०
छेदणभेदणडहणं	भ० आरा० १५८३
छेदणभेदणदहणं	तिलो० प० ४-६१७
छेदुवजुत्तो समणो	पवयणसा० ३-१२
छेदो जेण ण विज्जदि	पवयणसा० ३-२२
छेदोवट्ठावण जइण	अंगप० १-२२
छेयणभेयणतासण-	वसु० सा० १७६

ज

जइ अट्ठमो य मज्झे	आय० ति० २-११
जइ अद्धवहे कोई	वसु० सा० ३०६
जइ अवरेण गहेण	आय० ति० ४-२६
जइ अहर-वग्ग-अहरक्ख-	आय० ति० ७-६
जइ अहिलासु णिवारियउ	सावय० दो० ५१
जइ अंतरम्मि कारण-	वसु० सा० ३६०
जइ आउरो न चिच्छइ	रिट्ठस० ७५
जइ इक्कम्मि वि अंसे	आय० ति० ४-७
जइ इक्क हि पावीसि पय	पाहु० दो० १७७
जइ इक्केणाएणं	आय० ति० ५-१३
जइ इच्छइ परमपयं	धम्मर० १३१
जइ इच्छसि भो साहू	परम०प० २-१११क्षे० ३
जइ इच्छह उत्तरिदुं +	णयच० ८७
जइ इच्छह उत्तरिदुं +	दव्वस० णय० ४१६
जइ इच्छहि कम्मखय	आरा० सा० ७४
जइ इच्छहि संतोसु करि	सावय० दो० १३०
जइ ईसरणाम णरो	धम्मर० १२६
जइ उत्तरवग्गाणं	आय० ति० ६-६
जइ उप्पज्जइ दुक्ख	आरा० सा० ६४
जइ उप्पज्जइ दुक्ख	मूला० ७८
जइ उवरंत्थं तिजयं	भावस० २२८
जइ एरिसो चि धम्मो	धम्मर० १८

जइ एरिसो वि मूढो	धम्मर० १०५
जइ एरिसो वि लोए	धम्मर० १०१
जइ एवं ण लोहिज्जो	वसु० सा० २०६
जइ एवं तो इत्थी	भावसं० ६७
जइ एवं तो पियरो	भावसं० ३५
जइ ओग्गहमेत्तं दं-	सम्मइ० २-२३
जइ कह वि अवत्थाओ	आय० ति० ४-१
जइ कह वि आइमाओ	आय० ति० १८-२१
जइ कह वि कसायग्गी-	भ० आरा० ३६३
जइ कह वि तत्थ णिग्गइ	भावसं० ५६
जइ कह वि हु एयाइं	भावसं० १७१
जइ कह वि हुंति भरिया	आय० ति० ८-६
जइ किएहं करजुअलं	रिट्ठस० १६
जइ को वि उसणणिरए	वसु० सा० १३८
जइ खणियत्तो जीवो	भावसं० ६४
जइ खाइयसद्दिट्ठी	वसु० सा० ५१५
जइ गिहत्थु दाणेण विणु	सावय० दो० ८७
जइ गिहवंतो सिज्झइ	भावसं० १०२
जइ चिंतहिं सुप्पहु भणइ	सुप्प० दो० ७५
जइ चेयणा अणिच्चा	भावसं० ६८
जइ जर-मरण-करालियउ	जोगसा० ४६
जइ जलण्हाणपउत्ता	भावसं० १८
जइ जिय उत्तमु होइ णवि	परम० प० २-४
जइ जिय सुक्खहँ अहिलसहि	सावय० दो० १२२
जइ जीवेण सह चिय	समय० ० १३६
जइ जुत्तो दिट्ठो वा	आय० ति० १८-२४
जइ णिक्कलो महप्पा	भावसं० २३८
जइ ण वि कुणइ च्छेदं	समय० २८६
जइ णाणेण विसोहो	सीलपा० ३१
जइ णिम्मल अप्पा मुणइ	जोगसा० ३०
जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि	जोगसा० ३७
जइ णिविसद्धु वि कु वि करइ	परम०प०१-११४
जइ तप्पइ उग्गतवं	भावसं० ६२
जइ ता धारावडणा (?)	जंबू० प० ४-२८०
जइ तिजय-पालणत्थं	भावसं० २३१
जइ तुप्पं णवणीयं	भावसं० २३६
जइ ते हवंति देवा	धम्मर० ११५
जइ ते होंति समत्था	*भावसं० ७८
जइ तो वत्थुब्भूओ	भावसं० २१६
जइ थिरु पथ(थी)घरि वसइ	सुप्प० दो० ४०
जइ दंसणेण सुद्धा	सुत्तपा० २५
जइ दा उवत्तादि णि-	भ० आरा० १२३६
जइ दा खडसिलोगे-	भ० आरा० ७७२
जइ दिणु दह सुप्पहु भणइ	सुप्प० दो० २७
जइ दीसइ परिपुण्णं	रिट्ठस० १०५
जइ दे कदा पमाणं	भ० आरा० ६३५
जइ देसेवउ छड्डियउ	सावय० दो० ३६
जइ देवय देइ सुयं	भावस० ७६
जइ देदि तत्थ सुण्णहर-	वसु० सा- १२०
जइ देवो वि य रक्खइ	कत्ति० अणु० २५
जइ देवो हणिऊणं	भावस० ४३
जइ पउमणंदिणाहो	दंसणसा० ४३
जइ पढमतइज्जेहिं	आय० ति० ६-११
जइ पढमतइयवग्गक्ख-	आय० ति० ६-६
जइ पढमतइयवण्णा	आय० ति० ६-८
जइ पढमतइयवण्णा	आय० ति० १७-५
जइ पंचिंदियदमओ	मूला० ८६८
जइ पावइ उवत्तं	धम्मर० ८२
जइ पिच्छइ गयणतले	रिट्ठस० १००
जइ पिच्छइ ण हु वयणं	रिट्ठस० १४
जइ पुज्जइ को वि णरो	भावसं० ४४६
जइ पुण केण वि दीसइ	वसु० सा० १२२
जइ पुण सुद्धसहावा	कत्ति० अणु० २००
जइ पुत्तादिणदाणो	भावस० ३३
जइ फलइ कह वि दाणं	भावसं० ४०२
जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि	जोगसा० ८७
जइ बंभो कुणइ जयं	भावसं० २०४
जइ बीहउ चउगइगमणा(णु)	जोगसा० ५
जइ भणइ को वि एवं	भावसं० ३८६
जइ भाविज्जइ गंधे-	भ० आरा० ३४२
जइ मणि कोहु करिवि कलहीजइ	पाहु०दो० १४०
जइ मे होई मरणं	वसु० सा० १६८
जइया इमेण जीवे-	समय० ७१
जइया तव्विवरीए	दव्वस० णय० ३७५
जइया दहरहपुत्तो	भावसं० २२६
जइया मणु णिग्गंथु जिय	जोगसा० ७३
जइया स एव संखो	समय० २२२
जइ रायेण दोसेण	चारि० भ० ६
जइ लद्धउ माणिक्कडउ	पाहु० दो० २१६
जइ वग्गपढमवण्णा	आय० ति० ५-८

जत्थ ण कलमलमहं	कत्ति० अणु० ३४३
जत्थ ण कटयभंगो	भावसं० १२०
जत्थ ण जादो ण मदो	भ० आरा० १७७४
जत्थ ण झाणं झेयं	आरा० सा० ७८
जत्थ ण सोत्तिग अत्थि दु	भ० आरा० २२८
जत्थ ण होज्ज तणाई	भ० आरा० १६८४
जत्थ णिसण्णो पुच्छइ	आय० ति० ४–६
जत्थ णिसण्णो पुच्छइ	आय० ति० ४–१२
जत्थ ठ्थइ जिणणाहो	जंबू० प० १३–१०३
जत्थ दु वेदड्ढणगो	जंबू० प० ८–१२४
जत्थ पुण उत्तमट्ठम-	भ० आरा० ६८४
जत्थ लयपल्लवेहि य	जंबू० प० ४–२६०
जत्थ वरणेमिचंदो	गो० क० ४०८
जत्थ वहो जीवाणं	धम्मर० १४
जत्थुद्देसे जायदि	तिलो० सा० ८०
जत्थेक्कु मरइ जीवो +	पंचस० १–८३
जत्थेक्कु मरइ जीवो +	गो० जी० १६२
जत्थेयारहसड्ढा	अंगप० १–४७
जत्थेव चरइ बालो ×	भ० आरा० १२०३
जत्थेव चरदि बालो ×	मूला० ३२६
जदणाए जोगपरिभा-	भ० आरा० १६५
जदं चरे जद चिट्ठे *	मूला० १०१३
जदं चरे जदं तिट्ठे *	अगप० १–१७
जद तु चरमाणस्स	मूला० १०१४
जदि अधिवाधिज्ज तुमं	भ० आरा० १४४०
जदि आयरिओ छेद	छेदपिं० २४८
जदि इदरो सोऽजोग्गो	मूला० १६८
जदि एगणिसं वसदिय-	छेदपिं० १३५
जदि कुणदि कायखेद	पवयणसा० ३–५०
जदि कोइ मेरुमत्तं	भ० आरा० १५६३
जदि गोउ(पु)च्छविसेसं	लद्धिसा० १३७
जदि-गोचारस्स विहिं	अगप० ३–२४
जदि चरणकरणसुद्धो	मूला० १६७
जदि जीवादो भिण्णं	कत्ति० अणु० १७६
जदि जीवो ण सरीर	समय० २६
जदि ण य हवेदि जीवो	कत्ति० अणु० १८३
जदि ण हवदि सव्वण्हू	कत्ति० अणु० ३०३
जदि ण हवदि सा सत्ती	कत्ति० अणु० २१५
जदि तस्स उत्तमंगं	भ० आरा० १६६६
जदि तं हवे असुद्ध	मूला० ३२४
जदि तारिसाओ तुम्हं	भ० आरा० १६०४
जदि ते ण संति अट्ठा	पवयणसा० १–३१
जदि ते विसयकसाया	पवयणसा० ३–४८
जदि तेसिं वाधादो	भ० आरा० १६७२
जदि दव्वे पज्जाया	कत्ति० अणु० २४३
जदि दंसणेण सुद्धा	पवयणसा० ३–२४से०१३(ज)
जदि दा अभूदपुव्व	भ० आरा० १६३०
जदि दा एव एदे	भ० आरा० १४४८
जदि दा जणेइ मेहुण-	भ० आरा० ६२८
जदि दा तह अण्णाणी	भ० आरा० १४३०
जदि दा रोगा एक्कम्मि	भ० आरा० १०५४
जदि दाव विहिंसिज्जइ	भ० आरा० १०२१
जदि दा विहिंसदि णरो	भ० आरा० १०४६
जदि दा सवदि असंते-	भ० आरा० १४२०
जदि दा सुभाविदप्पा	भ० आरा० १६४८
जदि दिवसे संचिट्ठदि	भ० आरा० १६६७
जदि धरिसणमेरिसयं	भ० आरा० ४६४
जदि पच्चक्खमजाय	पवयणसा० १–३६
जदि पढदि बीवहत्थो	मूला० ६०६
जदि पढदि बहुसुदाणि य	मोक्खपा० १००
जदि पवयणस्स सारो	भ० आरा० १८
जदि पुग्गलकम्ममिणं	समय० ८५
जदि पुण चडालादी	छेदपिं० ३०१
जदि पुण परवादिविवा-	छेदपिं० १४२
जदि पुण मुहम्मि पस्सदि	छेदपिं० ६६
जदि पुण विराहिऊणं	छेदपिं० २८७
जदि मरदि सासणो सो	लद्धिसा० ३४६
जदि मूलगुणे उत्तर-	भ० आरा० ५८४
जदि वत्थुदो वि भेदो	कत्ति० अणु० २४६
जदि वा एस ण कीरेज्ज	भ० आरा० १६७७
जदि वा सवेज्ज संते-	भ० आरा० १४२१
जदि वि असंखेज्जाणं	लद्धिसा० १४१
जदि वि कहचि वि गथा	भ० आरा० ११४२
जदि विक्खादा भत्तप-	भ० आरा० १६७६
जदि वि य करेंति पावं	मूला० ८६६
जदि वि य से चरिमंते	भ० आरा० १६६०
जदि वि विचिचदि जंतू	भ० आरा० ११६१
जदि विसमो सथारो	भ० आरा० १६८५
जदि विसयगंधहत्थी	भ० आरा० १४११
जदि वि सयं थिरबुद्धी	भ० आरा० ३३३

जिणवयण सद्दहाणो मूला० ७३१
जिणवयणमिदमूदं भ० आरा० १४६०
जिणवयणे अणुरत्ता मूला० ७२
जिणवयणेयग्गमणो कत्ति० अणु० ३५६
जिणवर-चरणंबुरुहं भावपा० १५१
जिणवर-मएण जोई मोक्खपा० २०
जिणवर-वयणविणिग्गय- जंबू० प० १३-१४४
जिणवर-सासणमतुल भावस० ५६६
जिणवरु झावहिं जीव तुहुँ पाहु० दो० १६७
जिणवंदणापविट्ठा तिलो० प० ४-६२७
जिणसत्थादो अट्ठे पवयणसा० १-८६
जिणसमकोट्ठट्ठविदा तिलो० सा० ८४२
जिणसासण-माहप्पं कत्ति० अणु० ४२२
जिण-सिद्ध-साहु-धम्मा भ० आरा० ३२२
जिण-सिद्ध-सूरि-पाठय- वसु० सा० ३८०
जिण-सिद्धाणं पडिमा तिलो० सा० १०१५
जिणहरि लिहियइं मंडियइं सावय० दो० २०१
जिणु अच्चइ सो अक्खयहिं सावय० दो० १८५
जिणु गुणु देइ अचेयणु वि सावय० दो० २१८
जिणु सुमिरहु जिणु चितवहु जोगसा० १६
जिणो देवो जिणो देवो कल्लाणा० ४६
जिणोवदिट्ठागमभावणिज्जं तिलो०प० ३-२१५
जिण्णिं वत्थिं जेम बुहु परम० प० २-१७६
जिण्णुद्धारपदि(इ)ट्ठा- रयणसा० ३२
जित्थु ण इंदिय-सुह-दुहइँ परम० प० १-२८
जिदउवसग्गपरीसह मूला० ५२०
जिदकोहमाणमाया मूला० ५६१
जिदणिद्दा तल्लिच्छा भ० आरा० ६६७
जिदमोहस्स दु जइया समय० ३३
जिदरागो जिददोसो भ० आरा० १६६८
जिब्भाए वि लिहतो भ० आरा० ४८१
जिब्भाछेयण णयणा- वसु० सा० १६८
जिब्भा जिब्भगलोला तिलो० प० २-४२
जिब्भा जिब्भिगसण्णा तिलो० सा० १५६
जिब्भामूलं बोलेइ भ० आरा० १६६१
जिब्भिंदिउ जिय संवरहि सावय० दो० १२४
जिब्भिंदियणोइंदिय- तिलो० प० ४-१०६१
जिब्भिंदियसुदणाणा- तिलो० प० ४-६८५
जिब्भुक्कस्सखिदीदो तिलो० प० ४-६८६
जिब्भोवत्थणिमित्तं मूला० ६८८

जिम चिंतिज्जइ घरु घरिणि सुप्प० दो० ६९
जिम झाइज्जइ वल्लहउ सुप्प० दो० ६
जिम लोणु विलिज्जइ पाणियहँ पाहु० दो० १७६
जिय अणुमित्तु वि दुक्खडा परम० प० २-१२०
जियकोहो जियमाणो धम्मर० १३५
जियभय-जियउवसग्गो जोगिभ० २२
जिय मंतइं सत्तक्खरइं सावय० दो० २१५
जिह छव्वीसं ठाण पचसं० ५-६६
जिह तिण्ह तीसाणं * पचस० ५-६५
जिह तिण्हं तीसाणं * पंचसं० ४-२७२
जिह पढमं उणतीसं पचसं० ५-८१
जिह समिलहिं सायरगयहिं सावय० दो० ३
जीइ दिसाए वण्णा आय० ति० ६-१७
जीउ वि पुग्गलु कालु जिय परम० प० २-२२
जीउ सचेयणु दव्वु मुणि परम० प० २-१७
जीए चउधणुमाणो तिलो० प० ४-१०८६
जीए जीओ दिट्ठो तिलो० प० ४-१०७७
जीए ण होति मुणिणो तिलो० प० ४-१०५६
जीए पस्स(सेय) जलाणिल- तिलो०प०४-१०७१
जीए लाला सेम्मच्छे- तिलो० प० ४-१०६७
जीओप्पत्तिलयाणं तिलो० प० ४-२१५७
जीरदि समयपबद्धं × गो० क० ५
जीरदि समयपबद्धं × कम्मप० ५
जीवइ ण जीवइ च्चिय आय० ति० ८-१७
जीवकदी तुरिमंसा तिलो० प० ४-१८२
जीवकम्माण उहयं भावसं० ३२४
जीवगदमजीवगदं भ० आरा० ८१०
जीवगुणठाणसण्णा- सिद्धत० १
जीवगुणे तह जोए सिद्धत० ३
जीवट्ठाणवियप्पा पचस० १-३३
जीवणिबद्धं देहं बा० अणु० ६
जीवणिबद्धा एदे(ए) समय० ७४
जीवणिबद्धा बद्धा मूला० ९
जीवत्तं भव्वत्तम- गो० क० ८१९
जीवत्तं भव्वत्त भावति० १००
जीवदया दम सच्चं सीलपा० १९
जीवदि जीविस्सदि जो भावति० १३
जीवदुगं उत्तट्ठं गो० जी० ६२१
जीव-दु विदेहमज्झे तिलो० सा० ७७७
जीवपएसप्पचयं भावस० ६२२

वाक्य	स्थल
जीवा पुग्गलकाया	पचत्थि० ४
जीवा पुग्गलकाया	पचत्थि० २२
जीवा पुग्गलकाया	पचत्थि० ६७
जीवा पुग्गलकाया	पचत्थि० ९१
जीवा पुग्गलकाया	पंचत्थि० ९८
जीवा पुग्गलकाया	दव्वस० णय० ३
जीवा पोग्गलकाया	पवयणसा० २-४३
जीवा पोग्गलकाया	णियमसा० ९
जीवा पोग्गलधम्मा	तिलो० प० १-९२
जीवावग्ग विसोधिय	जंबू० प० २-२९
जीवावग्ग इसुणा	जंबू० प० ६-१२
जीवा-विक्खंभाणं	तिलो० प० ४-२५९५
जीवा-विक्खंभाणं +	जंबू० प० ६-११
जीवा-विक्खंभाणं +	तिलो० सा० ७६४
जीवा वि दु जीवाणं	कत्ति० अणु० २१०
जीवा सयल वि णाणमय	परम० प० २-९७
जीवा संसारत्था	पचत्थि० १०९
जीवाहदइसुपादं	तिलो० सा० ७६२
जीवा हवंति तिविहा	कत्ति० अणु० १९२
जीवा हु ते वि दुविहा	दव्वस० णय० १०४
जीविदमरणे लाहा-	मूला० २३
जीविदरे कम्मचये	गो० जी० ६४२
जीवे कम्मं बद्धं	समय० १४१
जीवेण सयं बद्धं	समय० ११६
जीवे धम्माधम्मे	दव्वस० णय० १४८
जीवे व अजीवे वा	समय० १९ क्षे०४ (ज०)
जीवेसु मित्तचिंता	भ० आरा० १६९६
जीवेहिं पुग्गलेहिं य	दव्वस० णय० ९८
जीवो अणंतकालं	कत्ति० अणु० २८४
जीवो अणाइणिच्चो	मावस० २८६
जीवो अणाइणिहणो *	मूला० ९८०
जीवो अणाइणिहणो *	सम्मइ० २-४२
जीवो अणाइणिहणो	कत्ति० अणु० २३१
जीवो अणाइणिहणो	सम्मइ० २-३७
जीवो अणादिकालं	भ० आरा० ७२८
जावो अण्णाणी खलु	अंगप० २-२०
जीवो उवओगमओ	दव्वसं० २
जीवो उवओगमओ	णियमसा० १०
जीवो कत्ता य वत्ता य	अंगप० २-८६
जीवो कम्मणिवद्धो	णाणसा० २
जीवो कम्मं उहयं	समय० ४२
जीवो कसायजुत्तो	मूला० १२२०
जीवो कसायबहुलं	भ० आरा ८१७
जीवो चरित्तदंसण-	समय० २
जीवो चेव हि एदे	समय० ६२
जीवो जिणपण्णत्तो	भावपा० ६२
जीवो, जो ण कसाओ	ढाढसी० १६
जीवो ण करेदि घडं	समय० १००
जीवो णाणसहावो	कत्ति० अणु० १७८
जीवो णाणसुहादी	सुदख० ४४
जीवो त्ति हवदि चेदा	पंचत्थि० २७
जीवो दु पडिक्कमओ	मूला० ६१५
जीवो परिणमदि जदा *	पवयणसा० १-९
जीवो परिणमदि जदा *	तिलो० प० ९-५८
जीवो परिणामयदे	समय० ११८
जीवो पाणणिबद्धो	पवयणसा० २-५६
जीवो बधो य तहा	समय० २९४
जीवो बंधो य तहा	समय० २९५
जीवो बंभा जीवम्मि	भ० आरा० ८७८
जीवो भमइ भमिस्सइ	आरा० सा० १४
जीवो भवं भविस्सदि	पवयणसा० २-२०
जीवो भावाभावो	दव्वस० णय० ११०
जीवो मोक्खपुरक्कड-	भ० आरा० १८५७
जीवो ववगदमोहो	पवयणसा० १-८१
जीवो वि हवइ पावं	कत्ति० अणु० १९०
जीवो वि हवइ भुत्ता	कत्ति० अणु० १८९
जीवो सयं अमुत्तो	पवयणसा० १-५५
जीवो सया अकत्ता	भावसं० १७९
जीवो स-सहावमओ	दव्वस० णय० ३९९
जीवो सहावणियदो	पंचत्थि० १५५
जीवो हवेइ कत्ता	कत्ति० अणु १८८
जीवो हु जीवदव्वं	वसु० सा० २९
जीहग्गे अइकसिणं	रिट्ठस० ३०
जीहा जल ण मेलइ	रिट्ठस० १४१
जीहासहस्सजुगजुद-	तिलो० प० ४-१८७३
जीहोट्ठदंतणासा-	तिलो० प० ४-१०६९
जुगमं(वं) समंतदो सो	तिलो० प० ४-१७८९
जुगलाणि अणंतगुणं	तिलो० प० ४-३५६
जुगवं वट्टइ णाणं	णियमसा० १६०
जुगवं संजोगित्ता	गो० क० ३३६

जे मंदरजुत्ताइ	तिलो० प० ४–४०–४६
जे मायाचाररदा	तिलो० प० ४–२५०२
जे रयणत्तउ णिम्मलउ	परम० प० २–३२
जे रायसंगजुत्ता	भावपा० ७२
जे वड्ढिदा दु चदा	जबू० प० १२–४२
जे वयणिज्जवियप्पा	सम्मइ० १–४३
जे वि अहिंसादिगुणा	भ० आरा० ४७
जे वि य अरणागणादो ×	छेदपिं० १७०
जे वि य अरणागणादो ×	छेदपिं० १८१
जे सच्चवयणहीणा	तिलो० प० ३–२०२
जे वि हु जहण्णिय ते-	भ० आरा० १६४०
जे सरमि सतुट्ठ-मण	परम०प०२–१११ चे०४
जे सखाई खंधा	दव्वस० णय० ३२
जे सघयणाईया	सम्मइ० २–३५
जे संतवायदोसे	सम्मइ० ३–५०
जे संसारसरीरभोगविसये	तिलो० प० ४–७०२
जे संसारी जीवा	भावसं० ४
जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिं	जोगसा० १०७
जेसिं अत्थि सहाओ	पचत्थि० ५
जेसिं अमेज्झमज्झे	रयणसा० १४०
जेसिं आउसमाइं	भ० आरा० २११०
जेसिं आउसमाणं	भावस० ६७७
जेसिं जीवसहावो +	पचत्थि० ३५
जेसिं जीवसहावो +	भावपा० ६३
जेसिं ण संति जोगा ÷	गो० जी० २४२
जेसिं ण संति जोगा ÷	पंचसं० १–१००
जेसिं तरुण मूले	तिलो० प० ४–६१३
जेसिं विसएसु रदी	पवयणसा० १–६४
जेसिं हवंति विसमा-	भ० आरा० २१११
जेसिं हुंति जहण्णा	आरा० सा० १०६
जे सुणति धम्मक्खरइँ	सावय० दो० ११८
जे सुद्धवीरपुरिसा-	धम्मर० १८४
जे सेसा णरतिरिया	जबू० प० ११–१६१
जे सोलस कप्पाइ	तिलो० प० ८–१४८
जे सोलस कप्पाइ	तिलो० प० ८–१७८
जे सोलस कप्पाइं	तिलो० प० ८–५२३
जे सोलस कप्पाणं	तिलो० प० ८–५२६
जेहउ जज्जरु णरय-घरु	परम० प० २–१४६
जेहउ जज्जरु णरय-घरु	जोगसा० ५१
जेहउ णिम्मलु णाणमउ	परम० प० १–२६
जेहउ मणु विसयहँ रमइ	जोगसा० ५०
जेहउ सुद्धअयासु जिय	जोगसा० ५६
जेहा पाणहँ झुपडा	पाहु० दो० १०८
जेहिं ण दिण्ण दाणं	भावस० ५६६
जेहिं ण णिय धणु विलसियउ	सुप्प० दो० ६३
जेहिं अणेया जीवा ×	गो० जी० ७०
जेहिं अणेया जीवा ×	पचस० १–३२
जेहिं ज्झाणग्गिवाणेहिं	पचगु० भ० २
जेहिं दु लक्खिज्जंते *	पंचस० १–३
जेहिं दु लक्खिज्जंते *	गो० जी० ८
जेहिं दु लक्खिज्जते *	गो० क० ८१२
जेहिं जिणह णिहिं वल्लहउ	सुप्प० दो० ६२
जे हीणा अवहारे	लद्धिसा० ४७०
जे हुंति तत्थ आया	आय० ति० २१–७
जें दिट्ठे तुट्टंति लहु	परम० प० १–२७
जो अजुदाऊ देवो	तिलो० प० ३–११७
जो अणुमणणं ण कुणदि	कत्ति० अणु० ३८८
जो अणुमेत्तु वि राउ मणि	परम० प० २–८१
जो अण्णेसि दव्वं	छेदपिं० ६६
जो अण्णोण्णपवेसो	कत्ति० अणु० २०३
जो अत्थो पडिसमयं	कत्ति० अणु० २३७
जो अपरिमिदपराधो	छेदपिं० २५३
जो अप्पणा दु मण्णदि	समय० २५३
जो अप्पणो सरीरे	धम्मर० ११३
जो अप्पसुक्खहेदु	भ० आरा० १२२१
जो अप्पाणं जाणदि	कत्ति० अणु० ४६३
जो अप्पाणं झायदि	तच्चसा० ५७
जो अप्पा तं णाणं	तच्चसा० ४४
जो अप्पा सुद्ध वि मुणइ	जोगसा० ६५
जो अब्बंभ सेवदि	छेदपिं० ५०
जो अभिलासो विसए-	भ० आरा० १८२६
जो अवमाणणकरणं	भ० आरा० १४२६
जो अवलेहइ णिच्चं	वसु० सा० ८४
जो अहिलसेदि पुण्ण	कत्ति० अणु० ४१०
जो आउचणकालो	सम्मइ० ३–३६
जो आदभावणमिणं +	समय० ११ क्षे०२(ज०)
जो आदभावणमिण +	तिलो० प० ६–४४
जो आयरेण मण्णदि	कत्ति० अणु० ३१२
जो आयासइ मणु धरइ	परम० प० २–१६४
जो आरंभं ण कुणदि	कत्ति० अणु० ३८५

जोयणदलवासजुदो तिलो० प० ४-२७५२
जोयणदलविक्खंभो तिलो० प० ४-१६२८
जोयणपमाणसंठिद- तिलो० प० १-६०
जोयण-पंचसयाइं तिलो० प० ४-२७२१
जोयण-पंचसयाणि तिलो० प० ४-२७१६
जोयण-पंचसहस्सा तिलो० प० ७-१८६
जोयण-पंचसहस्सा तिलो० प० ७-१६८
जोयण-पंचूणइया जंबू० प० २-४६
जोयणमधियं उदयं तिलो० प० ४-७७६
जोयण-मुहुवित्थारा जंबू० प० ४-२७८
जोयणमेक्कट्ठिकए तिलो० सा० ३३७
जोयणमेत्तपमाणो जंबू० प० १३-१०६
जोयण य छस्सयाणि तिलो० प० ४-२७२०
जोयणया छण्णवदी तिलो० प० ८-५३
जोयण-लक्खं तिदियं तिलो० प० ४-२७६८
जोयण-लक्खं तेरस तिलो० प० ४-२४२५
जोयण-लक्खं वासो तिलो० सा० १५
जोयण-लक्खायामा तिलो० प० ५-६४
जोयण-लक्खायामा तिलो० प० ६-६५
जोयण-वीससहस्सं तिलो० सा० १२४
जोयण-वीससहस्सा तिलो० प० १-२७०
जोयण-वीससहस्सा तिलो० प० ४-१७५३
जोयण-सगदु दु छक्कि तिलो० सा० ३१२
जोयण-सट्ठिसहस्सं तिलो० प० ४-२०२१
जोयण-सट्ठी रुंदं तिलो० प० ४-२१८
जोयण-सत्तसहस्सं तिलो० सा० १७६
जोयण-सत्तसहस्सं तिलो० प० ४-२०६४
जोयण-सदं तियकदी तिलो० प० ६-१०२
जोयण-सद-मज्जादं तिलो० प० ४-८६७
जोयणसदेक्क बे चउ जंबू० प० ३-१६८
जोयण-सयआयामं तिलो० सा० ६८१
जोयण-सयआयामा जंबू० प० ४-४६
जोयण-सयआयामा जंबू० प० ५-६
जोयण-सयआयामा जंबू० प० ५-३६
जोयणसयउव्विद्धा जंबू० प० २-१०४
जोयणसयदीहत्ता तिलो० प० ८-४३६
जोयणसयद्धतुंगं जंबू० प० ५-६३
जोयणसयप्पमाणा जंबू० प० ११-१५७
जोयणसयमुत्तुंगा तिलो० प० ४-२१०२
जोयणसयमुव्विद्धा जंबू० प० ६-४५
जोयणसयमुव्विद्धो तिलो० प० ४-२७०
जोयणसयविक्खंभा तिलो० प० ४-२४६१
जोयणसयं समहियं जंबू० प० ११-२३३
जोयणसयाणि दोण्णि तिलो० प० ४-२८३६
जोयणसहस्स एदे जंबू० प० ३-२०६
जोयणसहस्सगाढा तिलो० प० ५-६१
जोयणसहस्सगाढो तिलो० प० ४-१७७६
जोयणसहस्सगाढो तिलो० प० ४-२५७५
जोयणसहस्सगाढो तिलो० प० ५-५८
जोयणसहस्सतुंगा तिलो० प० ५-१३७
जोयणसहस्सतुंगा जंबू० प० १०-२८
जोयणसहस्सतुंगो जंबू० प० ४-६८
जोयणसहस्समधियं तिलो० प० ५-३१६
जोयणसहस्समेक्कं तिलो० प० ४-१६३
जोयणसहस्समेक्कं तिलो० प० ४-१८०८
जोयणसहस्समेक्कं तिलो० प० ४-२०७३
जोयणसहस्समेक्कं तिलो० प० ४-२५३३
जोयणसहस्समेक्कं तिलो० प० ४-२५७७
जोयणसहस्समेक्कं तिलो० प० ४-२६०६
जोयणसहस्समेक्कं तिलो० प० ४-२७४७
जोयणसहस्समेक्कं तिलो० प० ५-२३६
जोयणसहस्सवासा तिलो० प० ५-६८
जोयणसंखासंखा तिलो० सा० २२०
जो रत्तीए चरियं छेदपिं० ७२
जो रयणत्तयजुत्तो दव्वसं० ५३
जो रयणत्तयजुत्तो कत्ति० अणु० ३६२
जो रयणत्तयजुत्तो मोक्खपा० ४३
जो रयणत्तयणासो पवयणसा० ३-२४क्षे० १६(ज)
जो रयणत्तयमइओ आरा० सा० २०
जो रसेंदिय फासे य मूला० ५२८
जो रायदोसहेदू कत्ति० अणु० ४४५
जो रित्तो पावजुओ आय० ति० ८-१२
जो रुक्खमूलजोगी छेदपिं० १३३
जोऽरूविरूविजीवा- अंगप० २-१२
जो लेइ अणसणं चिय रिट्ठस० २५२
जो लोहं णिहणित्ता कत्ति० अणु० ३३६
जो वज्जेदि सचित्तं कत्ति० अणु० ३८१
जो वट्टणं च मण्णइ * णयच० ४०
जो वट्टणं ण(च) मण्णइ * दव्वस० णय० २१२
जो वट्टमाणकाले कत्ति० अणु० २७४

* पृ० ११७ पर मुद्रित समय० का 'जा' (=यावत्) शब्दसे प्रारम्भ होनेवाला वाक्य और यह समान हैं।

झ

ट

ठ

ड

ढ

ण

णत्थि वय-सील-संजम-	भावसं० ५५१
णत्थि विणा परिणामं	पवयणसा० १-१०
णत्थि सद्दो परदो वि य	गो० क० ८८४
णदि-णिग्गमे पवेसे	तिलो० सा० ६०१
णदि-तीर-गुहादि-ठिया	तिलो० सा० ८७०
ण दु णयपक्खो मिच्छा	दव्वस० णय० २६२
ण परीसहेहिं संता	भ०आरा० १७००
ण पविट्ठो णाविट्ठो	पवयणसा० १-२६
ण पियति सुरा ण य खति	भ० आरा० १५३३
ण बलाउ-साउ-अट्ठ	मूला० ४८१
णभअट्ठणवदुगपण-	तिलो० प० ४-२६३५
णभअट्ठदुअट्ठसगपण-	तिलो० प० ४-२६५६
णभइगपणणभसगदुग-	तिलो० प०४-२६७७
णभएक्कपंचदुगसग-	तिलो० प० ४-२७५६
णभ-एय-पणसत्थो	गो० जी० ५७२क्षे०१
णभ-गजदंत-णिभाणं	तिलो० प० ४-४२२
णभगयणपचसत्ता	तिलो० प० ७-३१८
णभ चउ णव छक्क तियं	तिलो० प० ४-११६०
णभ चउवीसं बारस	गो० क० ४७२
णभ छक्कड इगि पण णभ	तिलो० प० ४-२८६६
णभछक्कसत्तसत्ता	तिलो० प० ७-२४७
णभ-ण-ति-छ-एक्केक्कं	तिलो० प० ४-११६३
णभ-णव-णभ-णवय-तिया	तिलो०प० ७-३८२
णभणवतियअडचउपण	तिलो० प० ४-२६३२
णभतिगिणभडगि दोद्दो	गो० क० ३४२
णभतियतियइगिदोद्दो-	तिलो० प० ४-२६६६
णभतियदुगदुगसत्ता	तिलो० प० ७-३३३
णभदोणवपणचउदुग-	तिलो० प० ४-२६८७
णभ दो पण णभ तिय चउ	तिलो०प०४-२८६०
णभ पण णव णभ अड णव	तिलो०प०४-२८५१
णभ पण दु-छ-पंचंबर	तिलो० प० ४-११७५
णभपणदुगसगछक्कट्टा-	तिलो०प०४-१२६६
ण भवो भंगविहीणो	पवयणसा० २-८
णभ सत्त गयण अड णव	तिलो०प०४-२६२५
णभसत्तसत्तणभचउ	तिलो० प० ४-२८४३
णमकारेपिणु पंचगुरु	सावय० दो० १
ण मरइ तावत्थ मणो	तच्चसा० ६४
ण मरति ते अकाले	तिलो० सा० १६४
णमह गुणरयणभूसण-	गो० क० ८६६
णमह णरलोय-जिणघर-	तिलो० सा० ५६१

णमसामि पज्जुण्णो	णिव्वा० भ० ५
णमिओ सि ताम जिणवर	पाहु० दो० १४१
णमिऊण अणंतजिणे	पंचस० ३-१
णमिऊण अभयणंदि	गो० क० ७८५
णमिऊण जिणवरिंदे	भावपा० १
णमिऊण जिणं वीरं	णियमसा० १
णमिऊण जिणिदाणं	पंचस० ५-१
णमिऊण णमियणमिय	आय० ति० १-१
णमिऊण णेमिचंदं	गो० क० ८७
णमिऊण णेमिणाहं	गो० क० ४५१
णमिऊण णेमिणाहं	जंबू० प० १२-१
णमिऊण देवदेवं	धम्मर० १
णमिऊण पुप्फयंतं	धम्मर० ६-१
णमिऊण य त देवं	मोक्खपा० २
णमिऊण य पंचगुरुं	छेदस० १
णमिऊण वड्ढमाणं	जंबू० प० १-८
णमिऊण वड्ढमाणं	रयणसा० १
णमिऊण वड्ढमाणं	गो० क० ३५८
णमिऊण सव्वसिद्धे	चा० अणु० १
णमिऊण सुपासजिणं	जंबू० प० ५-१
ण मुणइ इय जो पुरिसो	भावस० ३६८
ण मुणइ जिणकहियसुयं	भावस० १६३
ण मुणइ वत्थुसहावं *	णयच० ६६
ण मुणइ वत्थुसहावं *	दव्वस० णय० २३६
ण मुणंति सयं धम्मं	भावस० १८१
ण मुयइ पयडि अभव्वो ×	भावपा० १३६
ण मुयइ पयडिमभव्वो ×	समय० ३१७
ण मुयइ सग भावं	तच्चसा० ५५
ण मुयति तह वि पावा	वसु० सा० १५०
णमोत्थु धुदपावाण	मूला० ३८
ण य अत्थि को वि वाही	आरा० सा० १०२
ण य इंदियकरणजुआ(दा)	पंचस० १-७४
ण य इंदियाणि जीवा	पंचत्थि० १२१
ण य कत्थ वि कुणइ रइं	वसु० सा० ११५
ण य कुणइ पक्खवायं	गो० जी० ५१६
ण य को वि देदि लच्छी	कत्ति० अणु० ३१६
ण य गच्छदि धम्मत्थी	पंचत्थि० ८८
ण य चिंतइ देहत्थं	भावसं० ६२८
ण य जायति असंता	भ० आरा० ३६२
ण य जे भव्वाभव्वा +	गो० जी० ५५८

ण लहंति फलं गरुयं	भावस० ५५०
णलिणविमाणारूढो	जंबू० प० ५–१०७
णलिणं चउसीदिगुणं	तिलो० प० ४–२९८
णलिणा य णलिणगुम्मा	जंबू० प० ४–१११
णलिणा य णलिणगुम्मा	तिलो०प०४–१९६४
णव अट्ठ पंच णव दुग	तिलो० प० ७–३५
णव अट्ठ सत्त छक्क	कसायपा० ४३
णव अट्ठेक्कतिछक्का	तिलो० प० ७–३८६
णव अड सग णव णव तिय	तिलो०प०४–२८९७
णवअभिजिप्पहुदीणं	तिलो० प० ७–४६१
णवइगणवसगछप्पण-	तिलो० प० ४–२६५०
णव इग दो दो चउ णभ	तिलो० प० ४–२८११
णव एक्क पंच एक्क	तिलो० प० ४–२९०३
णव एग एग सुण्णं	जंबू० प० ३–१३४
णव कूडा चेट्ठंते	तिलो० प० ४–२०५८
णव कोडिपयपमाणं	सुदखं० ५०
णवकोडीपडिसुद्धं	मूला० ६४४
णवकोडीपरिसुद्धं	मूला० ४८२
णवकोडीपरिसुद्धं	मूला० ८११
णवगाई बंधंतो	पचसं० ४–२४६
णवगेविज्जाणुद्दिस- ※	गो० क० ३०
णवगेविज्जाणुद्दिस- ※	कम्मप० ८४
णवचउचउपणछद्दो-	तिलो० प० ४–२६७६
णवचउछप्पंचतिया	तिलो० प० ७–३८१
णव चउवीस बारस	गो० क० ४७२
णवचउसत्तणहाइ	तिलो० प० ७–२५४
णवचपयगधड्ढा	जंबू० प० ३–२४
णवचंपयवरवण्णा	जंबू० प० ६–६३
णव चेय सहस्सा अड	जंबू० प० १०–१४
णव चेव होंति कूडा	जंबू० प० ७–८२
णव छक्क चदुक्क च य	गो० क० ४५६
णव छक्क चदुक्कं च हि	पचसं० ४–२३६
णव छक्कं चत्तारि य +	पचसं० ५–६
णव छक्कं चत्तारि य +	पंचस० ५–२७६
णव जोयणउच्छेहो	तिलो० प० ५–२००
णवजोयणदीहत्ता	तिलो० प० ४–२५१४
णवजोयणयसहस्सा	तिलो० प० ४–२८३७
णवजोयणलक्खाणि	तिलो० प० ४–२५६१
णवजोयणलक्खाणि	तिलो० प० ८–६६
णवजोयणसत्तसया	तिलो० प० ८–७२

णवजोव्वणं पि पत्तो	धम्मर० ८४
णवणउदिअधियअट्ठसय-	तिलो० प० ४–६५५
णवणउदिअधियचउसय-	तिलो० प० ४–६५६
णवणउदि णवसयाणि	तिलो० प० २–१८०
णवणउदि सगसयाहिय-	गो० क० ४६२
णवणउदि-सहस्सं णव-	तिलो० प० ७–५६४
णवणउदि-सहस्साइं	तिलो० प० ४–१३६३
णवणउदि-सहस्सा छस्स-	तिलो०प०७–२३६
णवणउदि-सहस्सा छस्स-	तिलो०प०७–२३९
णवणउदि-सहस्सा णव-	तिलो० प० ७–१५०
णवणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४–१७६२
णवणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४–२२२३
णवणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४–२२३७
णवणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४–२२१३*
णवणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ७–१४५
णवणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ७–१४८
णवणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ७–५७८
णवणउदि-सहस्सेहिं य	जंबू० प० ८–५८
णवणउदि-सहिद णवसय	तिलो० प० २–१८६
णवणउदिं च सहस्सा	जंबू० प० ४–३६
णवणउदि च सहस्सा	जंबू० प० ७–२६
णवणउदिं च सहस्सा	जंबू० प० ७–४६
णवणउदी-जुद-णवसय-	तिलो० प० २–१६०
णवणउदी तिण्णिसया	तिलो० प० २–५६
णवणभछण्णवपणतिय-	तिलो०प०४–२६०५
णव णभ तिय इग छण्णभ	तिलो०प०४–२८६७
णवणभपणअडचउपण-	तिलो०प०४–२६४३
णवणवइ-जोयणाणि	जंबू० प० ११–१६२
णवणवकज्जविसेसा	कत्ति० अणु० २२६
णवणवदि-जुद-चदुस्सय-	तिलो० प० २–१६७
णवणवदि-जुद-चदुस्सय-	तिलो० प० २–१८१
णवणवदि-सहस्साणि	तिलो० प० ७–४२७
णवणवदि-सहस्साणि	तिलो० प० ७–१४१
णवणवदिं च सहस्सा	जंबू० प० १२–१००
णव णव बारस णव गइ-	सिद्धंत० ३२
णव णव बिंदु-तिवारं	रिट्ठस० २२०

* इस नम्बर की गाथा के अनन्तर आगरा व सहारनपुरकी प्रतियोंमें 'यहाँ दस गाथा नहीं' ऐसा उल्लेख है, तदनुसार आगेकी गाथाओंकी संख्यामें १० की वृद्धि की गई है।

णवणिहि-चउदहरयणं	बा० अणु० १०
णव-णोकसायवग्गं	भावपा० ८६
णव-णोकसाय-विग्घच-	लद्धिसा० ६०८
णव तिय णभ खं णव दो	तिलो० प० ४-२६६६
णवदसएक्कारसमी	छेदपिं० २३६
णव दस सत्तत्तरियं	पंचस० ५-२७७
णव दस सत्तत्तरियं	पंचस० ५-४१३
णव-दंडा तिय-हत्था	तिलो० प० २-२२३
णव-दंडा बावीसं-	तिलो० प० २-२३२
णवदुगिगिगिदोणिणखदुग-	तिलो० प० ४-२८५६
णवदुत्तरसत्तसए	तिलो० सा० ३३२
णवदुत्तरसत्तसया	जंबू० प० १२-६३
णवदोछअट्टचउपण-	तिलो० प० ४-२६४४
णवपणअडणभचउदुग-	तिलो०प०४-२६८६
णवपणअडदुगअडणव-	तिलो०प०४-२८५३
णव पण दो अडवी चउ	दव्वस० णय० ८४
णव पणवीसं णव छप्पण	तिलो०प०४-२५६०
णव पण्णारसलक्खा	तिलो० सा० १४१
णव पंचणमोक्कारा	छेदपिं० १०
णव पंचाणउदि-सया	पंचस० ५-४४
णवपंचोदयसत्ता	गो० क० ७४०
णवपंचोदयसत्ता	पंचस० ५-२१६
णव पुव्वधरसयाइं	तिलो० प० ४-११३७
णवफड्डयाण करण	लद्धिसा० ४७५
णवबंभचेरगुत्ते	जोगिभ० ७
णवमतिए जलणजमे	तिलो० सा० ६४५
णवमम्मि य जं पुव्वे	भ० आरा० ५६७
णवमासाउगि सेसे	वसु० सा० २६४
णवमी अणक्खरगदा	गो० जी० २२५
णवमीए पुव्वण्हे	तिलो० प० ४-६४७
णवमी छव्वीसदिमा	छेदपिं० २३३
णवमे अंजणे वुत्तो	जंबू० प० ११-११८
णवमे ण किंचि जाणदि	भ० आरा० ८६५
णवमे सुरलोयगदे	तिलो० प० ४-४६८
णव य पदत्था जीवा-	गो० जी० ६२०
णव य पयत्था एदे	मूला० २४८
णव य सहस्सा ओही	तिलो० प० ४-११५६
णव य सहस्सा चउसय-	तिलो० प० ७-२६६
णव य सहस्सा चउसय-	तिलो० प० ७-३१२
णव य सहस्सा चउसय-	तिलो० प० ७-३१८
णव य सहस्सा छस्सय-	तिलो० प० ४-१२२६
णव य सहस्सा णवसय-	तिलो० प० ४-१६८८
णव य सहस्साणि चउ-	तिलो० प० ७-३२८
णव य सहस्सा दुसया	तिलो० प० ४-१७१६
णवरि असंखाणंतिम-	लद्धिसा० २८६
णवरि परियायछेदो	छेदपिं० २६०
णवरि य अपुव्वणवगे	गो० क० ६७७
णवरि य जोइसियाणं	तिलो० प० ७-६१६
णवरि य णामं कूडद्दह-	तिलो० प० ४-२३३६
णवरि य णामदुगाणं	लद्धिसा० ३२३
णवरि य दुसरीराणं	गो० जी० २५४
णवरि य पुवेदस्स य	लद्धिसा० २५६
णवरि य सव्वुवसम्मे	गो० क० १२०
णवरि य सुक्का लेस्सा	गो० जी० ६६२
णवरि विसेसं जाणे	गो० जी० ३१८
णवरि विसेसं जाणे	गो० क० ४४३
णवरि विसेसं जाणे	गो० क० ८२६
णवरि विसेसो एक्को	तिलो० प० ४-२१२६
णवरि विसेसो एक्को	तिलो० प० ४-२१३३
णवरि विसेसो एक्को	तिलो० प० ४-२२६१
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० २-१८८
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ४-२६२
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ४-१७२७
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ४-२०५७
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ४-२३८६
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ८-५६५
णवरि विसेसो कूडं	तिलो० प० ४-२३५४
णवरि विसेसो जाणे	जंबू० प० ४-८६
णवरि विसेसो जाणे	जंबू० प० १२-१६
णवरि विसेसो णियणिय-	तिलो० प० ४-७६२
णवरि विसेसो णेओ	जंबू० प० ५-६१
णवरि विसेसो तस्सि	तिलो० प० ४-२३६४
णवरि विसेसो देवो	तिलो० प० ७-१०७
णवरि विसेसो पंडुग-	तिलो० प० ४-२५८३
णवरि विसेसो पुव्वा-	तिलो० प० ७-८
णवरि विसेसो सव्वट्ट-	तिलो० प० ८-६८३
णवरि विसेसो सव्वट्ट-	तिलो० प० ८-६६५
णवरि समुग्घादगदे	लद्धिसा० ६१५
णवरि समुग्घादम्मि य	गो० जी० ५४५
णवरि हु णवगेवेज्जा	तिलो० प० ८-६७८

णाणप्पवादपुव्वं	अंगप० १–५६
णाणब्भासविहीणो	रयणसा० ६४
णाणमधम्मो ण हवइ	समय० ३६६
णाणमयभावणाए	आरा० सा० ४८
णाणमयविमलसीयल-	भावपा० १२३
णाणमयं अप्पाणं	मोक्खपा० १
णाणमयं णियतच्चं	तच्चसा० ४३
णाणमया भावाओ	समय० १२८
णाणम्मि दंसणम्मि य –	भ० आरा० २८६
णाणम्मि दंसणम्मि य –	भ० आरा० २८७
णाणम्मि दंसणम्मि य	दंसणपा० ३२
णाणम्हि दंसणम्मि य	भ० आरा० १६३६
णाणम्हि दंसणम्हि य	मूला० ५७
णाणम्हि भावणा खलु ‡	समय० ११ क्षे० १(ज)
णाणम्हि भावणा खलु ‡	तिलो० प० ६–२५
णाणम्हि य तेवीसा	कसायपा० ४७
णाणवरमारुदजुदो	मूला० ७४७
णाणविणयादिविग्वा-	अंगप० १–२१
णाणविण्णाणसपण्णो	मूला० ६६८
णाण-वियक्खणु सुद्ध-मणु	परम० प० २–२०६
णाण-विहीणहँ मोक्ख-पउ	परम० प० २–७४
णाणस्स केवलीणं	भ० आरा० १८१
णाणस्स णत्थि दोसो	सीलपा० १०
णाणस्स दंसणस्स य	समय० ३६६
णाणस्स दंसणस्स य	भ० आरा० ११
णाणस्स दंसणस्स य *	गो० क० ८
णाणस्स दंसणस्स य *	कम्मप० ८
णाणस्स दंसणस्स य *	पंचसं० २–२
णाणस्स दंसणस्स य *	मूला० १२२२
णाणस्स दंसणस्स य ×	गो० क० २०
णाणस्स दंसणस्स य ×	कम्मप० २१
णाणस्स पडिणिबद्धं	समय० १६२
णाणं अट्ठवियप्पं	दव्वसं० ५
णाणं अट्ठवियप्पो	पवयणसा० २–३२
णाणं अत्थंतगयं	पवयणसा० १–६१
णाणं अपुट्ठे अविसए	सम्मइ० २–२५
णाणं अप्पपयासं	णियमसा० १६४
णाणं अप्प त्ति मदं	पवयणसा० १–२७
णाणं करणविहीणं +	मूला० ६००
णाणं करणविहूणं +	भ० आरा० ७७०
णाणं करेदि पुरिसस्स	भ० आरा० १३३६
णाणं किरियारहियं	सम्मइ० ३–६८
णाणं चरित्तसुद्धं	सीलपा० ६
णाणं चरित्तहीणं	मोक्खपा० ५७
णाणं चरित्तहीणं	सीलपा० ५
णाणं जइ खणधंसी	भावसं० ६६
णाणं जिणेसु य कमा	तिलो० सा० १२
णाणं जिणेहि भणियं	णाणसा० ३
णाणं जीवसरूवं	णियमसा० १६६
णाणं झाणं जोगो	सीलपा० ३७
णाणं ण जादि णेये	कत्ति० अणु० २५६
णाणं णरस्स सारो	दंसणपा० ३१
णाणं णाऊण णरा	सीलपा० ७
णाणंतरायदसयं *	पंचसं० ३–२७
णाणंतरायदसयं *	पंचसं० ४–३२१
णाणंतरायदसयं	पंचसं० ३–७४
णाणंतरायदसयं	पंचसं० ४–४१६
णाणंतरायदसयं	पंचसं० ४–४४०
णाणंतरायदसयं	पंचसं० ४–४५०
णाणंतरायदसयं	पंचसं० ४–४६२
णाणंतरायदसयं –	गो० क० २०१
णाणंतरायदसयं –	पंचसं० ४–४६४
णाणंतरायदसयं	पंचसं० ४–४६६
णाणंतरायदसयं	पंचसं० ५–४७०
णाणंतरायदसयं	वसु० सा० ५२५
णाणं तह विणयादी	सुदख० १०
णाणं दंसणचरणं	दव्वस० णय० ३७०
णाणं दंसणसम्म	चारित्तपा० २
णाणं दंसण सुहवी-	दव्वस० णय० २५
णाणं दंसण-सुह-सत्ति-	दव्वस० णय० १३
णाणं दोसे णासदि	भ० आरा० १२३७
णाणं धणं च कुव्वदि	पंचत्थि० ४७
णाणं पयासओ सो- ×	मूला० ८६६
णाणं पयासओ सो- ×	भ० आरा० ७६६
णाणं परप्पयासं	णियमसा० १६०
णाणं परप्पयासं	णियमसा० १६१
णाणं परप्पयासं	णियमसा० १६२
णाणं पंचविहं पि य ‡	गो० जी० ३००
णाणं पंचविहं(धं) पि य ‡	मूला० ९९१
णाणं पि कुणादि दोसे	भ० आरा० १२२

णाणं पि गुणो णामे-	भ० आरा० १३४०
णाणं पि हि पज्जायं +	णयच० ६०
णाणं पि हु पज्जायं +	दव्वस० णय० २३
णाण पुरिसस्स हवदि	बोधपा० २२
णाण भूयवियारं	कत्ति० अणु० १८१
णाण सम्मादिट्ठि	समय० ४०४
णाणं सरणं मेरं	मूला० ६६
णाणं सिक्खदि णाण	मूला० ३६८
णाणं होदि पमाणं	तिलो० प० १-८३
णाणा उ जो ण भिण्णो	कल्लाणा० ४२
णाणाकुलाइं जाई	भावस० २०७
णाणागुणगणकलिओ	जंबू० प० १३-१६६
णाणागुणतवणिरए	जंबू० प० १-५
णाणागुणहाणिसला	गो० क० २४८
णाणाचारो एसो	मूला० २८७
णाणाजणवदणिचिदो ×	तिलो० प० ४-२२६५
णाणाजणवदणिवहो	जंबू० प० ७-३७
णाणाजणवदणिवहो ×	जंबू० प० ८-२६
णाणाजीवा णाणा-	णियमसा० १५५
णाणाण दंसणाणं	भावस० ३३०
णाणाणरवइ-महिदो	जंबू० प० १३-१४३
णाणातरुवरणिवहा	जंबू० प० ७-१०६
णाणातोरणणिवहा	जंबू० प० १-४३
णाणादुम-गण-गहणं	जंबू० प० १-५१
णाणादुमगणगहणे	जंबू० प० ६-१५१
णाणादेसे कुसलो	भ० आरा० १४८
णाणाधम्मजुदं पि य	कत्ति० अणु० २६४
णाणाधम्मेहिं जुदं	कत्ति० अणु० २५३
णाणाभेअ-विभिण्णं	रिट्ठस० ४२
णाणाभेय-विभिण्णं	रिट्ठस० १४७
णाणाभेयं पढमं	अंगप० २-७२
णाणामणिगणणिवहा	जंबू० प० ३-४३
णाणामणिगणणिवहा	जंबू० प० ८-१०१
णाणामणिरयणमया	जंबू० प० ७-५६
णाणामणिरयणमया	जंबू० प० १२-७४
णाणारयणविचित्तो	तिलो० सा० ६१८
णाणारयणविणिम्मिद-	तिलो० प० ४-२२५२
णाणारयणुवसाहा	तिलो० सा० ६५८
णाणावरणचउक्कं *	गो० क० ४०
णाणावरणचउक्कं *	कम्मप० १११
णाणावरणचउक्कं	पंचस० ४-४७८
णाणावरणचउण्ह	भावति० ३
णाणावरणप्पहुदि य	तिलो० प० १-७१
णाणावरणस्स खए	जंबू० प० १३-१३२
णाणावरणं कम्मं +	भावस० ३३१
णाणावरणं कम्मं +	कम्मप० २८
णाणावरणादीणं	दव्वस० ३१
णाणावरणादीयस्स	समय० १६५
णाणावरणादीया	पंचत्थि० २०
णाणावरणादीहि य	भावपा० ११७
णाणावरणे विग्घे	पंचसं० ५-७७८
णाणाविह-उवयरणा	जंबू० प० ५-२०
णाणाविह-णेत्तफल	तिलो० प० ५-३
णाणाविह-णदिणिकर-	तिलो० प० ४-१०४५
णाणाविह-जिणगेहा	तिलो० प० ४-१२८
णाणाविह-तूरेहिं	तिलो० प० ८-४१६
णाणाविह-वण्णाओ	तिलो० प० २-११
णाणाविह-वत्थेहिं य	जंबू० प० १३-११८
णाणाविह-वाहणया	तिलो० प० ५-६८
णाणासहावभरियं	दव्वस० णय० १७२
णाणि मुएप्पिणु भाउ समु	परम० प० २-४७
णाणिय णाणिउ णाणिएण	परम० प० १-१०८
णाणिहँ मूढहँ मुणिवरहँ	परम० प० २-८६
णाणी कम्मस्स खयत्थ-	भ० आरा० ८०५(वि०)
णाणी खवेइ कम्म	रयणसा० ७२
णाणी गच्छदि णाणी	मूला० ५८६
णाणी णाणमहाओ	पवयणसा० १-२८
णाणी णाणं च सदा	पंचत्थि० ४८
णाणी रागप्पजहो	समय० २१८
णाणी सिव-परमेट्ठी	भावपा० १४६
णाणुग्गमि जसु समसरणि	सावय० दो० १७०
णाणुज्जोएण विणा	भ० आरा० ७७१
णाणुज्जोवो जोवो	भ० आरा० ७६८
णाणु पयासहि परमु महु	परम० प० १-१०४
णाणुवजोगजुदाणं	गो० जी० ६७५
णाणुवहिं संजमुवहिं	मूला० १४
णाणेण झाणसिद्धी	रयणसा० १५७
णाणेण तेण जाणइ	भावस० ६७२
णाणे दंसण-तव-वी-	भ० आरा० ६१०
णाणेण दंसणेण य	सीलपा० ११

णाणेण दसणेण य — दसणपा० ३०
णाणेण सव्वभावा — भ० आरा० १०१
णाणे णाणुवयरणे — वसु० सा० ३२२
णाणेसु सजमेसु य — पचस० ४–३६७
णाणोदयाहिसित्ते — जोगिभ० १४
णाणोदहिणिस्संद — पचस० ४–२
णाणोवओगरहिदेण — भ० आरा० ७६०
णादा चेदा दिट्ठा — अगप० ३–१२
णादारस्स य पण्हा — अंगप० १–४३
णादाऽसंखप्पएसो समयमुवगओ — णियप्पा० ६
णादूण आसवाणं — समय० ७२
णादूण देवलोयं — तिलो० प० ८–५७३
णादूण समयसारं — दव्वस० णय० ४१३
णाभिअधोणिग्गमणं — मूला० ४६६
णाभिगिरिचूलिमुवरि — तिलो० सा० ४७०
णाभिगिरी णाभिगिरी — तिलो० प० ४–२५४३
णामक्खयेण तेजो- — भ० आरा० २१२६
णामट्ठवणा दव्व — दव्वस० णय० २७१
णामट्ठवणा दव्व — अंगप० २–६६
णामट्ठवणा दव्वे — वसु० सा० ३८१
णामट्ठवणा दव्वे — मूला० ५१८
णामट्ठवणा दव्वे — मूला० ५३८
णामट्ठवणा दव्वे — मूला० ५४१
णामट्ठवणा दव्वे — मूला० ५७४
णामट्ठवणा दव्वे — मूला० ६१२
णामट्ठवणा दव्वे — मूला० ६३२
णामट्ठवणा दव्वे — मूला० ६४८
णामदुगे वेयणियट्ठि- — लद्धिसा० २५८
णामदुगे वेयणिये — लद्धिसा० ५६४
णामधुवोदयबारस — लद्धिसा० ३०३
णामधुवोदयबारस — गो० क० ५८८
णामस्स णव धुवाणि य — गो० क० ५२६
णामस्स बंधठाणा — गो० क० ५४४
णामस्स य बधादिसु — गो० क० ७८४
णामस्स य बंधोदय- — गो० क० ६६२
णामस्स य बधोदय- — गो० क० ६६५
णामस्स य बधोदय- — पचसं० ५–३६६
णाम ठवणा दविए — सम्मइ० १–६
णाम ठवणा दवियं — गो० क० ५२
णामाइमक्खराओ — आय० ति० १५–१०

णामाणि जाणि काणिचि- — मूला० ५४२
णामाणि ठावणाओ — तिलो० प० १–१८
णामादीणं छण्णं — मूला० २७
णामे ठवणे हि य सं- — बोधपा० २८
णामेण अरिट्ठजसो — जंबू० प० ११–२६२
णामेण कंतमाला — तिलो० प० ४–४६६
णामेण कामपुप्फं — तिलो० प० ४–११५
णामेण किण्हराई — तिलो० प० ८–६०१
णामेण चित्तकूडो — जंबू० प० ८–३
णामेण चित्तकूडो — तिलो० प० ४–२२०८
णामेण जहा समणो — मूला० १००१
णामेण पभासो त्ति य — जंबू० प० ३–२२३
णामेण भद्दसाल — तिलो० प० ४–१८०३
णामेण भद्दसालो — जंबू० प० ४–४१
णामेण मेच्छखंडा — तिलो० प० ४–२२८६
णामेण य जमकूडो — तिलो० प० ४–२०७४
णामेण वइजयंती — जंबू० प० ६–१०६
णामेण विगयसोया — जंबू० प० ६–७४
णामेण वेणुदेवो — जंबू० प० ६–१५६
णामेण सिरिणिकेदं — तिलो० प० ४–१२३
णामेण सुभद्दमुणी — जंबू० प० १–१७
णामेण हंसगब्भं — तिलो० प० ४–११६
णामे सणक्कुमारो — तिलो० प० ८–१४०
णामेहिं सिद्धकूडो — तिलो० प० ४–१४७
णायकहा छट्ठगं — अगप० १–३६
णायकुमारमुणिंदो — णिव्वा० भ० १५
णायव्वं दवियाणं — दव्वस० णय० १०
णारइयाणं वेरं — धम्मर० ६४
णारकछक्कुव्वेल्ले — गो० क० ३७०
णारयतिरिक्खणरसुर- — गो० जी० २८७
णारयतिरियगदीदो — तिलो० प० ४–१५४०
णारयतिरियणरामर- — कम्मप० ६६
णारयतिरियणरामर- — सिद्धत० १२
णारय-सण्णि-मणुस्स-सु- — गो० क० ६०७
णारंग-पणस-पउरो — जंबू० प० ४–४५
णारंग-फणस-णिवहं — जंबू० प० ८–८७
णालीतिगस्स मज्झे — छेदपिं० ७४
णावाए उवरि णावा — तिलो० प० ४–२३६७
णावाए णिब्बुडाए — भ० आरा० १५४३
णावागदाव बहुगइ- — भ० आरा० १७१८

णावागरुडगइंदा	तिलो० प० ३-७६
णावा गरुडिभमयरं	तिलो० सा० २३३
णावा जह सच्छिद्दा	भावस० ५४८
णाविय-कुलाल-तेलिय-	छेदपिं० २२१
णासइ धणु तसु घरतणउ	सावय० दो० ६२
णासग्गि अब्भिंतरहँ	जोगसा० ६०
णासग्गे करजुअल	रिट्ठस० १६५
णासग्गे थणमज्झे	रिट्ठस० ६८
णासदि वुद्धी जिब्भा-	भ० आरा० १६४४
णासदि मदी अदिण्णे	भ० आरा० १७२६
णासदि विग्घं भेददि	तिलो० प० १-३०
णासविणिग्गउ सास	परम० प० २-१६२
णासंति एक्कसमये	तिलो० प० ४-१६०८
णासंतो वि ण णट्ठो	दव्वस० णय० ३५७
णासा-जोई-जीहा	णाणसा० ५२
णासापहारदोसेण	वसु० सा० १३०
णासेज्ज अगीदत्थो	भ० आरा० ४२६
णासेदि परट्ठाणिय	लद्धिसा० ५२१
णासेदूण कसायं	भ० आरा० १३६४
णासो अत्थस्स खओ	भ० आरा० ६८४
णाहल-पुलिंद-बव्वर-	तिलो० प० ४-२२८७
णाहल-पुलिंद-बव्वर-	जंबू० प० ७-१०६
णाहं कस्स वि तणओ	णाणसा० ४३
णाहं कोहो माणो	णियमसा० ८१
णाहं णारयभावो	णियमसा० ७८
णाहं देहो ण मणो	तिलो० प० ६-३०
णाहं देहो ण मणो	आरा० सा० १०१
णाहं देहो ण मणो	पवयणसा० २-६८
णाहं पोग्गलमइओ +	तिलो० प० ६-३२
णाहं पोग्गलमइओ +	पवयणसा० २-७०
णाहं बालो वुड्ढो	णियमसा० ७९
णाहं मग्गणठाणो	णियमसा० ७७
णाहं रागो दोसो	णियमसा० ८०
णाहं होमि परेसिं *	पवयणसा० २-६६
णाहं होमि परेसिं *	तिलो० प० ६-३४
णाहं होमि परेसिं	पवयणसा० ३-४
णाहं होमि परेसिं	तिलो० प० ६-२८
णाहं होमि परेसिं	तिलो० प० ६-३६
णाहो तिलोयसामी	अंगप० १-४०
णिउणं विउल सुद्धं	भ० आरा० ६६

णिउदं चउसीदिहदं	तिलो० प० ४-२६५
णिक्कत्ता णिग्गुणाओ	अंगप० २-१६
णिक्कमिदूणं वच्चदि	तिलो० प० ४-२११६
णिक्कम्मा अट्ठगुणा	दव्वसं० १४
णिक्कसायस्स दंतस्स *	मूला० १०४
णिक्कसायस्स दांतस्स *	णियमसा० १०५
णिक्कता णिरयादो	तिलो० प० २-२८६
णिक्कता भवणादो	तिलो० प० ३-१६५
णिक्कूडं सविसेसं	मूला० ६७१
णिक्खवणपवेसादिसु	भ० आरा० १५०
णिक्खित्तसत्थदंडा	मूला० ८०३
णिक्खत्तु विदियमेत्तं ×	मूला० १०३७
णिक्खत्तु विदियमेत्त ×	गो० जी० ३८
णिक्खेव-णय-पमाणं	दव्वस० णय० २८१
णिक्खेव-णय-पमाणं	रयणसा० १६२
णिक्खेव-णय-पमाणा	दव्वस० णय० १६७
णिक्खेवणं च गहणं	मूला० ३०१
णिक्खेवमदित्थावण-	लद्धिसा० ५६
णिक्खेवे एयट्ठे +	पंचस० १-१८२
णिक्खेवे एयत्थे +	गो० जी० ७३२
णिक्खेवो णिव्वत्ती	भ० आरा० ८१३
णिग्गइ अवरेण णिवो	जंबू० प० ७-१४६
णिग्गच्छंते चक्की	तिलो० प० ४-१३४४
णिग्गच्छिय सा गच्छदि	तिलो० प० ४-२०६६
णिग्गहिदिंदियदारा	भ० आरा० ३१३
णिग्गंथ-अज्जियाओ	कल्लाण० ३१
णिग्गंथमहरिसीणं	मूला० ७७२
णिग्गंथमोहमुक्का	मोक्खपा० ८०
णिग्गथं दूसित्ता	भावस० १५६
णिग्गंथं पव्वइदो	पवयणसा० ३-६६
णिग्गंथ पव्वयणं	भ० आरा० ४३
णिग्गंथं पव्वयणं	भावसं० १४२
णिग्गंथा णिस्संगा	बोधपा० ४६
णिग्गंथो जिणवसहो	बोधपा० १३४
णिग्गंथो णीरागो	णियमसा० ४४
णिच्च-णिमित्ता किरिया	अंगप० २-११२
णिच्चयणयेण भणिदो	पंचत्थि० १६१
णिच्चल-पलंभ-णिम्मत-	तिलो० सा० २६८
णिच्चल संपय कस्स घरि	सुप्प० दो० ६५
णिच्चं कुमारियाओ	जंबू० प० ६-१३५

णिद्धं कणाइवहुले आय० ति० १०-१४
णिद्धत्तकसायसरिणह- जबू० प० ४-१८३
णिद्धं मधुरं पल्हा भ० आरा० १४१४
णिद्ध महुरगभीर भ० आरा० २८०
णिद्ध महुर हिदयं भ० आरा० ४७५
णिद्ध महुरं हिदयं भ० आरा० ४७६
णिद्धं महुर हिदयं भ० आरा० ६५३
णिद्धादो णिद्धेण [य] दव्वस० णय० २७
णिद्धा वा लुक्खा वा पवयणसा० २-७३
णिद्धिदरगुणा अहिया गो० जी० ६१८
णिद्धिदरवरगुणाणू गो० जी० ६१७
णिद्धिदरे सम-विसमा गो० जी० ६१५
णिद्धिदरोलीमज्झे गो० जी० ६१२
णिद्धो कणाइवहुले आय० ति० १४-५
णिधणगमणमेयभवे भ० आरा० १६४०
णिधणगमो एयभवे भ० आरा० १६१४
णिप्पण्णमिव पजंपदि * दव्वस० णय० २०६
णिप्पण्णमिव पयंपदि * णयच० ३५
णिप्पण्णं त खादिसु आय० ति० ११-४
णिप्पत्तकंटइल्लं भ० आरा० ५५५
णिप्पादित्ता सगणं भ० आरा० २०३२
णिब्भरभत्तिपसत्ता तिलो० प० ४-६२१
णिब्भूसणायुधंवर- तिलो० प० १-५८
णिब्भूसणो वि सोहइ धम्मर० १२३
णिमिणं चि य तित्थयर × पचस० ४-२६६
णिमिणं चि य तित्थयरं × पचसं० ५-८६
णिम्मत्त-जोइमत्ता तिलो० प० ७-२०
णिम्ममो णिरहंकारो मूला० १०३
णिम्मल-झाण-परिट्ठिया जोगसा० १
णिम्मलदप्पणसरिसा तिलो० प० ४-३२०
णिम्मलपडि(फलि)हविणिम्मिय-तिलो०प०४-८५१
णिम्मलफलिहहँ जेम जिय परम० प० २-१७६
णिम्मलमणिमयपीढं जबू० प० ६-६१
णिम्मलवरबुद्धीणं जबू० प० ४-२१४
णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु जोगसा० ६
णिम्माणंराजणामा तिलो० प० ८-६२६
णिम्मालियसुमणा विय मूला० ७७४
णिम्मूलखंधसाहा पचस० १-१६२
णिम्मूलखंधसाहुव- गो० जी० ५०७
णियआदिमपीढाणं तिलो० प० ४-८८३

णियखेत्ते केवलिदुग- गो० जी० २३५
णियगच्छादो णिग्गय- छेदपिं० २४४
णियगंधवासियदिसं तिलो० सा० ५६६
णियघरि सुक्खडं पंच दिणु सुप्प० दो० ५५
णियछायं परछायं रिट्ठस० ७३
णियछाया गयणयले रिट्ठस० ६६
णियजणणीए पेट्टं धम्मर० ११२
णियजलपवाहपडिदं तिलो० सा० ५६४
णियजलपवाहपडिदं तिलो० प० ४-२३८
णियजलभरउवरिगद * तिलो० सा० ५६५
णियजलभरउवरिगदं * तिलो० प० ४-२३६
णियजोग्गसुद पढिदा तिलो० प० ४-५०६
णियजोगुच्छेहजुदो तिलो० प० ४-१८६२
णियडीदो कालादो अंगप० २-२५
णियणयराणि णिचिट्ठा तिलो० प० ५-२२६
णियणामलिहिण(ठा)ण तिलो०प० ४-१३५१
णियणामकं मज्झे तिलो० प० ६-६१
णियणामंकिदइसुणा तिलो० प० ४-१३४६
णियणाहिकमलमज्झे णाणसा० १६
णियणियइंदपुरीण तिलो० प० ६-७८
णियणियइंदयसेढी तिलो० प० ८-१६०
णियणियओहिक्खेत्तं तिलो० प० ३-१८७
णियणियखोणियदेसं तिलो० प० ८-६८८
णियणियचरमिंदयधय- तिलो० प० १-१६३
णियणियचरमिंदयपय तिलो० प० २-७३
णियणियचंदपमाण तिलो० प० ७-५५५
णियणियजिणउदएण तिलो० प० ४-६१७
णियणियजिणेसठाणं तिलो० प० ४-७३०
णियणियणाडीइगओ आय० ति० १६-१६
णियणियदिसट्ठियाणं आय० ति० २५-३
णियणियदीउवहीणं तिलो० प० ५-५०
णियणियपढमखिदीए तिलो० प० ४-७५६
णियणियपढमखिदीण तिलो० प० ४-७६५
णियणियपढमखिदीण तिलो० प० ४-८१२
णियणियपढमपहाण तिलो० प० ७-५६८
णियणियपरिणामाणं कत्ति० अणु० २१७
णियणियपरिचारसमं तिलो० प० ७-५६
णियणियपरिहिपमाणे तिलो० प० ७-५६३
णियणियभवणठिदाणं तिलो० प० ३-१७७
णियणियरवीण अद्धं तिलो० प० ७-५७३

णिरया हवंति हेट्ठा	बा० अणु० ४०
णिरये इयरगदीसुर-	भावति० ४६
णिरये ण विणा तिर्यहिं	गो० क० ५२३
णिरयेव होदि देवे	गो० क० १११
णिरये वा इगिणउदी	गो० क० ६२३
णिरयेहिं णिग्गदाणं	मूला० ११६१
णिरवेक्खे एयंते	दव्वस० णय० ६६
णिरुवक्कमस्स कम्मस्स	भ० आरा० १७३४
णिरुवममचलमखोहा	बोधपा० १२
णिरुवमरूवा णिट्ठिय-	तिलो० प० ६-१६
णिरुवमलावण्णजुदा	तिलो० प० ४-४७६
णिरुवमलावण्णतणू	तिलो० प० ४-२३४४
णिरुवमलावण्णाओ	तिलो० प० ८-३२१
णिरुवमवड्ढंततवा	तिलो० प०४-१०५४
णिरुवहदजटरकोमल-	जंबू० प० ११-२२१
णिलओ कलीए अलियस्स	भ० आरा० ६८२
णिल्लक्खणु इत्थी वा-	पाहु० दो० ६६
णिल्लूरह मणवच्छो	आरा० सा० ६८
णिवडंतसलिलपउरा	जंबू० प० ३-१७१
णिवदिविहूणं खेत्तं ×	मूला० ६५१
णिवदिविहूणं खेत्तं ×	भ० आरा० २६५
णिवसंति बह्मलोयस्संते	तिलो० सा० ५३४
णिव्वत्तअत्थकिरिया	दव्वस० णय० २०५
णिव्वत्तिअपज्जत्ते	भावति० ५७
णिव्वत्तिसुहमजेट्ठं	गो० क० २३४
णिव्ववण्णा तदो से	भ० आरा० ४६८
णिव्वाघादेणेदा	कसायपा० १६
णिव्वाणगदे वीरे	तिलो० प० ४-१५०१
णिव्वाणठाण जाणि वि	णिव्वा० भ० २६
णिव्वाणमेव सिद्धा	णियमसा० १८२
णिव्वाणसाधए जोगे	मूला० ५१२
णिव्वाणस्स य सारो	भ० आरा० १३
णिव्वाणे वीरजिणे	तिलो० प० ४-१४७२
णिव्वाणे वीरजिणे	तिलो० प० ४-१४६७
णिव्वावइत्तु संसा-	भ० आरा० २१४४
णिव्वित्तदव्वकिरिया	णयच० ३३
णिव्विदिगिंच्छो राओ *	वसु० सा० ५३
णिव्विदिगिंच्छो राया *	भावस० २८१
णिव्वियडिआदिया जे	छेदपिं० २२८
णिव्वियडी पुरिमंडल-	छेदपिं० ५
णिव्वियडी पुरिमंडल-	छेदपिं० २०३
णिव्वुदिगमणे रामत्तणे	मूला० ११८१
णिव्वेगतियं भावइ	बा० अणु० ७८
णिव्वेद(य) समावण्णो	समय० ३१८
णिसधकुमारी णेया	जंबू० प० ६-१३३
णिसधगिरिस्स दु मूले	जंबू० प० ३-२२६
णिसधगिरिस्सुत्तरदो	जंबू० प० ११-६७
णिसधस्सुच्छेहसमा	जंबू० प० ११-४
णिसधादो गंतूणं	जंबू० प० ६-८६
णिसहकुरुसूरसुलसा-	तिलो० प० ४-२०८६
णिसहद्दहो य पढमो	जंबू० प० ६-८२
णिसहधराहरउवरि	तिलो० प० ४-२०६३
णिसहवणवेदिपासे	तिलो० प० ४-२१३८
णिसहवरवेदिवारण-	तिलो० प० ४-२१४२
णिसहसमाणुच्छेहो	तिलो० प० ४-२५३१
णिसहस्स य उत्तरदो	जंबू० प० ७-२
णिसहस्सुत्तरपासे	तिलो० प० ४-२१४४
णिसहस्सुत्तरभागे	तिलो० प० ४-१७७२
णिसहावसाण जीवा	तिलो० सा० ७७६
णिसहुवरिं गंतव्वं	तिलो० सा० ३६१
णिसिऊण णमो अरहं-	वसु० सा० ४७१
णिसिऊण पंचवण्णा	णाणसा० २४
णिसिदित्तं अप्पाणं	भ० आरा० ६४६
णिसुणंतो थोत्तसए	भावस० ४१४
णिस्सरिदूणं एसो	तिलो० प० ४-२४३
णिस्सल्लस्सेव पुणो	भ० आरा० १२१४
णिस्सल्लो कदसुद्धी	भ० आरा० ७२१
णिस्ससइ रुयइ गायइ	वसु० सा० ११३
णिस्संका णिक्कंखा	वसु० सा० ४८
णिस्संकापहुदिगुणा	कत्ति० अणु० ४२४
णिस्संकिद णिक्कंखिद *	मूला० २०१
णिस्संकिय णिक्कंखिय *	चारित्तपा० ७
णिस्संकियसंवेगा-	वसु० सा० ३२१
णिस्संकियसंवेगा-	वसु० सा० ३४१
णिस्संगो चेव सदा	भ० आरा० ११७५
णिस्संगो णिम्मोहो	भावस० ६१८
णिस्संगो णिरारंभो	मूला० १०००
णिस्संधी य अपोल्लो	भ० आरा० ६४४
णिस्सेणीकट्ठादिहि	मूला० ४४२
णिस्सेढत्तं णिम्मल-	तिलो० प० ४-८६४

त

तइए समए गिरहइ	भावसं० ३०१
तइकप्पाई जाव दु	पंचसं० ४–३४६
तइय-कसाय-चउक्क *-	पचसं० ३–२०
तइय-कसाय-चउक्कं *-	पंचसं० ४–३१२
तइय-कसाय-चउक्क	पचसं० ४–४६६
तइय-चउक्कय-रहिया	पचसं० ४–३८२
तउ करि दहविहु धम्मु करि	पाहु० दो० २०८
तक्कहियधम्मि लग्गा	भावसं० १६३
तक्कंपेणं इंदा	तिलो० प० ४–७०५
तक्कारणेण एण्हि	तिलो० प० ४–४२५
तक्कालतदाकालस-	भ० आरा० १७७७
तक्कालपढमभाए	तिलो० प० ४–१५६२
तक्कालमुग्गयाश्रो	आय० ति० १५–६
तक्कालमुहुत्तगुणं	आय० ति० २०–२
तक्कालम्मि सुसीमप्प-	तिलो० प० ७–४३६
तक्कालवज्जमाणे	लद्धिसा० ६४
तक्कालमावण्ण चिय	भ० आरा० १६६१
तक्कालादिम्मि णरा	तिलो० प० ४–४०३
तक्कालिगेव सव्वे	पवयणसा० १–३७
तक्काले कप्पदुमा	तिलो० प० ४–४५४
तक्काले ठिदिसंतं	लद्धिसा० ४१५
तक्काले तित्थयरा	तिलो० प० ४–१५७६
तक्काले ते मणुश्रा	तिलो० प० ४–४०५
तक्काले तेयंगा	तिलो० प० ४–४३१
तक्काले भोगणरा	तिलो० प० ४–४५८
तक्काले मोहणियं	लद्धिसा० ३३१
तक्काले वेयणियं ×	लद्धिसा० २२५
तक्काले वेयणियं ×	लद्धिसा० ४२३
तक्कूडब्भतरए	तिलो० प० ५–१६२
तक्कूडब्भतरए	तिलो० प० ५–१६५
तक्कूडब्भतरए	तिलो० प० ५–१७१
तक्कूडब्भंतरए	तिलो० प० ५–१७८
तक्खय-वड्ढि-पमाणं +	तिलो० प० १–१७७
तक्खय-वड्ढि-पमाणं +	तिलो० प० १–१६४
तक्खय-वड्ढि-पमाणं	तिलो० प० १–२२४
तक्खय-वड्ढि-पमाण	तिलो० प० १–२५७८
तक्खित्ते बहुमज्झे	तिलो० प० ४–१७०२
तक्खिदिबहुमज्झेणं	तिलो० प० ४–१७३५
तक्खेत्ते बहुमज्झे	तिलो० प० ४–१७४३
तग्गिरिउवरिमभागे	तिलो० प० ४–१७०७
तग्गिरिउवरिमभागे	तिलो० प० ५–१४५
तग्गिरिणो उच्छेहो	तिलो० प० ५–२४०
तग्गिरिणो उच्छेहो	तिलो० प० ४–२७४६
तग्गिरिदारं पविसिय	तिलो० प० ४–१३६१
तग्गिरिदो पासेसुं	तिलो० प० ४–१७५४
तग्गिरिमज्झपदेसं	तिलो० प० ४–२११८
तग्गिरि-वण-वेदीए	तिलो० प० ४–१३६५
तग्गिरिवरस्स होंति हु	तिलो० प० ५–१२८
तग्गिरि-दक्खिण-भाए	तिलो० प० ४–१३२२
तग्गुणए य परिणदो	दव्वस० णय० २७७
तग्गुणगारा कमसो	गो० क० ८६७
तग्गुणसेढी अहिया	लद्धिसा० ३६५
तच्चरिमम्मि णराणं	तिलो० प० ४–१६०२
तच्चरिमे ठिदिबंधो	लद्धिसा० ४१
तच्चरिमे पुंबंधो	लद्धिसा० २६०
तच्च-रुई सम्मत्तं	मोक्खपा० ३८
तच्च-वियारण-सीलो	रयणसा० ६६
तच्च(स्स) सुहम्मवरसभं	जंबू० प० ११–२३०
तच्चं कहिज्जमाणं	कत्ति० अणु० २८०
तच्चं तह परमट्ठं	दव्वस० णय० ४
तच्च पि हेयमियरं	दव्वस० णय० २६१
तच्चं बहुभेयगयं	तच्चसा० २
तच्चं विस्सवियप्पं *	णयच० ५
तच्चं विस्सवियप्पं *	दव्वस० णय० १७६
तच्चाणं बहुभेयं	अंगप० २–१०६
तच्चाणे(एणे)सणकाले	दव्वस० णय० २६७
तच्चिय दीवं वासो(सं)	तिलो० प० ४–२६०६
तच्चूलियासु भेया	अंगप० ३–१
तच्छिविदूणं तत्तो	तिलो० प० ८–६५६
तज्जोगो सामण्णं	गो० जी० २६२
तज्झाणजायकम्म	भावसं० ६०४
तट्ठाणादो दो दो (?)	तिलो० प० ३–१७८
तट्ठाणे एक्कारस	गो० क० ५१४
तट्ठाणे ठिदिसंतो	लद्धिसा० १८

तडदो गत्ता तेत्तिय-	तिलो० सा० ६०६
तडदो बार-सहस्सं	तिलो० सा० ६१०
तडिदवुग्गिदुतुल्ल	णाणसा० ६०
तणचारी-मंसासी-	छेदपिं० ३४
तणरुक्खहरिदछेदण-	मूला० ८०१
तण-पत्त-कट्ठ-छारिय	भ० आरा० ५५६
तणमंसाग्गिविहंगा	छेदस० १८
तणुकुट्ठी कुल(मणु)भंगं	रयणसा० ४८
तणुदंडणादिसहिया	तिलो० प० ८-५६३
तणुपंचस्स य णासो	भावस० ६३७
तणु-मण-वयणे सुण्णो	आरा० सा० ७६
तणुरक्खप्पहुदीणं	तिलो० प० ८-३३०
तणुरक्खा अट्ठारस	तिलो० प० ५-२२१
तणुरक्खाण सुराणं	तिलो० प० ८-५३६
तणुरक्खा तिप्परिसा	तिलो० प० ३-६४
तणु-वयण-रोहणेहिं	आरा० सा० ७२
तणुवंज(?)महाणसिया	तिलो० प० ४-१३७४
तणुवादपवणबहले	तिलो० प० ६-१४
तणुवादबहलसंखं	तिलो० प० ६-७
तणुवादबहलसखं	तिलो० प० ६-८
तणुवादस्स य बहले	तिलो० प० ६-१५
तण्णगसिहरे वेदी	तिलो० सा० ६३६
तण्णयराण बाहिर-	तिलो० प० ६-६४
तण्णयरीए बाहिर-	तिलो० प० ५-२२७
तण्णामा पुव्वादी	तिलो० सा० ६६२
तण्णामा वेरुलियं	तिलो० प० २-१६
तण्णामा सीदुत्तर-	तिलो० सा० ६६६
तण्णिलयाणं मज्झे	तिलो० प० ७-७५
तण्णिव्वत्तिअपुण्णो	भावति० ६८
तण्णोकसायभागो	गो० क० २०४
तण्हा अणंतखुत्तो	भ० आरा० १६०५
तण्हा-छुहादि-परिदा-	भ० आरा० ७७८
तण्हादिएसु सहणिज्जेसु-	भ० आरा० ३६२
तत्तकवल्लिहिं छूढा	जंबू० प० ११-१६१
तत्तक्काले दिस्सं	लद्धिसा० १३८
तत्तमया तप्परिही	तिलो० प० ४-१८०२
तत्तस्स अग्गपिंड	तिलो० प० ४-१५२५
तत्ताइं भूसणाइं	धम्मर० ५४
तत्तातत्तु मुणेवि मणि	परम० प० २-४३
तत्तियमओ हु अप्पा	आरा० सा० ८१
तत्ते लोहकडाहे	तिलो० प० ४-१०५१
तत्तो अणियट्टिस्स य	लद्धिसा० ३३८
तत्तो अणुद्दिसाए	तिलो० प० ८-१७७
तत्तो अद्धद्धखया	जंबू० प० ३-१५०
तत्तो अभव्वजोग्गं	लद्धिसा० ३३
तत्तो अमिदपयोदा	तिलो० प० ४-१५५८
तत्तो अवरदिसाए	जंबू० प० ८-१२७
तत्तो अवरदिसाए	जंबू० प० ८-१३६
तत्तो अवरदिसाए	जंबू० प० ६-१६
तत्तो अवरदिसाए	जंबू० प० ६-५५
तत्तो अवरदिसाए	जंबू० प० ६-७६
तत्तो अवरदिसाए	जंबू० प० ६-७७
तत्तो असंखलोगं	तिलो० सा० ८७
तत्तो आगदूण	तिलो० प० ४-१३१५
तत्तो आणदपहुदी	तिलो० प० ८-१०४
तत्तो इंददिसाए	जंबू० प० ८-४२
तत्तो उड्ढं गंतुं	जंबू० प० ११-३२६
तत्तो उदय सदस्स य	लद्धिसा० १०
तत्तो उवरिमखंडा	गो० क० ६६२
तत्तो उवरिमदेवा	तिलो० प० ८-६८०
तत्तो उवरिमभागे	तिलो० प० १-१६२
तत्तो उवरिं उवसम-	गो० जी० १४
तत्तो उवरिं भव्वा	तिलो० प० ८-६७२
तत्तो उववणमज्झे	तिलो० प० ४-१३१३
तत्तो एगारणवसग-	गो० जी० १६१
तत्तो कक्की जादो	तिलो० प० ४-१५०७
तत्तो कमसो बहवा	तिलो० प० ४-१६०७
तत्तो कमेण वड्ढदि	गो० क० ६६४
तत्तो कम्मइयस्सिगि-	गो० जी० ३६६
तत्तो कुमारकालो	तिलो० प० ४-५८३
तत्तो खीरवरक्खो	तिलो० प० ८-१५
तत्तो चउत्थउववण-	तिलो० प० ४-८०१
तत्तो चउत्थवेदी	तिलो० प० ४-८३८
तत्तो चउत्थसाला	तिलो० प० ४-८४६
तत्तो छज्जुगलाणि	तिलो० प० ८-११६
तत्तो छट्ठी भूमी	तिलो० प० ४-८२६
तत्तो जुम्माण तिए	तिलो० सा० ४६०
तत्तो ण को वि भणिओ	दंसणसा० ४७
तत्तो णगादु पुव्वे	जंबू० प० ८-६
तत्तो णग्गा सव्वे	तिलो० प० ४-१५३६

तत्तो णपुसगित्थी	भ० आरा० २०६७
तत्तोऽणतरसमए	भ० आरा० २१०३
तत्तो णिस्सरमाणा	वसु० सा० १४८
तत्तो णीमरिऊण	कत्ति० अणु० ४०
तत्तो णीसरिऊण	कत्ति० अणु० २८६
तत्तोऽणुभयट्ठाणे	लद्धिसा० १६४
तत्तो तविदो(सीदोA)तवणो	तिलो०प२०-४३
तत्तो तव्वणवेदिं	तिलो० प० ४-१३१६
तत्तो तव्वणवेदि	तिलो० प० ४-१३२३
तत्तो तसि(वि)दो तवणो	जबू० प० ११-१५१
तत्तो ताणुत्ताणं	गो० जी० ६३८
तत्तो ति-यरणविहिणा	लद्धिसा० २०४
तत्तो दक्खिणभरहस्सद्ध	तिलो० सा० ५६६
तत्तो दस उप्पइया	जबू० प० २-४२
तत्तो दहाउ पुरदो	तिलो० प० ४-१६१५
तत्तो दहादु पुरदो	जबू० प० ५-५८
तत्तोऽदित्थावरणग	लद्धिसा० ६२
तत्तो दु असखेज्जा	जबू० प० ११-२०१
तत्तो दु असंखेज्जा	जबू० प० ११-२०३
तत्तो दुक्खे पथे	भ० आरा० १३६
तत्तो दुगुणं ताओ	तिलो० प० ८-३१५
तत्तो दुगुणं दुगुणं	तिलो० प० ८-२३७
तत्तो दुगुणा दुगुणा	जबू० प० ३-१५१
तत्तो दु दक्खिणदिसं	जबू० प० ८-८५
तत्तो दु पभादो वि य	जबू० प० ११-३१०
तत्तो दु पव्वदादो	जबू० प० ६-१७८
तत्तो दु पुणो गंतुं	जंबू० प० ११-२०२
तत्तो दुममंठादो	जबू० प० ५-५२
तत्तो दु विमाणादो	जबू० प० ११-२२४
तत्तो दु वेदियादो	जबू० प० ६-३
तत्तो दु वेदियादो	जबू० प० ६-५
तत्तो दुसए तीदे	दसणसा० ४०
तत्तो दु संकमादो	जबू० प० ७-१३२
तत्तो दुस्सम-सुसमो	तिलो० प० ४-१५७४
तत्तो दो इद(ह)रज्जू	तिलो० प० १-१५५
तत्तो देवरणादो	जबू० प० ८-६६
तत्तो देवरणादो	जबू० प० ६-८७
तत्तो दो वे वासो	तिलो० प० ४-१५१३
तत्तो धयभूमीए	तिलो० प० ४-८१६
तत्तो पच्छिमभागे	तिलो० प० ४-२११२
तत्तो पच्छिमभागे	जबू० प० ६-१३
तत्तो पडिवज्जगया	लद्धिसा० १६३
तत्तो पढमे पीढा	तिलो० प० ४-८६३
तत्तो पढमो अहिओ	लद्धिसा० ६४
तत्तो पदेसवड्ढी	तिलो० प० ५-३५
तत्तो परदो वेदीए	तिलो० प० ४-१६२१
तत्तो परं ण गच्छइ	भावस० ६८६
तत्तो परं तु गेवेज्ज	मूला० ११८०
तत्तो परं तु णियमा	मूला० ११४३
तत्तो परं तु णियमा	मूला० ११७४
तत्तो परं तु णियमा	मूला० ११७६
तत्तो परं तु णियमा	मूला० ११७८
तत्तो परं विचित्ता	जबू० प० ५-६४
तत्तो परं विचित्ता	जबू० प० ५-६५
तत्तो परं वियाणह	जबू० प० ५-६७
तत्तो पलाय(यि) ऊण	वसु० सा० १५१
तत्तो पलायमाणो	वसु० सा० १५४
तत्तो पल्लसलायच्छे-	गो० क० ४३२
तत्तो पविसदि तुरिमं	तिलो० प० ४-१५६४
तत्तो पविसदि रम्मो	तिलो० प० ४-१५५३
तत्तो पंच-जिणेसु	तिलो० प० ४-१२१४
तत्तो पुव्वदिसाए	जबू० प० ८-७४
तत्तो पुव्वाहिमुहा	तिलो० प० ४-१३१७
तत्तो पुव्वेण पुणो	जबू० प० ८-१८
तत्तो पुव्वेण पुणो	जबू० प० ६-६२
तत्तो पुव्वेणं तह	जबू० प० ८-३१
तत्तो बहुजोयणयं	तिलो० सा० ५०४
तत्तो बे-कोसूणो	तिलो० प० ४-७१५
तत्तो भवणखिदीओ	तिलो० प० ४-८३६
तत्तो मास बुव्बुद-	भ० आरा० १००८
तत्तो य अद्धरज्जू	तिलो० प० १-१६१
तत्तो य पुणो अरुणा	जबू० प० ११-२०६
तत्तो य वरिस-लक्ख	जबू० प० ४-५७६
तत्तो य सुहुमसंजम-	लद्धिसा० १६५
तत्तोरणवित्थारो	तिलो० सा० ६०२
तत्तोरालियदेहो	मूला० १२४३
तत्तो लांतवकप्पप्प-	गो० जी० ४३५
तत्तोवरिम्मि भागे	जबू० प० ८-१००
तत्तो वरिस-सहस्सा	तिलो० प० ४-५६०
तत्तो ववसायपुर	तिलो० प० ३-२१८

तप्पढमट्ठिदिसंत	लद्धिसा० २८७
तप्पढमपवेस च्चिय	तिलो० प० ४-१४७३
तप्पणतीसं पहदं	तिलो० प० १-२३४
तप्पणिधिवेदिदारे	तिलो० प० ४-१३१८
तप्पयसेवणसत्तो	अंगप० ३-५२
तप्परदो गंतूणं	तिलो० प० ८-४२८
तप्परिवारा कमसो	तिलो० प० ८-३२०
तप्पव्वदस्स उवरिं	तिलो० प० ४-२२३
तप्पाउग्गुवयरणं	वसु० सा० ४१०
तप्पाणिउडे णिवडिद	तिलो० सा० ८५३
तप्पायारुदयतियं	तिलो० सा० २८५
तप्पासादा(दे)णिवसदि	तिलो० प० ४-२०६
तप्पुरदा जिणभवणं	तिलो० सा० १००४
तप्फलिहवीहिमज्झे	तिलो० प० ४-१६२६
तव्वावणणागाणं	तिलो० सा० ६७३
तव्वाहि पुव्वादिसु	तिलो० सा० ५१७
तब्भयदो तस्स सुतो	तिलो० सा० ८५५
तब्भवणवदी सोमो	तिलो० सा० ६२१
तब्भूमिजोगभोगं	तिलो० प० ४-२५१२
तब्भोगभूमिजादा	तिलो० प० ४-३३७
तमकिंडए णिरुद्धो	तिलो० प० २-५१
तमगो भमगो य झसग	जंबू० प० ११-१५४
तम-भम-झसयं वाचिल(अंधो)	तिलो०प०२-४५
तम्मज्झबहलमट्ठ	तिलो० प० ८-६५७
तम्मज्झहेममाला	तिलो० सा० ६६२
तम्मज्झिमतियभागे	तिलो० सा० ८६६
तम्मज्झे चउरस्सो	तिलो० सा० ६६७
तम्मज्झे मुहमेक्कं	तिलो० प० १-१३६
तम्मज्झे रम्माइं	तिलो० प० ४-७६२
तम्मज्झे रूप्पमयं	तिलो० सा० ५५७
तम्मज्झे वरकूडा	तिलो० प० ७-८७
तम्मज्झे सोधेजु	तिलो० प० ७-४२५
तम्मणुउवएसादो	तिलो० प० ४-४६३
तम्मणुतिदिवपवेसे	तिलो० प० ४-४६३
तम्मणुवे णाकगदे	तिलो० प० ४-४४७
तम्मणुवे तिदिवगदे	तिलो० प० ४-४४३
तम्मणुवे तिदिवगदे	तिलो० प० ४-४५२
तम्मणुवे सग्गगदे	तिलो० प० ४-४५६
तम्मदिरबहुमज्झे	तिलो० प० ४-१८३७
तम्मंदिरमज्झेसुं	तिलो० प० ७-५७

तम्मायावेदद्धा	लद्धिसा० ३६८
तम्मि कदकम्मणासे	तिलो० प० ४-१४७४
तम्मि जवे विंदफलं	तिलो० प० १-२३६
तम्मि जवे विंदफल	तिलो० प० १-२५३
तम्मि दु देवारण्णे	जंबू० प० ६-८६
तम्मि देसम्मि मज्झे	जंबू० प० ६-५८
तम्मि पदे आधारे	तिलो० प० ४-६७५
तम्मि वणे णायव्वा	जंबू० प० ८-८८
तम्मि वणे पुव्वादिसु	तिलो० प० ४-१६६१
तम्मि वणे वरतोरण-	तिलो० प० ४-२००३
तम्मि वरपीढसिहरे	जंबू० प० ५-५३
तम्मि समभूमिभागे	जंबू० प० २-४८
तम्मि सहस्स सोधिय	तिलो० प० ४-२६६७
तम्मिस्सखुद्दसेसे	तिलो० प० १-२११
तम्मिस्से पुण्णजुदा	गो० क० ३१२
तम्मूले एक्केक्का	तिलो० प० ८-४०५
तम्मूले पलियकग-	तिलो० सा० २५४
तम्मूले सगतीस	तिलो० प० ४-१७६६
तम्मेत्तवासजुत्ता	तिलो० प० ५-६६
तम्मेत्तं पहविच्चं	तिलो० प० ७-२२६
तम्हा अण्णो जीवो	सम्मइ० २-३८
तम्हा अब्भसउ सया	तच्चसा० १६
तम्हा अहमवि णिच्चं	मूला० ७६१
तम्हा अहिगयसुत्ते-	सम्मइ० ३-६५
तम्हा इत्थीपज्जय	भावसं० ६८
तम्हा इह-पर-लोए	भ० आरा० ८२१
तम्हा इंदियसुक्ख	भावसं० १७५
तम्हा कम्मं कत्ता	पंचत्थि० ६८
तम्हा कम्मासवकारणाणि	मूला० ७३८
तम्हा कलेवरकुडी	भ० आरा० १६७७
तम्हा कवलाहारो	भावसं० ११५
तम्हा खवएणाओ-	भ० आरा० ४७३
तम्हा गणिणा उप्पीलएण	भ० आरा० ४८५
तम्हा चउव्विभागो	सम्मइ० २-१७
तम्हा चदयवेज्झस्स	मूला० ८५
तम्हा चेट्ठिदुकामो *	मूला० ३३०
तम्हा चेट्ठिदुकामो *	भ० आरा० १२०४
तम्हा जहित्तु लिंगे	समय० ४११
तम्हा जिणमग्गादो	पवयणसा० १-६०
तम्हा जिणवयणरुई	भ० आरा० ४७०

तवरहियं जं णाणं — मोक्खपा० ५९
तवरिद्धीए कहिद — तिलो० प० ४-१०४८
तव-वय-गुणेहिं सुद्धा — बोधपा० ४८
तव-वय-गुणेहिं सुद्धो — बोधपा० १८
तव-विणय-सील-कलिया — जंबू० प० ११-३४६
तवसंजमप्पसिद्धो — पवयणमा० १-७९ क्षे० ४ (ज०)
तवसंजमम्मि अरणे — भ० आरा० ५८८
तवसा चेव ण मोक्खो — भ० आरा० १८४४
तवसा विणा ण मोक्खो — भ० आरा० १८४६
तवसिद्धे णयसिद्धे — सिद्धभ० ६
तवसुत्तसत्तए गत्ता- — मूला० १४६
तवसुदवदवं चेदा — दव्वसं० ५७
तवेण धीरा विधुणंति पावं — मूला० ६०१
तव्वड्ढीए चरिमो — गो० जी० १०५
तव्विदिरित्तं दुविहं — गो० क० ६३
तव्वणमज्झे चूलिय- — तिलो० प० ४-१८४६
तव्वणमज्झे चूलिय- — तिलो० प० ४-१८५३
तव्वादरुद्धखेत्तं — तिलो० सा० १३३
तव्वासरस्स आदी — तिलो० सा० ८६१
तव्विदिय कप्पाणम- — गो० जी० ४५३
तव्विवरीदं मोसं — मूला० ३१४
तव्विवरीदं मोसं — भ० आरा ११६४
तव्विवरीदं सव्वं — भ० आरा० ८३४
तसकाइएसु णेया — पंचसं० ५-१६३
तसकाइया असंखा — मूला० १२०६
तसघादं जो ण करदि — कत्ति० अणु० ३३२
तसचउ वण्णचउक्कं + — पंचसं० ४-२८५
तसचउ वण्णचउक्कं + — पंचसं० ५-७८
तसचउ वण्णचउक्कं × — पंचसं० ४-२६५
तसचउ वण्णचउक्कं × — पंचसं० ५-८८
तसचउ पसत्थमेव य — — पंचसं० ३-२४
तसचउ पसत्थमेव य — — पंचसं० ४-३१७
तसचदुजुगाण मज्झे — गो० जी० ७१
तसजीवाण ओघे — गो० जी० ७२१
तसजीवाणं लोगो — जंबू० प० ४-१४
तसणालीबहुमज्झे — तिलो० प० ४-६
तसथावरं च बादर- — कम्मप० ६८
तसथावरादिजुयलं — पंचसं० ४-४११
तसथावरा य दुविहा — मूला० २२७
तसपंचक्खे सव्वे — पंचसं० ४-८४

तसबंधेण हि संहदि- — गो० क० ५२७
तसबादर पज्जत्तं — कम्मप० १००
तसमणवचिओराला- — पंचसं० ४-३१६
तसमिस्से ताणि गुणो — गो० क० ५६०
तसरासिपुढविआदी- — गो० जी० २०५
तसरेणू रथरेणू — तिलो० प० १-१०५
तसऽसंजम वज्जित्ता — आस० ति० ५३
तसऽसंजमहीणऽजमा — सिद्धत० ६२
तसहीणो ससारी — गो० जी० १७५
तस्मिदो वक्कतक्खो — तिलो० सा० १५५
तस्स अवाओपायवि- — भ० आरा० ४६२
तस्सगिदिसाभाए — तिलो० प० ४-१६५३
तस्सग्गे इगि-वासो — तिलो० सा० ५६१
तस्स चडावंति पुणो — धम्मर० ५५
तस्स ण कप्पदि भत्तप- — भ० आरा० ७६
तस्स णगरस्स राया — जंबू० प० ३-२१६
तस्स णगरस्स राया — जंबू० प० ७-४३
तस्स णगस्स हु सिहरे — जंबू० प० ३-२१५
तस्स णमाइं लोगो — पवयणमा० १-५२ क्षे० २ (ज०)
तस्स ण सुज्झइ चरियं — मूला० ६१७
तस्स णिमित्तं रइयं — जंबू प० १३-१५७
तस्स णिरुद्धं भणिदं — भ० आरा० २०१३
तस्स तला अइरित्ता — तिलो० प० ४-२५४
तस्स दु पीढस्सुवरिं — जंबू० प० ५ -४६
तस्स दु पीढस्सुवरिं — जंबू० प० ६-६३
तस्स दु मज्झे अवरं — जंबू० प० ६-६२
तस्स दु मज्झे णेया — जंबू० प० ४-१३
तस्स दु संतट्ठाणा — पंचसं० ५-२७६
तस्स देसस्स णेया — जंबू० प० ८-१२५
तस्स देसस्स णेया — जंबू० प० ६-१६
तस्स देसस्स णेया — जंबू० प० ६-६६
तस्स देसस्स मज्झे — जंबू० प० ६-४६
तस्सद्धं वित्थारो — तिलो० प० ४-१५०
तस्स पढमप्पएसे — तिलो० प० ४-१५३५
तस्स पढमप्पएसे — तिलो० प० ४-१५६६
तस्स पढमप्पएसे — तिलो० प० ४-१५६८
तस्स पदिण्णामेरं — भ० आरा० १५१३
तस्स पमाणं दोण्णि य — तिलो० प० ७-२८१
तस्स पसाएण मए — वसु० सा० ५४६
तस्स फलमुदयमागय- — वसु० सा० १४४

तस्सूजीए परिही	तिलो० प० ४-२८३०
तस्सेव अपज्जत्ते	पंचसं० ५-३२४
तस्सेव कारणाणं	कत्ति० अणु० १३५
तस्सेव य उच्चत्तं	जंबू० प० ६-८५
तस्सेव य वरसिस्सो *	जंबू० प० १३-१५५
तस्सेव य वरसिस्सो	जंबू० प० १३-१५६
तस्सेव य वरसिस्सो	जंबू० प० १३-१६०
तस्सेव सतकम्मा	पंचसं० ५-४०१
तस्सेव होंति उदया'	पंचसं० ५-४०३
तस्सोरालियमिस्से	पंचसं० ५-३५३
तस्सोलसमणुहि कुला-	तिलो० सा० ८७२
तस्सोवरि सिदपक्खे	तिलो० प० ४-२४४४
तह अट्ठदिग्गइंदा	तिलो० प० ४-२३६३
तह अट्ठवीसबंधे	पंचसं० ५-२२७
तह अण्णाणी जीवा	भ० आरा० १७८४
तह अद्धमंडलीओ	तिलो० सा० ६८५
तह अद्ध णाराय	कम्मप० ७६
तह अप्पणो कुलस्स य	भ० आरा० १५२५
तह अप्पं भोगसुहं	भ० आरा० १२५६
तह अवबालुकाओ	तिलो० प० २-१३
तह आयरिओ वि अणुज्ज-	भ० आरा० ४८०
तह आवड्डिदप्पडिकूल-	भ० आरा० १५२१
तह उवसमसुहुमकसाए	पंचसं० ५-२८४
तह खाणेसु वि उदयं	पंचसं० ५-४११
तह चंडो मणहत्थी	मूला० ८७५
तह चेव अट्ठपयडी	पंचसं० ३-४६
तह चेव णोकसाया	भ० आरा० २६८
तह चेव देसकुलजा-	भ० आरा० ४३१
तह चेव पवयणं सव्व-	भ० आरा० ४६३
तह चेव भद्दसाले	जंबू० प० ४-७४
तह चेव मच्चुवग्घपरद्धो	भ० आरा० १०६४
तह चेव य तद्देहे	भ० आरा० १५६४
तह चेव सयं पुव्वं	भ० आरा० १६२७
तह जाण अहिंसाए	भ० आरा० ७८८
तह जीवे कम्माण	समय० ५६
तह जोइज्जइ सद्दणं	रिट्ठस० १७२

* यह गाथा स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस और ऐ० पन्नालालसरस्वती भवन बम्बईकी प्रतियोंमें नहीं है। सेठ माणिकचन्द बम्बई और भण्डारकर ओ० रि० इ० पूनाकी प्रतियोंमें पाई जाती है।

तह णाणिस्स दु पुव्वं	समय० १८०
तह णाणिस्स वि विविहे	समय० २२१
तह णाणी वि हु जइया	समय० २२३
तह णिययवायसुविणिच्छिया	सम्मइ० १-२३
तह णीलवंतपउरो	जंबू० प० ६-२२
तह णोकसायछक्कं	पंचसं० ३-३८
तह ते चेव य रूवा	जंबू० प० १२-६०
तह दक्खिणे वि णेया	जंबू० प० ६-१६३
तह दंसणउवओगो	णियमसा० १३
तह दाणलाहभोगुव-	कम्मप० १०३
तह दिवसियरादियपक्खिय-	मूला० ६६५
तह पुण्णभद्दसीदा	तिलो० प० ४-२०५६
तह पुव्वफग्गुणीए	रिट्ठस० २४६
तह पुंडरीकिणी वा-	तिलो० प० ५-१५८
तह बारहवासे पुण	णंदी० पट्टा० २
तह भाविदसामण्णो	भ० आरा० २३
तह मणुय-मणुसणीओ	पंचसं० ४-३४० (ख)
तह मरइ एक्कओ चेव	भ० आरा० १७४६
तह मिच्छत्तकडुगिदे	भ० आरा० ७३४
तह मुज्झंतो खवगो	भ० आरा० १५०४
तह य अवायमदिस्स दु	जंबू० प० १३-६०
तह य असण्णी सण्णी	गो० क० २३६
तह य उवट्टं कमलं	तिलो० प० ८-६३
तह य जयंती रुचकुंतमा	तिलो० प० ५-१७६
तह य तदीयं तीसं *	पंचसं० ४-२६६
तह य तदीय तीस *	पंचसं० ५-६२
तह य पभजणणामो	तिलो० प० ३-१६
तह य तिविट्ठ-दुविट्ठा	तिलो० प० ४-५१७
तह य महाहिमवंतो	जंबू० प० ३-१६
तह य विसाखाइरिओ	जंबू० प० १-१४
तह य सुगंधिणिवेरं-	तिलो० प० ४-१२४
तह य सुभद्दा भद्दा	तिलो० प० ६-५३
तह य सुवण्णादीणं	छेदस० ८६
तह वि ण सा बम्भहच्चा	भावस० २४८
तह वि य चोरा चारभ-	भ० आरा० ११५२
तह वि य सच्चे दत्ते	समय० २६४
तह विसयामिसघत्थो	भ० आरा० ६०५
तहविह भुअगचक्के	रिट्ठस० २२३
तह सयण सोधणं पि य	मूला० ६६७
तह सव्वविज्जसामी	जंबू० प० १३-१००

* पूर्वार्ध उपलब्ध न होनेसे उत्तरार्द्धका प्रथम चरण दिया है। आगे भी जहाँ 'उत्तरार्ध' लिखा है वहाँ ऐसा ही जानना।

तिक्काले जं सत्तं — दव्वस० णय० ३६
तिगईसु सण्णिजुयलं — सिद्धत० ४
तिगुणा सत्तगुणा वा — गो० जी० १६२
तिगुणिय-पंचसयाइं — तिलो० प० ४-११२०
तिगुणियवासं परिही — तिलो० सा० ३११
तिगुणियवासा परिही — तिलो० प० ५-२४१
तिग्गिंछादो दक्खिण- — तिलो० प० ४-१७६८
तिछणवबारसगुणिदा- — छेदपिं० १८
तिट्ठाणे सुण्णाणिं — तिलो० प० ३-८२
तिट्ठाणे सुण्णाणिं — तिलो० प० ३-८६
तिणकट्ठेण व अग्गी — मूला० ८०
तिणकारिसिट्ठपागग्गि- — गो० जी० २७५
तिणहंचउचउदुगणव- — अगप० १-५२
तिण्णि च्चिय लक्खाणिं — तिलो० प० ८-२२४
तिण्णि णया भूदत्था — दव्वस० णय० २६५
तिण्णि तदा भूवासो — तिलो० प० १-२५८
तिण्णि दस अट्ठ ठाणा- * — पचसं० ४-२३८
तिण्णि दस अट्ठ ठाणा- * — गो० क० ४५८
तिण्णि दु वाससहस्सा — मूला० ११०७
तिण्णि-परिसेहि सहिया — जंबू० प० ८-६२
तिण्णि-पलिदोवमाऊ — जबू० प० ६-१७०
तिण्णि पलिदोवमाणिं — तिलो० प० ३-१५१
तिण्णि-महण्णवउवमा — तिलो० प० ८-४६४
तिण्णि य अंगोवंगं — पंचसं० ३-६१
तिण्णि य अंगोवंगं — पचसं० ४-४४८
तिण्णि य चउरो तह दुग — कसायपा० १२
तिण्णि य दुवे य सोलस — मूला० १२२७
तिण्णि य परिसा तिण्णि य — जंबू०प० ११-३०२
तिण्णि य वसंजलीओ — भ० आरा० १०३४
तिण्णि य सत्त य चदु दुग — पचसं० ४-४०८
तिण्णि व पंच व सत्त व — मूला० १६४
तिण्णि वि उत्तरसरिसा — आय० ति० १७-११
तिण्णि वि उप्पायाई — सम्मइ० ३-३५
तिण्णि वि परिसा कहिया — जबू० प० ४-१५५
तिण्णि-सदा एक्कारा — जबू० प० १-६६
तिण्णिसयजोयणाणं — गो० जी० १५६
तिण्णिसयजोयणाण — तिलो० सा० २५०
तिण्णिसयसट्ठिविरहिद- — गो० जी० १६६
तिण्णिसया छत्तीसा — कल्लाणा० ५
तिण्णिसया छत्तीसा — गो० जी० १२२
तिण्णिसयाणिं पण्णा — तिलो० प० ४-११५६
तिण्णि-सया तेसट्ठी — कल्लाणा० ११
तिण्णि-सहस्सा छस्सय — तिलो० प० ७-५१६
तिण्णि-सहस्सा छस्सय — तिलो० प० २-१७३
तिण्णि-सहस्सा णव-सय — तिलो० प० २-१७६
तिण्णि-सहस्सा ति-सया — तिलो० प० ४-११४३
तिण्णि-सहस्सा ति-सया — तिलो० प० ४-२४३०
तिण्णि-सहस्सा ति-सया — तिलो० प० ४-२०५०
तिण्णि-सहस्सा दु-सया — तिलो० प० २-१७१
तिण्णि-सहस्सा दु-सया — तिलो० प० ४-१६८३
तिण्णि सुपासे चंदप्पह- — तिलो० प० ४-१०६२
तिण्णेगे एगेगं × — गो० क० ५०६
तिण्णेगे एगेगं × — पचसं० ५-३८८
तिण्णेव उत्तराओ — तिलो० प० ७-५१६
तिण्णेव उत्तराओ — तिलो० प० ७-५२५
तिण्णेव गाउआइं — मूला० १०७३
तिण्णेव दु बावीसे — गो० क० ५१६
तिण्णेव य कोडीओ — जबू० प० ४-१५६
तिण्णेव य परिसाण — जबू० प० ६-१३८
तिण्णेव वरदुवारा — जंबू० प० ६-१८२
तिण्णेव सयसहस्सा — जबू० प० ११-६८
तिण्णेव सहस्सद्धं — जबू० प० ३-२१०
तिण्णेव सहस्साइं — पचसं० ५-३८२
तिण्णेव हवे कोसा — जबू० प० ८-१८४
तिण्णेव होंति वंसा — जबू० प० ७-६०
तिण्णेवाउय(ग)सुहुमं — पचसं० ४-४५८
तिण्ह खलु कायाण — मूला० ११६४
तिण्हं खलु पढमाणं + — भावस० ३४१
तिण्हं खलु पढमाण + — पंचस० ४-३८५
तिण्हं खलु पढमाणं + — मूला० १२३७
तिण्हं घादीणं ठिदि- — लद्धिसा० ५६५
तिण्हं दोण्हं दोण्हं * — पंचसं० १-१८८
तिण्हं दोण्हं दोण्हं * — गो० जी० ५३३
तिण्हं दोण्हं होण्हं * — मूला० ११३६
तिण्हं सुहसंजोगो — मूला० १०१८
तित्तं कडुव कसाय — कम्मप० ६२
तित्तादिविविहमण्ण — तिलो० प० ४-१०७२
तित्तियपयमेत्ता हु — अगप० ३-४
तित्तियमेत्तो लोहो — धम्मर० ६८
तित्तीए असंतीए — भ० आरा० ११४५

तेत्तीसब्भहियाइं   तिलो० प० ४–२४३१
तेत्तीसभेदसंजुद-   तिलो० प० ५–२६८
तेत्तीस-वेंजणाइं   गो० जी० ३५१
तेत्तीस-सहस्साइं   तिलो० प० ४–१७७३
तेत्तीस-सहस्साइ   तिलो० प० ४–२११३
तेत्तीस-सहस्साणि   तिलो० प० ४–२४२६
तेत्तीस-सहस्साणि   तिलो० प० ४–१४५३
तेत्तीस-सहस्साणि   तिलो० प० ४–१४५४
तेत्तीस-सायरोवम *   पंचस० ५–१०५
तेत्तीस-सायरोवम *   पंचस० ५–१८७
तेत्तीस-सुरप्पवरा   तिलो० प० ८–२२३
तेत्तीस लक्खाणिं   तिलो० प० २–१२१
तेत्तीस लक्खाणिं   तिलो० प० ८–३६
तेत्तीसामरसामणियाण   तिलो० प० ८–५४२
तेदालगदे तुरियं   तिलो० सा० ४२३
तेदाल-लक्ख-जोयण   तिलो० प० ८–२२
तेदालं छत्तीसा   तिलो० प० ४–६६१
तेदालं लक्खाणिं   तिलो० प० २–११०
तेदालाणाहारे   सिद्धंत० ६८
तेदाला सत्त-सया   जंवृ० प० २–१०३
तेदालीस-सयाणिं   तिलो० प० ८–१६१
ते दावे तेसट्ठी   तिलो० प० ७–४५६
ते धणवंत ण दिंति धणु   सुप्प० दो० ३६
ते धण्णा जे जिणवर-   भ० आरा० १८७३
ते धण्णा जे धम्मं   भ० आरा० १८६०
ते धण्णा ताण णमो   भावपा० १२७
ते धण्णा ते णाणी   भ० आरा० २००२
ते धण्णा लोय-तए   भावसं० ५६६
ते धण्णा सुकयत्था   मोक्खपा० ८६
ते धीरवीरपुरिसा   भावपा० १५४
ते पासादा सव्वे   तिलो० प० ४–८२
ते पुण उदिण्णतण्हा   पवयणसा० १–७५
ते पुण कारणभूदा   दव्वस० णय० ६
ते पुण जीवाजीवा   भावस० २८५
ते पुण धम्माधम्मा-   मूला० २३२
ते पुण सम्माइट्ठी   वसु० सा० २६५
ते पुणु जीवहँ जोइया   परम० प० १–६१
ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण   परम० प० १–४
ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण   परम० प० १–५
ते पुव्वादिदिसासुं   तिलो० प० ७–८१
ते पुव्वावरदीहा   तिलो० सा० ६६२
ते पुव्वुत्तररुक्खा   जंबू० प० १२–५७
ते बारस कुलसेला   तिलो० प० ४–२५४८
ते मज्झगयं पीढं   जंबू० प० ६–१५२
ते मे तिहुवणमहिया   भावपा० १६१
ते य सयंपहगिरिजल-   तिलो० सा० ६२३
तेयाल पयडीणं   पंचसं० ४–४४१
तेयाला तिण्णिसया   भावपा० ३६
तेयालीस-सहस्सा   जंबू० प० ६–८१
तेरट्ठचऊ देसे   गो० क० ६५७
तेर-णवे पुव्वसे   गो० क० ६८२
तेरदु पुव्व वसा   गो० क० ६६७
तेरसएक्कारसणव-   तिलो० प० २–३७
तेरसएक्कारसणव-   तिलो० प० २–६३
तेरसएक्कारसणव-   तिलो० प० २–७५
तेरस-कोडी देसे   गो० जी० ६४१
तेरस चेव सहस्सा   पंचस० ५–३२७
तेरस-जीवसमासे   पंचस० ५–२५६
तेरस-जोयण-लक्खा   तिलो० प० २–१४२
तेरस-जोयण-लक्खा   तिलो० प० ८–६३
तेरस-जोयण-लक्खा   तिलो० प० ८–६४
तेरस बारेयारं   गो० क० ५१२
तेरस य णव य सत्त य   कसायपा० ३३
तेरस-लक्खा वासा   तिलो० प० ४–१४५६
तेरस-सय चउदाला   जंबू० प० ४–१६६
तेरस-सयाणि सत्तरि-   गो० क० ५०१
तेरस-सयाणि सयरिं   पंचस० ५–३८४
तेरस-सहस्सजुत्ता   तिलो० प० ४–१६३७
तेरस-सहस्सयाणि   तिलो० प० ४–१७४१
तेरससु जीवसंखे-   पंचस० ५–२५१
तेरह-उवही पढमे   तिलो० प० २–२०६
तेरह तह कोडीओ   जंबू० प० ४–१६१
तेरह बहुप्पएसो   पंचस० ४–५०२
तेरहमे गुणठाणे   बोधपा० ३२
तेरहमो रुचकवरो   तिलो० प० ५–१४१
तेरहम्मं(मं)जम्माओ   रिट्ठस० २२१
तेरह-विहस्स चरणं   आरा० सा० ६
तेरादि दुहीणिंदय   तिलो० सा० १५३
तेरासिएण णेया   पंचसं० ४–३८८

थ

द

दंडयणयर सयलं भावपा० ४६
दंडंति एक्कपव्वं धम्मर० ६३
दडं दुद्धिय चेलं भावसं० ८६
दंडा तिण्णि सहस्सा तिलो० प० ४-७७१
दंडो जउ(मु)णावंकेण भ० आरा० १५५४
दंतवण-ण्हाण-भंगे छेदस० ५२
दंताणि इंदियाणि य भ० आरा० २३८
दंतेहिं चव्विदं वीलण- भ० आरा० १०१५
दंतेंदिया महरिसी मूला० ८८१
दंभं परपरिवादं मूला० ६५७
दंसण-अणंतणाण बोधपा० १२
दंसण-अणंतणाणे बोधपा० २६
दंसण-आइदुअं दुसु पचसं० ४-७०
दंसणआवरण पुण * भावसं० ३३२
दंसणआवरणं पुण * कम्मप० २६
दंसणकारणभूदं दव्वस० णय० ३२४
दंसण-चरण-पभट्ठे मूला० २६२
दंसण-चरण-विवण्णे मूला० २६१
दंसण-चरण-विसुद्धी मूला० २००
दंसण-चरणो एसो मूला० २६६
दंसण-चरित्त-मोहं दव्वस० णय० २६६
दंसण-णाण-चरित्तमउ परम० प० २-५४
दंसण-णाण-चरित्तं चारित्तपा० ३६
दंसण-णाण-चरित्तं दव्वस० णय० २८४
दंसण-णाण-चरित्तं दव्वस० णय० २८३
दंसण-णाण-चरित्तं अंगप० १-६३
दंसण-णाण-चरित्तं अंगप० १-७६
दंसण-णाण-चरित्ता तच्चसा० ५५
दंसण-णाण-चरित्तं कत्ति० अणु० ३०
दंसण-णाण-चरित्तं भ० आरा० १७४६
दंसण-णाण-चरित्तं भ० आरा १६६७
दंसण-णाण-चरित्तं भ० आरा० १६६
दंसण-णाण-चरित्तं समय० ३६६
दंसण-णाण-चरित्तं समय० १७२
दंसण-णाण-चरित्तं समय० ३६७
दंसण-णाण-चरित्तं समय० ३६८
दंसण-णाण-चरित्तं कत्ति० अणु० ३०
दंसण-णाण-चरित्ता- समय० १६
दंसण-णाण-चरित्ता- दव्वस० णय० ६
दंसण-णाण-चरित्ता- आरा० सा० ८०
दंसण-णाण-चरित्ता- पंचत्थि० १६४
दंसण-णाण-चरित्ते लिंगपा० ८
दंसण-णाण-चरित्ते लिंगपा० ११
दंसण-णाण-चरित्ते लिंगपा० २०
दंसण-णाण-चरित्ते दंसणपा० २३
दंसण-णाण-चरित्ते पवयणसा० ३-४२
दंसण-णाण-चरित्ते कल्लाणा० २६
दंसण-णाण-चरित्ते वसु० सा० ३२०
दंसण-णाण-चरित्ते मूला० ४१६
दंसण-णाण-चरित्ते मूला० १६६
दंसण-णाण-चरित्ते मूला० ५६०
दंसण-णाण-चरित्ते मूला० ५८४
दंसण-णाण-चरित्ते मूला० ५६४
दंसण-णाण-चरित्ते मूला० ५६६
दंसण-णाण-चरित्ते मूला० ६७८
दंसण-णाण-चरित्ते कत्ति० अणु० ४५५
दंसण-णाण-चरित्ते भ० आरा० १६३४
दंसण-णाण-चरित्ते भ० आरा० ५४८
दंसण-णाणादिचारे भ० आरा० ४८७
दंसण-णाण-पहाणे दव्वसं० ५२
दंसण-णाण-पहाणो तच्चसा० १७
दंसण-णाण-विहूणा भ० आरा० १६६४
दंसण-णाण-समग्ग दव्वस० ५४
दंसण-णाण-समग्गं * पचत्थि० १५२
दंसण-णाण-समग्गं * तिलो० प० ६-२३
दंसण-णाण-समग्गो भ० आरा० २१०८
दंसण-णाणाइतिय पचस० ४-३२
दंसण-णाणाइतियं पंचस० ४-३७
दंसण-णाणाणि तहा पंचत्थि० ५२
दंसण-णाणावरणक्खए सम्मइ० २-६
दंसण-णाणावरणं भावपा० १४७
दंसण-णाणावरणं दव्वस० णय० ८३
दंसणणाणुवदेसो पवयणसा० ३-४८
दंसणणाणे तवसंजमे भ० आरा० ३२०
दंसणणाणे विणओ मूला० ३६४
दंसणपुव्वं णाणं दव्वस० ४४
दंसणपुव्व णाण सम्मइ० २-२२
दंसणपुव्वु हवेइ फुडु परम० प० २-३५
दंसणभट्ठा भट्ठा - दंसणपा० ३
दंसणभट्ठा भट्ठा - बा० अणु० १६

दारगुहुच्छयवामा तिलो० सा० ५१२
दारम्मि वइजयंते तिलो० प० ४–१३१४
दारवदीए णेमी तिलो० प० ४–६४२
दारसरिच्छुस्सेहा तिलो० प० ४–१८५८
दारस्स उवरिदेसे तिलो० प० ४–७७
दारंतरपरिमाणं जंबू० प० १–४६
दाराणि मुणेयव्वा जंबू० प० ५–१३
दारिद्दं अड्ढित्तं भ० आरा० १८०८
दारियदुण्णयदणुयं दव्वस० णय० ४१८
दारुणहुदासजाला तिलो० प० २–३३१
दारे व दारवालो भ० आरा० १८४२
दारोवरिमतलेसुं तिलो० प० ८–३५३
दारोवरिमपएसे तिलो० प० ४–४५
दारोवरिमपुराणं तिलो० प० ४–७४
दासं व मणं अवसं भ० आरा० १४१
दासी-दासेहिं तहा जंबू० प० ३–१११
दाहोपसमण तण्हा- मूला० ५५६
दिक्खाकालाईयं भावपा० १०८
दिक्खागहणाणुक्कम- दव्वस० णय० ३३७
दिक्खोववासमादिं तिलो० प० ४–१०४६
दिज्जइ धणु दुत्थिय-जणहँ सुप्प० दो० २२
दिज्जदि अणंतभागे- लद्धिसा० ५२६
दिज्जदि तवो वि संठाणा- छेदपिं० २६०
दिट्ठपरमट्ठसारा मूला ८०७
दिट्ठमदिट्ठं चावि य मूला० ६०६
दिट्ठं पि ण सब्भावं भ० आरा० ६७६
दिट्ठं व अदिट्ठं वा भ० आरा० ५७५
दिट्ठा अणादिमिच्छा- भ० आरा० १७
दिट्ठाणुभूदसुदविसयाणं भ० आरा० १०६७
दिट्ठा पगदं वत्थु पवयणसा० ३–६१
दिट्ठा सुण्णासुण्णो कसायपा० ५५
दिट्ठिप्पवादमंगं अंगप० १–७१
दिट्ठीइ चप्पिआए रिट्ठस० ३५
दिट्ठी जहेव (सय पि) णाणं समय० ३२०
दिट्ठीणं तिण्णि सया अंगप० १–७३
दिट्ठे विमलसहावे तच्चसा० ४२
दिट्ठे वि सलिलजोए आय० ति० १६–२७
दिढचित्तो जो कुव्वदि कत्ति० अणु० ३२६
दिणगदिमाणं उदयो तिलो० सा० ३६५
[illegible] आय० ति० १–१४

दिणपडिम-वीरचरिया- वसु० सा० ३१२
दिणयरकरणियराहय- जंबू० प० ३–१८८
दिणयरणयरतलादो तिलो० प० ७–२७३
दिणयरमयूहचुंबिय- जंबू० प० ४–११३
दिणरयणिजाणणट्ठ तिलो० प० ७–२४१
दिणवइपहसूचिचए(चीए) तिलो०प० ७–२४४
दिणवइपहसूचिचए(चीए) तिलो०प० ७–२३७
दिणवइपहंतराणि तिलो० प० ७–२४३
दिण-वरिस-मास-पहरेहिं आय०ति० ४–१६
दिण्णइ सुपत्तदाणं रयणसा० १६
दिण्णइँ वत्थ सुअज्जियहँ सावय० दो० २०३
दिण्णच्छेदेणवहिद- गो० जी० २१४
दिण्णच्छेदेणवहिद- गो० जी० ४२०
दिप्पंत-रयणदीवा तिलो० प० ३–५०
दिप्पंत-रयणदीवा तिलो० प० ४–२७
दिप्पंत-रयणदीवा तिलो० प० ४–४६
दिप्पंत-रयणदीवा तिलो० प० ७–४४
दिप्पंत-रयणदीवा तिलो० प० ८–२११
दिप्पंत-रयणदीवा तिलो० प० ८–३६८
दियसगट्ठियमसणं भावपा० ४०
दिवसप्पडि अट्ठसयं तिलो० प० ४–२४३६
दिवसयरबिंबरुंदं तिलो० प० ७–२२४
दिवसिय-राइय-गोयर- छेदपिं० १८४
दिवसिय-राइय-पक्खिय- छेदपिं० २०१
दिवसिय-राइय-पक्खिय- मूला १७५
दिवसेण जोयणसयं भ० आरा० ५६
दिवसे पक्खे मासे मूला० ४३३
दिवसो पक्खो मासो गो० जी० ५७५
दिव्वक्खेत्तेहिं जुदो जंबू० प० ६–१२८
दिव्वच्छराहि य समं धम्मर० १७६
दिव्वतिलयं च भूमी- तिलो० प० ४–१२२
दिव्वपुर रयणाणिहिं तिलो० प० ४–१३६५
दिव्वफलपुप्फहत्था तिलो० सा० ६७५
दिव्ववरदेहजुत्तं तिलो० प० ८–२६७
दिव्वविमाणसभाए जंबू० प० ११–२३१
दिव्वं अमयाहारं तिलो० प० ६–८७
दिव्वाणि विमाणाणि य धम्मर० १५८
दिव्वामलदेहधरा जंबू० प० ३–११५
दिव्वामलदेहधरा जंबू० प० ४–२२०
दिव्वामलमउडधरा जंबू० प० २–१५४

दुक्ख णिंदा चिंता दव्वस० णय० ३५०
दुक्खं दुज्जसयहुलं तिलो० प० ४-६७१
दुक्ख लाहं चत्ता रिट्ठस० २२६
दुक्खाइ अणेयाइँ आरा० सा० ४२
दुक्खा य वेदणामा तिलो० प० २-४६
दुक्खिदसुहिदे जीवे समय० २६६
दुक्खिदसुहिदे सत्ते समय० २६०
दुक्खु वि सुक्खु वि बहु-विहउ परम०प०१-६४
दुक्खु वि सुक्खु सहतु जिय परम० प० २-३६
दुक्खे णज्जइ अप्पा मोक्खपा० ६५
दुक्खे णज्जदि णाणं सीलपा० ३
दुक्खेण णतखुत्तो भ० आरा० १७८६
दुक्खेण देवमाणुस- भ० आरा० १२७६
दुक्खेण लभदि माणुस्स- भ० आरा० ७८१
दुक्खेण लहइ जीवा भ० आरा० ४६३
दुक्खेण लहइ वित्तं भावसं० ५६१
दु-ख-णव-णव-चउ-तिय-णव-तिलो०प०४-२३७५
दुख पंच एक्क सग णव तिलो० प० ४-२८५०
दुगअट्ठएक्कचउणव- तिलो० प० ७-३३७
दुगअट्ठगयणणवयं तिलो० प० ४-२७३४
दुग-अट्ठ-छ-दुग-छक्का तिलो० प० ७-३३१
दुगइगतियतियणत्रया तिलो० प० ७-२६
दुग एक्क चउ दु चउ णभ तिलो० प० ४-२८६५
दुग चउ अट्ठट्ठाइं तिलो० प० ४-२५५६
दुगचउरट्ठडसगइगि तिलो० सा० ६२८
दुगचदुअणेयपाया भ० आरा० १७३७
दुगछक्कअट्ठछक्का तिलो० प० ७-२५०
दुगछक्कतिणिणवग्गे- गो० क० ३८३
दुग छक्क सत्त अट्ठं गो० क० ३७६
दुगछत्तियदुगसत्ता तिलो० प० ७-३१६
दुग-छ-दुग-अट्ठ-पंचा तिलो० प० ७-३३०
दुगणभएक्किगिअडचउ- तिलो०प० ४-२८८०
दुगणभणवेक्कपंचा तिलो० प० ७-३८६
दुग तिग णभ छ दुदुग णभ भावति० ३५
दुग तिग तिय तिय तिण्णि य तिलो०प०७-५५८
दुगतिगभवा हु अवरं गो० जी० ४५६
दुगदुगअडतियसुण्णं अगप० १-३६
दुगदुगचदुचदुदुगदुग- कत्ति० अणु० १७०
दुगदुगदुगणवतियपण- तिलो०प०४-२६४०
दुगवारपाहुडादो गो० जी० ३४१
दुग सग चदुरिगिदसयं आम० ति० २१
दुगसत्तचउक्काइं तिलो० प० ७-३३
दुगसत्तदसं चउदस तिलो० ८-४५८
दुगुण परीतासंखे- तिलो० सा० १०६
दुगुणम्मि भद्दसाले तिलो० प० ४-२६१३
दुगुणम्मि भद्दसाले तिलो० प० ४-२८२८
दुगुणम्मि भद्दसाले तिलो० प० ४-२०१८
दुगुणं हि दु विक्खंभो जंबू० प० १०-६१
दुगुणाए सूजी(च)ए तिलो० प० ४-२७६०
दुगुणि च्चिय सूजी(ची)ए तिलो०प० ४-२५१६
दुगुणियसगसगवासे तिलो० प० ५-२४७
दुगुणियसगसगवासे तिलो० प० ५-२५६
दुगुणिसु कदिजुद जीवा- तिलो० सा० ७६३
दुगुणिसुहिदधणुवग्गो तिलो० सा० ७६५
दुग्गदिदुस्सरसहदि गो० क० ३१७
दुग्गमणादावदुगं गो० क० ४०५
दुग्गमदुल्लहलाभा मूला० ७२२
दुग्गधं बीभत्थ(च्छं) बा० अणु० ४४
दुग्गाडवीहिजुत्तो तिलो० प० ४-२२३३
दुचउसगदोण्णिसगपण- तिलो० प० ४-२६५३
दुचयहदं संकलिद तिलो० प० २-८६
दुजुदाणि दुसयाणि तिलो० प० १-२६२
दुज्जणवयणचडक्क भावपा० १०५
दुज्जणवयण चडपड मूला० ८६७
दुज्जणसंसग्गीए भ० आरा० ३४४
दुज्जणसंसग्गीए भ० आरा० ३४६
दुज्जणु सुहियउ होउ जगि सावय० दो० २
दुट्ठट्ठकम्मरहियं मोक्खपा० १८
दुट्ठा चवला अदिदुज्जया भ० आरा० १३१६
दुट्ठे गुणवते वि य दसणसा० १६
दुण्णि य एय एय वसु० सा० २५
दुण्णि सयइँ विसुत्तरहँ सावय० दो० २२२
दुतडाए सिहरम्मि य तिलो० प० ४-२४४७
दुतडादो जलमज्झे तिलो० प० ४-२४०५
दुतडादो सत्तसयं तिलो० सा० ६०४
दुतडे पण पण कचण- तिलो० सा० ६५६
दुतिआउ-तित्थ-हारचउक्कूणा लद्धिसा० ३१
दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्करसं गो० क० ३६५
दुद्धरतवस्स भग्गा भावस० १३३
दुपदेसादी खंधा पवयणसा० २-७५

दुदुभगोरत्तणिभो	तिलो० प० ७–१६
दुदुहु-मुइंग-महल-	तिलो० प० ६–१४
दूअक्खराइ दूह(?)	रिट्ठस० १६२
दूओ वभण विग्वो	भ० आरा० ११३१
दूयस्स पएह्याल	रिट्ठस० २४१
दूरावकिट्टिपढम	लद्धिसा० ५५८
दूरेण य ज गहणं	जवू० प० १३–६
दूरेण साधुसत्थ	भ० आरा० १३०६
दूरे ता अएणत्तं	सम्मइ० ३–६
देइ जिणिदहँ जो फलइँ	सावय० दो० १६०
देउ ण दउल णवि सिलए	परम०प० १–१२३क्षे०१
देउ णिरजणु इउँ भणइ	परम० प० २–७३
देउलु देउ वि सत्थु गुरु	परम० प० २–१३०
देखताहँ वि मूढ वढ	पाहु० दो० १६६
देवकुरुखेत्तजादा	तिलो० प० ४–२०६६
देवकुरु पउम तवण	तिलो० सा० ७४०
देवकुरुम्मि[य]विदिमे	जंवू०प० ६–१४७
देवकुरुवएणणाहिं	तिलो० प० ४–२१६१
देवगइमहगयाश्रो	पचसं० ५–४६१
देवगई पयडीश्रो	पचसं० ४–३५०
देवगदीदो चत्ता	तिलो० प० ८–६८१
देव-गुरु-धम्म-गुण-चारित्तं	रयणसा० ४६
देव-गुरुम्मि य भत्तो	मोक्खपा० ५२
देव-गुरु-सत्थभत्तो	दव्वस० णय० ३१०
देवगुरुसमयकज्जेहि	छेदपिं० १०६
देवगुरुसमयभत्ता	रयणसा० ६
देवगुरूण णिमित्त	कत्ति० अणु० ४०६
देवगुरूणं भत्ता	मोक्खपा० ८२
देवचउक्कं वज्जं	गो० क० २१४
देवचउक्काहारदु-	गो० क० ४००
देवचणाविहाणं	भावस० ६२६
देवच्छंदस्स पुरो	तिलो० प० ४–१८८०
देवच्छेदसमाणो	जवू० प० ४–७
देवजुदेक्कट्ठाणे	गो० क० ५७५
देवट्ठवीस णरदे-	गो० क० ५७२
देवट्ठवीसवंधे	गो० क० ५७३
देवतसवएणअगुरुचउक्कं	लद्धिसा० २१
देव तुहारी चिंत महु	पाहु० दो० १८२
देवत्तमाणुसत्तो	भ० आरा० १५८८
देवद-जदि-गुरुपूजासु	पवयणसा० १–६६
देवद-पासंडट्ठं	मूला० ४३५
देवदुअ पणमरीरं	पंचस० ३–६०
देवदुयं पंचिंदिय ÷	पचस० ४–२४४
देवदुयं पंचिंदिय ÷	पचसं० ५–८७
देवमणुस्सादीहिं	पचस० १–३७
देवयपियरणिमित्तं	धम्मर० २५
देवयपियरणिमित्त	धम्मर० १४३
देवरिसिणामधेया	तिलो० प० ८–६४४
देवलि पाहणु तित्थि जलु	पाहु० दो० ६१
देववरोदधिदीवा	तिलो० प० ५–२३
देवस्सियणियमादिसु	मूला० २८
देवहँ सत्थहँ मुणिवरहँ	परम० प० २–६१
देवहँ सत्थहँ मुणिवरहँ	परम० प० २–६२
देवाउ-अजसकित्ती	पचस० ३–६६
देवाउगवज्जे वि य	पंचसं० ४–४२३
देवाउगं पमत्तो +	गो० क० १३६
देवाउगं पमत्तो +	कम्मप० १३२
देवाउगं पमत्तो +	पचस० ४–४२१
देवाउग पमत्तो +	पचस० ४–४४६
देवाउस्स य उदए ×	पचस० ५–२२
देवाउस्स य उदए ×	पंचस० ५–२६१
देवाउस्स य एवं	पंचस० ४–४३२
देवा चउणिणकाया	पचत्थि० ११८
देवा चउणिणकाया	जंवू० प० ५–६२
देवाण गुणविहूई	भावपा० १५
देवाण णारयाणं	कत्ति० अणु० १६५
देवाण भवणणिवहो	जवू० प० ८ १२६
देवाण होइ देहो	भावस० ४११
देवाणं अवहारा	गो० जी० ६३४
देवाणं देवगदी	भावति० ७१
देवाणं पि य सुक्ख	कत्ति० अणु० ६१
देवाण सव्वाणं	आय० ति० ८–१६
देवा पुण एइंदिय –	गो० क० १३८
देवा पुण एइंदिय –	कम्मप० १३४
देवा य भोगभूमा	मूला० ११२६
देवारण्णचदुण्ण	जवू० प० ७–६
देवारण्णम्मि तहा	जंवू० प० ८–६६
देवारणं अण्णं	तिलो० प० ४–२३२२
देवा विज्जाहरया	तिलो० प० ४–१४४५
देवा वि णारइया वि	कत्ति० अणु० १४२

देहे छुधादिमहिदे भ० आरा० १२४६
देहे णिरावयक्खा मूला० ८०६
देहे वसतु वि णवि छिवइ परम० प० १–३४
देहोदयेण सहियो + गो० क० ३
देहोदयेण सहियो + कम्मप० ३
देहो पाणारूवं भावस० ५१७
देहो बाहिरगथो आरा० सा० ३३
देहो य मणो वाणी × पवयणसा० २–६६
देहोव्व मणो वाणी × तिलो० प० ६–३१
दो अट्ठ सुण्ण तिअ णह तिलो० प० १–१२४
दो उण णया भगवया सम्मइ० ३–१०
दो उवरिं वज्जित्ता पचस० ५–४३२
दो उवरि वज्जित्ता पचस० ५–४५५
दो कोट्ठेसुं चक्की तिलो० प० ४–१२८८
दो कोडीओ लक्खा तिलो० प० ८–२६५
दो कोस वित्थारो तिलो० प० ४–१७२
दो कोसा अवगाढा तिलो० प० ४–१७
दो कोसा उच्छेहो तिलो० प० ३–२६
दो कोसा उच्छेहो तिलो० प० ४–१५६६
दोगुणणिद्धाणुस्स य गो० जी० ६१३
दो-गुणहाणि-पमाणं गो० क० ६२८
दोचउअडचउसगछज्जोयण- तिलो०प०४–२६६४
दो चदाणं मिलिदे तिलो० सा० ४०१
दो चेव मूलिम(य)णया ∗ णयच० ११
दो चेव य मूलणया ∗ दव्वस० णय० १८३
दो चेव सहस्साइं पचस० ५–३८६
दोच्छायाहेँ णियच्छइ रिट्ठस० ७६
दोछक्कट्ठचउक्कं गो० क० ७१०
दोछक्कट्ठचउक्कं पचस० ५–४१४
दोछव्वारसभाग तिलो० प० १–२८१
दोजमगाण अंतर- जंबू० प० ६–१८
दोजमणामगिरीण जंबू० प० ६–१४
दोजोयण-लक्खाणिं तिलो० प० ४–२५६२
दोणद तु जधाजाद मूला० ६०१
दो णव अड णभ अट्ठ ति तिलो०प० ४–२८६६
दोणामुहाभिधाणं तिलो० प० ४–१३६८
दोणामुहेहि छण्णो जंबू० प० ६–१२०
दोणामुहेहिं तहा जंबू० प० ६–१५५
दोण्णि च्चिय लक्खाणिं तिलो० प० ७–६००
दोण्णि तदो पचसु तिसु सिद्धत० ७२
दोण्णि पयोणिहिउवमा तिलो० प० ८–४६३
दोण्णि य सत्त य चोद्दस- गो० क० ७६० क्षे० २
दोण्णि वि इसुगाराणं तिलो० प० ४–२७८२
दोण्णि वि मिलिदे कप्पं तिलो० प० ४–३५५
दोण्णि वियप्पा होंति हु तिलो० प० १–१०
दोण्णि सदा पणवण्णा तिलो० प० ४–१५०२
दोण्णि सया अडहत्तरि तिलो० प० ४–१२७२
दोण्णि सया णायव्वा जंबू० प० १–५६
दोण्णि सयाणि अट्ठा- तिलो० प० २–२६७
दोण्णि सया देवीओ तिलो० प० ३–१०४
दोण्णि सया पण्णासा तिलो० प० ४–२००६
दोण्णि सया वीसजुदा तिलो० प० ४–१४८७
दोण्णि सहस्सा चउसय तिलो० प० ४–११०६
दोण्णि सहस्सा ति-सया तिलो० प० ४–१११२
दोण्णि सहस्सा दु-सया तिलो० प० ४–२२१५
दोण्ह वि णयाण भणियं समय० १४३
दोण्हं इसुगाराणं तिलो० प० ४–२५३६
दोण्हं इसुगाराण तिलो० प० ४–२५५१
दोण्ह इसुगाराण तिलो० प० ४–२५५७
दोण्ह इ(उ)सुगाराण तिलो० प० ४–२७०४
दोण्ह इ(उ)सुगाराण तिलो० प० ४–२७६३
दोण्हं इ(उ)सुगाराणं तिलो० प० ४–२७६७
दोण्ह गिरिरायाणं जंबू० प० ११–७५
दोण्हं तिण्ह चउण्हं लद्धिसा० ३५०
दोण्हं तिण्हं छण्ह छेदपिं० ३०३
दोण्ह दोण्ह छक्क तिलो० प० ८–६६८
दोण्ह पच य छच्चेव ∗ पचसं० ४–६८
दोण्हं पंच य छच्चेव ∗ गो० जी० ७०४
दोण्हं पि अतरालं तिलो० प० ४–२०७५
दोण्ह भासंताण छेदपिं० ८७
दोण्हं मेरूण तहा जंबू० प० ११–२६
दोण्हं वाससहस्सा जंबू० प० ११–२५३
दो तिण्णि वि सालाओ भ० आरा० ६३७
दो-तीर-वीहि-रुंद तिलो० प० ४–१३३६
दो तीस चत्तारि य पंचस० ४–३१४
दोत्तिगपभवदुउत्तर- गो० जी० ६१६
दो दंडा दो हत्था तिलो० प० २–२२१
दो दियहा य दिणट्ठ(द्ध) रिट्ठस० ६३
दो दो भरहेरावद तिलो० प० ४–२५४७
दो दोसविप्पमुक्के जोगिभ० ३

ध

धम्मफलं मग्गंता	जंबू० प० १०-६०
धम्ममणुत्तरमेयं	मूला० ७७८
धम्ममधम्मं दव्वं	कत्ति० अणु० २१२
धम्मम्मि णिप्पवासो	भावपा० ७१
धम्मम्मि य अणुरत्तो	रिट्ठस० ६
धम्मम्मि संति-कुंथुसु	तिलो० प० ४-१०६४
धम्मवरं वेसमणं	तिलो० प० ८-६५
धम्मविहीणो जीवो	कत्ति० अणु० ४३४
धम्मविहीणो सोक्खं	णयच० ६
धम्मसरूवे परिणवइ	सावय० दो० ६१
धम्मस्स लक्खणं से	भ० आरा० १७०१
धम्महँ अत्थहँ कामहँ वि	परम० प० २-३
धम्महु धणु परिहोइ थिरु	सावय० दो० १००
धम्मं चदुप्पयारं	भ० आरा० १६६६
धम्मं ण मुणदि जीवो	कत्ति० अणु० ४२५
धम्मं पसंसिदूणं	तिलो० सा० ५५२
धम्मं सुक्कं च दुवे	मूला० ६७४
धम्मं सुक्कं च दुवे	मूला० ६७६
धम्मादीसद्दहणं	पंचत्थि० १६०
धम्मादो चलमाणं	कत्ति० अणु० ४१६
धम्माधम्मणिबद्धा	तिलो० प० १-१३४
धम्माधम्मं च तहा	समय० २६६
धम्माधम्मा कालो	दव्वसं० २०
धम्माधम्मागासा	पंचत्थि० ६६
धम्माधम्मागासा	भावसं० ३०५
धम्माधम्मागासा *	मूला० ७१३
धम्माधम्मागासा *	तिलो० सा० ५
धम्माधम्मागासा *	वसु० सा० ३१
धम्माधम्मागासाणि	भ० आरा० ३६
धम्माधम्मागुरुलघु	तिलो० सा० ७०
धम्माधम्मादीणं	गो० जी० ५६८
धम्माधम्मिगिजीवग-	तिलो० सा० ४२
धम्माधम्मु वि एक्कु जिउ	परम० प० २-२४
धम्माभावेण दु लोगग्गे	भ० आरा० २१३४
धम्माभावे परदो	तच्चसा० ७०
धम्मा य तहा लोए	धम्मर० ११
धम्मारकुंथू कुरुवंसजादा	तिलो० प० ४-५५६
धम्मावासयजोगे	मूला० ३५१
धम्मिल्लाणं चयणं	वसु० सा० ३०२
धम्मी धम्मसहावो	दव्वस० णय० २५६
धम्मु करउँ जइ होइ धणु	सावय० दो० ८८
धम्मु करंतहँ होउ धणु	सावय० दो० ६१
धम्मु ण पढियइँ होइ	जोगसा० ४७
धम्मु ण संचिउ तउ ण किउ	परम० प० २-१३३
धम्मु विसुद्धउ तं जि पर	सावय० दो० ११३
धम्मे एयग्गमणो	कत्ति० अणु० ४७७
धम्मेण कुलं विउलं	धम्मर० ४
धम्मेण परिणदप्पा	पवयणसा० १-११
धम्मेण परिणदप्पा	तिलो० प० ६-५६
धम्मेण होइ लिंगं	लिंगपा० २
धम्मेण होदि पुज्जो	भ० आरा० १८५६
धम्मेण होति ताओ	जंबू० प० ३-१६१
धम्में इक्कु वि वहु भमइ	सावय० दो० १०३
धम्में जं जं अहिलसइ	सावय० दो० १६५
धम्मे जाणंहि जंति णर	सावय० दो० १०२
धम्मे विणु जे सुक्खडा	सावय० दो० १५२
धम्मे सुहु पावेण दुहु	सावय० दो० १०१
धम्में हरिहलिचक्कवइ	सावय० दो० १६६
धम्मो जिणेहिं भणिओ	धम्मर० १३६
धम्मो णाणं ण हवइ	समय० ३६८
धम्मो तिलोयबंधू	धम्मर० ३
धम्मो त्ति मण्णमाणो	धम्मर० २०
धम्मोदएण जीवो	भावस० ३५८
धम्मो दयाविसुद्धो	बोधपा० २५
धम्मो वत्थुसहावो	कत्ति० अणु० ४७६
धयउअए सगिहत्था	आय० ति० १-२१
धयणिवहाणं पुरदो	जंबू० प० ५-५५
धयदंडाणं अंतर-	तिलो० प० ४-८२१
धयदुरदगए वासे	आय० ति० २०-३
धयधूमसाणखरविम-	आय० ति० १-२४
धयधूमसिंहमंडल-	जंबू० प० ६-१४२
धयधूमसीहमंडल-	आय० ति० १-५
धयधूम सीहसिहि (?)	आय० ति० १-१५
धयधूमाणं मंडल-	आय० ति० १-१७
धयविजयवइजयंती	जंबू० प० ५-७७
धयसाणगयवरेहिं	आय० ति० ५-१०
धयसीहवसमहगयवर-	जंबू० प० ६-१४०
धरणाणंदे अधिय	तिलो० प० ३-१५६
धरणाणंदे अधिय	तिलो० प० ३-१५६
धरणाणंदे अधिय	तिलो० प० ३-१७१

धरणितले विक्खंभो	जंबू० प० ११–२१
धरणिधरा उत्तुंगा	तिलो० प० ४–३२७
धरणिधरा विण्णेया	जंबू० प० २–१३७
धरणिदे अधियाणि	तिलो० प० ३–१४८
धरणीपीठे णेया	जंबू० प० ४–२४
धरणी वि पंचवण्णा	तिलो० प० ४–३२८
धरणी वि पंचवण्णा	जंबू० प० २–१३८
धरिऊण उड्ढजंघ	वसु० मा० १६७
धरिऊण दिणमुहुत्तं	तिलो० प० ७–३४४
धरिऊण लिंगरूवं	जंबू० प० १०–७२
धरिऊण वत्थमेत्तं	वसु० सा० २७१
धरिदं जस्स ण सक्क	पचत्थि० १६८
धरियउ बाहिरिलिंग	रयणसा० ६८
धवअट्ठावीस च्चिय	आय० ति० १७–१६
धवलब्भकूडसरिसा	जंबू० प० ६–४२
धवलहरपुंडरीसुं	जंबू० प० ६–१०८
धवलससिणिम्मलेहिं	जंबू० प० ६–१०६
धवलादवत्तचामर-	जंबू० प० ५–२६
धवलादवत्तजुत्ता	तिलो० प० ४–१८२३
धवला महस्समुग्गय	तिलो० सा० ६०८
धवलु वि सुरमउडंकियउ	सावय० दो० १७४
धंधइ पडियउ सयल जगि	जोगसा० ४२
धंधइ पडियउ सयलु जगु *	परम० प० २–१२१
धंधइँ पडियउ सयलु जगु*	पाहु० दो० ७
धाउचउक्कस्स पुणो	णियमसा० २५
धाउम्मि दिट्ठपुव्वे	आय० ति० ५–१५
धाउविहीणत्तादो	तिलो० प० ९–१३१
धादइगगारत्तदु	तिलो० सा० ९३५
धादइतरूण ताण	तिलो० प० ४–२५९९
धादइ-पुक्खरदीवा	तिलो० सा० ९३४
धादइसंडदिसासुं	तिलो० प० ४–२४८८
धादइसंडपवण्णिद-	तिलो० प० ४–२७८१
धादइसण्डपवण्णिद-	तिलो० प० ४–२८०६
धादइसंडप्पहुदिं	तिलो० प० ५–२७५
धादइसडप्पहुदिं	तिलो० प० ५–२७६
धादइसडे दीवे	तिलो० प० ४–२५७१
धादइसंडे दीवे	तिलो० प० ४–२७८३
धादइसडो दीओ	तिलो० प० ४–२५२५
धादइसंडो दीवो	जंबू० प० ११–२
धादगिपुक्खरमेरू	जंबू० प० ११–१८
धादगिसंडस्स तहा	जंबू० प० ११–३४
धादगिसंडे दीवे	जंबू० प० ११–६
धादगिसंडो दीवो	जंबू० प० ११–४३
धादीदूदणिमित्ते	मूला० ४४५
धादुगदं जह कणय	भ० आरा० १८४३
धादुमयंगा वि तहा	तिलो० प० ४–३८०
धादो हवेज्ज अण्णो	भ० आरा० ५८७
धारणगहणसमत्था	मूला० ८३२
धारंधयारगुविल	मूला० ८६५
धारंधसार(यार)गहिले	धम्मर० १८८
धारेत्थ सव्वसमकदि-	तिलो० सा० ५३
धावदि गिरिणदिसोदं	भ० आरा १७०३
धावदि पिंडणिमित्तं	लिंगपा० १३
धावंति सत्थहत्था	भावसं० ४७४
धिइणासो मइणासो	रिट्ठस० ३६
धित्तेसिमिंदियाणं	मूला ७३३
धिदिइट्ठिविसयतुल्ला	जंबू० प० ११–३१३
धिदिखेडएहि इंदिय-	भ० आरा० १४००
धिदिधणिदबद्धकच्छो	भ० आरा० २०३
धिदिधणियबद्धकच्छा	भ० आरा० १४३८
धिदिदेवीए समाणो	तिलो० प० ४–२३३१
धिदिधणिदणिच्छिदमदी	मूला० ८७७
धिदिबलकरमादहिदं	भ० आरा० ४०५
धिदिवम्मिएहिं उवसम-	भ० आरा० १४०५
धिद्धी मोहस्स सदा	मूला० ७३०
धिब्भवदु लोगधम्मं	मूला० ७१८
धीरत्तणमाहप्प	भ० आरा० १६४५
धीरपुरिसचिण्हाइं	भ० आरा० ४६८
धीरपुरिसपण्णत्तं	भ० आरा० १६७६
धीरपुरिसेहिं ज आ-	भ० आरा० १४८४
धीरेण वि मरिदव्वं	मूला० १००
धीरो वइरागपरो	मूला० ८४४
धुदकोसुंभयवत्थं	गो० जी० ४६
धुवअद्धुवरूवेण य	गो० जी० ४०१
धुववड्ढीवड्ढंतो	गो० क० २४३
धुवसिद्धी तित्थयरो	मोक्खपा० ६०
धुवहारकम्मवग्गण-	गो० जी० ३८४
धुवहारस्स पमाणं	गो० जी० ३८७
धुव्वंतचारुचामर-	जंबू० प० ५–१११
धुव्वंतधयवडाया	तिलो० प० ३–६०

धुव्वंतधयवडाया	तिलो० प० ४-१६५३
धुव्वतधयवडाया	तिलो० प० ४-१८१०
धुव्वंतधयवडाय।	तिलो० प० ८-३६७
धुव्वतधयवडाया	तिलो० प० ८-४४३
धुव्वंतधयवडाया	जबू० प० ४-७६
धुव्वतधयवडाया	जबू० प० ४-६४
धुव्वंतधयवडाया	जबू० प० ६-२०
धुव्वंतधयवडाया	जबू० प० ६-५४
धुव्वतधयवडाया	जबू० प० ६-१३१
धुव्वतधयवडाया	जबू० प० ७-५५
धुव्वंतधयवडाया	जबू० प० ८-३०
धुव्वतधयवडाया	जबू० प० ८-१३६
धुव्वतधयवडाया	जबू० प० ६-१६३
धुव्वंतधयवडाया	जबू० प० १०-१००
धुव्वंतधयवडाया	जबू० प० ११-६२
धुव्वंतधयवडाया	जबू० प० ११-८३
धुव्वंतधयवडाया	जबू० प० ११-१२६
धूमप्पहाए हेट्ठिम-	तिलो० प० १-१५६
धूमम्मि थोवथोव	आय० ति० १६-४
धूमलयथेरसुक्क	आय० ति० १-१२
धूमस्स य सारण खरो	रिट्ठस० २१६
धूमंतं पजलत	रिट्ठस० ८०
धूम दट्ठूण तहा	जबू० प० १३-७८
धूमायंतं पिच्छइ	रिट्ठस० ५५
धूमुक्कपडणपहुदी	तिलो० प० ४-६१०
धूमो धूलीवज्जं	तिलो० प० ४-१५४८
धूमो मयालयाणं	रिट्ठस० २०७
धूमो सीहधयाण	रिट्ठस० २१७
धूयमायरिवहिणि अण्णा	भावस० १८५
धूलिगछक्कट्ठाणे	गो० जी० २६३
धूली णेहुत्तुप्पिदगत्ते	भ० आरा० १८२३
धूलीसाला-गोउर-	तिलो० प० ४-७४०
धूलीसाला-गोउर-	तिलो० प० ४-७४२
धूलीसालाण पुढं	तिलो० प० ४-७४४
धूवउ खेवइ जिणवरहँ	सावय० दो० १८६
धूवघडा णवणिहिणो	तिलो० प० ४-८७६
धूवघडा विण्णेया	जबू० प० ५-१६
धूवण-वमण-विरेयण-	मूला० ८३८
धूवेण सिसिरयरधवल-	वसु० सा० ४८८
धूवेहिं सुगंधेहिं	तिलो० प० ३-२२६

न देखो ण

[प्राकृत भाषा में "नो ण' सर्वत्र" (२-४२) इस प्राकृतप्रकाश-व्याकरणके सूत्रानुसार सर्वत्र 'न' का 'ण' होना है, परन्तु आचार्य हेमचन्द्रके 'वादौ' सूत्र (१-२२६) के अनुसार आदि के 'न' को विकल्पसे 'ण' होता है और यह नियम उन शब्दों से सम्बन्ध रखता है जो 'संस्कृतभव' हैं—देशी प्राकृतमे तो वे 'न' को असभव बतलाते हैं, जैसा कि 'देशीनाममाला' (५-६३) की टीका से प्रकट है। इसीसे 'ण' के स्थान पर विकल्परूपसे 'न' के प्रयाग भी कुछ ग्रन्थप्रतियों में पाये जाते है, जिन्हें 'ण' मे ही लेलिया गया है। उन्हे पुनः 'न' मे देने मे व्यर्थकी कलेवर-वृद्धि होगी यह समझ कर ही 'न' के प्रकरण में उनकी पुनरावृत्ति नहीं की गई है। अत पाठकों को चाहिये कि जो वाक्य किसी ग्रन्थप्रतिमे 'न' से प्रारम्भ हुआ मिले उसे वे 'ण' के प्रकरणमे देखें।]

प

पइडीपमादमइया	पवयणसा० ३-२४चे०८(ज०)
पउमदहादिपसिद्धा	जबू० प० १३-१४६
पउमदहादु दिसाए	तिलो० प० ४-२०५
पउमदहादो पच्छिम-	तिलो० प० ४-२५२
पउमदहादो पणुसय-	तिलो० प० ४-२५६
पउमदहे पुव्वमुहा	तिलो० प० ४-१६८६
पउमदहपउमोवरि	तिलो० प० ४-१६७६
पउमद्दहाउ उत्तर-	तिलो० प० ४-१७११
पउमद्दहाउ दुगुणो	तिलो० प० ४-१७२५
पउमद्दहादु उत्तर-	तिलो० प० ४- १६६३
पउमद्दहादु चउगुण-	तिलो० प० ४-१७५१
पउमपहपउमराजा	तिलो० प० ४-१५६६
पउमप्पभो त्ति णामो	जबू० प० ३-२२३
पउमप्पह-वसुपुज्जा	तिलो० सा० ८४७

पडिइंदाण चउण्हं	तिलो० प० ३-१७३
पडिइंदाणं सामाणियाण	तिलो० प० ८-२८६
पडिइंदाणं सामाणियाण	तिलो० प० ८-५३२
पडिइदाणं सामाणियाण	तिलो० प० ८-५५२
पडिइंदादिचउण्हं	तिलो० प० ३-१००
पडिइंदादिचउण्हं	तिलो० प० ३-११८
पडिइंदादिचउण्हं	तिलो० प० ३-१३३
पडिइंदादी देवा	तिलो० प० ८-३६३
पडिइंदाभिधयस्स य	तिलो० प० ८-३१६
पडिइंदा सामाणिय	तिलो० प० ६-६८
पडिइंदा सामाणिय	तिलो० प० ७-६०
पडिइंदा सामाणिय	तिलो० प० ८-२१५
पडिकज्जं जइ णाम	आय० ति० २१-१३
पडिकमओ पडिकमण	मूला० ६१४
पडिकमणणामधेये	णियमसा० ६४
पडिकमणणिजुत्ती पुण	मूला० ६३१
पडिकमणपहुदिकिरिय	णियमसा० १५२
पडिकमणं कयदोसणिरा-	अंगप० ३-१७
पडिकमणं देवसिय	मूला० ६१३
पडिकमणं पडिसरणं	समय० ३०६
पडिकमणं पडिसरणा	तिलो० प० ६-५१
पडिकमिदव्वं दव्वं	मूला० ६१६
पडिकूलमाइ काउं	भावस० ५६३
पडिकूलो तह चलियो	आय० ति० २-४
पडिकूविदे विसण्णे	भ० आरा० १६२३
पडिखंडगपरिणामा	लद्धिसा० ४५
पडिगहणमुच्चठाणं	वसु० सा० २२४
पडिचरये आपुच्छय	भ० आरा० ५१८
पडिचोदणासहणदाए	भ० आरा० ३८६
पडिचोदणासहणवाय-	भ० आरा० २६५
पडिजग्गाणेहिं तणु-	वसु० सा० ३३६
पडिणीगमतराए +	गो० क० ८००
पडिणीगमंतराए +	कम्मप० १४४
पडिणीयमतराये +	पचस० ४-२००
पडिणीयाई हेऊ	पचस० ४-२१२
पडितित्थं वरमुणिणो	अंगप० १-४६
पडितित्थं सहिऊण हु	अगप० १-५३
पडिदिवसमेक्कवीथि	तिलो० सा० ३७३
पडिदिवसं ज पावं	भावसं० ४३२
पडिदिसगोउरसंखा	तिलो० सा० ४६२
पडिदिसयं णियसीसे	तिलो० सा० २१६
पडिदेमसयलपुग्गल-	भावपा० ३५
पडिपडिम एक्केक्का	तिलो० सा० २५५
पडिपदमणंतगुणिदा	लद्धिसा० ५८६
पडिपुण्णजोव्वणगुणो	सम्मइ० १-४३
पडिवुज्झिऊण सुत्तुट्ठिओ-	वसु० सा० ४६८
पडिवुद्धिऊण चइऊण	वसु० सा० २६८
पडिबोहिओ हु संतो	धम्मर० १७४
पडिभोगम्मि असते	भ० आरा० १४३२
पडिमाणं अग्गेसुं	तिलो० प० ३-१३८
पडिमापडिवण्णा वि हु	भ० आरा० २००१
पडिमाममेक्कवमणेण	वसु० सा० ३५४
पडिय मरियेक्कमेक्कूण-	गो० क० ५८२
पडियस्स य रोइस्स य	रिट्ठस० २५१
पडिरूवकायसंफा- *	मूला० ३७५
पडिरूवकायसफा- *	भ० आरा० १२१
पडिलिहियअंजलिकरो	मूला० ५३६
पडिलेहणेण पडिले-	भ० आरा० ६७
पडिलेहिऊण सम्मं	मूला० १७०
पडिवज्जजहण्णदुगं	लद्धिसा० १६६
पडिवडवरगुणसेढी	लद्धिसा० ३७४
पडिवदि किण्हे पुस्से	तिलो० सा० ४१७
पडिवयआइदिणाइं	रिट्ठस० १५७
पडिवरिसं आसाढे	तिलो० सा० ६७६
पडिवाए वासरादो	तिलो० प० ७-२१५
पडिवादगया मिच्छे	लद्धिसा० १६२
पडिवाददुगवरवर	लद्धिसा० १८६
पडिवादादीतिदय	लद्धिसा० १६७
पडिवादी देसोही	गो० जी० ३७४
पडिवादी पुण पढमा	गो० जी० ४४६
पडिवादो च कदिविधो	कसायपा० ११६ (६३)
पडिवीण णेत्तपट्टावरेहिं	वसु० सा० ३६८
पडिसमयगपरिणामा	लद्धिसा० ४४
पडिसमयधणे वि पद	गो० क० ६०५
पडिसमयमसंखगुण +	लद्धिसा० ७५
पडिसमयमसंखगुण +	लद्धिसा० ३६७
पडिसमयममंखगुणं	लद्धिसा० ४६६
पडिसमयममंखगुणा	लद्धिसा० २८२
पडिसमय असुहाणं	लद्धिसा० ४४६
पडिसमयं अहिगदिण।	लद्धिसा० ५१८

पढमाइ-जमुक्कस्स	वसु० सा० १७३ (ख)
पढमा इंदयसेढी	तिलो० प० २-६६
पढमाए पुढवीए	मूला० १०५५
पढमाए पुढवीए *	वसु० सा० १७३ (क)
पढमा च अणंतगुणा	कसायपा० १७५(१२२)
पढमा चउरो संता	पंचसं० ५-४४४
पढमाण विदियाणं	तिलो० प० ४-७७०
पढमाणीयपमाणं	तिलो० प० ४-१६८१
पढमाणुभागखंडे	लद्धिसा० ४७८
पढमाणुयोगकरणा-	अंगप० १-६०
पढमादिय(ए) उक्कस्सा +	जंबू० प० ११-१२७
पढमादियमुक्कस्सं(स्सा) +	मूला० १११६
पढमादिया कसाया ‡	गो० क० ४५
पढमादिया कसाया ‡	कम्मप० ११६
पढमादिवितिचउक्के	तिलो० प० २-२६
पढमादिसंगहाओ	लद्धिसा० ४६३
पढमादिसंगहाणं	लद्धिसा० ५३६
पढमादिसु दिज्जकमं	लद्धिसा० ४७६
पढमादिसु दिस्सकमं	लद्धिसा० ४७७
पढमादिसु दिस्सकम	लद्धिसा० ५६१
पढमा दु अट्ठतीसो	तिलो० प० ८-३४१
पढमा दु एक्कतीसे	तिलो० प० ८-३३६
पढमादो गुणसंकम-	लद्धिसा० ६१
पढमादोऽणंताणंतिग	पंचसं० ४-६०
पढमादो तुरियोत्ति य	तिलो० सा० ८८२
पढमा परिमा समिदा	तिलो० सा० २२६
पढमापुव्वजहण्णं	लद्धिसा० ६६
पढमापुव्वरसादो	लद्धिसा० ८२
पढमा य सिद्धकूडा	जंबू० प० २-४६
पढमावेदे संजलणाणं-	लद्धिसा० २६४
पढमावेदो तिविहं	लद्धिसा० २६५
पढमासणमिह खित्त	तिलो० सा० ११३
पढमिल्लय(ग)कल्लाण	जंबू० प० ११-२०८
पढमिंदय पहुदीदो	तिलो० प० ८-८६
पढमिंदे दसगाउदी-	तिलो० सा० ५१७
पढमुग्घारिदगाथा	तिलो० प० ६-५१
पढमुवसमसम्मत्तं	भावति० ४६
पढमुवसमसहिदाए	गो० जी० १४५
पढमुवसमिये सम्मे	गो० क० ६३
पढमे अवरो पल्लो	लद्धिसा० १८१
पढमे असंखभागं	लद्धिसा० ६३०
पढमे असंखभाग	लद्धिसा० ४८
पढमे करणे पढमा	लद्धिसा० ४६
पढमे कुमारकाले	तिलो० प० ४-५८२
पढमे चरिमं सोधिय	तिलो० प० ८-११
पढमे चरिमे समये	लद्धिसा० ४६
पढमे चरिमे समये	लद्धिसा० २६४
पढमे छट्ठे चरिमे	लद्धिसा० २२३
पढमे छट्ठे चरिमे	लद्धिसा० ४००
पढमे जिणिंदगेहं	तिलो० सा० ७२२
पढमेण व दोवेण व	भ० आरा० ४३७
पढमे तइयसरे गाइसु-	आय० ति० १८-४
पढमे दंडं कुणइ य	पंचसं० १-१६७
पढमे पक्खे पणगं	छेदपिं० १४७
पढमे विदिए जुगले	तिलो० प० ८-४४७
पढमे विदिए जुगले	तिलो० प० ८-५१७
पढमे विदिए तासु वि	पंचसं० ५-४५
पढमे विदियं तदियं	कसायपा० २१५(१६२)
पढमे विदिये तदिये	जंबू० प० २-१८७
पढमे भागम्मि गया	जंबू० प० ३-१०३
पढमे मंगलवयणे	तिलो० प० १-२१
पढमे सत्त ति छक्क	तिलो० सा० २०१
पढमे सव्वे विदिये	लद्धिसा० २७
पढमे सोयदि वेगे	भ० आरा० ८६३
पढमो अणिअणामा	तिलो० प० ८-४८
पढमो अधापवत्तो	लद्धिसा० ३५०
पढमो जंबूदीओ	तिलो० प० ५-१३
पढमो तेसु अदिक्कमदोसो	छेदपिं० ३२७
पढमो दंसणघाई	पंचसं० १-११० (श्वे०)
पढमो देवो चरिमो	तिलो० सा० ८४१
पढमो विदिये तदिये	लद्धिसा० ५५२
पढमो लोयाधारो	तिलो० प० १-२६१
पढमोवरिम्मि विदिया	तिलो० प० ४-८७३
पढमो विमाहणामो	तिलो० प० ४-१४८२
पढमो सत्तमिमग्गो	तिलो० सा० ८३२
पढमो सुद्धो मोत्तसु	छेदपिं० २२१

* गाथा नं० १७३ (क) मुद्रित ग्रंथमें नहीं है, पंचाइती लिखित प्राचीन प्रतिमें पाई जाती है और इस गाथा का निर्दिष्ट स्थान पर होना जरूरी भी है।

पणभूमिभूसिदाओ	तिलो० प० ४-८३७
पणमह चउवीसजिणे	तिलो० प० ४-२
पणमह चउवीसजिणे	तिलो० प० ४-५१३
पणमह चउवीसजिणे	तिलो० प० ६-७७
पणमह जिणवरवसह	तिलो० प० ६-७८
पणमंतसुरासुरमउलि-	रिट्ठस० १
पणमं ति मुत्तिमेगे	भावसं० ४६५
पणमामि जिण वीर	सुदख० ३८
पणमिय वीरजिणिंदं	दंसणसा० १
पणमिय सिरसा णेमि	कम्मप० १
पणमिय सिरसा णेमि	गो० क० १
पणविय सुरेंदपूजिय-	आस० नि० १
पणमेच्छखयरसेढिसु	तिलो० प० ४-१६०५
पणय दुय पणय पणयं	पचस० ५-२६६
पणयं च भिण्णमासो	छेदपिं० ३३१
पणयं दस सत्तधिय	मूला० ११२१
पणयालसयमहस्सा	भावस० ६६१
पणयालीसमुहुत्ता	पचसं० १-२०६
पणरसवासे रज्जं	खंदी० पट्टा० १६
पणरससोलसपणपणा-	सुदख० ५५
पणरह वामकरम्मि य	रिट्ठस० १५६
पणलक्खेसु गदेसु	तिलो० प० ४-५७४
पणवण्णब्भहियाइं	तिलो० प० ४-११५६
पणवण्णवस्सलक्खा	तिलो० प० ४-१२६८
पणवण्णा पणवण्णं	तिलो० सा० ६६५
पणवण्णं पण्णास	आस० ति० २०
पणवण्ण वेउव्विय-	सिद्धंत० ५०
पणवण्णा उत्तरदो	जंबू० प० ७-८१
पणवण्णाधियछस्सय-	तिलो० प० ५-५४
पणवण्णा पण्णासा	पचस० ४-७७
पणवण्णा पण्णासा	गो० क० ७८६
पणवण्णासा कोसा	तिलो० प० ४-७५३
पणवरिसेण्ह दुमणीण	तिलो० प० ७-५४८
पणविग्घे विवरीय	गो० क० २०६
पणविय सुरसेणणुय	भावस० १
पणवीसजोयणाइं	तिलो० प० ४-२०६४
पणवीसजोयणाइं	तिलो० प० ४-२१८५
पणवीसजोयणाणि	तिलो० प० ६-६
पणवीसजोयणाणि	तिलो० प० ६-२०७
पणवीसब्भहिय रुदा	तिलो० प० ४-१६४५
पणवीसब्भहियसयं	तिलो० प० ४-८८८
पणवीसब्भहियसय	तिलो० प० ४-१९६६
पणवीसब्भहियसयं	तिलो० प० ४-२०५८
पणवीसब्भहियाणं	तिलो० प० ४-१५६३
पणवीससहस्साइ	तिलो० प० ४-१२६६
पणवीससहस्साधिय-	तिलो० प० २-१३५
पणवीससहस्साधिय-	तिलो० प० २-१४७
पणवीससहस्साहिय-	तिलो० प० ४-५७२
पणवीससहस्सेहिं	तिलो० प० ४-२०२०
पणवीस असुराणं	मूला० १०६२
पणवीस असुराण	जंबू० प० ११-१३६
पणवीसं असुराणं	तिलो० सा० २४६
पणवीसं उगुतीस	पचस० ४-२५६
पणवीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-२४६
पणवीसाधियछस्सय-	तिलो० प० ४-७७२
पणवीसाधियछस्सय-	तिलो० प० ४-८४६
पणवीसाधियछस्सय-	तिलो० प० ४-८७६
पणवीसाधियतिसया	तिलो० प० ४-१२६७
पणवीसाहियछस्सय-	तिलो० प० ४-८७०
पणवीसे तिगिणउदे	गो० क० ७७७
पण सग दो छत्तिय दुग	तिलो० प० ४-२६६०
पणसट्ठिसहस्साणि	तिलो० प० ४-८०६
पणसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-२८६५
पणसट्ठी दोण्णिसया	तिलो० प० २-६८
पण सत्त णव य बारस	छेदपिं० ३०६
पणसत्ता वीसुदया	पचस० ५-२२४
पणसयगुणतणुवादं	तिलो० सा० १४२
पणसयजोयणरुंदं	तिलो० प० ४-११३६
पणसयजोयणरुंदं	तिलो० प० ४-११८७
पणसयदलं तदंतो	तिलो० सा० ५८६
पणसय पणसय-सहिय	तिलो० सा० ६०६
पणसय पणूणसय	तिलो० सा० ८३८
पणसयपमाणगाम	तिलो० प० ४-१३६७
पणसंखसहस्साणि	तिलो० प० ७-१६४
पणस बताडदाडिम-	जंबू० प० १-४०
पणसंबताडदाडिम-	जंबू० प० २-७७
पणसबतालदाडिम-	जंबू० प० ३-२०३
पणहत्तरि चावाणि	तिलो० प० ४-२८
पणहत्तरिपरिमाणा	तिलो० प० २-२६१
पणिदरसभोयणेण य ×	पचसं० १-५४

पंचेव सहस्साणि	तिलो० प० ७–१६५
पचेव होंति णाणा	गो० जी० २६६
पचेंदिए तसे तह	सिद्धंत० ५३
पचेंदिएसु तसकाइएसु	भावति० ८०
पंचेंदियजीवाणं	आस० ति० ३८
पचेंदियणाणाण	कत्ति० अणु० २५६
पंचेंदियप्पयारो	भ० आरा० ६३५
पचेंदियसंवरणं	चारित्तपा० २८
पंचेंदियाण लोगो	जंबू० प० ४–१५
पचेदिया दु सेसा	मूला० ११३०
पंजरमुक्को सउणो	भ० आरा०,१३२०
पडिदपंडिदमरणं	भ० आरा० २६
पडिदपंडिदमरण	भ० आरा० २८
पंडिदपंडिदमरणे	भ० आरा० २७
पडियपंडिय पंडिया	पाहु० दो० ८५
पंडुकवणस्स मज्झे	जंबू० प० ४–१३०
पंडुकसिला वि णेया	जंबू० प० ४–१२६
पंडुगजिणगेहाणं	तिलो० प० ४–२०८६
पंडुगवणस्स मज्झे	तिलो० प० ४–१८४१
पंडुगवणस्स मज्झे	तिलो० प० ४–१८४५
पंडुगवणस्स हेट्ठी	तिलो० प० ४–१६३५
पंडुगसोमणसाणि	तिलो० प० ४–२५८२
पडुत्थ(?)सालिपउरो	जंबू० प० ८–७०
पडुवणपुराहिंतो	तिलो० प० ४–१६५२
पडुवणपुराहिंतो	तिलो० प० ४–२००२
पडुवणब्भतरए	तिलो० प० ४–१८१६
पडुवणे अइरम्मा	तिलो० प० ४–१८०१
पंडुसिलाय समाणा	तिलो० प० ४–१८३३
पंडुसिला-सारिच्छा	तिलो० प० ४–१८३१
पंडुसुआ तिण्णि जणा	णिव्वा० भ० ७
पंडूकंबलणामा	तिलो० प० ४–१८२८
पंथं छंडिय सो जादि	भ० आरा० १२६६
पंथादिचारपमुहा-	छेदपिं० १८०
पंथे पहियजणाण	कत्ति० अणु० ८
पंथे मुस्संतं पस्सिदूण	समय० ५८
पाउ करहि सुहु अहिलसहि	सावय० दो० १६०
पाउ वि अप्पहिं परिणवइ	पाहु० दो० ७८
पाउसकालणदीवोव्व(उव)	भ० आरा० ६५४
पाऊण णाणसलिल	चारित्तपा० ४०
पाऊण णाणसलिलं	भावपा० ६३

पाए चलस्स उवरिं	आय० ति० १२–२
पाएसु जो विसेसो	आय० ति० ७–७
पाओदयं पवित्तं	वसु० सा० २२७
पाओ(वो)दयेण अत्थो	भ० आरा० १७३१
पाओ(वो)दयेण दुक्खं वि	भ० आरा० १७३२
पाओपहदसभावो	लिंगपा० ७
पाओ लोओ चित्तं	छेदपिं० ३१८
पाओवगमणमरणस्स	भ० आरा० २०६३
पाखंडीलिंगेसु व	समय० ४१३
पागादु भायणाओ	मूला० ४३०
पाचीणाभिमुहो वा	भ० आरा० २०३७
पाचीणोदीचिमुहो	भ० आरा० ५५०
पाचीणोदीचिमुहो	भ० आरा० ५६१
पाडयणियंसणभिक्खा-	भ० आरा० २१६
पाडलअसोयवण्णा	जंबू० प० ३–६२
पाडलजंबूपप्पल-	तिलो० प० ४–६१५
पाडलिपुत्ते धूदा	भ० आरा० २०७४
पाडलिपुत्ते पचा-	भ० आरा० १३५६
पाडित्ता भूमीए	धम्मर० ५०
पाडुब्भवदि य अण्णो	पवयणसा० २–११
पाडेक्कणयपहगयं	सम्मइ० ३–६१
पाडेदुं परसू वा	भ० आरा० ६८६
पाणगमसिभलं परिपूयं	भ० आरा० १४६१
पाणचक्कपचत्तो	भावसं० २८७
पाणदपडलं च तहा	जंबू० प० ११–३३३
पाणवधादीसु रदो *	गो० क० ८१०
पाणवधादीसु रदो *	कम्मप० १६०
पाणवहाईसु रओ *	पंचस० ४–२१०
पाणं डंतो वि तहा	जंबू० प० ५–१०६
पाणगतूरियंगा	तिलो० प० ४–८२७
पाणगा तूरगा	तिलो० प० ४–३४१
पाणं मधुरसुसादं	तिलो० प० ४–३४२
पाणाइवायविरई	वसु० सा० २०७
पाणादिवादविरदे	मूला० १०३२
पाणाबाधं जीवो	पवयणसा० २–५७
पाणावायं पुव्वं	अंगप० २–१०७
पाणिदलधरिदगंडो	भ० आरा० ८८७
पाणिवधमुसावादा-	भ० आरा० २०८०
पाणिवह मुसावाए	मूला० ६५६
पाणिवहमुसावाद(दा)	मूला० २८८

पिंडत्थ च पयत्थ	वसु० सा० ४५८
पिंडपदा पंचेव य	गो० क० ८४८
पिंडं उवहिं सेज्जं ×	भ०आरा० २८६
पिंडं सेज्जं उवधि ×	मूला० ४०७
पिंडो उवधि सेज्जा	भ० आरा० २६२
पिंडोवधिसेज्जाए	भ० आरा० ६०६
पिंडोवधिसेज्जाओ	छेदपिं० १६०
पिंडोवधिसेज्जाओ	मूला० ४१६
पिंडो वुच्चइ देहो	भावसं० ६२०
पीऊसणिज्झरणिहं जिणचंद-	तिलो०प०४-६३८
पीओसि थणच्छीरं	भावपा० १८
पीओ लोढय सरिसो	आय० ति० १-६
पीढत्तयस्स कमसो	तिलो० प० ४-७६६
पीढस्स चउदिसासुं	तिलो० प० ४-१८६६
पीढस्स चउदिसासुं ※	तिलो० प० ४-१६०१
पीढस्स चउदिसासु ॐ	तिलो० प० ४-१६०६
पीढस्सुवरिं चित्तं	जंबू० प० ५-४३
पीढं मेरु कप्पिय	भावसं० ४३७
पीढाण उवरि माणत्थंभा	तिलो० प० ४-७७३
पीढाणं परिहीओ	तिलो० प० ४-८६७
पीढाणं वित्थारं	तिलो० प० ४-७६
पीढाणीए दोण्णं	तिलो० प० ८-२७६
पीढाणीयस्स तहा	जंबू० प० ११-२८४
पीढोवरि बहुमज्झे	तिलो० प० ४-१८६७
पीढोवरिम्मि भागे	तिलो० प० ४-१६०२
पीढो सच्चइपुत्तो	तिलो० प० ४-१४३८
पीणत्थणिदुवदणा	भ० आरा० १०५५
पीदिमणा णंदमणा	जंबू० प० ११-२६४
पीदिंकर आइच्चं	तिलो० प० ८-१७
पीदी भए य सोगे	भ० आरा० १४४१
पीयारुणकसिणासिया	आय० ति० ४-१८
पीलंति जहा इक्खू	धम्मर० ४७
पीलिज्जंते केई	तिलो० प० २-३२३
पुक्खरगहणे काले	गो० जी० ३१२
पुक्खरवरउदधीदो	जंबू० प० १२-२१
पुक्खरवरद्धदीवे	तिलो० प० ४-२८०७
पुक्खरसयभुरमणा-	तिलो० सा० ३२२
पुक्खरसिंधु(धू)भयधणं(ण)	तिलो० सा० ३६०
पुक्खरिणीपहुदीणं	तिलो० प० ४-३२४
पुग्गलकम्मणिमित्तं	समय०८६क्षे० ७ (ज०)
पुग्गलकम्मं कोहो	समय० १२३
पुग्गलकम्मं मिच्छं	समय० ८८
पुग्गलकम्मं रागो	समय० १६६
पुग्गलकम्मादीणं	दव्वस० ८
पुग्गलदव्वं मो(मु)त्तं	णियमसा० ३७
पुग्गलभेदविभिण्णं	जंबू० प० १३-८१
पुग्गलमज्झत्थो य(त्थेअं)	दव्वस० णय० १३७
पुग्गलविवाइदेहो-	गो० जी० २१५
पुग्गलसीमेहिं विदो	जंबू० प० १३-५१
पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ	जोगसा० ५५
पुग्गलु छव्विहु मुत्तु वढ	परम० प० २-१६
पुग्गलु जीवइँ सहु गणिय	सावय० दो० २०५
पुच्छिय पलायमाणं	तिलो० प० २-३२२
पुज्जणविहि च किया	कत्ति० अणु० ३७६
पुज्जाउवयरणाइ य	भावस० ४२७
पुज्जो वि णरो अवमा-	भ० आरा० १३७२
पुट्टट्ठी चउवीसं	तिलो० प० ४-१५७५
पुट्ठं सुणेइ सद्दं	पंचस० १-६८
पुट्ठिमसु जइ छड्डियउ	सावय० दो० ४१
पुट्ठीए होंति अट्ठी	तिलो० प० ४-३३५
पुट्ठो वि य णिययेहिं	वसु० सा० ३००
पुढवि-जल-तेउ-वाऊ	दव्वस० ११
पुढवि-दग-तेउ-वाऊ-	मूला० ४१६
पुढवि-दगागणि-पत्तेगे	भ० आरा० ६०८
पुढवि-दगागणि-मारुद-	गो० जी० १२४
पुढवि-दगागणि मारुद-	मूला० १०१६
पुढवि-दगागणि-मारुय-	मूला० १०२७
पुढविप्पहुदिवणप्फदि-	तिलो० प० ५-३०६
पुढविंदयमग्गणं	तिलो० सा० १६५
पुढवीआइचउक्के	तिलो० प० ५-२६५
पुढवीआऊतेऊ-	गो० क० ५३५
पुढवीआऊतेऊ-	गो० जी० १८१
पुढवी आऊ तेऊ	मूला० २०५
पुढवी आऊ तेऊ	भ० आरा० २०६६
पुढवी आऊ य तहा	मूला० ४७२
पुढवीआदिचउण्हं	गो० जी० १६६
पुढवीकायिगजीवा	मूला० १००७
पुढवीजलग्गिवाऊ	कत्ति० अणु० १२४
पुढवीजलग्गिवाऊ-	कल्लाण० १६
पुढवी जलं च छाया ॐ	गो० जी० ६०१

पुव्वायरियकयाइं	दंसणसा० ४६	पुव्वुत्तासयलदव्वं	णियमसा० १६७
पुव्वायरियकयाणि य	छेदस० ६२	पुव्वुत्ता छत्तीसा	पंचस० १-३१
पुव्वायरियणिबद्धा	भ० आरा० २१६६	पुव्वुत्ता जे उदया	पचस० ५-४३
पुव्वावरआयामो	तिलो० प० ८-६०७	पुव्वुत्ता जे भावा	भावस० ६१५
पुव्वावरदिब्भाए	तिलो० प० २-२५	पुव्वुत्ताणण्णदरे	भ० आरा० १५७
पुव्वावरदिब्भायं	तिलो० प० ५-१३६	पुव्वुत्ताणि तणाणि य	भ० आरा० २०३६
पुव्वावरदो दीहा	तिलो० प० ४-१०१	पुव्वुत्ता वि य तीसा	पंचस० १-३७
पुव्वावरपणिधीए	तिलो० प० ४-२७२८	पुव्वुत्तामवभेया	बा० अणु० ६०
पुव्वावरभाएसुं	तिलो० प० ४-१८५४	पुव्वेण तदो गंतुं	जबू० प० ८-१५
पुव्वावरभाएसु	तिलो० प० ४-२१०१	पुव्वेण तदो गंतुं	जबू० प० ८-२२
पुव्वावरभाएसुं	तिलो० प० ४-२१२६	पुव्वेण तदो गतुं	जंबू० प० ८-३३
पुव्वावरभागेसु	तिलो० प० ४-२१६७	पुव्वेण तदो गतुं	जबू० प० ८-४७
पुव्वावर-विच्चालं	तिलो० प० ७-६	पुव्वेण तदो गतुं	जंबू० प० ८-५४
पुव्वावर-वित्थिण्णा	जबू० प० ६-१२१	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-६७
पुव्वावरायदाए	जबू० प० १-५६	पुव्वेण तदो गंतुं	जबू० प० ६-६१
पुव्वावरायदाणं	जबू० प० १-६१	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-६८
पुव्वावरेण जोयण-	तिलो० प० ४-२२१८	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू प० ६-१०१
पुव्वावरेण णेया	जबू० प० ४-१०	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-१०६
पुव्वावरेण तीए	तिलो० प० ८-६५२	पुव्वेण तदो गंतुं	जबू० प० ६-११५
पुव्वावरेण दीहा	जबू० प० २-५	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-११८
पुव्वावरेण दीहा	जंबू० प० ३-५	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-१२३
पुव्वावरेण परिही	तिलो० सा० १२१	पुव्वेण तदो गंतुं	जबू० प० ६-१२६
पुव्वावरेण लोगो	जबू० प० ४-४	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-१३३
पुव्वावरेण सिहरिप्प-	तिलो० प० ४-२४८६	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-१३५
पुव्वावरेसु जोयण-	तिलो० प० ४-१८१७	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-१४४
पुव्वाहिमुहा तत्तो	तिलो० प० ४-१३४७	पुव्वेण तदो गंतुं	जबू० प० ६-१४६
पुव्विल्लबंधजेट्ठा	लद्धिसा० ५१६	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-१५२
पुव्विल्लयरासीए	तिलो० प० २-१६१	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-१६८
पुव्विल्लवेदिअद्धं	तिलो० प० ५-१६७	पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ६-१६६
पुव्विल्लाइरिएहिं	तिलो० प० १-२८	पुव्वेण तदो गंतु	जंबू० प० ६-१७३
पुव्विल्लेसु वि मिलिदे	गो० क० ४७६	पुव्वेण तदो गंतुं	जबू० प० ६-१७७
पुव्वी पच्छा संथुदि	मूला० ४४६	पुव्वेण दु पायालं	जंबू० प० १०-२
पुव्वुत्तणवविहाणं	वसु० सा० २६७	पुव्वेण मालवंतो	जबू० प० ६-२
पुव्वुत्ततवगुणाणं	भ० आरा० १५५६	पुव्वेण होइ तत्तो	जबू० प० ८-७६
पुव्वुत्तरदक्खिणदिस	तिलो० सा० ५१६	पुव्वेण हो[इ] तिमिसा	जबू० प० २-८८
पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमासु	वसु० सा० २१३	पुव्वेण होंति णेया	जबू० प० १०-३०
पुव्वुत्तरदिब्भाए	तिलो० प० ८-६१६	पुव्वे विमलं कूलं	तिलो० सा० ६५७
पुव्वुत्तरदिब्भाए	तिलो० प० ८-६३५	पुव्वोदिदकूडाणं	तिलो० प० ५-१५४
पुव्वुत्तवेइमज्झे	वसु० सा० ४०५	पुव्वोदिदणामजुदा	तिलो० प० ५-१७२
पुव्वुत्तासगदभावा	णियमसा० ५०	पुस्सट्ठारहदियहे	रिट्ठस० २३२

पद्य	स्थल
पुस्सस्स किण्हचोद्दसि-	तिलो० प० ४-६८६
पुस्सस्स पुण्णिमाए	तिलो० प० ४-६८१
पुस्सस्स पुण्णिमाए	तिलो० प० ४-६९०
पुस्सस्स सुक्कचोद्दसि-	तिलो० प० ४-६७६
पुस्से सिददसमीए	तिलो० प० ४-६८८
पुस्से सुक्केयारसि-	तिलो० प० ४-६९१
पुस्सो असिलेसाओ	तिलो० प० ७-४८८
पुहई सलिलं च सुहं	णाणसा० ५८
पुह खुल्लयदारेसुं	तिलो० प० ४-१८८७
पुह चउवीस-सहस्सा	तिलो० प० ४-२१७७
पुह पुह कसायकालो	गो० जी० २९५
पुह पुह चारक्खेत्ते	तिलो० प० ७-५५४
पुह पुह ताणं परिही	तिलो० प० ७-६२
पुह पुह दुतडाहिंतो	तिलो० प० ४-२४०६
पुह पुह दुतडाहिंतो	तिलो० प० ४-२४४०
पुह पुह पइण्णयाणं	तिलो० प० ८-२८५
पुह पुह पोढतयस्स य	तिलो० प० ४-१८२२
पुह पुह पोक्खरिणीणं	तिलो० प० ४-२१८७
पुह पुह वीससहस्सा	तिलो० प० ४-२१७६
पुह पुह मूलम्मि मुहे	तिलो० प० ४-२४१०
पुह पुह ससिबिंबाणि	तिलो० प० ७-२१७
पुह पुह सेसिंदाणं	तिलो० प० ३-९९
पुंकोधोदयचलियस्से-	लद्धिसा० ३४९
पुंकोहस्स य उदये	लद्धिसा० ३६१
पुंडरियदहाहिंतो	तिलो० प० ४-२३५०
पुंडुच्छुवाडपउरो	जंबू० प० ८-११५
पुंबधद्धा अंतो-	गो० क० २०५
पुंवेदं वेदंता	सिद्धभ० ६
पुंवेदित्थिविगुव्विय-	आस० ति० ३५
पुवेदे थीसंढं	आस० ति० ४३
पुवेदे संढित्थी-	भावति० ९०
पुंवेदो देवाणं	भावति० ७४
पुंवेदो मिच्छत्त	पंचस० ३-७१
पुंसलिंघरि जो भुजइ	लिंगपा० २१
पुंसजलणिदराणं	लद्धिसा० ३२१
पुंसंढूणित्थिजुदा	गो० क० २९९
पूग-फल-रत्त-चंदण-	जंबू० प० २-७९
पूजाए अवसाणे	तिलो० प० ३-२२७
पूजादिसु णिरवेक्खो	कत्ति० अणु० ४४६
पूजादिसु णिरवेक्खो	कत्ति० अणु० ४६०
पूजारंभं जो कारवेदि	छेदपिं० १५५
पूजारिहो दु जम्हा	धम्मर० १३४
पूयण पज्जलणं वा	मूला० ४७०
पूयफलेण तिलोके	रयणसा० १४
पूयादिसु वयसहियं	भावपा० ८१
पूयावमाणरूवविरूवं	भ० आरा० १२३७
पूयावयणं हिदभा- *	मूला० ३७७
पूयावयण हिदभा- *	भ० आरा० १२३
पूरंति गलंति जदो	तिलो० प० १-९९
पेक्खागिहा य पुरदो	जंबू० प० ५-३७
पेच्छइ जाणइ अणुचरइ	परम० प० २-१३
पेच्छदि ण हि इह लोगं	पवयणसा० ३-२४चे ६(ज)
पेच्छह मोहविडंवण	वसु० सा० १२३
पेच्छंते बालाणं	तिलो० प० ४-४९२
पेज्जदो(द्दो)सविहत्ती	कसायपा० ३
पेज्जदो(द्दो)सविहत्ती	कसायपा० १३ (१)
पेज्जं वा दोसो वा	कसायपा० २१ (२)
पेलिज्जंते उवही	तिलो० प० ४-२४३८
पेसुण्ण-हास-कक्कस-	णियमसा० ६२
पेसुण्ण-हास-कक्कस-	मूला० १२
पोक्खरदीवद्धेसुं	तिलो० प० ४-२७८४
पोक्खरमेघा सलिलं	तिलो० प० ४-१५५६
पोक्खरवरउदधीए	जंबू० प० १२-२२
पोक्खरवरुवहिपहुदिं	तिलो० प० ७-६१४
पोक्खरवरो त्ति दीओ	तिलो० प० ४-२७४१
पोक्खरवरो त्ति दीओ	तिलो० प० ५-१५
पोक्खरवरो दु दीओ	जंबू० प० ११-५७
पोक्खरिणिवाविदीही	जंबू० प० २-१३९
पोक्खरिणिवाविपउरा	जंबू० प० ३-६५
पोक्खरिणिवाविपउरा	जंबू० प० ८-७९
पोक्खरिणिवाविपउरा	जंबू० प० ९-५१
पोक्खरिणिवाविपउरा	जंबू० प० १२-४
पोक्खरिणिवाविपउरे	जंबू प० १३-१६७
पोक्खरिणिवाविपउरो	जंबू० प० ८-२४
पोक्खरिणिवाविपउरो	जंबू० प० ८-१७३
पोक्खरिणिवाविवप्पिणि-	जंबू० प० ४-६०
पोक्खरिणीणं मज्झे	तिलो० प० ४-१९४७
पोक्खरिणीरमणिज्जं	तिलो० प० ४-२००६
पोक्खरिणीरम्मेहिं	तिलो० प० ५-२०७
पोक्खरिणीवावीए	तिलो० प० ८-४१८

ब

बलरिद्धी तिविहाओ	तिलो० प० ४-१०४१
बलविक्कमसमाहप्पं	जंबू० प० ७-१४३
बलवीरियमासेज्ज य	मूला० ६६७
बलसोक्खणाणदंसण	भावपा० १४८
बलि किउ माणुस-जम्मडा	परम० प० २-१४७
बलि-गंध-पुप्फ-अक्खय-	जंबू० प० ५-८२
बलितिलएहि जुवरेहिं(?) य	वसु० सा० ४२१
बलिधूवदीवणिवहा	जंबू० प० ६-१८६
बलियसरियम्मि पाए	आय० ति० ६-७
बलिया हुंति कसाया	ढाढसी० ६
बहलतिभागपमाणा	तिलो० प० ६-११
बहलत्ते तिसयाणं	तिलो० प० ३-२६
बहिणिग्गएण उत्तं	भावस० १६२
बहिरत्थे फुरियमणो	मोक्खपा० ८
बहिरब्भंतरकिरिया-	दव्वसं० ४६
बहिरब्भंतरगंथविमुक्को	रयणसा० १५२
बहिरब्भंतरगंथा	तच्चसा० १०
बहिरब्भंतरतवसा	भावसं० ५०८
बहिरंतरगंथचुवा(आ)	भावसं० १२३
बहिरंतरप्पभेयं	रयणसा० १४८
बहिरंधकारणमूया	जंबू० प० २-१६३
बहिरा अंधा काणा	तिलो० प० ४-१५३७
बहुअच्छरपरिपरिया	जंबू० प० ७-१०७
बहुअच्छरेहिं जुत्ता	जंबू० प० ११-१३२
बहुआरंभपरिग्गह-	धम्मर० १६
बहुकव्वडेहिं रम्मो	जंबू० प० ६-११६
बहुकुसुमरेणुपिंजर-	जंबू० प० ३-१४
बहुगदरं बहुगदर	कसायपा० ६१ (८)
बहुगं पि सुदमधीदं	मूला० ६३३
बहुगाए संवेगे	भ० आरा० २४३
बहुगुणसहस्सभरिया	भ० आरा १४६४
बहुगे बहुविहभेदे	जंबू० प० १३-७५
बहुछिद्दं णिव्वडंतं	रिट्ठस० ५३
बहुजम्मसहस्सविसा-	भ० आरा० १७६२
बहुजादिजूहिकुज्जय-	जंबू० प० ३-२०६
बहुठिदिखडे तीदे	लद्धिसा० ५६८
बहुणट्टगीयसाला	धम्मर० ६१
बहुतरुरमणीयाइं	तिलो० प० ४-२३२४
बहुतससमण्णिदं जं	कत्ति० अणु० ३२८
बहुतिव्वदुक्खसलिलं	भ० आरा० १७६६
बहुतोरणदारजुदा	तिलो० प० ४-१७०६
बहुदिव्वगामसहिदा	तिलो० प० ४-१३४
बहुदुक्खभ यणं कम्म-	रयणसा० ११८
बहुदुक्खावत्ताए	भ० आरा० १७६०
बहुदेवदेविणिवहा	जंबू० प० ६-१४६
बहुदेवदेविपउरा	जंबू० प० १२-११०
बहुदेवदेविपुण्णा	जंबू० प० ४-१७६
बहुदेवदेविपुण्णो	जंबू० प० ८-४
बहुदेवदेविसहिदा	तिलो० प० ४-१६६
बहुपरिवारेहिं जुदा	तिलो० प० ४-१६५०
बहुपरिवारेहिं जुदो	तिलो० प० ४-१७१०
बहुपरिसाडणमुज्झिअ	मूला० ४७५
बहुपावकम्मकरणा	भ० आरा० १३०५
बहु बहुविहखिप्पेसु य	जंबू० प० १३-७१
बहु बहुविहं च खिप्पा *	गो० जी० ३०६
बहु बहुविहं च खिप्पा *	अगप० ३-६४
बहुभवणसंपरिउडा	जंबू० प० ६-१४५
बहुभव्वजणसमिद्धी	जंबू० प० ८-६२
बहुभागे समभागो	गो० क० १६५
बहुभागे समभागो	गो० क० २००
बहुभागे समभागो	गो० जी० १७८
बहुभा(भ)वणसंपरिउडो	जंबू० प० ६-१७२
बहुभूमीभूसणया	तिलो० प० ४-८१०
बहुभूमीभूसणया	तिलो० प० ४-८३०
बहुभूसणेहि देहं	धम्मर० १७१
बहुयइँ पढियइँ मूढ पर	पाहु० दो० ६७
बहुयंधयारसीयं	आय० ति० १६-७
बहुयाण एगसद्दे	सम्मइ० ३-४०
बहुरयणदीवणिवहो	जंबू० प० ८-२०
बहुलट्ठमीपदोसे	तिलो० प० ४-१२०४
बहुवण्णणपासादा	तिलो० सा० ६११
बहुवत्तिजादिगहणे	गो० जी० ३१०
बहुवण्णा वट्टवय्यड(?)-	आय० ति० १-४२
बहुवारे गुरुमासो	छेदपिं० १४७
बहुवारेसु य छेदो	छेदस० १२
बहुवारेसु य पणगं	छेदपिं० ६२
बहुवारेसु य पणगं	छेदपिं० १४६
बहुविग्घमूसएहिं	भ० आरा० १०६५
बहुविजयपसत्थीहिं	तिलो० प० ४-१३५०
बहुविविहपुप्फमाला	जंबू० प० ४-५६

बंभण-खत्तिय-महिला	छेदपिं० ३४४
बंभण-खत्तिय-वइसा	छेदस० १७
बंभणघादे अट्ठ य	छेदपिं० ३०
बंभण-वणि-महिलाओ	छेदपिं० ३४६
बंभण-सुद्दित्थीओ	छेदपिं० ३४७
बंभयारि सत्तमु भणिउ	सावय० दो० १५
बंभसहावाऽभिण्णा	दव्वस० णय० ५३
बंभहँ भुवणि वसंताहँ	परम० प० २-६६
बंभा बभोत्तरिया	जंबू० प० ११-३४७
बंभारंभपरिग्गह-	कल्लाण० २२
बंभुत्तरो वि इदो	जंबू० प० ५-६८
बंभे कप्पे बंभुत्तरे	मूला० ११४०
बंभे य लंतवे वि य	मूला० १०६५
बंभेवं बंभुत्तर-	जंबू० प० ११-३३२
बंभो करेइ तिजय(गं)	भावसं० २०३
बाचदुअट्ठासीदि य	पचसं० ५-२३६
बाढ त्ति भाणिदूण	भ० आरा० ३७६
बाणउदिउत्तराणि	तिलो० प० ७-१६२
बाणउदि एगणउदी	पचस०५-२१७
बाणउदिजुत्तदुसया	तिलो० प० २-७४
बाणउदिणउदिअडसी-	पंचस० ५-४१८
बाणउदिणउदिसत्तं	गो० क० ७३६
बाणउदिणउदिसत्तं	गो० क० ७६२
बाणउदिणउदिसत्ता	गो० क० ६२६
बाणउदिणउदिसंता	पंचसं० ५-२२६
बाणउदिणउदिसंता	पंचसं० ५-२२६
बाणउदिणउदिसंता	पचसं० ५-२४२
बाणउदिणउदिसंता	पंचसं० ५-४२६
बाणउदिलक्खसहस्सा	सुदखं० १८
बाणउदिसहस्साणि	तिलो० प० ६-७५
बाणउदीए बंधा	गो० क० ७५५
बाणउदी णउदिचऊ	गो० क० ७०७
बाणउदी णउदिचऊ	गो० क० ७४६
बाणउदी पंचसयं	जंबू० प० ८-१७२
बाणजुदरुंदवग्गे	तिलो० प० ४-१८१
बाणविहीणे वासे	तिलो० प० ७-४२३
बाणासणाणि छ च्चिय	तिलो० प० २-२२७
बादरआऊतेऊ	गो० जी० ४६६
बादरणिव्वत्तिवरं	गो० क० २३५
बादरतेऊवाऊ	गो० जी० २३२
बादरपज्जत्तिजुदा	कत्ति० अणु० १४७
बादरपढमे किट्टी	लद्धिसा० ३१२
बादरपढमे पढमं	लद्धिसा० ४०१
बादरपुण्णा तेऊ	गो० जी० २५८
बादरबादर बादर	गो० जी० ६०२
बादरमण वचि उस्सास	लद्धिसा० ६२४
बादरमालोचेंतो	भ० आरा० ५७७
बादरलद्धिअपुण्णा	कत्ति० अणु० १४६
बादरलोभादिठिदी	लद्धिसा० २६२
बादरसंजलणुदये	गो० जी० ४६५
बादरसंजलणुदये	गो० जी० ४६६
बादरसुहुमगदाणं	पंचत्थि० ७६
बादरसुहमा तेसिं	गो० जी० १७६
बादरसुहुमुदयेण य	गो० जी० १८२
बादरसुहमेइंदिय-	गो० जी० ७२
बादरसुहमेइंदिय-	गो० जी० ७१८
बादरसुहुमेकदरं	पंचस० ५-७०
बादालमट्ठघण इगि-	तिलो० सा० २७
बादाललक्खजोयण-	तिलो० प० ८-२३
बादाललक्खसोलस-	तिलो० प० ८-२४
बादालसदसहस्सा	जबू० प० ११-६६
बादालसहस्सपद	अंगप० १-२३
बादालसहस्सं पुह	तिलो० सा० ७४८
बादालसहस्साइं	तिलो० प० ४-२४६६
बादालसहस्साणि	तिलो० प० ४-२४५५
बादालहरिदलोओ	तिलो० प० १-१८२
बादालं तु पसत्था	गो० क० १६४
बादालं पणुवीसं	गो० क० ६५०
बादालं वेण्णि सया	गो० क० ८५३
बादालं सोलसकदि-	तिलो० सा० २०
बादालीस-सहस्सा	जबू० प० ६-८३
बादालीस-सहस्सा	जंबू० प० १०-२७
बादालीसं चंदा	जबू० प० १२-१०६
बायरजसकित्ती वि य	पंचसं० ३-४५
बायरजसकित्ती वि य	पचस० ३-६५
बायरपज्जत्तेसु वि	पचस० ५-२७२
बायरमणवचजोगे	बसु० सा० ५३३
बायरसुहुमेक्कयरं	पंचसं० ४-२७७
बायरसुहुमेगिंदिय-	पंचसं० १-३४
बायालतेरसुत्तर	पचस० ५-२८५

वाक्य	स्रोत
वारह-जोयण-मूले	जंबू० प० ४-१३१
वारह-जोयण-वित्थड-	तिलो० सा० १००१
वारह-वरचक्कधरा	जवू० प० २-१७८
वारहविहतवयरणे	आरा० सा० ७
वारहसहस्सतुंगो	जंबू० प० १०-४१
वारहसहस्सरच्छा	जवू० प० ८-१२
वारहसहस्सरच्छा	जंबू० प० ८-११७
वारहसहस्सरच्छेहिं	जंबू० प० ६-१६०
बारुत्तरसयकोडी	गो० जी० ३४६
बारेक्कारमणंतं	लद्धिसा० ५०२
वालगुरुवुड्ढसेहे	आ० भ० ३
वालग्गकोडिमत्तं	सुत्तपा० १७
वालग्गिवग्घमहिसगय-	भ० आरा० २०१८
वालत्तणसूरत्तण-	छेदपिं० ३५३
वालत्तणं पि गुरुगं	तिलो० प० ४-६२५
वालत्तणे कदं सव्व-	भ० आरा० १०२५
वालत्तणे वि जीवो	वसु० सा० १८४
वालमरणाणि बहुसो	मूला० ७३
वालमरणाणि साहू	भ० आरा० १६६
वालरवीसमतेया	तिलो० प० ४-३३६
वाला कढिणा णिद्धा-	आय० ति० १-३८
बालादिएहिं जइया	भ० आरा० २०२२
बालादिवादि(द)पायच्छित्तं	छेदपिं० ३५
वालित्थी(त्थी)गोघादे	छेदपिं० २५
वालुगपुप्फगणामा	तिलो० प० ८-४३७
वाले वुड्ढे सीहे	भ० आरा० १६७५
बालो अमेज्झलित्तो	भ० आरा० १०६६
बालो पि पियरचत्तो	कत्ति० अणु० ४६
वालो यं वुड्ढो यं	वसु० सा० ३२४
वालो वा वुड्ढो वा	पवयणसा० ३-३०
बालो विहिंसणिज्जाणि	भ० आरा० १०२२
वावट्ठि च सहस्सा	जंबू० प० ४-१२४
वावण्णउवहिउवमा	तिलो० प० २-२११
वावण्ण देसविरदे	पचसं० ५-३४५
वावण्णसमभिरेया	जंबू० प० ३-४
बावण्णसया णेया	जंबू० प० १-६२
वावण्णसया तीसा	जवू० प० ३-१०
बावण्णसया पणसीदि-	तिलो० प० ७-४८२
बावण्णसया वाणउदि-	तिलो० प० ७-४८५
बावण्णं चेव सया	पंचसं० ५-३७४
वावण्ण छत्तीसं	सुदखं० २६
वावण्णं छत्तीसं	अगप० २-११
वावण्णा कोडीओ	जवू० प० ४-२३६
वावण्णा तिण्णि सया	तिलो० प० ७-५६५
वावत्तरि अप्पदगा	गो० क० ५७५
वावत्तरि तिसयाणि	तिलो० प० ७-३६८
वावत्तरितिसहस्सा	गो० क० ६००
वावत्तरि पयडीओ	वसु० सा० ५३५
वावत्तरि पयडीओ	पचसं० ५-४६५
वावत्तरि वादालं	तिलो० सा० ३३०
वावत्तरिं सहस्सा	जवू० प० १०-३६
वावत्तरी दुचरिमे	पचसं० ३-५३
वावीसजुदसहस्सा	तिलो० प० ८-१६६
वावीस जोयणसया	जवू० प० ७-२०
वावीस जोयणसया	जंबू० प० ८-१७६
वावीस तिसयजोयण-	तिलो० प० ८-६०
वावीसपण्णरसगे	कसायपा० ३१
वावीसवध चदुतिदु-	गो० क० ६८६
वावीसमेक्कवीसं	गो० क० ४६३
वावीसमेक्कवीसं	गो० क० ४६४
वावीसमेक्कवीसं	भावपा० १४२
वावीसमेक्कवीसं	पंचसं० ४-२४३
वावीसमेक्कवीसं	पचसं० ५-२३
वावीसयादिबघे-	गो० क० ६६१
वावीससतसहस्सा	कत्ति० अणु० १६२
वावीस सत्त तिण्णि य *	मूला० २२१
वावीस सत्त तिण्णि य *	गो० जी० ११३
वावीससदा णेया	जवू० प० १३-१५१
वावीससया ओही	तिलो० प० ४-११४६
वावीससहस्साइं	जंबू० प० ६-१७०
वावीससहस्साणि	तिलो० प० ७-५८४
वावीससहस्साणि	तिलो० प० ४-२०००
वावीससहस्साणि	तिलो० प० ४-२००८
वावीस सोल तिण्णि य	तिलो० सा० ३८५
बावीस होंति गेहा	जवू० प० ४-११६
बावीसं च सहस्सा	जवू० प० ४-४२
वावीसं च सहस्सा	जवू० प० ७-१४
बावीसं च सहस्सा	तिलो० सा० ६१०
बावीस तित्थयरा	मूला० ५३३
वावीसं दस य चऊ	गो० क० ६५५

ब

बिगुणियतिमाससमधिय-	तिलो० प० ४-६४६
बिगुणियवीससहस्सा	तिलो० प० ४-११७४
बिगुणियसट्ठिसहस्सं	तिलो० प० ८-२२७
बिगुणियसट्ठिसहस्सा	तिलो० प० ८-२४५
बिगुणे सगिट्ठइसुपे	तिलो० सा० ४२७
बिरिण वि असुहे ज्झाणे	कत्ति० अणु० ४७५
बिरिण वि जेण सहतु मुणि	परम० प० २-३७
बिरिण वि दोस हवंति तसु	परम० प० २-४४
बिरिण सयइँ असिआउसा	सावय० दो० २१६
बितिएइंदियजीवे	पचसं० ४-२४
बितिचउपंचेंदियभेयदो	वसु० सा० १४
बितिचउरिंदियसुहुमं	पचस० ४-३६६
बितिचउरिंदियसुहुमं	पंचस० ४-४६८
बितिचपपुण्णजहण्णं *	तिलो० प० ५-३१७
बितिचपपुण्णजहण्णं *	गो० जी० ६६
बितिचपमाणमसंखे-	गो० जी० १७७
बिदिए मिच्छपणुणा	सिद्धत० ६६
बिदिओ दु जो पमाणो	जंबू० प० १३-५३
बिदिओ हु जो पमाणो	जंबू० प० १३-७७
बिदियकरणस्स पढमे	लद्धिसा० १६१
बिदियकरणादिमादो	लद्धिसा० ६२
बिदियकरणादिमादो	लद्धिसा० १४२
बिदियकरणादिसमया	लद्धिसा० ५२
बिदियकरणादिसमये	लद्धिसा० २१६
बिदियकरणादु जाव य	लद्धिसा० १०५
बिदियकसाएहिं विणा	पचस० ४-३३५
बिदियकसाएहिं विणा	पचस० ४-३४० (क)
बिदियकसायचउक्कं +	पचसं० ३-१६
बिदियकसायचउक्कं +	पचसं० ४-३११
बिदियगमायाचरिमे	लद्धिसा० ५५६
बिदियगुणे अणथीणति-	गो० क० ६६
बिदियगुणे णिरयगदि	आस० ति० २७
बिदियगुणे णिरयगदी	भावति० ८८
बिदियट्ठिदिस्स दव्वं	लद्धिसा० २१०
बिदियट्ठिदिस्स दव्वं	लद्धिसा० २१३
बिदियतिभागो किट्टी	लद्धिसा० ४८८
बिदियद्धापरिसेसे	लद्धिसा० २६१
बिदियद्धासंखेज्जा-	लद्धिसा० २८८
बिदियद्धे लोभावर-	लद्धिसा० २८०
बिदियपणवीसठाणं ‡	पचस० ४-२७८
बिदियपणुवीसठाणं ‡	पंचस० ५-७१
बिदियपहट्ठिदसूरे	तिलो० प० ७-२८२
बिदियपीढाण उवओ	तिलो० प० ४-७६७
बिदियम्मि कालसमये	जंबू० प० २-११६
बिदियम्मि फलिहभित्ती	तिलो० प० ४-८५६
बिदियस्स माणचरिमे	लद्धिसा० ५५३
बिदियस्स वि पणठाणे	गो० क० ३८०
बिदियस्स वीसजुत्तं	तिलो० प० ४-२०३४
बिदियं अट्ठावीसं ×	पचस० ४-३०१
बिदियं अट्ठावीसं ×	पचस० ५-६४
बिदियं चदुमणुसोरा-	पचस० ४-३८१
बिदियं बिदिय खंडे	गो० क० ६५७
बिदियं व तदियकरणं	लद्धिसा० ८३
बिदिय व तदियभूमी	तिलो०प० ४-२१६६
बिदियाए पुढवीए	मूला० १०५६
बिदियाओ वेदीओ	तिलो० प० ४-७६७
बिदियादिसु इच्छंतो	तिलो० प० २-१०७
बिदियादिसु चउठाणा	लद्धिसा० ५१५
बिदियादिसु छसु पुढविसु	गो० क० २६२
बिदियादिसु छसु पुढविसु	भावति० ५१
बिदियादिसु समयेसु अ-	लद्धिसा० ५६७
बिदियादिसु समयेसु वि	लद्धिसा० ४७४
बिदियादिसु समयेसु हि	लद्धिसा० २६५
बिदियादीकच्छाणं	जंबू० प० ४-२४४
बिदियादीणं दुगुणा	तिलो० प० ६-७२
बिदियादो पुण पढमा	कसायपा० १७० (११७)
बिदियादो पुण पढमा	कसायपा० १७१ (११८)
बिदियावरणे णव बंध-	गो० क० ६३१
बिदियावलिस्स पढमे	लद्धिसा० १३१
बिदियुवसमसम्मत्तं	गो० जी० ६६५
बिदियुवसमसम्मत्त	गो० जी० ७२६
बिदिये तुरिये पणगे	गो० क० ३७१
बिदिये पढम कुंडं	तिलो० सा० ३१
बिदिये वारे पुण्णं	तिलो० सा० ३२
बिदिये बिगिपणगयदे	गो० क० ४६६
बिदिये बिदियणिसेगे	गो० क० १६२
बियतियचउक्कमासे	मूला० २६
बिहि तिहिं चउहिं पंचहि *	पचस० १-८६
बिहि तिहिं चदुहिं पंचहिं *	गो० जी० १६७
बिबाण समुद्दिट्ठा	जंबू० प० १२-७५

भ

म

मग्गुज्जोदुपओगा- *	भ० आरा० ११९१
मग्गुज्जोवुपओगा- *	मूला० ३०२
मग्गेक्कमुहुत्ताणि	तिलो० प० ७-४३६
मग्गो मग्गफलं ति य ×	णियमसा० २
मग्गो मग्गफलं ति य ×	मूला० २०२
मघवं सणक्कुमारो	तिलो० सा० ८२४
मघवीए णारइया	तिलो० प० २-२००
मच्छमुहा अभिकण्णा	तिलो० प० ४-२७२४
मच्छमुहा कालमुहा	तिलो० प० ४-२४८४
मच्छाण पुव्वकोडी	मूला० १११०
मच्छुव्वत्तं मणोदुट्ठं	मूला० ६०४
मच्छो वि सालिसित्थो	भावपा० ८६
मज्जणमंडणधादी	मूला० ४४७
मज्जणयगंधपुप्फो-	भ० आरा० २०६७
मज्जवरतूरभूसण-	जंबू० प० ३-२३७
मज्जंगतूरभूसण-	वसु० सा० २५१
मज्जंगदुमा णेया	जंबू० प० २-१२५
मज्जंगा तूरंगा	जंबू० प० २-१२४
मज्जं ण वज्जणिज्जं	दसणसा० ६
मज्जं पिवंता पिसिदं लसंता	तिलो० प० २-३६७
मज्जारपदय(प)माणं	छेदपिं० १२
मज्जारपहुदिवरणं	कत्ति० अणु० ३४७
मज्जारमुहा य तहा	तिलो० प० ४-२७२७
मज्जाररसिदसरिसो-	भ० आरा० २८३
मज्जार-साण-रज्जू-	धम्मर० १४६
मज्जारसाणसूयर-	तिलो० सा० १७८
मज्जु मंसु महु परिहरइ	सावय० दो० ७७
मज्जु मंसु महु परिहरहि	सावय० दो० २२
मज्जु मुक्कु मुक्कहँ मयहँ	सावय० दो० ४३
मज्जेण णरो अवसो	वसु० सा० ७०
मज्जे धम्मो मंसे धम्मो	भावसं० १८४
मज्झगहतिक्खसूरं	भ० आरा० ११०५
मज्झत्थो मीमेहिं	आय० ति० ७-४
मज्झम्मि तहा च्छिद्दं	रिट्ठस० ५२
मज्झम्मि दु णायव्वा	जंबू० प० १०-२५
मज्झम्मि पंच रज्जू	तिलो० प० १-१४१
मज्झसहावं णाणं	दव्वस० णय० ४०६
मज्झसहावं णाणं	णयच० ८३
मज्झंते एक्को च्चिय	आय० ति० २-६
मज्झं परिग्गहो जइ	समय० २०८
मज्झिमअंसेण मुदा	गो० जी० ५२१
मज्झिमउदयपमाणं	तिलो० प० ४-२१४७
मज्झिमउवरिमभागे	तिलो० प० ४-७४८
मज्झिमकसायअडउवसमे	भावति० १०
मज्झिमगेवज्जेसु य	जंबू० प० ११-३३५
मज्झिमचउजुगलाणं	तिलो० सा० ४५४
मज्झिमचउमणवयणे	गो० जी० ६७८
मज्झिमचउमणवयणे	भावति० ८६
मज्झिमजगस्स उवरिम-	तिलो० प० १-१५८
मज्झिमजगस्स हेट्ठिम-	तिलो० प० १-१५४
मज्झिमजहण्णुक्कस्सा	दव्वस० णय० ३४१
मज्झिमदव्वं खेत्तं	गो० जी० ४५८
मज्झिमधणमवहरिदे	लद्धिसा० ७२
मज्झिमपक्खेसु पुणो	छेदपिं० १४०
मज्झिमपत्ते मज्झिम-	भावसं० ५००
मज्झिमपदक्खरवहिद-	गो० जी० ३५४
मज्झिमपरिधिचउत्थ	तिलो० सा० ६०२
मज्झिमपरिसाए सुरा	तिलो० प० ८-२३२
मज्झिमपरिसाण व(वि)हू	जंबू० प० ३-६२
मज्झिमपासादाणं	तिलो० प० ४-३२
मज्झिम वहुभागुदया	लद्धिसा० ६३८
मज्झिमयम्मि विमाणे	जंबू० प० ११-२१८
मज्झिमया दिढवुद्धी	मूला० ६२६
मज्झिम(ज्झेसु)रजदरचिदा	तिलो०प०४-२४५६
मज्झिमवयवामाहर-	आय० ति० १-४१
मज्झिमवयसुरराओ	आय० ति० १-१३
मज्झिमविसोहिसहिदा	तिलो० प० ३-१६३
मज्झिमसुरेण जुत्ता	जंबू० प० ४-२२५
मज्झिमहेट्ठिमणामो	तिलो० प० ८-१२२
मज्झिल्लं हि दु भागं	जंबू० प० १०-८
मज्झिल्ले मणवचिए	पंचस० ४-२६
मज्झे अरिहं देवं	भावसं० ४५०
मज्झे चत्तारि हवे	जंबू० प० २-५३
मज्झे चेट्ठदि रायं(?)	तिलो० प० ५-१८६
मज्झे जीवा वहुगा	गो० क० २४४
मज्झे थोवसलागा	गो० क० १४६
मज्झे दहस्स पउमा	जंबू० प० ३-७३
मज्झे दीओ जलदो	तिलो० सा० ५८७
मज्झे मज्झे तेसिं	जंबू० प० ४-१६४
मज्झे सिहरे य पुणो	जंबू० प० ४-११

महपउमदहाउ णदी	तिलो० प० ४–१७४४
महपउमो सुरदेओ +	तिलो० प० ४–१५७७
महपउमो सुरदेवो +	तिलो० सा० ८७३
महपुंडरीयणामो	तिलो० प० ४–२३५८
महपूजासु जिणाणं	तिलो० सा० ५५४
महमंडलिओ णामो	तिलो० प० १–४७
महमंडलियाणं अद्ध-	तिलो० प० १–४१
महवीरभासियत्थो	तिलो० प० १–७६
महव्वयाणि पंचेव	अंगप० १–१८
महसुक्कइंदओ तह	तिलो० प० ८–१४३
महसुक्कणामपडले	तिलो० प० ८–५०१
महसुक्कम्मि य सेढी	तिलो० प० ८–६६२
महसुक्कसुराहिवई	जंबू० प० ५–१०२
महसुक्किदयउत्तर-	तिलो० प० ८–३४५
महहिमवचरिमजीवा	तिलो० सा० ७७४
महहिमवतणगस्स दु	जंबू० प० ३–२२८
महहिमवतं रुंदं	तिलो० प० ४–२५५५
महहिमवते दोसुं	तिलो० प० ४–१७२१
महासाहू महासाहू	कल्लाणा० ५०
महिलाकुलसवासं	भ० आरा० ६३८
महिलाण जे दोसा	भ० आरा ६६३
महिलादिभोगसेवी	भ० आरा० १२५६
महिलादी परिवारा	तिलो० प० ८–६४१
महिला पुरिसमवण्णाए	भ० आरा० ६५७
महिलालोयणपुव्वरइसरण- *	चारित्तपा० ३४
महिलालोयण पुव्वरदिसरणं *	मूला० ३४०
महिलालोयण पुव्वरदिसरणं *	भ०आरा०१२१०
महिलावाहविमुक्का	भ० आरा० १११३
महिला विग्घा धम्मस्स	भ० आरा ६८५
महिलावेसविलंबी	भ० आरा० ६३२
महिलासु णत्थि वीसंभ-	भ० आरा० ६४३
महिस य मडय च तहा	रिट्ठस० १७८
महिहि भमंतह ते णर य	सुप्प० दो० ६६
महु आसायउ थोडउ वि	सावय० दो० २३
महुकरिसमज्जियमहुं	भ० आरा० ७८०
महुपिंगो णाम मुणी	भावपा० ४५
महुमज्जमंसजूवा-	कल्लाणा० १२
महुमज्जमंसविरई	भावसं० ३५६
महुमज्जमंससेवी	वसु० सा० ६६
महु मज्जं मंसं वा	छेदपिं० ३३२
महुमज्जाहाराणं	तिलो० प० २–३४०
महुयर सुरतरुमंजरिहिं	पाहु० दो० १५२
महुरझणझणणिणादा	तिलो० सा० ६६३
महुरमणोहरवक्का	जंबू० प० ४–२२२
महुराए अहिच्छित्ते	णिव्वा० भ० २२
महुरा महुरालावा	तिलो० प० ६–४१
महुरेहिं मणहरेहिं य	जंबू० प० ३–१०८
महुरेहिं मणहरेहिं य	जंबू० प० ५–८०
महुलित्तखग्गसरिस *	भावस० ३३४
महुलित्तखग्गसरिसं *	कम्मप० ३०
महुलित्तं असिधारं	भ० आरा० १३५२
महुलित्तं असिधारं	भ० आरा० १६६५
मंगल-कारण-हेदू	तिलो० प० १–७
मगल-पज्जाएहिं	तिलो० प० १–२७
मंगलपहुदिच्छक्कं	तिलो० प० १–८५
मंडलखेतपमाणं	तिलो० प० ७–४६०
मंताभिओगकोदुग-	भ० आरा० १८२
मंतीणं अमराणं	तिलो० प० ४–१३५२
मंतीणं उवरोधे	तिलो० प० ४–१३०७
मंतु ण तंतु ण धेउ ण धारणु	पाहु० दो० २०६
मंदकसायं धम्मं	कत्ति० अणु० ४७०
मंदकसायेण जुदा	तिलो० प० ४–४१६
मंदरअणिलदिसादो	तिलो० प० ४–२०१३
मंदरईसाणदिसा-	तिलो० प० ४–२१६२
मंदरउत्तरभागे	तिलो० प० ४–२१८६
मंदरकुलवक्खारिसु-	तिलो० सा० ५६२
मंदरगिरिदो गच्छिय	तिलो० प० ४–२०५३
मंदरगिरिदो गच्छिय	तिलो० प० ४–२०६१
मंदरगिरिपहुदीणं	तिलो० प० ४–२८२६
मंदरगिरिमज्झादो	तिलो० सा० ३६७
मंदरगिरिमज्झादो	तिलो० प० ७–२१३
मंदरगिरिमूलादो	तिलो० प० ५–६
मंदरगिरिंदउत्तर-	तिलो० प० ४–२५८७
मंदरगिरिंदणइरिदि-	तिलो० प० ४–२१५५
मंदरगिरिंददक्खिण-	तिलो० प० ४–२१३६
मंदरणामो सेलो	तिलो० प० ४–२५७३
मंदरतलमज्झादो	जंबू० प० ११–६८
मंदरतलमज्झादो	जंबू० प० ११–१००
मंदरतलमज्झादो	जंबू० प० ११–१०२
मंदरपच्छिमभागे	तिलो० प० ४–२१०६

माणुसमंसपसत्तो	भ० आरा० १३५७
माणुसलोयपमाणो	तिलो० प० ६-१७
माणुस्सा दुवियप्पा	णियमसा० १६
माणेण जाइकुलरूव-	भ० आरा० १३१७
माणेण तेण राया	जबू० प० ७-१४६
माणे लदासमाणे	कसायपा० ७५(२२)
माणोदएण चडिदो	लद्धिसा० ३५३
माणोदयचडपडिदो	लद्धिसा० ३५५
माणो य माय लोहो	दव्वस० णय० ३६४
माद(दु)सुदादिसजोणी	छेदस० ८४
मादं सुदं च भगिणी-	भ० आरा० १०६५
मादाए वि य वेसो	भ० आरा० ८४६
मादापिदरसहोदर-	बा० अणु० २१
मादा पिदा कलत्त	तिलो० प० ४-६३६
मादा य होदि धूदा	मूला० ७१६
मादुपिदुपुत्तदारेसु	भ० आरा० ११४७
मादुपिदुपुत्तमित्तकलत्त-	रयणसा० १६
मादुपिदुसयणसबधिणो	मूला० ७००
मादुसुदादीहिं सजोणियाहिं	छेदपिं० ३४१
मादुसुदाभगिणी वि य	मूला० ८
मा मुक्क पुण्णहेऊं	भावसं० ३६४
मा मुज्झह मा रज्जह	दव्वस० ४८
मा मुट्ठा पसु गरुवडा	पाहु० दो० १३१
माय-तिगादो लोभस्सादि-	लद्धिसा० ५७२
मायदुगं संजलणग-	लद्धिसा० २७६
मायंगकुंभसरिसो	जबू० प० ६-३८
मायंगरामपुत्तो	अंगप० १-५१
मायं चिय अणियट्टी-	पंचसं० ३-५८
मायाए अभत्तीए	आय० ति० २३-१३
मायाए तं सव्वं	भावस० ४४६
मायाए पढमठिदी	लद्धिसा० २७५
मायाए पढमठिदी	लद्धिसा० २७७
मायाए मित्तभेदे	भ० आरा० १३८५
मायाए वहिणीए	मूला० ६६२
माया करेदि णीचा-	भ० आरा० १३८६
मायागहणे बहुदोस-	भ० आरा० १११०
मायाचारविवज्जिद-	तिलो० प० ३-२३२
मायादोसा मायाए	भ० आरा० १४५५
माया धूदा भज्जा	भ० आरा० ६२६
माया-पमाय-पउरा	भावसं० ६३

माया पियर कुडंबो	कल्लाण० ८
माया पोसेइ सुयं	भ० आरा० १७६०
माया मिल्लहि थोडिय वि	सावय० दो० १३३
माया य सादिजोगो	कसायपा० ८८ (३५)
मायारूवमहेंदज्जाल-	अगप० ३-५
मायालोहे रदिपुव्वा-	गो० जी० ६
मायावहिणिसुआओ	धम्मर० १४६
माया व होइ विस्सस्स	भ० आरा० ८४०
मायाविवज्जिदाओ	तिलो० प० ८-३८७
माया वि होइ भज्जा	भ० आरा० १७६६
मायावेल्लि असेसा	भावपा० १५६
मायासल्लस्सालोयणा-	भ० आरा० १२८५
मारणसीलो कुणादि हु	भ० आरा० ७६५
मारिमि जीवावेमि य	समय० २६१
मारिवि चूरिवि जीवडा	परम० प० २-१२६
मारिवि जीवहँ लक्खडा	परम० प० २-१२५
मारेदि एवमवि जो	भ० आरा० ७६६
मालइकयंबकणया-	वसु० सा० ४३१
मासचउक्कं लोचो	छेदपिं० १०५
मासत्तिदयाहिय चउ	तिलो० प० ४-६४८
मासपुधत्तं वासा	लद्धिसा० ५५८
मासम्मि सत्तमे तस्स	भ० आरा० १०१०
मासं पडि उववासो	छेदस० ६७
मासेण पंच पुलगा	भ० आरा० १००६
माहउ-सरणु सिलीमुहउ	सावय० दो० १७३
माहप्प वरचरणं	अगप० १-५०
माहप्पेण जिणाणं	तिलो० प० ४-६०५
माहवचंदुद्धरिया	तिलो० सा० ३६४
माहिंदउवरिमेत्तं(मंते)	तिलो० प० १-२०४
माहिंदे सेढिगया	तिलो० प० ८-१६३
मा होइ वासगणणा	मूला० ६६५
मिच्छक्खपंचकाया	पचसं० ४-११७
मिच्छक्खपंचकाया	पचसं० ४-१२४
मिच्छक्खपचकाया	पचस० ४-१२५
मिच्छक्खपंचकाया	पंचस० ४-१३१
मिच्छक्खपंचकाया	पचसं० ४-१३२
मिच्छक्खपंचकाया	पंचसं० ४-१३६
मिच्छक्खं चउकाया	पंचसं० ४-१११
मिच्छक्खं चउकाया	पंचस० ४-११८
मिच्छक्खं चउकाया	पंचस० ४-११६

मिच्छक्खं चउकाया	पचसं० ४-१२६
मिच्छक्खं चउकाया	पंचस० ४-१२७
मिच्छक्खं चउकाया	पचसं० ४-१३३
मिच्छचउक्क छक्क	गो० क० ५०३
मिच्छणउंसयवेय	पंचस० ३-१५
मिच्छणउंसयवेय *	पचस० ४-३०६
मिच्छणउंसयवेयं *	पचस० ४-३२६
मिच्छणथीणति सुरचउ	लद्धिसा० २५
मिच्छतिगऽयदचउक्क	भावति० २६
मिच्छतियसोलसाणं	गो० क० ४४७
मिच्छतियं चउ सम्मग	दव्वस० णय० ३६६
मिच्छतिये तिचउक्के	गो० क० ८२१
मिच्छतिये मिस्सपदा	गो० क० ८४६
मिच्छत्तक्ख तिकाया	पचस० ४-१०६
मिच्छत्तक्ख तिकाया	पचसं० ४-१२८
मिच्छत्तक्ख तिकाया	पचस० ४-११२
मिच्छत्तक्ख तिकाया	पचस० ४-११३
मिच्छत्तक्ख तिकाया	पचसं० ४-१२०
मिच्छत्तक्ख तिकाया	पचस० ४-१२१
मिच्छत्तक्ख दुकाया	पचस० ४-१०३
मिच्छत्तक्ख दुकाया	पचस० ४-१०७
मिच्छत्तक्ख दुकाया	पंचस० ४-११४
मिच्छत्तक्ख दुकाया	पंचस० ४-११५
मिच्छत्तक्ख दुकाया	पचसं० ४-१२२
मिच्छत्तक्ख दुकाया	पचसं० ४-१०८
मिच्छत्तक्खं काओ	पंचसं० ४-११६
मिच्छत्तक्खं काओ	पचसं० ४-१०६
मिच्छत्तक्ख काओ	पंचसं० ४-११०
मिच्छत्तक्ख काओ	पचस० ४-१०२
मिच्छत्तक्खं काओ	पचस० ४-१०४
मिच्छत्तक्खं काओ	पंचस० ४-१०५
मिच्छत्तछण्णदिट्ठी	भावपा० १३७
मिच्छत्तणउदयादो	भावति० ४
मिच्छत्तणकोहाई	पंचस० ५-३०
मिच्छत्तणकोहाई	पचस० ५-३०२
मिच्छत्त तह कसाया	भावपा० ११५
मिच्छत्ततिमिरताणं(रत्ता?)	तिलो०प० ४-२४६८
मिच्छत्तपच्चये खलु	कसायपा० ६७(४४)
मिच्छत्तपडिक्कमणं	मूला० ६१७
मिच्छत्तपरिणदप्पा	कत्ति० अणु० १६३
मिच्छत्तपहुदिभावा	णियमसा० ६०
मिच्छत्तभावणाए	तिलो० प० ४-५०५
मिच्छत्तमविरदी तह	सिद्धत० ४८
मिच्छत्तमिस्ससम्मस-	लद्धिसा० ६०
मिच्छत्तमोहणादो	भ० आरा० ७२७
मिच्छत्तमोहिदमदी	भ० आरा० १७६८
मिच्छत्तरसपउत्तो	भावसं० १३
मिच्छत्तवेदणीए	कसायपा० १०७ (५४)
मिच्छत्तवेदणीयं	मूला० ५६५
मिच्छत्तवेदणीयं	कसायपा० ६५ (४२)
मिच्छत्तवेदरागा- *	मूला० ४०७
मिच्छत्तवेदरागा- *	भ० आरा० १११८
मिच्छत्तसल्लदोसा	भ० आरा० १२८७
मिच्छत्तसल्लविद्धा	भ० आरा० ७३१
मिच्छत्तस्स य उत्ता	गो० क० ६३३
मिच्छत्तस्स य वमणं	भ० आरा० ७२२
मिच्छत्तस्सुदएण य	भावस० १२
मिच्छत्तहुडसंढा	गो० क० ६५
मिच्छत्तं अण्णाणं	दव्वस० णय० ३०१
मिच्छत्त अण्णाणं	तिलो० प० ६-५७
मिच्छत्तं अण्णाणं	मोक्खपा० २८
मिच्छत्तं अविरमणं	समय० १६४
मिच्छत्तं अविरमणं	बा० अणु० ४७
मिच्छत्त अविरमणं –	गो० क० ७८६
मिच्छत्त अविरमणं –	आस० ति० २
मिच्छत्त अविरमण ×	भ० आरा० १८२५
मिच्छत्त अविरमणं ×	मूला० २३७
मिच्छत्त आयावं	पंचस० ३-३२
मिच्छत्त जइ पयडी	समय० ३२८
मिच्छत्त पुण दुविह	समय० ८७
मिच्छत्तं पुण दुविहं	दव्वस० णय० ३०२
मिच्छत्त वेदंतो +	पचस० १-६
मिच्छत्त वेदतो +	गो० जी० १७
मिच्छत्तं वेदंतो +	लद्धिसा० १०८
मिच्छत्तं वेदंतो +	भ० आरा० ४१
मिच्छत्ता अविरमणं	दव्वस० णय० ८१
मिच्छत्ताई चउ पण	पचस० ४-८३
मिच्छत्ताणण्णदरं	गो० क० ७६५
मिच्छत्ताविरइकसाय-	वसु० सा० ३६
मिच्छत्ताविरदिपमाद-	दव्वस० ३०

य

र

रमिओ सो सत्तमए	आय० ति० ४-२१
रम्मकभोगखिदीए	तिलो० प० ४-२३३४
रम्मकभोगखिदीए	तिलो० प० ४-२३३८
रम्मकभोगखिदीए	तिलो० प० ४-२३४७
रम्मकविजओ रम्मो	तिलो० प० ४-२२२२
रम्माए सुधम्माए	तिलो० प० ८-४०८
रम्माधयारपहुदी	तिलो० प० ८-५६४
रम्मायारा गंगा	तिलो० प० ४-२३३
रम्मारमणीयाओ	तिलो० प० ५-७८
रम्मुज्जाणेहिं जुदा	तिलो० प० ४-१३६
रयणकलसेहिं तेहिं य	जंबू० प० ४-२७६
रयणकवाडवरावर	तिलो० सा० ७१६
रयणखचिदाणि ताणि	तिलो० प० ४-८६२
रयणणिहाणं छंडइ	भावसं० ८६
रयणत्तयकरणत्तय-	रयणसा० १५१
रयणत्तयजुत्ताणं	कत्ति० अणु० ४५६
रयणत्तयपढमाए	वसु० सा० ४६८
रयणत्तयमाराहं	मोक्खपा० ३४
रयणत्तयमेव गणं	रयणसा० १६३
रयणत्तय-सजुत्ता जिउ	जोगसा० ८३
रयणत्तय-सजुत्ता	णियमसा० ७४
रयणत्तयसंजुत्तो	कत्ति० अणु० १९१
रयणत्तयसिद्धीए	भावति० १४
रयणत्तयस्स रूवे	रयणसा० ६५
रयणत्तयं पि जोई	मोक्खपा० ३६
रयणत्तयं ण वट्टइ	दव्वस० ४०
रयणत्तये वि लद्धे	कत्ति० अणु० २९६
रयणत्ते (त्तए) सुअलद्धे	भावपा० ३०
रयणदीउ दिणयर दहिउ	जोगसा० ५७
रयणपुरे धम्मजिणो	तिलो० प० ४-५३९
रयणप्पहअवणीए	तिलो० प० २-१०८
रयणप्पहचरमिंदय-	तिलो० प० २-१६८
रयणप्पहपहुदीसुं	तिलो० प० २-८२
रयणप्पहपंकड्ढे	तिलो० सा० २२२
रयणप्पहपुढवीए	तिलो० सा० २०२
रयणप्पहपुढवीए	तिलो० प० ६-७
रयणप्पहपुढवीए	तिलो० प० २-२१७
रयणप्पहपुढवीए	तिलो० प० ३-७
रयणप्पहपुढवीदो	तिलो० सा० १४२
रयणप्पह सक्करपह	वसु० सा० १७२
रयणप्पहाए जोयण-	मूला० ११५२
रयणप्पहा तिहा खर-	तिलो० सा० १४६
रयणप्पहावणीए	तिलो० प० २-२७१
रयणमए जगदीए	जंबू० प० ५-६१
रयणमयथंभजोजिद-	तिलो० प० ४-२००
रयणमयपडलियाए	तिलो० प० ४-१३११
रयणमयपीठसोहं	जंबू० प० ५-६८
रयणमयभवणणिवहो	जंबू० प० ६-५३
रयणमयवरदुवारो	जंबू० प० ३-१५६
रयणमयविउलपीढं	जंबू० प० ५-४२
रयणमयवेदिणिवहा	जंबू० प० २-४३
रयणमयवेदिणिवहा	जंबू० प० ४-६१
रयणमयवेदिणिवहा	जंबू० प० ६-३०
रयणमया पल्लाणा	तिलो० प० ८-२५६
रयणमया पल्लाणा	जंबू० प० ४-१६०
रयणमया पासादा	जंबू० प० १-४४
रयणमया बहुविहसो ?	जंबू० प० ६-१०३
रयणमिह इंदणीलं	पवयणसा० १-३०
रयणं चउप्पहे पिव	कत्ति० अणु० २९०
रयणं च संखरयणा	तिलो० प० ५-१७४
रयणाकरेक्कउवमा	तिलो० प० ३-१४४
रयणाण आयरेहिं	तिलो० प० ४-१३५
रयणाण महारयणं	कत्ति० अणु० ३२५
रयणादिछट्ठमतं	तिलो० प० २-१५६
रयणादिणारयाणं	तिलो० प० २-२८८
रयणायररयणपुरा	तिलो० प० ४-१२५
रयणायरेहिं जुत्तो	जंबू० प० ६-२५
रयणाहरणविहूसिय-	जंबू० प० ४-१८५
रयणिदिणं ससिसूरा	भावस० ५६१
रयणिविरामे सज्झाय-	छेदपिं० ५७
रयणिसमयम्हि ठिच्चा	वसु० सा० २८५
रयणीय पढमजामे	रिट्ठस० १८३
रयणु व्व जलहिपडियं	कत्ति० अणु० २९७
रविअयणे एक्केक्के	तिलो० प० ७-५००
रविकत वेदणिवहा	जंबू० प० ६-६७
रविखडादो बारस-	तिलो० सा० ४०५
रविदड्ढवादवेउव्वियाण-	भ० आरा० १७३८
रविचंदं तह तारा	रिट्ठस० ४७
रविचंदाणं गहणं	रिट्ठस० १२४
रविचंदाण पिच्छइ	रिट्ठस० ५१

रविबिंबा सिग्घगदी	तिलो० प० ७–२६६
रविमंडल व्व वट्टा	तिलो० प० ४–७१४
रविमंडल व्व वट्टो	जवू० प० १–२०
रविमेरुचंदसायर-	भावसं० ६६६
रविरिक्खगमणखंडे	तिलो० प० ७–५१२
रवि-ससि अंतर डहरं	जवू० प० १२–१००
रवि-ससि-गह-पहुदीणं	तिलो० प० ४–१००१
रवि ससि जदु त्ति णामा	जवू० प० ४–१५२
रसइड्ढिसादगारव-	जंवू० प० १०–६६
रसखंडफड्ढयाओ	लद्धिसा० ४६२
रसगदपदेसगुणहाणि-	लद्धिसा० ८१
रसठिदिखंडाणेव	लद्धिसा० ४८४
रसठिदिखंडुक्कीरण–	लद्धिसा० ५४३
रसपीदय व कडयं	भ० आरा० ५८३
रसवंवज्झवसाणट्ठा-	गो० क० ६६३
रसरुहिरमसमेदट्ठि- *	वा० अणु० ४५
रसरुहिरमंसमेदट्ठि- *	रयणसा० ११७
रससंतं आगहिदं	लद्धिसा० ४६१
रंगगदणडो व इमो	भ० आरा० १७७४
रंगंततुरगेहि य	जंवू० प० ३–१०५
रंगंतवरतुरगा	जवू० प० २–१६०
रंगावलिं च मज्झे	वसु० सा० ४०६
रंजेदि असुहकुणपे	मूला० ७२६
रंडा मुंडा चंडी	भावसं० १८२
राइणिय अराइणीएसु	भ० आरा० १२७
राईभोयणविरओ	कत्ति० अणु० ३०६
राएँ रंगिए हिय वडए	परम० प० १–१२०
राओ हं भिच्चो हं	कत्ति० अणु० १८७
रागजमं तु पमत्ते	गो० क० ८२६
रागदोसो णिरोहित्ता	मूला० ५२३
रागद्दोसकसाये य	मूला० ५०४
रागद्दोसविरहियं	जवू० प० १३–६४
रागद्दोसाभिहदा	भ० आरा० ५४२
रागविवागसतण्हा-	भ० आरा० ११८३
रागा(या)इभावकम्मा +	णयच० ८०
रागादिभावकम्मा +	दव्वस० णय० ४०३
रागादिसंगमुक्को	तिलो० प० ६–६२
रागादीहिं असच्चं	मूला० ६
रागादीहिं असच्चं	धम्मर० १४४
रागी वंधइ कम्मं	मूला० २४७
रागेण य दोसेण य	भ० आरा० १८६२
रागेण व दोसेण व	णियमसा० ५७
रागेण व दोसेण व	मूला० ५८
रागेण व दोसेण व	मूला० ६४३
रागो(ग) करेदि णिच्चं	लिंगपा० १७
रागो जस्स पसत्थो	पंचत्थि० १३५
रागो दोसो मोहो	जवू० प० १३–४६
रागो दोसो मोहो	वा० अणु० ५२
रागो दोसो मोहो	भ० आरा० ६२०
रागो दोसो मोहो	मूला० ७२८
रागो दोसो मोहो	मूला० ८७८
रागो दोसो मोहो	मूला० ८८०
रागो दोसो मोहो	समय० १७७
रागो दोसो मोहो	समय० ३७१
रागो पसत्थभूदो	पवयणसा० ३–५५
रागो लोभो मोहो	भ० आरा० ११२१
रागो हवे मणुण्णे	भ० आरा० ११७०
राजीणं विच्चाले	तिलो० प० ८–६१३
रादिणिए ऊणरादिणि-	मूला० ३८४
रादिं णियमे सुत्तो	छेदस० २३
रादो(दी) दिया व सुविणं-	छेदपिं० ७५
रादो दु पमज्जित्ता	मूला० ३२३
रामसुआ वेण्णि जणा	णिव्वा० भ० ६
रामस्स जामदग्गिस्स	भ० आरा० १३६३
राम-हणू सुग्गीवो	णिव्वा० भ० ८
रामा-सुग्गीवेहिं	तिलो० प० ४–५३३
रायगिहे णिस्सको +	भावस० २८०
रायगिहे णिस्संको +	वसु० सा० ५२
रायगिहे मुणिसुव्वय-	तिलो० प० ४–५४४
रायजुवतंतराए	तिलो० सा० २२४
रायतयल्लहिं छहरसहिं	पाहु० दो० १३२
राय-दोस वे परिहरिवि	परम० प० २–१००
रायद्दोसादीहिं य	तच्चसा० ५०
रायवधं पदोसं च	मूला० ३४
रायम्हि य दोसम्हि य *	समय० २८१
रायम्हि य दोसम्हि य *	समय० २८२
राय-रोस वे परिहरिवि	सावय० ३८
राय-रोस वे परिहरिवि	सावय० १००
रायगणबहुमज्झे	तिलो० प० ४–१८८
रायंगणबहुमज्झे	तिलो० प० ८–३६६

रायगणचहुमज्झे	तिलो० प० ७-४२
रायंगणबाहिरए	तिलो० प० ७-६२
रायंगणबाहिरए	तिलो० प० ७-७६
रायंगणभूमीए	तिलो० प० ८-३५७
रायंगणस्स बाहिर	तिलो० प० ५-२२३
रायंगणस्स मज्झे	तिलो० प० ७-७१
रायाइदोसरहिया	ढाढसी० २६
रायाइमलजुदाणं	रयणसा० १०४
रायाईहिं विमुक्कं	णाणसा० ४१
रायाचोरादीहिं य	मूला० ४४३
रायाण होइ कित्ती	आय० ति० १५-१
रायादिकुडुंबीणं	भ० आरा० १६११
रायादिमहड्ढियया-	भ० आरा० १६७६
रायादिया विभावा	तच्चसा० १८
रायादीपरिहारे	णियमसा० १३७
रायाधिरायवसहा	तिलो० प० ४-२२८५
रायाधिरायवसहा	जंबू० प० ७-६६
रायापराधकारी	छेदपिं० २७७
राया वि होइ दासो	भ० आरा० १८०१
राया हु णिग्गदो त्ति य	समय० ४७
रासीण य आयाण य	आय० ति० ४-१०
राहुअरिट्ठविमाणध-	तिलो० सा० ३४०
राहुअरिट्ठविमाणा	तिलो० सा० ३३६
राहूण पुरतलाणं	तिलो० प० ७-२०६
रिउतियभूदं अयणं	भावसं० ३१५
रिउपूरदाए वड्ढइ (उत्तरार्ध *)	रिट्ठस० २१६
रिक्खगमणादु अधियं	तिलो० प० ७-४६७
रिक्खाइ कित्तियाई	आय० ति० १६-१४
रिक्खाण मुहुत्तगदी	तिलो० प० ४-४७६
रिगवेदसामवेदा	मूला० २५८
रिट्ठसुरसमिदिवम्हं	तिलो० सा० ४६७
रिट्ठाए परि(णि)धीए	तिलो० प० ७-२६६
रिट्ठाणं णयरतला	तिलो० प० ७-२७४
रिट्ठादी चत्तारो	तिलो० प० ८-२४१
रिण पुच्छाए सीहो	आय० ति० २३-५
रिणमगोचंगतसं	गो० क० ३०७
रिणमोयण व्व मण्णइ	कत्ति० अणु० ११०
रित्तस्स उवरि भरिय	आय० ति० ३-६

* पूर्वार्ध उपलब्ध न होनेसे उत्तरार्धका प्रथम चरण दिया गया है।

रित्ताहिमुहे धूमे	आय० ति० १-२०
रिद्धीए कारणं ताव	आय० ति० १७-१
रिद्धी हु कामरूवा	तिलो० प० ४-१०२३
रिसभ(ह)मरेण य जुत्ता	जंबू० प० ४-२२३
रिसभगिरिरुप्पपव्वद-	जंबू० प० ६-१४६
रिसभणगा चउतीसा	जंबू० प० १-५७
रिसहाइवीरअंतह	सुदख० १
रिसहादीण चिण्हं	तिलो० प० ४-६०३
रिसहेसरस्स भरहो	तिलो० प० ४-१२८१
रिसिकरचरणादीणं	तिलो० प० ४-१०६६
रिसि दिय वरवदणासयण(असण)	सुप्प०दो० ४६
रिसिपाणितलणिखित्तं	तिलो० प० ४-१०८४
रिसिसंघ छंडित्ता	जंबू० प० १०-६६
रिसि-सावय-बालाणं	छेदस० ५५
रिसिसावयमूलुत्तर-	छेदपिं० २
रुक्खमइंदा य खरो	आय० ति० २१-६
रुक्खम्मि होइ सलिलं	आय० ति० १६-३
रुक्ख सयम्मि ससिणो	आय० ति० १६-१७
रुक्खाण चउदिसासु	तिलो० प० ४-१६०७
रुक्खो दु सीहवसहे	रिट्ठस० २०६
रुचक मंदरसोकं	तिलो० सा० ४८५
रुचग रुचिरंक फलिहं	तिलो० सा० ४६५
रुजगरुजगाह हिमव	तिलो० सा० ६४६
रुजगवरणामदीओ	तिलो० प० ५-१६
रुणरुणरुणंतछप्पय-	तिलो० प० ४-६२३
रुदक्ख रुद्दरिसिण-	तिलो० सा० २७८
रुद्दट्टवज्जण पि य	धम्मर० १४३
रुद्दुग छस्सुगणा	तिलो० सा० ८४६
रुद्द कसायसहिय	भावस० ३६१
रुद्दा य कामदेवा	जंबू० प० २-१८२
रुद्दावइ अइरुद्दा	तिलो० प० ४-१४६८
रुद्दो परासरो सच्चई-	भ० आरा० ११०१
रुद्धक्ख जिदक्सायो	दव्वस० णय० ३८२
रुद्धविमुक्को चलिओ	आय० ति० २-३२
रुद्धविमुक्को पाओ	आय० ति० २-१३
रुद्धासवस्स एवं	मूला० ७४४
रुद्धेसु कसायेसु अ	मूला० ७३६
रुद्धेसु णत्थि गमणं	रिट्ठस० २१४
रुद्धो रुद्धगहीओ	आय० ति० २-३१
रुद्धो रुद्धविमुक्को	आय० ति० २-२

ल

वदसमिदिकसायाणं *	पंचस० १-१२७
वदसमिदिकसायाणं *	गो० जी० ४६४
वदसमिदिपालणाए	बा० अणु० ७६
वद-समिदि-सील-संजम-	णियमसा० ११३
वदसमिदिंदियरोधो	पवयणसा० ३-८
वदसमिदिंदियरोहो	दव्वस० णय० ३३३
वदसमिदीगुत्तीओ	समय० २७३
वदसमिदीगुत्तीओ	दव्वसं० ३५
वदसीलगुणा जम्हा	मूला० १००३
वदिवददो तं देसं	पवयणसा० २-४७
वधजायणं अलाहो	मूला० २५५
वध-बंध-रोध-धणहरण-	भ० आरा० ७६६
वप्पा सुवप्पा महावप्पा +	तिलो० प० ४-२२०७
वप्पा सुवप्पा महावप्पा +	तिलो० सा० ६६०
वमिगं अमेज्भमरिसं	भ० आरा० १०१६
वमिदा अमेज्भमज्भे	भ० आरा० १०१३
वमियं व अमेज्भं वा	भ० आरा० १०१८
वयगुणसीलपरीसहजयं	रयणसा० १३०
वयगुत्ती मणगुत्ती	चारित्तपा० ३१
वयणकमलेहिं गणिअभि-	भ० आरा० १४७८
वयणखिदिरहिय उच्छय-	जंबू० प० ३-२१३
वंयणपडिवत्तिकुसलत्तणं	भ० आरा० ६१२
वयणम्मि णासियाए	रिट्ठस० ३२
वयणवहा जावदिया	अंगप० २-३४
वयणमयं पडिकमणं	णियमसा० ५३
वयणियमसीलजुत्ता	भावसं० २५
वयणियमसीलसंजम-	णाणसा० ५१
वयणेण एड रुहिरं	रिट्ठस० २६
वयणेहिं हेउहिं य ×	पचसं० १-१६१
वयणेहिं वि हेदूहिं वि ×	गो० जी० ६४६
वयणोच्चारणकिरियं	णयमसा० १२२
वय-तव-संजम-मूलगुण	जोगसा० २६
वय-तव-सीलममग्गो	वसु० सा० २२२
वयभट्ठकुठरुदेहि	भावसं० १८६
वयभंगकारण होइ	वसु० सा० २१४
वयमुह-वग्ध(वग्य)मुहक्खा	तिलो०प०४-२७२६
वयवग्धघूगकागहि-	तिलो० सा० १८५
वयवग्घतरच्छसिगाल-	तिलो० प० २-३१६
वयसमिदिगुत्तिजुत्ता	आ० भ० ४
वयसमिदिगुत्तियादी	सुदखं० ६

वयसम्मत्तविसुद्धे	बोधपा० २६
वयसमुभासुभपरिणाम-	छेदपिं० ३२६
वरअट्ठपाडिहारेहि	वसु० सा० ४७३
वरअवरमज्झिमाणि	तिलो० प० ७-११०
वरइंदणंदिगुरुणो	गो० क० ३६६
वरइंदीवरवण्णा	जंबू० प० ३-२००
वरकणयरयणमरगय-	जबू० प० १-४०
वरकणिय दुक्कोसा	जंबू० प० ६-१२४
वरकप्परुक्खणिवहा	जबू० प० २-४४
वरकप्परुक्खरम्मा	तिलो० प० ४-१४१
वरकमलकुमुदकुवलय-	जंबू० प० ५-७६
वरकमलगब्भगोरो	जबू० प० ८-६४
वरकमलसालिएहि य	जबू० प० ६-१७
वरकलमसालितंडुल-	वसु० सा० ४३०
वरकंचणकयसोहा	तिलो० प० ८-२८३
वरकाओदंसमुदा	गो० जी० ५२५
वरकुट्ठबीयबुद्धी	जोगिभ० १८
वरकुंडकुडदीवा	जंबू० प० ३-१६२
वरकेसरि ।रूढो	तिलो० प० ५-८६
वरकोमलपल्लाणा	जंबू० ४-१६६
वरगामणयरणिवहो	जंबू० प० ६-३३
वरगामणयरपट्टण-	जंबू० प० ६-१४५
वरचक्कवायरूढो	जंबू० प० ५-१०१
वरचक्कं आरूढो	तिलो० प० ५-६०
वरचंदसूरगहणं	अंगप० २-१०६
वरचामरभामंडल-	तिलो० प० ४-१६६२
वरचामरभामंडल-	जबू० प० ३-१४०
वरचित्तकम्मपउरा	जबू० प० ३-५८
वर जिय पावइँ सुंदरइँ	परम० प० २-५६
वरणगर-खेड-कव्वड-	जबू० प० ८-१७७
वरणदितडेसु गिरिसु य	जबू० प० १-७०
वरणादिणामेहि जुदा	जबू० प० ८-१२०
वरणदिया णायव्वा	जबू० प० ८-१८६
वरणालियेहिं रइओ	जंबू० प० ४-४६
वर णिय-दंसण-अहिमुहउ	परम० प० २-५८
वरतुरयसमारूढो	जबू० प० ५-६६
वरतोरणजुत्ताओ	जंबू० प० ७-६६
वरतोरणदाराणं	जबू० प० ६-१४३
वरतोरणसंछण्णो	जबू० प० ८-६६
वरतोरणस्स उवरिं	तिलो० प० ४-२५०

वरसुरहिगंधसलिला	जंबू० प० ६–२६
वरसूचिअंगुलेहि य	जंबू० प० १३–२५
वरं गणपवेसादो	मूला० ९८३
वरिससहस्सेण पुरा	भावसं० १३१
वरिसंति खीरमेघा	तिलो० प० ४–१५५६
वरिसंति दोणमेघा	तिलो० प० ४–२२४६
वरिसाण तिण्णि लक्खा	तिलो० प० ४–१४६३
वरिसादीण सलाया	तिलो० प० ४–१०४
वरिसादु दुगुण-वड्ढी(अद्दी)	तिलो०प० ४–१०६
वरिसे महाविदेहे	तिलो० प० ४–१७७८
वरिसे वरिसे चउविह-	तिलो० प० ५–८३
वरिसे संखेज्जगुणा	तिलो० प० ४–२६२६
वरुणो त्ति लोयपालो	तिलो० प० ४–१८४६
वरुणो वरुणादिपहो	तिलो० सा० ६६३
वरु विसु विसहरु वरु जलणु	पाहु० दो० २०
वलयगजदंतपिच्छ- (?)	छेदपिं० ६८
वलया मुहेण णेया	जंबू० प० १०–२६
वलयोवमपीढेसुं	तिलो० प० ४–८६८
वल्लहु अवगुण दानइ जेत्तिउ	सुप्प० दो० ६६
वल्लीतरुगुच्छलदुब्भ-	तिलो० प० ४–३५१
ववगद-पण-वण्ण-रसो	पचत्थि० २४
ववदेसा संठाणा	पचत्थि० ४६
ववहारणयचरित्ते	णियमसा० ५५
ववहारणयो भासदि	समय० २७
ववहारभासिएण उ	समय० ३२४
ववहारमयाणंतो	भ० आरा० ४५२
ववहाररोमरासिं	तिलो० प० १–१२६
ववहारसोहणाए	मूला० ६४६
ववहारस्स दरीसण-	समय० ४६
ववहारस्स दु आदा-	समय० ८४
ववहार रिउसुत्त ※	णयच० १४
ववहारं रिउसुत्तं ※	दव्वस० णय० १८६
ववहारादो वंधो	णयच० ७७
ववहारा सुहदुक्खं	दव्वसं० ८
ववहारिओ पुण णओ	समय० ४१४
ववहारुद्धारद्धा +	तिलो० प० १–९४
ववहारुद्धारद्धा +	जंबू० प० १३–२६
ववहारुद्धारद्धा +	तिलो० सा० ९३
ववहारुवजोग्गाणं	तिलो० सा० ९१
ववहारे जं रोमं	जंबू० प० १३–३६
ववहारेण दु आदा (एवं)	समय० ९८
ववहारेण दु एदे	समय० ५६
ववहारेण य लग्गा	ढाढसी० ३०
ववहारेण य सारो	आरा० सा० ३
ववहारेणुवदिस्सइ	समय० ७
ववहारेय रोमं	तिलो० सा० १००
ववहारो पुण कालो	गो० जी० ५७६
ववहारो पुण कालो	गो० जी० ५८६
ववहारो पुण तिविहो	गो० जी० ५७७
ववहारोऽभूयत्थो	समय० ११
ववहारो य वियप्पो	गो० जी० ५७१
वव्वगवगमोयमसारगल्ल-	तिलो० प० २–१४
वव्वर-चिलाद-खुज्जय-	तिलो० प० ८–३८८
वव्वरिचिलादि-दासी	जंबू० प० ११–२८३
वसईमज्झगदक्खिण-	तिलो० सा० ९९४
वसणइँ तावइँ छंडि जिय	सावय० दो० ५२
वसदीए पलिविदाए	भ० आरा० १५५७
वसधि(दि)सु अप्पडिवद्धा	मूला० ७८८
वसधीसु य उवधीसु य	भ० आरा० १५३
वसभाणीयस्स तहिं	जंबू० प० ११–२८७
वस-मज्ज-मंस-सोणिय-	मूला० ८४५
वस-रुहिर-पूयमज्झे	जंबू० प० ११–१६२
वसह-करि-काग-रासह-	रिट्ठस० ७८
वसहगये बहुसलिला	आय० ति० १०–२०
वसहगये सलिलभयं	आय० ति० १०–१३
वसहतुरगमरहगज-	तिलो० प० ८–२३५
वसहतुरंगमरहगय-	जंबू० प० ४–१५६
वसहाणीयादीणं	तिलो० प० ८–२७१
वसहिट्ठकामधरणिम्मा-	तिलो० सा० ५३८
वसहिय दुवारमूले	छेदपिं० २१५
वसहीए गब्भगिहे	तिलो० प० ४–१८६३
वसहेसु दामयट्ठी	तिलो० प० ८–२७४
वसहो धय-धूमगओ	रिट्ठस० २१०
वसियरण आइट्ठो	भावसं० ४५६
वसियव्वं कुच्छीए	धम्मर० ६२
विसुधम्मि वि विहरता	मूला० ७९८
वसुमित्त-अग्गिमित्ता	तिलो० प० ४–१५०५
वसु विसया रस वेया	आय० ति० १–३५
वस्ससदसहस्साइं	कसायपा० १२१ (७८)
वस्ससदं दसगुणिदं	जंबू० प० १३–६

वाक्य	स्थल
वायाम-गमण मुणिणो	छेदस० ३०
वारणदंतसरिच्छा	तिलो० प० ४-२००६
वारवदी य असेसा	भ० आरा० १२७४
वाराणसीए पुहवी-	तिलो० प० ४-५३१
वारिउ तिमिरु जिणेसरहँ	सावय० दो० १७२
वारि एक्कम्मि जम्मे	सीलपा० २२
वारुणि आसासन्ना	तिलो० सा० ६५५
वारुणिदीवादीए	जंबू० प० १२-२५
वारुणिदीवे णेया	जंबू० प० १२-३८
वारुणिवर खीरवरो	मूला० १०८०
वारुणिवरजलधीए	जंबू० प० १२-२६
वारुणिवरजलहिपहू	तिलो० प० ५-४२
वारुणिवरादिउवरिम-	तिलो० प० ५-२६६
वालेसुं दाढीसुं	तिलो० प० २-२६०
वाल्लसु य दाढीसु य *	मूला० ११५६
वावारविप्पमुक्का	णियमसा० ७५
वावीकूवसराणं	आय० ति० १०-१६
वावीण वाहिरेसु	तिलो० प० ५-६७
वावीणं पुव्वादिसु	तिलो० सा० ६७२
वावीणं बहुमज्झे	तिलो० प० ४-१६१४
वावीणं बहुमज्झे	तिलो० प० ५-६५
वावीहि विमलजलसी-	जंबू० प० ११-३५५
वासकदी दसगुणिदा	तिलो० प० ४-६
वासतए अडमासे	तिलो० प० ४-१५३३
वासदिणमास वारस-	तिलो० सा० ३२६
वासदिणमास वारस-	तिलो० प० ५-२८१
वासद्धकदी तिगुणा	तिलो० सा० २६
वासद्धधणं दलिय	तिलो० सा० १६
वासपुधत्ते खइया	गो० जी० ६५६
वासरसरूवचव्भू(सज्भु)णि-	तिलो० प० ३-२३७
वासवतिरीडचुंबिय-	जंबू० प० ७-१५२
वाससदमेक्कमाऊ	तिलो० प० ४-५८१
वाससदसहस्साणि	जंबू० प० १३-१०
वाससयं तह कालो	सुदख० ७२
वाससहस्से सेसे	तिलो० प० २-१५६७
वासस्स पढममासे	तिलो० प० १-६६
वासाओ वीसलक्खा	तिलो० प० ४-१४५६
वासाण दो सहस्सा	तिलो० प० ४-६५७
वासाणं लक्खा छह	तिलो० प० ४-१४६१
वासाणि णव सुपासे	तिलो० प० ४-६७५
वासाणुयग्ग(गय ?)संपत्ता-	वसु० सा० ४२८
वासा तेरसलक्खा	तिलो० प० ४-१४६०
वासादिकयपमाणं	कत्ति० अणु० ३६८
वासायामोगाढं	तिलो० सा० ५६८
वासारत्ते दिवसे	छेदस० ३१
वासा सोलसलक्खा	तिलो० प० ४-१४५७
वासा सोलसलक्खा	तिलो० प० ४-१४५८
वासा हि दुगुणडंडओ	तिलो० प ५-२३३
वासिगि कमले संख मुहुदओ	तिलो०सा० ३२६
वासिट्ठदियतरेहिं	तिलो० प० ५-११०
वासुदयभुजं रज्जू	तिलो० सा० १३८
वासुदया दीहत्ता	तिलो० सा० ८६०
वासो विभंगकत्तीणदीण	तिलो० प० ४-२२१७
वासो जोयणलक्खो	तिलो० प० २-१५६
वासो तिगुणो परिही	तिलो० सा० १७
वासो पणवणकोसा	तिलो० प० ४-१६७३
वासो वि माणुसुत्तर-	तिलो० प० ५-११६
वाहणवत्थप्पहुदी	तिलो० प० ४-१८५२
वाहणवत्थविभूसण-	तिलो० प० ४-१८४८
वाहणवत्थाभरणा	तिलो० प० ४-१८४६
वाहभयेण पलादो	भ० आरा० १३१६
वाहिगहियस्स मरण	आय० ति० २-२४
वाहिज्जइ गुरुभारं	धम्मर० ७५
वाहि-णिहाणं देहो	तिलो० प० ६३७
वाहि-पडिकार-हेदुं	छेदपिं० १५६
वाहीणे वाहिभय	आय० ति० ३-१५
वाहि व्व दुप्पसज्झा	भ० आरा० ७१
विउणम्मि सेलवासे	तिलो० प० ४-२७५४
विउणा पंचसहस्सा	तिलो० प० ४-१११४
विउलगिरितुंगसिहरे	जंबू० प० १-६
विउलगिरिपव्वए (मत्थए) इंद-	वसु० सा० ३
विउलमदीओ वारस	तिलो० प० ४-११०२
विउलमदीणं वारस-	तिलो० प० ४-१०६६
विउलमदी य सहस्सा	तिलो० प० ४-११११
विउलमदी वि य छद्धा	गो० जी० ४३६
विउलसिलाविच्चाले	तिलो० प० २-३३०
विकहाइविप्पमुक्को	रयणसा० १००
विकहाइसु रुद्दट्टज्झाणेसु	रयणसा० ६३
विकहा तह य कसाया *	भावस० ६०२
विकहा तहा कसाया *	पंचस० १-१५

वेढेदि तस्स जगदी	तिलो० प० ४–१५
वेढेदि विसयहेदुं *	तिलो० प० ४–६२६
वेणइयमिच्छदिट्ठी	भावस० ७३
वेणइयं णादव्वं	अगप० ३२०
वेणइय मिच्छत्त	भावसं० ८४
वेणुदुगे पंचदलं	तिलो० प० ३–१४५
वेणुवमूलोरब्भय- ×	गो० जा० २८५
वेणुवमूलोरब्भय- ×	कम्मप० ५६
वेत्त-लदा-गहियकरा	जंबू० प० ११–२८२
वेदकसाये सव्वं	गो० क० ७२२
वेदगकालो किट्टिय	कसायपा० १८१(१२८)
वेदगखाइयसम्मं	भावति० ६६
वेदगजोगो मिच्छो	लद्धिसा० १८८
वेदगजोग्गे काले	गो० क० ६१४
वेदगसरागचरियं	भावति० २६
वेदड्ढकुमारसुरो	तिलो० प० ४–१६८
वेदड्ढगिरीमूलं	जंबू० प० ७–१२१
वेदड्ढगिरी वि तहा	जबू० प० ८–१४३
वेदड्ढगुहाण तहा	जंबू० प० ७–६२
वेदड्ढणगो पवरो	जंबू० प० ७–७६
वेदड्ढपव्वदेण य	जबू० प९ ८–२७
वेदड्ढपव्वदेण य	जंबू० प० ६–१११
वेदड्ढमज्झभागे	जंबू० प० ७–६४
वेदड्ढरिसभपव्वद-	जबू० प० ६–१२६
वेदड्ढवरगुहेसु य	जबू० प० २–६५
वेदड्ढसेलमूले	जबू० प० ७–८४
वेदड्ढो वि य सेलो	जबू० प० ६–१०५
वेदणी(णि)ए गोदम्मि व	पंचसं० ५–१७
वेदतिए कोहतिए	सिद्धंत० १५
वेदतिय कोहमाण	गो० क० २६६
वेदयखइए भव्वा	पंचस० ४–३८०
वेदयखइए सव्वे	पंचसं० ४–५२
वेदयसम्मे केवल-	पंचसं० ४–३८
वेदलमीसिउ दहिमहिउ	सावय० दो० ३६
वेदस्सुदीरणाए	गो० जी० २७१
वेदस्सुदीरणाए	पंचस० १–१०१
वेदंता कम्मफलं	समय० ३८७
वेदंतो कम्मफलं	समय० ३८८
वेदंतो कम्मफलं	समय० ३८६
वेदादाहारोत्ति य	गो० जी० ७२३
वेदादाहारोत्ति य	गो० क० ३५४
वेदालगिरी भीमा	तिलो० सा० १८६
वेदाहया कसाया	पंचसं० ५–४१
वेदिकडिसुत्तणिवहा	जंबू० प० ३–३४
वेदिज्जादिट्ठिदिए	लद्धिसा० ५५६
वेदीए उच्छेहो	तिलो० प० ४–२००४
वेदीओ तेत्तियाओ	तिलो० प० ४–२३८८
वेदीणब्भंतरए	तिलो० प० ३–४२
वेदीण रुंद दंडा	तिलो० ४–७२७
वेदीण बहुमज्झे	तिलो० प० ३–४०
वेदीणं विच्चाले	तिलो० प०८–४२१
वेदीदो गंतूणं	जबू० प० १०–४०
वेदीदो गंतूणं	जंबू० प० १०–४७
वेदी-दोपासेसु	तिलो० प० ४–२२
वेदी पढमं विदियं	तिलो० प० ४–७१३
वेदी वणभयपासे	तिलो० सा० ६१३
वेदी वा वेउड्ढं (?)	जंबू० प० ११–७४
वेदे च वेदणीये	कसायपा० १३५(८२)
वे-पंथेहिं ण गम्मइ	पाहु० दो० २१३
वेभंगचक्खुदंसण-	सिद्धंत० ३६
वेभंगमणाहारे	भावति० ११४
वेभंगे बावण्णा	आय० ति० ४७
वे भंजेविणु एक्कु किउ	पाहु० दो० १०४
वेमाणिए दु एदे	जबू० प० ११–२१६
वेमाणिएसु कप्पो-	भ० आरा० २०८६
वेमाणिओ थलगदो	भ० आरा० २०००
वेयड्ढउत्तरदिसा-	तिलो० प० ४–१३५७
वेयड्ढ-जंबु-सामलि-	तिलो० सा० ६८२
वेयड्ढंते जीवा	तिलो० सा० ७७०
वेयण कसाय वेउव्विओ ×	पचस० १–१६६
वेयणकसायवेगुव्वियो ×	गो० जी० ६६६
वेयणवेज्जावच्चे	मूला० ४७६
वेयणियगोदघादी *	गो० क० ४६
वेयणियगोदघादी *	कम्मप० १२०
वेयणियगोयघाई	पंचसं० ४–४८७
वेयणियाउयमोहे	पंचस० ४–२२०
वेयणियाउयवज्जे	पचसं० ४–२१६
वेयणिये अड-भंगा	गो० क० ६५१
वेयसण-जव-कुसुंभय-	आय० ति० १०–६
वेयहिं सत्थहिं इंदियहिं	परम० प० १–२३

स

सत्तारिसहस्सइगिसय-	तिलो० प० ४-१२१७
सत्तारिसहस्सजोयण-	तिलो० प० ४-७१
सत्तारिसहस्सणवसय-	तिलो० प० ८-२०
सत्तारिसहस्सणवसय-	तिलो० प० ८-८०
सत्तारिसहस्सलक्खा	अगप० १-४५
सत्त वि तच्चाणि मए	वसु० सा० ४७
सत्त वि रुक्खा परुसा	जंबू० प० ११-१७६
सत्त वि सत्त वि कच्छा	जंबू० प० ११-२८५
सत्त वि सिखासणाणि	तिलो० प० २-२२६
सत्तविहरिद्धिपत्ता	जंबू० प० ७-६३
सत्तसए तेवण्णे	दसणसा० ३८
सत्तसयकुभासेट्ठि(हि)य	जंबू० प० १३-१२४
सत्तसयचावतुंगो	तिलो० प० ४-४५७
सत्तसयणउदिकोडी-	जंबू० प० १-२५
सत्तसयसुण्णयदुगणय-	अगप० २-४०
सत्तसया इक्कहिया	तिलो० प० ७-१७२
सत्तसयाणि चेव य	तिलो० प० ४-११४१
सत्तसया पण्णासा	तिलो० प० ४-२०७५
सत्तसया पण्णासा	जंबू० प० ६-८८
सत्त-सर-महुर-गीयं	तिलो० प० ५-२२२
सत्तसहस्सणदीहि य	जंबू० प० ८-१३८
सत्तसहस्साणि धणू	तिलो० प० ४-६७
सत्तसहस्साणि पुढं	तिलो० प० ४-११२५
सत्तसु णरयावासे	भावपा० ६
सत्तसु पुण्णेसु हवे *	सिद्धंत० ४४
सत्तसु पुण्णेसु हवे *	सिद्धंत० ७०
सत्तसु य अणीएसुं	तिलो० प० ४-२१७८
सत्त-हिद-दुगुण-लोगो	तिलो० प० १-२३२
सत्त-हिद-वारसंसा	तिलो० प० १-२३६
सत्तंगरज्जणवणिहि-	रयणसा० २०
सत्तं जो ण हु मण्णइ	दव्वस० णय० ४६
सत्तं तिणउदिपहुदी-	गो० क० ७४८
सत्तं दुणउदिणउदी-	गो० क० ७५२
सत्तंबुरासि-उवमा	तिलो० प० ८-४६७
सत्त समयपबद्ध	गो० क० ६४३
सत्ता असुक्खरूवे *	णयच० २६
सत्ता असुक्खरूवे *	दव्वस० णय० २०१
सत्ताइं (तस्साइं) लहुबाहू	तिलो० प० १-२४८
सत्ताणउदीजोयण-	तिलो० प० २-१६३
सत्ताणउदी हत्था	तिलो० प० २-२४७
सत्ताणि अणीयाणि य	तिलो० प० ८-२५४
सत्ताणीयपहूणं	तिलो० प० ८-३२८
सत्ताणीयाण सु(घ)रा	तिलो० प० ४-१६८३
सत्ताणीयाणि तहा	जंबू० प० ६-७०
सत्ताणीयाणि तहा	जंबू० प० ६-६४
सत्ताणीयाणि तहा	जंबू० प० ११-१३१
सत्ताणीयाहिवई	तिलो० प० ८-२७३
सत्ताणीया होंति हु	तिलो० प० ३-७७
सत्तादि दस दु मिच्छे	पंचसं० ५-३०४
सत्तादी अट्ठंता	गो० जी० ६३२
सत्ताधिया(य) सप्पुरिसा	मूला० ८६१
सत्ता बाणउदितियं	गो० क० ७१४
सत्तारसमी एगूणवीसिमा	छेदपिं० २४१
सत्तारस-लक्खाणिं	तिलो० प० ४-२८१७
सत्तारसेक्कवीसा	कसायपा० ३०
सत्तावण्ण-सहस्सा	तिलो० प० ४-१७१८
सत्तावण्णं च सया	जंबू० प० ११-६६
सत्तावण्णा चोद्दस-	तिलो० प० ८-१६२
सत्तावीसदिमा वि य	छेदपिं० २४१
सत्तावीस-सहस्सा	तिलो० प० ७-२६५
सत्तावीस-सहस्सा	तिलो० प० ८-६३०
सत्तावीस-सहस्सा	जंबू० प० ६-७६
सत्तावीस-सहस्सा	जंबू० प० १०-१५
सत्तावीसहियसयं	गो० क० ४७१
सत्तावीसं च सदा	जंबू० प० ३-३१
सत्तावीसं दंडा	तिलो० प० २-२४६
सत्तावीसं लक्ख	तिलो० प० ८-४४
सत्तावीस लक्खा	तिलो० प० २-१२७
सत्तावीसं(सा) लक्खा	तिलो० प० ४-१४४६
सत्तावीस लक्खा	तिलो० प० ४-१४४८
सत्तावीस लक्खा	तिलो० प० ८-१७०
सत्तावीसं सुहुमे	पंचसं० ५-४८४
सत्तावीसा लक्खा	तिलो० प० ४-१४४७
सत्ता सव्वपयत्था	पंचत्थि० ८
सत्तासंबद्धेदे	पवयणसा० १-६१
सत्तासीदिचदुस्सद-	तिलो० सा० १३६
सत्तासीदिसहस्सा	तिलो० प० ७-३०४
सत्तासीदिसहस्सा	तिलो० प० ७-४०६
सत्तासीदीजोयण-	जंबू० प० ८-५०
सत्तासीदी दंडा	तिलो० प० २-२६२

सम्मं खवणालो-	भ० आरा० ६२२
सम्मं चेव य भावे	जोगिभ० २
सम्म णाणं वेरग-	रयणसा० १६५
सम्मं मिच्छं मिस्स	गो० क० ४११
सम्मं मे सव्वभूदेसु *	णियमसा० १०४
सम्मं मे सव्वभूदेसु *	मूला० ४२
सम्मं मे सव्वभूदेसु *	मूला० ११०
सम्म विदिद-पदत्था	पवयणसा० ३-७३
सम्मं सुदिमलहंतो	भ० आरा० ४३३
सम्माइगुणविसेस	रयणसा० १२६
सम्माइट्ठी कालं	पचस० ५७
सम्माइट्ठी-जीवडहॅ	जोगसा० ८८
सम्माइट्ठी जीवो +	पंचस० १-१२
सम्माइट्ठी जीवो +	गो० जी० २७
सम्माइट्ठी जीवो	कत्ति० अणु० ३२७
सम्माइट्ठी णाणी	रयणसा० १४३
सम्माइट्ठी णिरतिरि-	पचस० ४-१७५
सम्माइट्ठी देवा	तिलो० प० ३-१६६
सम्माइट्ठी देवा	तिलो० प० ८-५८७
सम्माइट्ठी मिच्छो	पचस० ४-४७४
सम्माइट्ठी सद्दहदि	कसायपा० १०३(५०)
सम्माइट्ठी सावय	मोक्खपा० ६४
सम्माण विणय(विणा) रूई	रयणसा० ८४
सम्मादिट्ठिजणोघे	जंबू० प० १३-१६८
सम्मादिट्ठिस्स वि अवि- ×	मूला० ६४०
सम्मादिट्ठिस्स वि अवि- ×	भ० आरा० ७
सम्मादिट्ठी जीवो	भ० आरा० ३२
सम्मादिट्ठा वि णरो	भ० आरा० १८२८
सम्मादिट्ठी-पुराण	भावस० ४०४
सम्मादिट्ठी पुरिसो	भावस० ५०२
सम्मादिठिदिज्झीणे	लद्धिसा० २१४
सम्मामिच्छत्तेयं	पंचसं० ३-३४
सम्मामिच्छाइट्ठी	पचसं० ४-३७०
सम्मामिच्छाइट्ठी	कसायपा० १०५(५२)
सम्मामिच्छाइट्ठी	कसायपा० ६८(४५)
सम्मामिच्छुदएण य	भावस० १६८
सम्मामिच्छुदयेण य	गो० जी० २१
सम्मामिच्छे जाणसु-	पंचस० ५-३७७
सम्मामिच्छे जाणे	पचसं० ५-३७०
सम्मामिच्छे भंगा	पचसं० ५-३६२

सम्मा वा मिच्छा वि य	दव्वस० णय० ३३०
सम्मुग्घाईकिरिया	भावस० ६७६
सम्मुच्छणा मणुस्सा	कत्ति० अणु० १३३
सम्मुच्छिमजीवाणं	तिलो० प० २६४
सम्मुच्छिमा य मणुया	मूला० १२१५
सम्मुच्छिमा(या) हु मणुया	कत्ति० अणु० १५१
सम्मुदये-चलमलिणम-	लद्धिसा० १०५
सम्मूहदि रक्खेदि य	लिंगपा० ५
सम्मे घादेऊणं	तिलो० सा० ५३३
सम्मेलिय वासट्ठिं	तिलो० प० ७-१६६
सम्मेव तित्थबंधो	गो० क० ६२
सम्मो वा मिच्छो वा	गो० क० १७६
सम्मोहणाए कालं	भ० आरा० १६६१
सम्मोहसुराण तहा	जंबू० प० ८-८४
सयअट्ठोत्तरजविम्भं	रिट्ठस० १५०
सयअडयालपईण्णं	मूला० १२३५
सयउज्जलसीदोदा	तिलो० प० ४-२०४४
सयकदिरूऊणद्धं	तिलो० प० २-१६६
सयकोडी बारुत्तर	अंगप० १-१२
सयजोयणाउव्विद्धा	जबू० प० ४-७५
सयडं जाणं जुग्ग	मूला० ३०४
सयणस्स जणस्स पिओ	भ० आरा० १३७६
सयणस्स पढमतइए	आय० ति० ५-७
सयणस्स परियणस्स य	मूला० ६६८
सयणं कहति चोरं	आय० ति० १८-१५
सयणं मित्तं आसय-	भ० आरा० ८६६
सयणाणि आसणाणि	तिलो० प० ३-२३६
सयणाणि आसणाणि	तिलो० प० ४-१८३६
सयणाणि आसणाणि	तिलो० प० ५-२११
सयणासणपमुहाणि	तिलो० प० ४-२१६२
सयणे जणे य सयणा-	भ० आरा० ८८५
सयणे जाण धयाइसु	आय० ति० १८-१६
सयभिस भरणी अद्दा	आय० ति० १७-१०
सयमेव अप्पणो सो	भ० आरा० २०४२
सयमेव कम्मगलणं	दव्वस० णय० १५७
सयमेव जहादिच्चो	पवयणसा० १-६८
सयमेव वंतमलणं	भ० आरा० १३२४
सयलकुहियाण पिंडं	कत्ति० अणु० ८३
सयलघणतिमिरदलणं	जंबू० प० १३-१२७
सयलचरित्त तिविहं	लद्धिसा० १८७

संतम्मि केवले दंसणम्मि	सम्मइ० २-८
संतर णिरंतरो वा	पंचस० ३-६८
संतरमेदं देयं	छेदपिं० २४
संतस्स पयडिठाणा	पंचसं० ५-३२
संत इह जइ णासइ	दव्वस० णय० ४३
संतं सगुणं कित्तिज्जतं	भ० आरा० ३६३
सताइल्ला चउरो	पंचसं० ५-४४६
सतादिल्ला चउरो	पंचस० ५-४३५
सता चउरो पढमा	पंचसं० ५-४५३
संता णउदाइचदु	पंचस० ५-४५६
संताण कमेणागय- ×	गो० क० १३
संताण कमेणागय- ×	कम्मप० १३
संता विसय जु परिहरइ	परम० प० २-१३६
संति अणंताणंता	कत्ति० अणु० २२४
संति जदो तेणेदे	दव्वसं० २४
संतिदुयवासपुज्जा	तिलो० प० ४-६०६
संति धुवं पमदाणं	पवयणसा० ३-२४चे० ६(ज)
संती दु णिरुवभोज्जा	समय० १७४
संतु ण दीसइ तत्तु ण वि	पाहु० दो० ६१
संते आउसि जीवइ	भावसं० ८१
संते उवसमचरियं	भावति० ३३
संते वि ओहिणाणे	तिलो० प० ८-५६३
संते वि धम्मदव्वे	तच्चसा० ७१
संते सगणे अम्हं	भ० आरा० ३६८
संतोत्ति अट्ठ सत्ता	गो० क० ४५७
संतो रोयक्कंतो	छेदपिं० ७१
संतो वि गुणा अकहिंतयस्स	भ० आरा० ३६१
संतो वि गुणा कत्थंतयस्स	भ० आरा० ३६०
संतो वि मट्टियाए	भ० आरा० १०७५
संथारपदोस वा	भ० आरा० ४४०
संथारभत्तपाणे	भ० आरा० ४६६
संथारमसोहंतो	छेदस० ६८
संथारमसोहितस्स	छेदपिं० १६६
संथारवासयाणं	मूला० १७२
संथारसोहणेहि य	वसु० सा० ३४०
संदेहतिमिरदलणं	जंबू० प० १३-८२
संधि कुणंति मित्ता	आय० ति० १५-२
संधीदो संधी पुण	कसायपा० ७८ (२५)
संपइ एव संपत्ता-	कल्लाणा० ५२

संपइ जिणवरधम्मो	कल्लाणा० १०
संपज्जदि णिव्वाणं	पवयणसा० १-६
संपत्तबोहिलाहो	भावस० ४८५
संपत्तिविवत्तीसु य	भ० आरा० १२६६
संपय विलसय जिण थुणहु	सुप्प० दो० ३६
संपलियंकणिसेज्जा	भ० आरा० २२४
संपहिकालवसेणं	तिलो० प० ७-३२
संपुण्णचंदवयणा	जंबू० प० २-१८६
संपुण्णचंदवयणो	धम्मर० १२२
संपुण्णचंदवयणो	जंबू० प० ३-११३
संपुण्णं तु समग्गं *	पंचसं० १-१२६
संपुण्णं तु समग्गं *	गो० जी० ४५६
संपुण्णं तु समग्गं *	कम्मप० ४१
संबंधसज्जणबंधव-	तिलो० प० ४-१५३६
संबंधसयणरहिया	जंबू० प० २-१६५
संबंधो एदेसिं	तच्चसा० २३
संबुक्कमादुवाहा	पंचत्थि० ११४
संभर सुविहिय जं ते	भ० आरा० १५१७
संभवजिणं णमंसिय	जंबू० प० ३-१
संभावणा य सच्चं	मूला० ३१२
संभिण्णं सोदित्तं	तिलो० प० ४-६६८
संभूदो वि णिदाणेण	भ० आरा० १२८१
संभूसिऊण चंदव्वएण	वसु० सा० ३६६
संरंभसमारंभा-	भ० आरा० ८११
संरंभो संकप्पो	भ० आरा० ८१२
संलग्गा सयलधया	तिलो० प० ४-८१६
संवच्छरइगसहस्से	रिट्ठस० २६८
संवच्छरतिदऊणिय-	तिलो० प० ४-६५०
संवच्छरमुक्कस्सं	मूला० ६५६
संवच्छरा सहस्सा	तिलो० सा० ८२०
संवत्तयणामणिलो	तिलो० सा० ८६४
संवरजोगेहिं जुदो	पंचत्थि० १४४
संवरफलं तु णिव्वा-	मूला० ७४३
संवलिओ सीसेहिं	आय० ति० ६-५
संववहरणं किच्चा	मूला० ४६७
संवासो वि अग्गिच्चो	भ० आरा० १७१६
संवाहचारुणिवहो	जंबू० प० ६-१२७
संवाहदिव्वणिवहो	जंबू० प० ६-१२७
संविग्गदरे पासिय	भ० आरा० १४६
संविग्गवज्जभीरुस्स	भ० आरा० ४००

सामाणियतणुरक्खा	तिलो० प० ७–७८
सामाणियतणुरक्खा	तिलो० प० ४–२०८३
सामाणियदेवाणं	तिलो० प० ४–२१७४
सामाणियदेवीओ	तिलो० प० ८–३२२
सामाणियपहुदीणं	तिलो० प० ४–२०८४
सामाणियाणि वि तहा	जवू० प० ६–१४१
सामी सम्मादिट्ठी	दव्वस० णय० १६३
सायरउवमा इगिदुति-	तिलो० प० २–२०७
सायरकोडाकोडी	जवू० प० २–११३
सायरगो वल्लहगो	मूला० ८७
सायरतरंगसण्णिह-	जवू० प० ४–२३१
सायरदसमं तुरिये	तिलो० सा० १६६
सायरसंखा एसा	वसु० सा० १७४
सायं(तं)काराणच्चुद-	तिलो० प० ८–१६
साय चउपच्चइओ	पंचसं० ४–४८२
साय तिण्णेवाउग-	पंचस० ४–४४७
सायतो जोयंते	पचस० ४–३२२
सायाणं च पयारे	तिलो० प० ४–३४७
सायारअणायारा	तिलो० प० २–२८३
सायारइयरठवणा	दव्वस० णय० २७३
सायारे वट्टवगो	लद्धिसा० १०१
सायारो अणायारो	वसु० सा० २
सायारो अणायारो	भावसं० २८६
सायासायं दोण्णि वि	पचस० ४–४७५
सारसविमाणरूढो	जवू० प० ५–६६
सारस्सदआइच्चप्पहु-	तिलो० सा० ५३७
सारसद आइच्चा	तिलो० सा० ५३५
सारस्सदणामाणं.	तिलो० प० ८–६१६
सारस्सदरिट्ठाण	तिलो० प० ८–६२३
सारभइँ एह्वणाइयहँ	सावय० दो० २०४
सारीरादो दुक्खादु	भ० आरा० १५६८
सारीरियदुक्खादो	कत्ति० अणु० ६०
सालत्तयपरियरिया	तिलो० प० ४–८०७
सालत्तयपरिवेढिय-	तिलो० प०४–८३४
सालत्तयपीढत्तय-	तिलो० सा० १०१३
सालत्तयबाहिरए	तिलो० प० ४–७८१
सालविहीणो राओ	रयणसा० ६२
सालाणं विक्खंभो	तिलो० प० ४–८४८
सालि-जव-वल्ल-तुवरी-	तिलो० प० ४–४६६
सालो कप्पमहीओ	तिलो० प० ४–७१२
सालोयणविउसग्गो	छेदपिं० १६२
सावज्जकरणजोग्गं	मूला० ८००
सावज्जजोगपरिवज्जणट्ठं	मूला० ५३०
सावज्जजोग्गवयण	मूला० ३१७
सावज्जसंकिलिट्ठो	भ० आरा० ६२४
सावणकिण्हे तेरसि	तिलो० प० ७–५३२
सावणवहुले पाडिव-	तिलो० प० १–७०
सावणमाघे सब्भब्भंतर-	तिलो० सा० ३८१
सावणसियरक्खस्स [य]	रिट्ठस० २३५
सावणियपुण्णिमाए	तिलो० प० ४–११६३
सावदसयाणुचरिये	मूला– ७६३
सावधिगे परिचत्ते	छेदपिं० १३८
सा॰यगुणेहिं जुत्ता	कत्ति० अणु० १६६
सावयगुणोववे॰ो	वसु० सा० ३८८
सावयधम्महँ सयलहँ मि	सावय० दो० ७८
सावयधम्मं चत्ता	बा० अणु० ८१
सा वंदणा जिणुत्ता	अगप० ३–१६
सा त्रा हवे विरत्ता	भ० आरा० १०५८
सावित्थीए संभवदेवो	तिलो० प० ४–५२७
सासण-अयद-पमत्ते	गो० क० ४६६
सासणठिअऽणाणदुगं	भावति० ५३
सासणपमत्तवज्जं	गो० क० ५५७
सासणमिस्सविहीणा	तिलो० प० ५–३०१
सासणमिस्से देसे	गो० क० ३६१
सासणमिस्से पुव्वे	पचस० ५–३१२
सासणसम्माइट्ठी	पचस० ४–३७३
सासणसम्माइट्ठी	पचस० ४–३३३
सासणसम्मे सत्त अ	पंचसं० ४–१८
सासद-पत्थण-लालस-	कसायपा० ६०(३७)
सासदपदमावण्णं	तिलो० प० १–८६
सास(ण)-सिवा-करटासो (?)	रिट्ठस० १७३
साहम्मउ व्व अत्थं	सम्मइ० ३–५६
साहरणवादरेसु अ-	गो० जी० २१०
साहरणासाहरणे	सिद्धभ० ५
साहस्सिया दु मच्छा	मूला० १०८३
साहस्सिया दु मच्छा	जंबू० प० ११–६३
साहंति जं महल्ला	चारित्तपा० ३०
साहारणपत्तेयसरीर-	तिलो० प० ५–२७८
साहारणपत्तेयं *	पचसं० ४–२८३
साहारणपत्तेयं *	पचसं० ५–७६

सीदातरंगिणीए	तिलो० प० ४-२१३०
सीदातरंगिणीए	तिलो० प० ४-२२४१
सीदातरंगिणीजल-	तिलो० प० ४-२२४०
सीदादिचउट्ठाणा	गो० क० ६२२
सीदादिचउसु बंधा	गो० क० ७४८
सीदारुंदं साधिय	तिलो० प० ४-२२२८
सीदा वि दक्खिणेण य	जबू० प० ६-४५
सादावेइ(दि) विहारं	भ० आरा० २६१
सीदासमीवदेसे	जबू० प० ८-१७०
सीदासीदोदाणं	जबू० प० ३-१८१
सीदासीदोदाणं	जबू० प० ४-७६
सोदासीदोदाणं	तिलो० प० ४-२३०६
सीदासीदोदाणं	तिलो० प० ४-२८३३
सीदासीदोदाणं	जबू० प० ७-१२
सीदीजुदमेक्कसयं	तिलो० प० ७-२१६
सीदी सट्ठी तालं	गो० जी० १२३
सीदी सत्तरि सट्ठी	तिलो० प० ४-१४१६
सीदी सत्तसयाणि	तिलो० प० ७-१६८
सीदुण्हखुहातण्हा-	भ० आरा० ४६७
सीदुण्हदंसमसयादि-	भ० आरा० ११७१
सीदुण्हमिस्सजोणी	तिलो० प० ४-२६४७
सीदुण्ह वाउपि(त्ति)उलं	रयणसा० २३
सीदुण्हा खलु जोणी	मूला० ११०१
सीदुण्हादववादं	भ० आरा० ११३३
सीदेण पुव्वइरियदेवेण	भ० आरा० १५४७
सीदोदाए दोसुं	तिलो० प० ४-२२०८
सीदोदाए णदीए	जबू० प० ६-८४
सीदोदाए सरिच्छा	तिलो० प० ४-२११५
सीदोदादुतडेसु	तिलो० प० ४-२३२३
सीदोदावाहिणिए	तिलो० प० ४-२११०
सीदोदाविक्खंभं	जबू० प० ६-८६
सीमंकर खेमभयंकर	तिलो० सा० ३६६
सीमकरावराजिय-	तिलो० प० ७-२१
सीमतगो दु पढमो	जबू० प० ११-१४६
सीमतगो य पढमं	तिलो० प० २-४०
सीमंतणिरय माणुसखेत्तं	अगप० १-३१
सीमंतणिरयरोरव-	तिलो० सा० १५४
सीयाई वावीसं	आरा० सा० ४०
सीर(स)ण्हाणुव्वट्टण-	वसु० सा० २६३
सीलगुणमंडदाणं	सीलपा० १७

सीलगुणरयणणिवहं	जबू० प० ६-१७७
सीलगुणाणं संखा	मूला० १०३४
सीलगुणालयभूदे	मूला० १०१६
सीलड्ढगुणड्ढेहि दु	भ० आरा० ३८२
सीलवदीओ सुज्झंति	भ० आरा० ६६८
सीलसहस्सट्ठारस	भावपा० ११८
सीलस्स य णाणस्स य	सीलपा० २
सीलं तवो विसुद्धं	सीलपा० २०
सील रक्खताण	सीलपा० १२
सील वदं गुणो वा	भ० आरा० ७८६
सीलादिसंजुदाण	तिलो० प० ३-१२३
सीलेण वि मरिदव्वं	मूला० १०१
सीलेसिं संपत्तो	गो० जी० ६५
सीलेसिं सपत्तो	लद्धिसा० ६४३
सीसपकंपिय मुइयं	मूला० ६६६
सीसमईविप्फारण-	सम्मइ० ३-२५
सीसे धम्मो णिडाले	आय० ति० ८-१३
सीहकरिमयरसिहिसुक-	तिलो० प० ८-२१२
सीहगइ(य)हंसगोवइ-	जबू० प० ५-३२
सीहग्गिगओ लाहं	रिट्ठस० २०६
सीहतिमिंगिलगिलिदस्स	भ० आरा० १७४५
सीहपुरे सेयंसो	तिलो० प० ४-५३५
सीहप्पहुदिभएणं	तिलो० प० ४-४४६
सीहमुहा अस्समुहा	जबू० प० १०-४५
सीहम्मि[य]वाराणं (?)	रिट्ठस० २१२
सीहस्स कमे पडिद	कत्ति० अणु० २४
सीहा इव णरसीहा	मूला० ७६२
सीहासणछत्तत्तय-	तिलो० प० ४-४६
सीहासणछत्तत्तय-	जबू० प० ५-७१
सीहासणछत्तत्तय-	जबू० प० ६-११५
सीहासणछत्तत्तय-	जबू० प० ६-१८७
सीहासणभद्दासण-	तिलो० प० ४-१८६४
सीहासणमइरम्म	तिलो० प० ४-१६४६
सीहासणमज्झगओ	जबू० प० ८-१४८
सीहो धयस्स उवरिं	रिट्ठस० २०८
सुइ अमलो वरवण्णो	भावस० ४०६
सुइभूमियले फलए	रिट्ठस० २०३
सुइयाणएण अणुसट्ठि-	भ० आरा० १६०८
सुकोकिलाण जुयला	जबू० प० २-१६०
सुकयतवसीलसंयम-	जबू० प० ११-३२७

सुयरसूरसाणाणं रयणसा० १४०(B)
सुरउवणसवलेणं तिलो० प० ४-१३४०
सुरकोकिलमहुररवं तिलो० प० ४-१६४०
सुरखेयरमणहरणे तिलो० प० १-६५
सुरखेयरमणुवाणं तिलो० प० १-५०
सुरगिरिचंदरवीणं तिलो० सा० ३७८
सुरघ(पु)रकंठाभरणा जंबू० प० ३-२५
सुरचउतित्थयरुणा पंचसं० ४-३६३ (ग)
सुरणयरसंपरिउडो जंबू० प० ६-१७६
सुरणरणारपतिरिश्रा दव्वस० णय० ८६
सुरणरणारयतिरिया पचत्थि० ११७
सुरणरतिरियारोहण- तिलो० प० ४-७१८
सुरणरतिरियोरालिय- गो० क० ४०६
सुरणरसम्मे पढमो गो० क० ६२०
सुरणारएसु चत्तारि + पचसं० ४-५५
सुरणारएसु चत्तारि + मूला० १२००
सुरणिरएसुं पंच य पचस० ५-२५७
सुरणिरयविसेसणरे गो० क० ५६६
सुरणिरयाऊणोव ; गो० क० १३३
सुरणिरयाऊणोवं ; कम्मप० १२६
सुरणिरयाऊ तित्थ गो० क० ४०२
सुरणिरया णरतिरियं गो० क० ६३६
सुरणिरये उज्जोवो- गो० क० १७३
सुरणिलएसु सुरच्छर- भावपा० १२
सुरतरुलुद्धा जुगला तिलो० प० ४-४५०
सुरदाणवरक्खसणर- तिलो० प० ४-१००६
सुरधणु तडि व्व चवला कत्ति० श्रणु० ७
सुरपुरवहिं असोयं तिलो० सा० ५०२
सुरवोहिया वि मिच्छा तिलो० सा० ५५३
सुरमिहुणगीयणच्चण- तिलो० प० ४-८४०
सुररइयदेवछंदं जंबू० प० २-७२
सुरवइतिरीटमणिकिरण- वसु० सा० १
सुरसमिदीवम्हाइ तिलो० प० ८-१५
सुरलोयणिवासखिदी तिलो० प० ८-२
सुरसायरि जसु णिकमणि सावय० दो० १६६
सुरसिंधूए तीर तिलो० प० ४-१३०३
सुरही लोयस्सग्गे भावस० ५२
सुलहा लोगे आदट्ठ- भ० आरा० ४८२
सुव(अ)रा सियाल सुणहा जंबू० प० २-१४०
सुविणिम्मलवरविउला जंबू० प० ५-७५
सुविदिदपदत्थसुत्तो पवयणसा० १-१४
सुविसालपट्टणजुदो जंबू० प० ८-१५१
सुविसालरयणगिवहो जंबू० प० ८-१५०
सुविसुद्धरायदोसो कत्ति० श्रणु० ४७८
सुविहिपमुहेसु रुद्दा तिलो० प० ४-१४३६
सुविहिय अदीदकाले भ० आरा० १५८६
सुविहियमिमं पवयणं भ० आरा० ४२
सुविहि व्व पुप्फयतं थोस्सा० ४
सुव्वदणमिणेमीसुं तिलो० प० ४-१०६५
सुव्वयणमिणमीसीण तिलो० प० ४-१४१४
सुव्वयतित्थे उज्झो दसणसा० १६
सुसणिद्धे सुसणिद्धा आय० ति० ६-१०
सुसमदुसमम्मि णामे तिलो० प० ४-५५२
सुसमदुसमाइअंते सुदख० ४
सुसमम्मि तिण्णि जलही- तिलो० प० ४-३१७
सुसमसुसमम्मि काले तिलो० प० ४-३१६
सुसमसुसमम्मि काले तिलो० प० ४-२१४२
सुसमसुसमं च सुसमं तिलो० सा० ७८०
सुसमसुसमाभिधाणो तिलो० प० ४-१६००
सुसमसुसमा य सुसमा जंबू० प० २-१०६
सुसमस्सादिम्मि णरा- तिलो० प० ४-३६५
सुसमा तिण्णेव हवे जंबू० प० २-१११
सुसीमा कुंडला चेव तिलो० सा० ७१३
सुस्सर अणिदिदक्खा तिलो० सा० २७७
सुस्सरजसजुयलेक्क * पचस० ४-२८६
सुस्सरजसजुयलेक्कं * पचस० ५-७६
सुस्सूसया गुरूणं भ० आरा० ३००
सुहअसुहभावजुत्ता दव्वसं० ३८
सुहअसुहभावरहिओ दव्वस० णय० ४००
सुहअसुहभावविगओ कल्लाणा० ४५
सुहअसुहवयणरयण णियमसा० १२०
सुहअसुहसुहगदुब्भग- कम्मप० ६६
सुहजोगेसु पवित्ती वा० अणु० ६३
सुहडो किणा सुसत्थं रयणसा० ७६
सुहदुक्खजाणणा वा पचत्थि० १२५
सुहदुक्खणिमित्तादो गो० क० १६३
सुहदुक्खसपओगो सम्मइ० १-१८
सुहदुक्खसुबहुसस्सं * गो० जी० २८१
सुहदुक्ख पि सहंतो तच्चसा० ५४
सुहदुक्खं बहुसस्सं * पचस० १-१०६

सूदयडं विदियंगं	अंगप० १–२०
सूदी सुंडी रोगी	मूला० ४६८
सूरप्पहसूइवट्टी	तिलो० प० ७–२४७
सूरप्पहभद्दमुहा	तिलो० प० ४–१३७६
सूरपुर चदपुर णिच्चु-	तिलो० सा० ७०१
सूरम्मि उग्गमंते	छेदपि० ७३
सूरस्स य परिवारं	सुदखं० २४
सूरस्सायु विमाणे	अंगप० २–४
सूरंगारयभिगुसुय-	आय० ति० ४–१२
सूरादो णक्खत्तं	तिलो० प० ७–५१४
सूरादो दिणरत्ती	तिलो० सा० ३७६
सूरुदयत्थमणादो	मूला० ४६२
सूरेण तह य जुत्तो	आय० ति० ४–२४
सूरो तिक्खो मुक्खो	भ०आरा० ६१०
सूरो तिक्खो मुक्खो	भ० आरा० ११३६
सूलो इव भित्तु जे	भ० आरा० ६८७
सूवरवणग्गिसोणिद-	तिलो० प० २–३२१
सूवरहरिणीमहिसा	तिलो० प० ८–४५०
सेओ वट्टो अ पहू	आय० ति० १–७
से काले ओव्वट्टण-	लद्धिसा० ४५६
से काले किट्टिस्स य	लद्धिसा० २६३
से काले किट्टीओ	लद्धिसा० ५०८
से काले कोहस्स य	लद्धिसा० ५३७
से काले जोगिजिणो	लद्धिसा० ६४२
से काले तदियादो	लद्धिसा० ५५०
से काले देसवदी	लद्धिसा० १७१
से काले माणस्स य	लद्धिसा० २६६
से काले माणस्स य	लद्धिसा० ५५१
से काले मायाए	लद्धिसा० २७४
से काले लोहस्स य	लद्धिसा० २७८
से काले लोहस्स य	लद्धिसा० ५६१
से काले सुहुमगुणं	लद्धिसा० ५७८
से काले सो खीणकसाओ	लद्धिसा० ५६६
से जीवंतहँ मुहु वि गणि	सुप्प० दो० २८
सेज्जा संथारं पाणयं च	भ० आरा० १६६३
सेज्जोगासणिसेज्जा ×	भ० आरा० ३०५
सेज्जोग्गासणिसज्जा ×	मूला० ३६१
सेज्जोवधिसंथारं	भ० आरा० ४२४
सेढिअसखेज्जदिमा	गो० क० २५२
सेढिअसंखेज्जदिमा *	गो० क० २५८
सेढिअसंखेज्जदिमे *	पंचस० ४–५१०
सेढिपदस्स असंखं	लद्धिसा० ६३०
सेढिपदस्स असंखं	लद्धिसा० ६३४
सेढिपमाणायामं	तिलो० प० १–१४६
सेढिय सत्तमभागो	तिलो० प० १–१७०
सेढिय सत्तमभागो	तिलो० प० १–१७५
सेढिस्स सत्तभागा	जंबू० प० १२–६५
सेढीअसंखभागो	तिलो० प० ३–१६४
सेढीए सत्तंसो	तिलो० प० १–१६४
सेढी छरज्जु चोद्दस-	तिलो० सा० १३२
सेढीणं विच्चाले	तिलो० प० ८–१६८
सेढीणं विच्चाले ˙ णिरया	तिलो० सा० १६६
सेढीणं विच्चाले˙˙˙विमाणा	तिलो० सा० ४७५
सेढीबद्धे सव्वे	तिलो० प० ८–१०६
सेढी सूई अंगुल-	गो० जी० १५६
सेढी सूई पल्ला-	गो० जी० ५६६
सेढी हवंति अंसा	जंबू० प० १२–६८
सेणं अणोरयारं	जंबू० प० ७–१२६
सेणं णिस्सरिदूणं	जंबू० प० ७–१३२
सेणागिहथवादि पुरहो	तिलो० सा० ८२३
सेणागयपुव्वावर-	तिलो० सा० ४४४
सेणाण पुरजणाणं	तिलो० प० ८–२१७
सेणादेवाणं पुण	तिलो० सा० २३६
सेणामहत्तराणं	तिलो० प० ५–२२०
सेणामहत्तराणं	तिलो० सा० ६४६
सेणामहत्तरा खुज्जेट्ठा	तिलो० सा० २८१
सेणावईणमवरे	तिलो० सा० ५१८
सेणावई(णा)विधीए	जंबू० प० ७–१२२
सेणावदितणुरक्खा	तिलो० सा० ५००
सेदमलरहिददेहो	जंबू० प० १३–६५
सेदमलरेणुकद्दम-	तिलो० प० १–११
सेदरजाइमलेणं	तिलो० प० १–५६
सेदादवत्तचिण्हा	जंबू० प० ६–५२
सेदादवत्तणिवहा	जंबू० प० ४–२७२
सेदादवत्तसिरसा	जंबू० प० ११–३६०
सेदो जादि सिलेसो	भ० आरा० १०४२
सेयजलो अंगरयं	तिलो० प० ४–१०६८
सेयं भवभयमहणी	मूला० ७५८
सेयंसजिणं पणमिय	जंबू० प० ७–१
सेयंसजिणेसस्स य	तिलो० प० ४–५६७

सेसेसुं समएसुं — तिलो० प० ४-६०२
सो उण समासओ च्चिय — सम्मइ० १-३०
सो उम्मग्गाहिमुहो — तिलो० सा० ८५१
सोऊण इमं वयणं — भावस० १४०
सोऊण किं पि सद्दं — वसु० सा० १२१
सोऊण तच्चसारं — तच्चसा० ७४
सोऊण तस्स पासे — जंबू० प० १३-१४५
सोऊण तस्स वयणं + — तिलो० प० ४-४२८
सोऊण तस्स वयण + — तिलो० प० ४-४३७
सोऊणं उवदेसं — तिलो० प० ४-४७२
सो एवं अच्छंतो — धम्मर० ३६
सो एव णासंतो — धम्मर० ३०
सो एवं वुड्डंतो — धम्मर० ४२
सो एवं विलवंतो — धम्मर० ६३
सो कदसामाचारी — भ० आरा० ६३०
सो कह सयणो भण्णइ — भावसं० ५६४
सो कंचणसमवण्णो — तिलो० प० ४-४४५
सो कंठोल्लगिदसिलो — भ० आरा० १३२६
सो कायपडिच्चाए — जंबू० प० ११-२३७
सो को वि णत्थि देसो — कत्ति० अणु० ६८
सोक्खं अणपेक्खित्ता — भ० आरा० १२५०
सोक्खं च परमसोक्खं * — दव्वस० णय० ४०२
सोक्ख च परमसोक्खं * — णयच० ७६
सोक्खं तित्थयराणं — तिलो० प० १-४१
सोक्खं वा पुण दुक्खं — पवयणसा० १-२०
सोक्खं सहावसिद्धं — पवयणसा० १-७१
सोगस्स सरी वेरस्स — भ० आरा० ६८३
सो घरवइ सुप्पहु भणइ — सुप्प० दो० ६७
सोचिदठाणासिदपरि- — तिलो० सा० ६३२
सो चिय इक्को धम्मो — कत्ति० अणु० २६५
सो चिय दहप्पयारो — कत्ति० अणु० ३६३
सो चेव जादिमरणं — पंचत्थि० १८
सोच्चा सल्लमणत्थं — भ० आरा० ६६७
सो च्चिय भुजइ(जिय)अंसे — आय० ति० ४-२२
सो जगसामी णाणी — जबू० प० १३-८६
सो जियइ सत्त दियहे — रिट्ठस० ८४
सो जोइउ जो जोगवइ — परम०प०२-१३७(क्षे०)४
सो जोयउ जो जोगवइ — पाहु० दो० १६
सो णत्थि इह पएसो × — पाहु० दो० २३
सो णत्थि त पएसो — भावपा० ४७
सो णत्थि त्ति पएसो × — परम० प० १-६५
सो णत्थि दव्वसवणो — भावस० ३३
सो ण वसो इत्थिजणे — कत्ति० अणु० २८२
सो णाम बाहिरतवो + — भ० आरा० २३६
सो णाम बाहिरतवो + — मूला० ३५८
सो णिच्छदि मोत्तुं जे — भ० आरा० १३२८
सो णियगच्छं किच्चा — दंसणसा० ४६
सो णियसुक्कुप्पाइय- — तिलो० प० ४-६१६
सो तत्थ सुहम्मवई — जंबू० प० ११-२२६
सो तस्स विउलतमपुण्ण- — जबू० प० ११-२१७
सो तिव्वअसुहलेसो — कत्ति० अणु० २८८
सो तेण पंचमत्ता- — भ० आरा० २१२४
सो तेण विडज्झंतो — भ० आरा० ४३८
सो तेसु समुप्पण्णो — वसु० सा० १३६
सोत्तिककूडे चेट्ठदि — तिलो० प० ४-२०५२
सो त्तिय गव्वुव्वूढा — भावस० ५४
सोदयदलवित्थरणा — जंबू० प० ३-४८
सो दस वि तदो दोसे — भ० आरा० ६०६
सो दायव्वो पत्ते — भावसं० ५२७
सोदाविणि त्ति कणया — तिलो० प० ५-१६१
सोदिंदयसुदणाणा- * — तिलो० प० ४-६८२
सोदिंदियसुदणाणा * — तिलो० प० ४-६६१
सोदीरणाण दव्वं — लद्धिसा० ३०६
सोदुक्कस्सखिदीदो — तिलो० प० ४-६८३
सोदुक्कस्सखिदीदो — तिलो० प० ४-६६२
सो दु पमाणो दुविहो — जबू० प० १३-४७
सोदूण उत्तमट्ठस्स — भ० आरा० ६८१
सोदूण किंचि सद्दं — भ० आरा० ११५०
सोदूण तस्स वयणं — तिलो० प० ४-४८०
सोदूण देवद त्ति य — जंबू० प० १३-६१
सोदूण भेरि-सद्दं — तिलो० प० ८-५७०
सोदूण मंति-वयणं — तिलो० प० ४-१२२४
सोदूण सर-णिणादं — तिलो० प० ४-१३१०
सो देवो जो अत्थं — बोधपा० २४
सोधम्मीसाणाणं — जंबू० प० २-४५
सोधम्मो जह सोमो — जंबू० प० ११-३२०
सोधसु वित्थारादो — तिलो० प० ४-२६१०
सो पर वुच्चइ लोउ परु — परम० प० १-१११
सो पुण दुविहो भणिओ — भावसं० २७४
सो पुण दुविहो भणिओ — भावसं० ३५७

ह

होऊण तंभणो सो- भ० आरा० १८०७
होऊण भोगभूमिं जंबू० प० २-२०५
होऊण महड्ढीओ भ० आरा० १८०३
होऊण य णिस्संगो वा० अणु० ७६
होऊण रिऊ बहुदुक्खकारओ भ० आरा० १८०५
होऊण सुई चेइय- वसु० सा० २७४
होज्जदु णिव्वुदिगमणं मूला० ११५६
होज्जदु संजमलंभो मूला० ११५८
होज्जाहि दुगुणमहुरं सम्मइ० ३-१६
होदि अणंतिमभागो गो० जी० ३८८
होदि असंखेज्जगुणं लद्धिसा० ४८२
होदि असंखेज्जाणं तिलो० प० ८-१०७
होदि कसाउ(यु)म्मत्तो भ० आरा० १३३१
होदि गणिचक्किमहवप्प- अंगप० १-४२
होदि गिरी रुचकवरो तिलो० प० ५-१६८
होदि दुगुंछा दुविहा मूला० ६५३
होदि य णरये तिव्वा भ० आरा० १५६५
होदि [य] दिवड्ढरयणी जंबू० प० ११-३५२
होदि वणप्फदि वल्ली मूला० २१७
होदि सचक्खू वि अचक्खु व भ० आरा० ६१३
होदि सभापुरपुरदो तिलो० प० ४-१८६५
होदि सहस्सारुत्तरदिसाए तिलो० प० ८-३४६
होदि हु पढम विसुपं तिलो० प० ७-५३८
होदि हु सयंपहक्खं तिलो० प० ८-३००
होदु सिहंडी व जडी भ० आरा० ८४४
होदूण णिरवभोज्जा समय० १७५
होहइ इह दुब्भिक्खं भावस० १३६
होही थिरम्मि भरिए आय० ति० ११-६
होंति अजीवा दुविहा भावस० ३०३
होंति अणियट्टिणो ते * पंचस० १-२१
होंति अणियट्टिणो ते * गो० जी० ५७
होंति अणियट्टिणो ते * गो० क० ६१२
होंति अवज्झादिसु णव- तिलो० प० ७-४४४
होंति असंखा जीवे दव्वसं० २५
होंति असंखेज्जगुणा तिलो० प० ४-२६३०
होंति असंखेज्जाओ तिलो० प० ८-६८६
होंति खवा इगिसमये गो० जी० ६२६
होंति णपुंसयवेदा तिलो० प० २-२७६
होंति तिविट्ठदुविट्ठा तिलो० प० ४-१४१०
होंति दहाणं मज्झे तिलो० प० ४-२०६०
होंति पइण्णयपहुदी तिलो० प० ३-८६
होंति पइण्णयपहुदी तिलो० प० ४-१६८६
होंति पदाआणीया तिलो० प० ४-१३६०
होंति परिवारतारा तिलो० प० ७-४७३
होंति महादेवीओ जंबू० प० ११-८२
होंति य मिच्छादिट्ठी जंबू० प० २-१६२
होंति यमोघ संधि(सत्थि)य- तिलो०प०५-१५३
होंति सहस्सा बारस तिलो० प० ४-११६५
होंति हु असंखसमया तिलो० प० ४-२८६
होंति हु ईसाणदिसा- तिलो०प० ५-१७३
होंति हु ताण वणाणि तिलो० प० ५-२८८
होंति हु वरपासादा तिलो० प० ४-२७३

इदि सम्मत्ता

परिशिष्ट

१ वाक्य-सूचीमें छपनेसे छूटे हुए वाक्य

अत्थाण वंजणाण य	भ० आरा० १८८५
अवरादीणं ठाणं	पचस० ४-६७ (क)
अव्वाघादी अंतोमुहुत्त-	पचस० १-६६ (घ)
अतरकरणादुवरिं	लद्धिसा० २५१ (क)
आहारस्सुदयेण य	पचसं० १-६६ (क)
इंदियचउरो काया	पचस० ४-१५२ (क)
इंदियदोण्णि य काया	पचस० ४-१४७ (ख)
इदियमेओ काओ	पचसं० ४-१४७ (क)
इदियमेओ काओ	पचस० ४-१५७ (क)
उत्तमअंगम्मि हवे	पचसं० १-६६ (ग)
उत्तर-पच्छिम-भागे	जवू० प० ४-१३८ (क)
उवणेउ मंगलं वो	लद्धिसा० १५५ (स०टी०)
उवरयवधे संते	पंचसं० ५-१२ (क)
उववाद-मारणतिय-	पचस० १-८६ (क)
उववास-सोसियतणू	जवू० प० २-१४७ (क)
कक्केयणमणि-णिम्मिय-	जवू०प० ४-१७४ (क)
कोडिसयसहस्साइ	गो० जी० ११३ ख (म० टी०)
गूढसिरसधिपव्व	पंचस० १-८३ (क)
घर सुक्खइँ सुप्पहु भणइ	सुप्प० दो० ५४
चउत्थे पंचमकाले	जंवू० प० २-१८७ (क)
चउवधयम्मि दुविहा	पचस० ५-१२ (क)
चउसट्ठी अट्ठसया	पचस० ५-३१५ (क)
चालीसं च सहस्सा	जवू० प० ६-७३ (क)
जह खेत्ताणं दिट्ठा	जवू० प० २-१०७ (क)
जे सेसा सुक्काए	भ० आरा० १६२०
मल्लरिमल्लयगत्थी-	तिलो० प० २-३०५
णाणं पंचविहं पि य	पंचस० १-१७८ (क)
णामेण अजण णाम	जवू० प० ११-३२६ (क)
णियखेत्ते केवलिदुग-	पचस० १-६६ (ख)
तत्तो अवरदिसाए	जवू० प० ६-६६ (क)
तत्थ य अरिट्ठणयरी	जवू० प० ८-२० (क)
तिय-पण-छव्वीसेसु वि	पचसं० ५-२१६ (क)
ति-सहस्सा सत्तसया	तिलो० प० ४-११००
ते सव्वे भयरहिया	पचस० ५-३०३ (क)
दम्मसुवण्णादीयं	छेदपिं० ४३ क (ख पुस्तके)
दसविक्खभेण गुण	जवू०प० ४-३२ (क)
पढमक्खे अतगदे	छेदपिं० २२६ क (ख, पुस्तक)
पाहया जे छप्पुरिसा	पंचस० १-१६१ (क)
पुव्वेण तदा गतु	जवू०प० ६-१०७ (क)
बलभद्दणामकूडा	जवू० प० ४-६८ (क)
बलिगधपुप्फपउरा	जवू० प० २-७२ (क)
बासट्ठिजोयणाणि य	जवू०प० ७-६६ (क)
भूदयवणप्फदीसु	पचसं० ४-३५५ (क)
मरगय-वेदी-णिवहा	जवू० प० ६-१०७ (ख)
मदारतारकिरणा	जवू० प० ३-६१ (क)
रयणायरेहिं रम्मो	जवू० प० ६-१०६ (क)
विणयेणुवक्कमित्ता	भ०आरा ४१५क(मूला०द०)
विसयासत्ता जीवा	जवू०प० ११-१५५ (क)
वेमाणियणरलोए	भ० आरा० ५१ (भाषा टी०)
सत्तत्तीससहस्सा	तिलो० प० ४-१६६७
सद्दहया पत्तियया	भ० आरा० ४८ क (मूला०द०)
सम्मे असखवस्सिय	लद्धिसा० १५५ क (स०टी०)
सयजोयण-आयामा	जवू०प० ४-१३८ (क)
सव्वाणं इंदाण	जंवू०प० ४-२६७ (क)
सेसाणं तु गहाण	जवू० प० १२-६४ (क)
सोलस चेव चउक्का	जवू० प० १२-४३ (क)

नोट—पचसग्रह और जबूदीवपण्णत्तीके वाक्योंका इस सूचीमें बादको मिली हुई आमेर (जयपुर) की प्राचीन (क्रमश वि० सं० १७६६, १५१८ की लिखी) प्रतियोंपरसे सग्रह किया गया है, इसीसे पूर्व प्रकाशित जिस जिस वाक्यके बाद वे उपलब्ध हुए हैं उनके अनन्तर क, ख आदि जोडकर उनके स्थानका यहाँ निर्देश किया गया है।

२ षट्खण्डागम-गाथासूत्र-सूची

[षट्खण्डागम ग्रन्थ प्रायः गद्य-सूत्रोंमे है, परन्तु उसमे कुछ गाथा-सूत्र भी पाये जाते है। जिन गाथा-सूत्रोंको अभी तक स्पष्ट किया जा सका है उनकी अनुक्रम-सूची निम्न प्रकार है :—]

३ टीकादि-ग्रन्थोंमें उपलब्ध अन्य-प्राकृत-पद्योंकी सूची
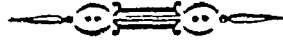
अ

अक्खाण रसणी कम्माण — अन० टी० ४–१०१
अगुरुलहूउवघादं — धवला आ० प० ४५१
अच्छिणिमीलणमित्तं — द्रव्यसं० टी० ३५
अट्ठत्तीसद्धलवा — धवला १–२–३
अट्ठविहकम्मविजुदा — धवला १–१–२३
अट्ठावण्णसहस्सा — जयध० गा० १
अट्ठासीअहियारेसु — धवला १–१–२
अट्ठेव सयसहस्सा — धवला १–२–१४
अडदाल सीदि बारस — धवला आ० प० ६०३
अदूढस्स अणलसस्स य — धवला १–२–६
अणदेज्जं णिमिणं च — मूला० द० २१२४
अण मिच्छ मिस्स सम्मं जयध० आ०प० १०१६
अणवज्जा कयकज्जा — धवला १–१–१
अण्णादं पासतो — जयध० गा० २०
अणिमित्तमेय केई — तत्त्वार्थवा० ६–५
अणियट्टे अद्धाए — गो० क० जी० टी० ५५०
अणियोगो य णियोगो — धवला १–१–५
अणुभागेहं मते — धवला आ० प० ८०८
अणुलोह वेदंतो — धवला १–१–१२३
अणुसंखासखगुणा — धवला आ० प० ६२३
अणुसंखासखेज्जा — धवला आ० प० ६२३
अणुवगयपराणुग्गह- — धवला आ० प० ८३८
अणुवय-महव्वयाइं — सा० टी० ५–५५
अण्णाणतिमिरहरणं — धवला १–१–१
अण्णादो मोक्खं — बोधपा० टी० ५३
अत्ता चेय अहिंसा — जयध० गा० १
अत्तामवुत्तिपरिभोग- — धवला आ० प० ११२१
अत्थादो अत्थंतर- — धवला १–१–११५
अत्थित्तं पुण संत — धवला १–१–७
अत्थित्ता णवमासे — धवला आ० प० ५३५
अप्पज्जत्ताण पुणो — तत्त्वार्थवृ० टि० ८–१४
अप्पपरोभयबंधण- — धवला १–१–११२
अप्पप्पवुत्तिसंचिद- — धवला १–१–४
अप्प(आद)हियं कादव्वं — विजयो० १५४
अप्पिदआदरभावो — धवला १–७–१
अभया (वहा) संमोहविवेग- धवला आ०प० ८४०
अभिमुहणियमिय-बोहण- — धवला १–१–११५
अम्हा दोण दि भयं दिहादो- — सा० टी० ८–८०
अवगयणिवारणट्ठं — धवला १–१–१
अवणयणरासिगुणिदो — धवला १–२–५
अवहारवड्ढिरूवा — धवला १–२–५
अवहारविसेसेण य — धवला १–२–५
अवहारेणोवट्टिद- — धवला आ० प० ५६८
अवहीयदि त्ति ओही — धवला १–१–११५
असणं चयति दीहं — अन० टी० ४–६४
असरीरा जीवघणा — धवला १–६–१,७
असहायणाणदंसण- — जयध० आ० प० १०१८
असिदिसद किरियाण — स० सि० ८–१
अह खंति मज्जवज्जव- — धवला आ० प० ८३६
अहमिंदा जह देवा — धवला १–१–४
अहिसेयवंदणा- — अन० टी० ६–१३
अगं सरो वजणलक्खणाणि धवला आ०प० ५२८
अंगोवगसरीरिंदियं — धवला आ० प० ३७४
अंणत्थ किं फलो वहा — सा० टी० ८–८०
अंतधणं गुणगुणियं — गो० जी० जी० टी० ३५४
अंतो णत्थि सुदीणं — पद्मनं० त० १४६
अंतोमुहुत्तपरदो — धवला आ० प० ८३८
अंतोमुहुत्तमेत्तं — धवला आ० प० ८३८

आ

आउअबंधो थोवो — धवला आ० प० १०१३
आउगवसेण जीवो — विजयो० २५
आउवभागो थोवो — धवला आ० प० ६५३
आगमउवदेसाणा — धवला आ० प० ८३८
आणद-पाणदकप्पे — धवला आ० प० ४१५
आचेलक्के य ठिदो — विजयो० ४२१
आदाहीणं पदाहीण — चारित्रसा० पृ० ७१

ओ

क

ख

ग

घ

च

त

थ

द

फ

ब

म

सत्तसहस्सा णवसद-	धवला आ० प० ५३७
सत्ता जंतू य पाणी य	धवला १-१-२
सत्तादिदसुक्कस्सा-	जयध० आ० प० ६२६
सत्तादी अट्ठंता	धवला १-२-१४
सत्तादी छक्कंता	धवला १-२-१५२
सत्तावीसेदाओ	धवला आ० प० ४५१
सत्तेताल धुवाओ	धवला आ० प० ५४१
सत्थो चंदणकद्दमो	वि० कौ० ५-४
सद्दणयस्स दु वयणं	धवला आ० प० ३७५
सब्भावो सच्चमणो	धवला १-१-४६
सम उप्पण्णपधसी	दव्वस० टी० २१
समरसरसरंगु गमिण	अन० टी० ४-७६
सम्मत्तरयणपव्वय-	धवला १-१-१०
सम्मत्तं चारित्तं	धवला १-७-१
सम्मत्तवेयणीए	धवला आ० प० ६५३
सम्माइट्ठी जीवो	धवला १-१-१३
सयणासण घरछित्तं	आ०रा० सा० टी० ३०
सव्वजणणिव्वुदिपरा	पचत्थि० ता० वृ० १
सव्वट्ठिदीणमुक्कस्स-	तत्त्वार्थवा० ६-३
सव्वम्हि लोयखेत्ते	स० सि० २-१०
सव्वंहि ठिदिविसेसे	धवला १,६-८,६
सव्वाओ किट्टीओ	धवला १,६-८,१६
सव्वा पयडिट्ठिदिओ	स० सि० २-१०
सव्वासिं पगदीण	धवला १-५-४
सव्वासु वट्टमाणा	धवला आ० प० ८३७
सव्वुवरि मोहणीए	धवला आ० प० ६७४
सव्वुवरि वेयणीए	धवला आ० प० १-१३
सव्वेण वि जिणवयणं	विजयो० ४४६
सव्वे वि पुव्वभंगा	धवला आ० प० ३७८
ससमयमावलिअवरं	गो० जी०, जी० टी० ५७५
ससेदिमसंमुच्छिम-	धवला १-१-३२
संकाइमल्लगहिओ	धवला आ० प० ८३७
संखा तह पत्तारो	धवला आ० प ३७८
संगहणिग्गहकुसलो	धवला १-१-१
संगहिय सयलसंजम-	धवला १-१-१२३
संजदधम्मकहा वि य	जयध० गा० १
संजमहीणं च तवं	विजयो० ११६
संजोगावरणट्ठं	धवला आ० प० ८७२
संते वए ण णिट्ठादि	धवला १-५-४
संपयपडलहिं लोयणइं	अन० टी० २-६०
सपुण्णं तु समग्गं	धवला १-१-११५
संयमविरईण को	अन० टी० ४-१७१
संवास वंदणोपादाण	विजयो० १५५
संसइदमभिग्गहदं	विजयो० ४९
सा खलु दुविहा भणिया	दव्वस० टी० ३३६
सायारे पट्ठवओ	धवला १,६-८,६
सावरणवहुलपडिवद्दे	धवला १-१-१
सांतरणिरंतरेण य	धवला आ० प० ४५१
सांतरणिरंतरेदर-	धवला आ० प० ६२३
सिक्खा किरियुवदेसा	धवला १-१-४
सिद्धत्ताणस्स जोग्गा	धवला १-१-४
सिद्धत्थ-पुण्णकुंभो	धवला १- -१
सिद्धोऽहं सुद्धोऽहं	दव्वसं० टी० १८
सिलपुढविभेदधूली	धवला १-१-१११
सीयाय(त)वादिए हिमि-	धवला आ० प० ८४०
सीसु गमतह कवणु गुरु	भावपा० टी० १६२
सीह-गय-वसह-मिय-पसु-	धवला १-१-१
सुणिऊण दुणाइणिहण	धवला आ० प० ८३८
सुतवे सम्मत्ते वा	मूला० द० २६
सुत्तादो तं सम्म	धवला १-१-३६
सुदणाणं पुण णाणी	पचत्थि० ता० वृ० ४३
सुरभिणा व इदरेण	विजयो० ३४३
सुरमहिदोच्चुदकप्पे	धवला आ० प० ५३५
सुविदिय जयस्सहावो	धवला आ० प० ८३७
सुहदुक्खसुवहुसस्सं	धवला १-१-४
सुहमट्ठिदिसंजुत्तं	गो० जी० जी० टी ५६०
सुहमा संति पाणा खु	विजयो० ६०६
सुहुमणुभागादुवरिं	धवला आ० प० ८१२
सुहुमम्मि कायजोगे	धवला आ० प० ८४०
सुहुमं तु हवदि खेत्तं	धवला १-२-३
सुहुमं तु हवदि खेत्तं	धवला १-२-१६
सुहुमो य हवदि कालो	धवला १-२-३
सुहुमो य हवदि कालो	धवला १-२-१६
सूई मुद्दा पडिहो	धवला १-१-५
सेज्जं सेविज्जदि जदिणा	विजयो० १७५
सेडिअसंखेज्जदिमो	धवला आ० प० ६२३
सेदो वण्णो झाण	पचत्थि० ता० वृ० ६
सेयवरो य आसंवरो य	दसणपा० टी० ११
सेलघण-भग्गघड-अहि-	धवला १-१-१
सेलट्ठिकट्ठवेत्ता	धवला १-१-१११
सेलेसिं संपत्तो	धवला १-१-२२

सो अइरा आरामो	मैथिली० प्र० ६
सो इह भणिय सहावो	दव्वस० टी० ३६५
सो जयइ जस्स परमो	जयध० आ० प० ४२०
सो धम्मो जत्थ दया	णियम० टी० ६
सोलसगं चउवीसं	तत्त्वार्थवृ० टि० १-८
सोलसयं चउवीसं	धवला १-२-६
सोलसयं छप्पएणं	धवला आ० प० ६०३
सोलसविधमुद्देसं	विजयो० ४२६
सोलह-सय-चोत्तीसं	जयध० गा० १
सोलह सोलसहिं गुणं	धवला १-४-२५
सोहम्मे माहिंदे	धवला आ० प० ५६२

ह

हय-हत्थि-रहाणहिवा	धवला १-१-१
हरितत्तणोसहिगुच्छा	विजयो० ११२३
हिंडंति कलभा वि अ	मैथिली० ३-१
हेट्ठा मज्झे उवरिं	धवला ६-३-२
हेदूदाहरणासंभवे य	धवला आ० प० ८३८
होंति कम्मविसुद्धाओ	धवला आ० प० ८६८
होंति सुहासवसंवर-	धवला आ० प० ८३६

नोट—इस सूचीमें कुछ ऐसे वाक्योंको भी शामिल किया गया है जो यद्यपि पुरातन-जैनवाक्य सूची-के किसी न किसी ग्रन्थमें ऊपर पृष्ठ १ से ३०८ तक आचुके हैं। परन्तु वे उस ग्रन्थसे पहिलेकी बनी हुई टीकाओंमें 'उक्तं च' आदि रूपसे उद्धृत भी पाये जाते हैं और जिससे यह जाना जाता है कि वे वाक्य संभवतः और भी अधिक प्राचीन हैं और वाक्य-सूचीके जिस ग्रन्थमें वे उपलब्ध होते हैं उसमें यदि प्रक्षिप्त नहीं हैं—जैसे कि गोम्मटसारमें उपलब्ध होनेवाले धवलादिकके उद्धृत वाक्य—तो वे किसी अज्ञात प्राचीन ग्रन्थपरसे लिये जाकर उसका अंग बनाये गये हैं। और इस लिये उन्हें भी इस सूचीके शीर्षकमें प्रयुक्त हुए 'अन्य' शब्द-द्वारा ग्रहीत समझना चाहिये।

---

४ धवला-जयधवलाके मंगलादि-पद्योंकी सूची

अजियं जिय-सयलविभु	धवला, वेयणा-अखि० १६
अज्जज्जणंदि-सिस्सेणु-	धवला, पसत्थि ४
अज्झप्पविज्जाणिउणा	जयध० पच्छिमख० ४
अठतीसम्हि सासिय (सत्तसए)	धवला, पसत्थि ६
अणुभागभागमेत्तो	जयध० ५-३-१
अणाणयंधयारे	धवला, ४-४
अब्भपडलंतसुत्तं	जयध० चरित्त० खं० पसत्थि ५
अरविंदगब्भगउरं	धवला, वेयणा अखि० ५
अरहंतपदो (अरहंतो) भगवंतो	धवला, पसत्थि ३
अवगयअसुद्धभावे	धवला १-७-१
असुरसुरणरवरोरग-	धवला, वेयणा अखि० १३
अहिणंदणमहिवंदिय	धवला, वेयणा-अखि० १५
अगंगबज्झणिम्मी	जयध० १-४
अंताइमज्झरहिया	जयध० २-१
अंताइमज्झहीणं	धवला १-६-१
इय पणमिय जिणणाहे	जयध० १०-२
इय भाविऊण सम्मं	जयध० पसत्थि ४
इय सुहुमं दुरहिगमं	जयध० चरित्त० ख०पसत्थि ३
उज्जोइदायसम्मं	जयध० पसत्थि ५
उवओउ मंगलं वो	जयध० १२-१
उवसमिद-सयलदोसे	जयध० १४-१
एत्थ समप्पइ धवलिय	जयध० पसत्थि १
कम्मकलंकुत्तिण्णं	धवला १-५-१
कुम्मट्ठुजणियवेयण-	धवला, वेयणा-अखि० २
कुंथु-महंतं संथुव-	धवला, वेयणा अखि० १४
केवलणाणुज्जोइयछद्दव्व-	धवला १-२-१
केवलणाणुज्जे इयलोयालोए-	धवला १-८-१
खविय-घण-घाइ-कम्मं	जयध० ११-१
गणहरदेवाण णमो	जयध० चरित्त० खं०पसत्थि १
गुणहर-वयण-विणिग्गय-	जयध० १-७
चावम्हि व(त)रणि-वुत्ते	धवला, पसत्थि ८
जगतुंगदेव-रज्जे	धवला, पसत्थि ७

नोट—इस सूचीमें जिन वाक्योंके लिये वेयणा-अणि० के नम्बरोंकी सूचना की गई है वे 'वेयणा' अपर नाम 'कम्मपयडीपाहुड' के 'कदि' आदि २४ अनुयोग-द्वारोंमेंसे उस उस नम्बरके अनुयोगद्वार (अधिकार) सम्बन्धी धवला-टीकाके मंगल पद्य हैं।

५ शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
२	अग्गमहि 'समं	अग्गमहि ससमं
३	अजधाचार ३७२	अजधाचार ३-७२
४	अट्ठट्ठ १२-११३	अट्ठट्ठ " १२-१११
४	अट्ठएणव उवमाणा	अट्ठएणवउवमाणा
४	अट्ठत्तिय ·	अट्ठतिय " ·
५	अट्ठं बारस वग्गे	णव णव अट्ठ य बारसवग्गो
५	अट्ठारस जोयणाइं	अट्ठरस-जोयणाइं
६	अट्ठावीसं · १०८	अट्ठावीसं १०७
६	अट्ठि य अणेयभुत्ते	अट्ठियअणेयभुत्ते
७	अट्ठेव य जोयण	अट्ठेव जोयण
७	जट्ठेहिं	अट्ठेहिं
८	अड्ढस्स य अणलस्स	अड्ढस्स अणलसस्स
८	अडसोलस वत्तीसा	अड सोलस बत्तीसा
९	अणियट्टी बंध तयं	अणियट्टीवंधतियं
९	अणियट्टी संखेज्जा	अणियट्टीसंखेज्जा-
१०	अएणा णिएहदि दे	अएणा णिएहदि देहं
१३	अपि य ·	अवि य ··
१९	अविणिय ·	अविणय "
२०	अविरा ७०३६	अविरा · १० ३६
२४	अंगुल असंखगुणिदा गो. क.	अंगुलअसंख गुणिदा गो.जी.
२८	आदे ससहर	ताहे ससहर
३०	आराहणणिजुत्ती	आराहणणिज्जुत्ती
३२	आहदि मुणी	आहरदि मुणी
३२	आहदि सरीराणं	आहरदि सरीराणं
३४	इसयअठार	इगसयअठार
३४	हगतीसं	इगतीसं
४०	उक्कट्टेहिं	उक्कट्टेहिं (उग्गाढेहिं)
४७	उवरिल्लपंचया	उवरिल्लपंचये
५०	ए ए पुव्वपदिट्ठा	×
५३	गक्केक्क	एक्केक्क
५५	एत्थ पमत्तो आऊ	×
५५	एत्थं णिरयगईए ·	×
५६	एदम्मि य तम्मिस्से	एदम्मि तम्मि देसे
६२	एवं जिणाणंतरालं	एदं जिणाण समयंतरालं
६५	एसा · जिणाणं	एसा · जणाणं
६८	कत्तिय "किएहे५४४	कत्तिय किएहे७-५४४
६८	कद्दमपहव	कद्दमपवह
६९	फमहाणी १७८१	फमहाणी · ४-१७८१
७७	कुज्जा वामण तणुणा	कुज्जा वामण-तणुगा
७८	कूडागारा महरिह	कूडागारमहारिह
८३	गणिणिज्जक्खसु	×
८४	गगाकूड पमुत्तो	गंगाकूडमपत्ता
८५	गंगा-सिधुणईणं	गंगा-सिंधुणईहिं
८६	गिद्धउ लय भारुंडो	गिद्ध-उलुय-भारुंडो
९५	चराय · तिलो प.	चरया य · तिलो. सा.
९७	चागो ३ ३९	घागो ३-३९
९९	चोद्दसया छा	चोद्दससयछा ·
११३	जंणियम-दीव	जम-णियम-दीव
१२१	जुवराय-वकलत्ताण(?)	जुवराय-महल्लाणं
१२२	जे णुपु	जे पुणु
१२२	जे भूंदिकम्ममत्ता	जे भूंदिकम्ममता
१२३	जे मंदरजुत्ताइं ·	×
१२३	जे सोलस कप्पाणं	जे सोलस-कप्पाणि
१२४	जो इट्ठण (जोइस)	जोइट्ठण (जोइसगण)
२२८	जोयण य छस्स	जोयणयछस्स
१३६	णवदुत्तरसत्तसए	×
१४१	णाभिगिरी	णाभिगिरिण
१४२	णिक्खत्तु · मूला०	णिक्खित्तु मूला०
१४२	णिक्खत्तु गो.जी.	णिक्खित्तु गो.जी.
१४२	णिग्गच्छि य	णिग्गच्छिय
१४५	णिरयविला ·· २१०१	णिरयबिला · · २-१०१
१४९	तम्चिय दीवं वासो(सं)	तच्चियदीववासे
१४९	तट्ठाणादो दो दो(?)	तट्ठाणाधोधो
१५१	तत्तो तविदो प० २-४३	तत्तो तविदो ·· प०२-४३
१५१	तत्तो दो इद(ह)	तत्तो दोइद(दुइज्ज)
१५१	तत्तो दो वे वासो	तत्तो दोवे वासा

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
१५१	तत्तो परदो वेदीए	तत्तो परदो वेदी
१५६	तव्विवरीदं सव्वं	तव्विवरीदं सच्चं
१६७	तुसितव्वा	तुसिदव्वा
१६७	ते चउकोणेसुं एक्केक्क	ते चउचउकोणेसुं
१७६	दाणे लोहे	दाणे लाहे
१८२	दुगुणाए सूजी (च)	दुगुणाए सूजी (ची)
१८७	दाणदं	दुओणदं
१८६	धम्मम्मि संति-कुंथुसुं	धम्मम्मि संति-कुंथू
१६२	पचलिदसएणा	अवमिदसंका
१६४	पडिचरये आपुच्छय	पडिचरए आपुच्छिय
२०१	पद(ड)लहवेकपादा(?)	पददलहदवेकपदा
२०२	परदो अच्चत्तपदा ४-	परदो अच्चियपादा ८-
२०४	पलिहाणं दराणं	फलिहाणंदा ताणं
२१५	पुव्वं कयधम्मेण य	पुव्वि किएण धम्मेण
२१८	फुल्लंतकुमुद '' ४-७६७४	फुल्लंतकुमुद'' ४-७६५
२१६	वह्मपकुव्व(ज्ज)	वह्मप्पकुज्ज
२२६	भरहे केत्तम्मि	भरहे खेत्तम्मि
२३३	मग्गिणि'' ११७६	मग्गिणि ' ११७८
२४१	मिच्छत्तपच्चये	मिच्छत्तपच्चयो
२४२	मिच्छाई (त्ते०)	मिच्छाई
२५८	वरणालियेहिं रइओ	वरणालिएररइओ
२६२	वाहि-णिहाणं ···६३७	वाहिणिहाणं ४-६३७
२६३	विजयादिवासरग्गो	विजयादिवासवग्गो
२६३	विजयादिसु''' अंगह०	विजयादिसु'' अगप०
२६४	विजयो अचलो सुधम्मो	विजयोअचलोधम्मो
२७१	सच्चइ सुदो	सच्चइ-सुदो
२८८	संतादिल्ला	संताइल्ला
२६८	सुरणरणारप	सुरणरणारय
२६८	सुरणारएसु चत्तारि ४-५५	सुरणारएसु ४-५५ त्ते.
१६६	सुहुमकिरिएण झाण	सुहुमकिरिएण झाणे-
३००	सेणगिहथवादि	सेण-गिहथवदि
३०४	सोहम्मादि ' तिलो.प. ४८८	सोहम्मादि' तिलो.सा. ४८८
३०४	सोहम्मादिदिगिदा '''	×

क्रम-संशोधन—

३ १ अजदाई खीणंता पंचसं० ४–६४
  २ अजधाचारविजुत्तो पवयणसा० ३–७२
५ १ अट्ठाणवदिविहत्तं तिलो० प० १–२४२
  २ अट्ठासवदिविहत्ता तिलो० प० १–२५७
१५६ १ { तसचउ पसत्थमेय य ······· / तसचउ पसत्थमेव य ··· }
  २ तसचउ वण्णचउक्कं (चारोंपंक्ति)
२०५ १ पव्वजिदो मल्लिजिणो'' ··· ··· ··
  २ प०व्वज्ज संगचाए'' ········ ··· ·· ···
३०० १ सूरपुर चंदपुर णाचु'' ··
  २ सूरप्पह भद्दमुहा ··· ·· ·· ··
  ३ सूरप्पह सूइवट्टी · ·· ·· ·· ··· ···
  १ सेण-गिहथवदि पुरहो · ·· ··· ···
  २ { सेणं अणोरयारं'' ···· ·· · ·· ···· / सेणं णिस्सरिदूणं''' ····· ·· ······· }

नोट १—शुद्धिके कारण जिन दूसरे वाक्योंका क्रम बदलना आवश्यक जान पड़े उनपर अंक डाल कर उन्हें यथाक्रम कर लिया जाय अथवा यथास्थान लिख लिया जाय।

नोट २—जिन वाक्योंके शुद्धि-स्थानपर यह × चिन्ह दिया है उन्हें निकाल दिया जाय।

नोट ३—अशुद्ध पाठादिको देते हुए जहाँ विन्दु ''' लगाये गये हैं वहाँ वे उस अगले पाठके सूचक हैं जो सूचीमें छपा है और अशुद्ध नहीं है।